सूची

विषय	पृष्ठ

भूमिका

भूमिका

एक विचित्र प्रकार की शिक्षा के प्रभाव से हम लोग अपने देश से बहुत दूर हो गये हैं। हम अपनी भाषा के थोड़े से शब्दों की परिधि में क़ैद हैं। न हम उस परिधि से बाहर जाना चाहते हैं और न वे शब्द देश के अन्तर्नाद को हमारी सीमा में प्रवेश करने देते हैं। हम अपने देश में रहते हुए भी विदेशी जैसे हैं। हमने वह पगडंडी छोड़ दी है, जिसके सहारे हम अपने विश्व-विख्यात पूर्वजों के देश में निश्चय पहुँच जाते। हम एक लम्बी-चौड़ी साफ़-सुथरी सड़क पर चल रहे हैं, और उसके दोनों ओर के मनोमोहक दृश्यों को देखकर हम ऐसे मुग्ध हैं, कि यह सड़क हमें कहाँ ले जायगी? यह पूछना भूल गये हैं। हमने वह दीपक हाथ से फेंक दिया है, जिसकी सहायता से हम अपना रास्ता अपनी आँखों से देख लेते थे। अब हम यद्यपि एक अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश के घेरे मे चल रहे हैं, पर चकाचौंध के मारे हमारी आँखें यह देखने में बेकार हैं कि इस प्रकाश के आगे क्या है? और इस की क़ैद में हम कहाँ जा रहे हैं?

वह देश कहाँ है? जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति की आत्माएँ निवास करती हैं। वह देश कौन सा है? जिसके घर-घर में तुलसीदास बोल रहे हैं। सूरदास बालकों का रूप धरकर कहाँ खेल रहे हैं? कबीर कहाँ अपनी आत्मा निचोड़कर अमृत रस बाँट रहे हैं?

हा !

'कोई ऐसी सखी चातुर न मिली

हमें पिया के घरे लौं पहुँचा देती।'

अरे ! कौन हमें उस देश से दूर लिये जा रहा है ? हम कहाँ जा रहे हैं ?

गंगा की उज्वल किन्तु चञ्चल, यमुना की श्यामल किन्तु गंभीर अजस्र धारा के साथ जिनकी जीवन-धारा गीतों के रूप में प्रवाहित है, क्या हम उनसे दूर हुये जा रहे हैं ?

आश्चर्य है !

'पास बैठे हैं मगर दूर नज़र आते हैं।'

अरे ! ढाक के घने जंगलों मे, आम, महुवे, पीपल, इमली और नीम की घनी और शीतल छाया में, नालों के कलरव के साथ, तुलसी के चबूतरे के निकट, चमेली, माधवी, कामिनी और मालती के फूलों की सुगंध में, वंशी की ध्वनि मे, कोकिल के आलाप मे, लहराती हुई पुरवा हवा मे और लहलहाते हुये खेतों के किनारे जीवन का जो प्रवाह अनादि काल से प्रवाहित है, क्या हम उस प्रवाह से अलग हो गये हैं ?

क्या हमारी एक विचित्र रहन-सहन हमे उस देश में जाने नहीं देती ? क्या अल्पज्ञान का विशाल अभिमान उस देश की शान्ति-दायिनी ध्वनि को हमारे समीप पहुँचने नहीं देता ? क्या एक नवनिर्मित भाषा हमारे और उस देश के बीच में लोहे की दीवार की तरह खड़ी है ?

क्या हम क़ैद में हैं ?

हमारी आँखें तो यहीं हैं; किन्तु जान पड़ता है, हम योरप मे जाग रहे हैं। हमारे कान तो यहीं हैं; किन्तु जान पड़ता है; हम योरप ही की आवाज़ सुन सकते हैं। हमारा मन तो यहीं है; किन्तु जान पड़ता है, हम उससे केवल पश्चिम ही का स्वप्न देख सकते हैं। बात क्या है ? इतनी आसानी से हमें इतनी दूर कौन उठा ले गया ?

आओ, एक बार चलकर हम अपने उस पुराने देश को देखें तो सही, जो नालों के किनारे, आम के घने बागों के बीच में बसा हुआ है। जिस देश में घर-घर मे चंदन के वृक्ष और दरवाजो मे चंदन के किवाड़े लगे हैं। जहाँ सब लोग सोने के थालों मे भोजन करते हैं, सोने के बरतनों में पानी पीते हैं। जहाँ घर-घर में चित्रशाला है। जहाँ की सब स्त्रियाँ चित्र-कला मे निपुण हैं और सब पुरुष चित्रों की सुन्दरता पर मुग्ध होने का हृदय रखते हैं। जहाँ घरों के पिछवाड़े घनी बँसवाडी है। आम और महुवे के पेडों की छाया जहाँ रास्तों को शीतल और सुखद बनाये रखती है। जहाँ प्रत्येक कंठ से गान निकलता है। जहाँ की चौपालों मे राजनीति के जटिल प्रश्न एक-एक वाक्य से सुलझाये जाते हैं। जहाँ मनुष्यमात्र के जीवन का निर्दिष्ट लक्ष्य और निश्चित पथ है। जहाँ धर्म के बंधन मे सब प्रकार की स्वतंत्रता है। जहाँ प्रेम का नशा और आनन्द का उन्माद है। जहाँ के पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, सूर्य-चन्द्र और मेघ भी मनुष्य-जीवन के सहचर हैं। जहाँ घटाये पतियों को घर बुला लाती हैं। जहाँ कोयलें विरहिणियों के संदेश ले जाती है कि 'फागुन आ गया'। जहाँ कन्याएँ अपने लिये स्वयं वर चुनती हैं। जहाँ वर अपने लिये वधू पसन्द कर सकते हैं। जहाँ विवाह वासना-तृप्ति के लिये नहीं, बल्कि लोक-सेवा के लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से प्रेरित होकर किया जाता है। जहाँ माता के अकृत्रिम स्नेह की नदी, स्त्री के अखंड अनुराग की तरङ्गिणी, बहन के अपार प्रेम की सरिता और प्रकृति के शाश्वत श्रृंगार की धारा सदा प्रवाहित है—

आओ, उस देश को चलें।

क्या वह देश कहीं दूर है? नहीं; इतना समीप है, जितना समीप कोई दूसरा देश हो नहीं सकता। सिर्फ आँखों का चश्मा उतार डालना होगा, और एक बार अपनी आत्मा का स्मरण कर लेना होगा।

घटनायें जीवन की सीढ़ियाँ हैं। एक दिन एक घटना ने मेरे लिये उस देश का द्वार खोल दिया।

शाम हो रही थी। सूरज के डूबने में १०–५ ही मिनट की देर थी। जौनपुर से बदलापुर की सड़क पर उस दिन का वही शायद आख़िरी इक्का था। इससे सड़क के किनारे बैठी हुई एक बुढ़िया को अपनी घास के लिये बड़ी ही चिन्ता थी। वह घबराई हुई आँखों से डूबते हुये सूर्य को भी देख लिया करती थी और इधर घास ले लेने के लिये इक्केवाले की खुशामद भी करती जाती थी। अंत में बुढ़िया दो आने से उतरकर चार पैसे पर कुल घास देने को राज़ी हो गई। पर इक्केवाले को घास की ज़रूरत ही नहीं थी। वह बातों ही में टाल-मटोल कर रहा था।

मुझे अवकाश था। क्योंकि पहिये की कील निकल गई थी, और इक्केवान उसे दुरुस्त करने में लगा था। मैं बुढ़िया की ओर आकर्षित हुआ। मैंने देखा—बुढ़िया की अवस्था साठ से कम न होगी। शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा-मात्र रह गया था। चेहरे पर असंख्य झुर्रियाँ थीं। आँखें धुँधली हो गई थीं। बुढ़िया जो धोती पहने थी, वह सैकड़ों स्थानों पर मोटे डोरे से भद्दे तौर पर सिली हुई थी। फिर भी धोती के किनारे कई जगह से फटे थे और उनके कोने लटक रहे थे। मैं बुढ़िया से देहाती बोली में बातें करने लगा। वह भी अपनी बोली में जवाब देने लगी। जिसका भावार्थ यह है—

मैंने पूछा—बुढ़िया, सच-सच बताओ। यह घास कितने को दोगी?

बुढ़िया ने कहा—एक आना पैसा मिल जाता तो मेरा काम चल जाता।

मैंने पूछा—आज क्या तुम्हें एक आने पैसे की बड़ी ज़रूरत है?

बुढ़िया ने मेरी ओर कृतज्ञता से भरी हुई एक दृष्टि डाली। मानो इतना पूछकर मैंने उस पर कोई बड़ा उपकार किया था। वह एक साँस

खींचकर कहने लगी—हाँ; इसमे से दो पैसा तो मैं बनिये को देती। एक महीना हुआ उससे नमक उधार ले गई थी। कई दिन से नमक चुका है। एक पैसे का आज नमक ले जाती। मेरे एक नाती है। उसके लिये एक पैसे का गुड ले जाती। कई महीने से उसको गुड़ देने का वादा कर रक्खा है। कल शाम से ही वह गुड-गुड चिल्ला रहा है। आज मै बड़े तडके यह सोचकर उठी थी कि जल्दी घास बेचकर पैसे मिल जायँगे तो नाती के लिये गुड भी लेती जाऊँगी। आते वक्त मैं उससे वादा कर भी आई थी। वह मेरी राह देखता खडा होगा। देर हो जायगी, तो वह सो जायगा।

यह कहते-कहते बुढ़िया की आँखें भर आई। उसके मन की वेदना मैं अब समझने लगा। मैंने पूछा—बुढ़िया! अगर यह घास तीन ही पैसे को बिकी, तब क्या-क्या खरीदोगी?

बुढ़िया का संतोष बातों से नहीं हो सकता था। उसका मन तो नाती से किये हुये वादे मे विकल था। उसने कहा—भैया! आपको लेना तो है नहीं।

मैंने कहा—मैं तुम्हारी घास खरीद लूँगा। तुम मुझसे बातें करो।

बुढ़िया कहने लगी—तीन ही पैसे मिलेंगे, तो दो बनिये को दूँगी। क्योंकि उसका उधार बहुत पुराना हो गया है। उसके डर से मेरी उधर की राह बन्द है। एक पैसे का गुड ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—और नमक?

बुढ़िया ने कहा—जैसे चार रोज़ से अलोना खा रही हूँ, वैसे एक रोज़ और खा लूँगी। कल फिर तडके उठकर घास करूँगी। उससे कुछ पैसे मिल जायँगे, तो नमक ले जाऊँगी।

मैंने पूछा—आज तुमने दिन भर कुछ खाया नहीं होगा।

बुढ़िया ने कहा—जंगल में खाती क्या? पहर रात रहे उठी हूँ। तब से पहर दिन रहे तक घास करती रही हूँ। कहीं घास रह भी नहीं

गई है। और बाबूजी ! अब पौरुष भी थक गया है। इतनी देर में यही इतनी-सी घास मिली है। सोचा था कि सडक पर आते ही वह बिक जायगी। मैं जल्दी ही घर लौट जाऊँगी। और नाती को गुड खिलाकर तब मैं पानी पीऊँगी।

मैंने पूछा—दिन मे तुमको भूख नहीं लगती ?

बुढिया ने कहा—लगती क्यों नहीं ? पर खाऊँ क्या ? बहुत ज़ोर की भूख लगती है तो पानी पी लेती हूँ।

मैंने पूछा—बुढिया ! तुम्हारी यह धोती कितनी पुरानी है

बुढ़िया ने कहा—यह तीसरा बरस चल रहा है।

मैंने पूछा—नई धोती नहीं ख़रीदी ?

बुढिया ने कहा—बेटा ! कहाँ से खरीदूँ ? पहले जब शरीर में दम था, तब कुछ काम ज़्यादा करती थी, और जो पैसे मिलते थे, उनमें से काट-कपट कर कुछ जमा करती जाती थी। बरस-डेढ बरस में डेढ-दो रुपये जमा हो जाते थे, उनसे मैं एक धोती ले लेती थी। अब खाने ही भर को नहीं अँटता, तो पैसे बचाऊँ कहाँ से ?

मैंने पूछा—तुम्हारे कै लडके हैं ?

बुढ़िया ने कहा—एक।

मैंने पूछा—क्या वह तुमको खाने को नहीं देता ?

बुढिया ने कहा—वही अकेला तो घर में कमानेवाला है। वह है, उसकी स्त्री है, और एक मेरा नाती है। बहू को जब से लडका हुआ है, तब से वह बीमार ही रहती है। वह कमा सकती ही नहीं। अकेला मेरा लड़का दिन भर मजदूरी करके जो कुछ लाता है, वह उन्हीं तीनों के लिये पूरा नहीं पडता। मुझे कहाँ से दे ? मैं जो दो-चार पैसे कमा लेती हूँ, उतने ही की रोटी मैं भी बहू से बनवा लेती हूँ। जिस दिन नहीं कमाती, उस दिन उपवास कर लेती हूँ।

मैंने पूछा—उस दिन क्या तुम्हारा बेटा खाने को नहीं पूछता ?

बुढिया ने कहा—पूछता है। लाकर सामने रख देता है। पर बेटा! मैं उसका हिस्सा क्यों खाऊँ? मैं भी खा लूँ, तो वह भूखा ही रह जायगा। फिर अगले दिन कमायेगा कैसे? वह न कमायेगा तो वे तीन प्राणी तकलीफ पायेंगे न? मैं तो बुढिया ठहरी। भूखी रहकर पड़े-पड़े दिन काट दूँगी।

बुढिया की करुण-कहानी सुनकर मैं तो डूबने-उतराने लगा। कहाँ तो काव्य के नवरसों की मिथ्या और अस्वाभाविक कल्पना! और कहाँ साक्षात् मूर्तिमान करुण-रस का दर्शन! मैं निस्तब्ध हो गया।

इक्केवाला चलने की जल्दी कर रहा था। बुढिया को अपने नाती के लिये गुड की चिन्ता सता रही थी। मैं ने दो आने मे उसकी घास ख़रीद कर वहीं सड़क पर छोड दी और जो कुछ हो सका, सहायता स्वरूप उसे कुछ और भी देकर अपनी राह ली।

इसी घटना के साथ मैं ने पहले-पहल उस देश की सीमा में पैर रक्खा। सीमा मे प्रवेश करते ही मैं सोचने लगा—अरे! क्या यही वह देश है? जहाँ के लोग सोने के बरतनों में खाते-पीते थे। यही क्या वह देश है? जहाँ घर-घर चंदन के वृक्ष थे। यहाँ तो सुख नाम का कोई पदार्थ कहीं दिखाई ही नहीं पडता। यहाँ के दु.खों पर तो शरत् बाबू उपन्यास लिखते-लिखते और रवीन्द्रनाथ कविता रचते-रचते थक जायँगे।

यहाँ तो चारों ओर दुःख ही दुःख है। एक ग़रीब व्यक्ति बहुत सी टोकरियाँ एक लाठी से लटकाये गाँव की ओर जा रहा है। टोकरियों का जितना बोझ उसके कंधे पर है, उससे कहीं अधिक बोझ उसके मन पर कुटुम्बियों की उन लालसाओं का है जो टोकरियों की बिक्री से प्राप्त हुये पैसों से पूर्ण होंगी। उस घासवाली बुढ़िया की तरह वह भी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री, छोटे भाई या अन्य कुटुम्बी से किसी न किसी चीज का वादा करके घर से चला है।

बहुत से किसान नाजों की गठरियाँ पीठ पर, सिर पर, कंधे पर या काँख में लिये बाज़ार की ओर जा रहे हैं। प्रत्येक के मन में नाज की बिक्री के पैसों से कोई न कोई चीज़ ख़रीदकर किसी न किसी को संतुष्ट करने की तरंगें उठ रही हैं। आज कितने पैसों की ज़रूरत है? और नाज की बिक्री से कितने पैसे आयेंगे? और वह किन-किन जरूरतो में व्यय होंगे? किसान बार-बार इन गुत्थियों के सुलझाने मे व्यस्त हैं।

कितने ही घर ग़रीबों के हैं। जिनमे कोई चहल-पहल नहीं है। एक घर की दशा कवि के शब्दों में सुनिये। कोई व्यक्ति अपना मानसिक कष्ट इस प्रकार कह रहा है—

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मन्दाशया बान्धवा।
लिप्ता जर्जरकर्करी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते।
गेहिन्या त्रुटितांशुकं घटयितुं कृत्वा सकाकु स्मितं।
कुप्यन्ती प्रतिवेशिलोकगृहिणी सूचीं यथा याचिता॥

'लड़के भूख से व्याकुल होकर मुर्दे के समान हो गये हैं। बाँधव विमुख हो गये हैं। हाँडी के मुँह पर मकड़ी ने जाला तन दिया है। ये सब मुझे उतना कष्ट नहीं देते, जितना कष्ट पड़ोसिन का यह व्यवहार देता है, कि जब अपनी फटी धोती को सीने के लिये मेरी स्त्री उससे सूई माँगती है तब वह ताने से हँसकर क्रोध करती है।'

किसी ग़रीब के पास एक ही वस्त्र है। वह उसके विषय में कहता है—

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तयौवनः।
अलङ्करिष्यत्यथ पुत्र पौत्रकान् मयाऽधुना पुष्पवतेव धार्यते॥

'यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है। जब यह नया था, तब पितामह ने इसका उपयोग किया था। अब यह मेरे पुत्र

और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे फूल की तरह ही सँभालकर रखता हूँ।'

कोई पुरुष झंख रहा है—

अये लाजानुच्चैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी।
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना।
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुशबले।
तदन्तःशल्यं मे त्वमिह पुनरुद्धर्तुमुचितः॥

'रास्ते में किसी ने ज़ोर से 'लावा' कहा। गृहिणी ने उदास मुख से बच्चे के कान यत्नपूर्वक बंद कर दिये। जिससे भूखा बच्चा लावा का नाम न सुन सके। नहीं तो वह माँगने लगेगा। मैं निरुपाय था। यह जानकर गृहिणी की आँखें भर आईं। यही मेरे हृदय का काँटा है। हे भगवान् तुम्हीं उसे निकालने में समर्थ हो।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

मा रोदीश्चिरमेहि वत्स रहितान्दृष्ट्वाद्य बालानिमा—
नायातस्तव वत्स दास्यति पिता ग्रैवेयकं वाससी।
श्रुत्वैवं गृहिणी वचांसि निकटे कुड्यस्य निष्किञ्चनो।
निःश्वस्याश्रुजलप्लवप्लुतमुखः पान्थः पुनः प्रस्थितः॥

'हे बेटा! मत रोओ। तुम्हारे पिता जब आवेंगे और तुमको वस्त्र-रहित देखेंगे तो तुमको वस्त्र और माला देंगे।' ग़रीब पति झोपड़ी के पास खड़ा था। स्त्री का ऐसा वचन सुनकर उसने दुःख की साँस ली। आँसू से उसका मुख भीग गया और वह फिर लौट गया।'

किसी घर में यह दृश्य उपस्थित है—

कंथाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं।
रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा।
लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

'हे नाथ ! गुदड़ी का एक टुकड़ा मुझे दो। या इस बालक को तुम्ही गोद मे ले लो। आपके नीचे पयाल है, यहाँ की ज़मीन खाली है।' इस प्रकार स्त्री-पुरुष रात में बातें कर रहे थे। उसी समय वहाँ कोई चोर घुसा था। बातें सुनकर दूसरी जगह से चोरी करके लाये हुये वस्त्र को वह उनके ऊपर फेंककर रोता हुआ घर से बाहर निकल गया।'

कहीं यह दृश्य उपस्थित है—

वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं।
कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो।
यत्नात्संचिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला।
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति॥

'वृद्ध और अंधा पति खाट पर पड़ा है। छप्पर में थून ही थून शेष हैं। चौमासा सिर पर है। परदेश गये हुये पुत्र का कुशल-समाचार भी नहीं मिल रहा है। बहुत यत्न से एक-एक बून्द करके एकत्र किये हुये तेल की कुल्हिया भी फूट गई। इस प्रकार से आकुल-व्याकुल होकर चिन्ता करती हुई और अपनी पुत्र-वधू को गर्भ के भार से मन्द देखकर सास देर तक रोती रही।'

कोई कह रहा है—

मद्गेहे मुसलीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका।
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहिणी वाच्यः किमन्यो जनः॥
इत्यापन्नशिशून्सून्विजहतो दृष्ट्वा तु झिल्लीरवै—
र्लूता तन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति।

'मेरे घर मे (आहार न मिलने से) नन्हीं छुहिया-जैसी तो मूपिका, मूपिका जैसी बिल्ली, बिल्ली जैसी कुतिया और कुतिया जैसी मेरी स्त्री है। औरों की तो बात ही क्या? इस प्रकार प्राण छोड़ते हुये बच्चों को देखकर मकड़ी के जाले मे ढके हुये मुँह वाली चूल्ही झींगुर के स्वर से रो रही है।'

कोई कह रहा है—

पीठाः कच्छपवत्तरन्ति सलिले संमार्जनी मीनवत् ।
दर्वी सर्पविचेष्टितानि कुरुते संत्रासयन्ती शिशून् ।
शूर्पार्धावृतमस्तका च गृहिणी भित्तिः प्रपातोन्मुखी ।
रात्रौ पूर्णतडागसन्निभमभूद्राजन्मदीयं गृहम् ॥

'हे राजा ! रात में मेरा घर जल से पूर्ण तालाब की तरह हो जाता है । उसमें पीढे तो कछुवों की तरह, झाड़ू मछली की तरह तैरने लगते हैं । कलछी साँप की तरह चेष्टा करके बच्चों को भयभीत करती है । स्त्री सूप से आधा सिर ढक लेती है और दीवार गिरने वाली है ।'

गाँवों की फटी हुई दीवारें, एक बार पानी बरस जाने पर घंटों रोने वाले, चिथड़े जैसे छप्पर, सड़ी हुई गलियाँ, अस्थि-चर्मावशेष नर-नारी भयानक हाहाकार कर रहे हैं, जो कानों से नहीं, आँखों से सुनाई पड़ता है । यहाँ तो घर-घर में उस घासवाली बुढ़िया के जीवन से कहीं अधिक भयानक दृश्य उपस्थित है । देहात के लोग तरह-तरह की रूढ़ियों में जकड़े हुये अधःपतन की ओर जा रहे हैं । उनमें धर्म की भिन्न-भिन्न व्याख्यायें प्रचलित हैं ।

मैंने उस घासवाली बुढ़िया को कुछ पैसे देकर सन्तोष लाभ किया था । पर क्या वह सच्चा सन्तोष था ? नहीं । आत्मा जगने वाली थी । मैंने उसे थपकी मारकर फिर सुला दिया था । थोड़े पैसों से क्या ? यहाँ तो समूचे जीवन-दान की आवश्यकता है । मैं सोचने लगा—ईश्वर ने इस देश को ग़रीब बनाकर शिक्षितों को अपनी मनुष्यता के विकास के लिये कितना लम्बा-चौड़ा मैदान दे दिया है । शिक्षितों को अपने गाँवो के नीरव हाहाकार को, जो जीवन-साफल्य के लिये ईश्वर की पुकार है, सुनना चाहिये ।

गाँवों की दशा देखकर बार-बार मन को विक्षोभ और आँखों को जल-रेखाएँ घेर लेती थीं ।

तन और मन की आँखे तो खुली ही थीं। मैं ने कान भी खोल दिये। मैं गाँवों में गया। गाँवों का बाह्य सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक होता है। गरमी के तीन-चार महीने छोडकर बाकी प्राय. सब महीनों मे गाँवों के चारोंओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पडती है। तालाव और कुएँ बनवा देना और आम के बाग लगवा देना देहात मे बडे पुण्य और प्रतिष्ठा का काम समझा जाता है। जिसके पास कुछ भी धन बचता है, वह ये तीन काम अवश्य करता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि चारोओर आम के बाग ही बाग नजर आते हैं। पहले इन बागों के फल भी लोगों को मुफ्त मिला करते थे। पर पैसे की आवश्यकता बढ़ जाने से अब इनके फल नीलाम होने लगे हैं। पहले ज़मींदार लोग ऊसर और जंगल गायों के लिये छोड देते थे। पर अब उनका ज़ाती खर्च इतना बढ़ गया है कि वे एक एक बीता जमीन बेंचकर पैसे बना रहे हैं, फिर भी क़र्ज़दार बने रहते हैं। ज़मींदारों ने नदी-नालों तक के पेट बेच लिये हैं। उन्हें मनुष्यों के पेट की चिन्ता क्या है?

जैसे गाँव का बाह्य सौन्दर्य नयनाभिराम होता है वैसे ही उसके भीतर का दृश्य नरक से कम बीभत्स नहीं होता। बरसात में सारे रास्ते पानी और कीचड से भर जाते हैं। कई सौ वर्ष पहले बेनी कवि ने लखनऊ का जो चित्र खींचा था, वही बरसात में आजकल प्रत्येक गाँव मे प्रत्यक्ष दिखाई देता है। बेनी कवि लिख गये हैं—

गड़ि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात
सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की।
दामन उठाय पाय धोखे जो धरत होत
आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की॥
बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात
रथन के पथ ना विपद बरदऊ की।

वार बार कहत पुकार करतार तोसों
मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ॥

गाँव के लोग घर के पास ही घूर लगाते हैं। पानी बरस जाने से वह सड़ने लगता है। जगह की कमी से वे गायें, भैंसें, खेती के बैल अपने रहने के घर ही में बाँधते हैं। इससे हरवक्त पशुओं के गोबर और मूत की दुर्गन्ध बनी रहती है। अधिकांश लोग ग़रीब होते हैं, जो पुरानी और सड़ी-गली कच्ची दीवारों से घिरे हुये घर में, चूते हुये खपरैल या फूस के छप्पर के नीचे रहते हैं। जब सावन में घटा घिर आती है, तब उनके चेहरों पर घर गिरने के भय और खाने-पीने और पहनने की चीजों के भीग जाने की चिन्ता के बादल घिर आते हैं। जब पानी बरसने लगता है, तब उनकी आँखें चूने लगती हैं। बरसती हुई रात मे रात-रात भर बेचारे सो नहीं सकते। या तो किसी कोने में उकरू-मुकरू बैठकर रात बिता देते हैं, या किसी जगह, जहाँ चूता न हो, खड़े-खड़े आँखों में रात निकाल देते हैं और सबेरा होते ही फिर दिनभर पेट के धंधे मे लगे रहते हैं।

यह सब होते हुये भी गाँवों के हृदय में सुख का प्रकाश है। वह सुख आँख से नहीं, कान से दिखाई पड़ता है। यदि वह सुख न होता तो अनन्त दुःखों का भार गाँव के लोग कैसे उठा सकते थे? बरसात के महीनों में गाँव में जाकर रहिये, तो देखियेगा कि जो व्यक्ति भूख की ज्वाला से जल रहा है, वह भी गा रहा है—

धै देत्यो राम—हमारे मन धिरजा।
सब के महलिया रामा दिअना बरतु हैं
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे० ॥ १ ॥
सब के महलिया रामा जेवना बनतु हैं
हरि लेत्यो हमरो भूख। हमारे० ॥ २ ॥
सब के महलिया रामा सेजिया लगतु हैं
हमरो हरि लेत्यो नींद। हमारे० ॥ ३ ॥

सावन की घटा जवानी की तरह उमड़ती चली आ रही है। पुरवा हवा अत्यन्त प्रिय व्यक्ति के कर-स्पर्श की भाँति सुहावनी लग रही है। ऐसे समय मे वह चरवाहा, जिसे पेट भर खाने को नहीं मिलता, ओढ़ने-बिछौने की तो बात ही क्या? जिसके पास आराम से सोने भर के लिये भी जगह नहीं—ऊँचे स्वर से बिरहे गा-गा कर संसार के समस्त दुखों को तुच्छ समझ रहा है—

मन तोरा अदहन तन तोरा चाउर, नयन मूँग के दालि।
अपने बलम के जेंवना जेवतिउ, बिनु लकड़ी बिनु आगि॥

× × ×

सकल चिरैया उड़ि उड़ि जैहैं, अपनी अपनी जून।
मैं तो पापिनि परिउँ पिंजड़वा, मरउँ बिसूर बिसूर॥

× × ×

जोवन गया तो क्या हुआ रे, तन से गई बलाय।
जने जने को रूठना रे, हम से सहा न जाय॥

किसान दिनभर खेतो मे काम करके थकान से चूर शाम को घर लौट रहा है। वह गाता आ रहा है—

बेला फूलै आधी रात, गजरा मैं केके गरे डालूँ।

स्त्रियाँ खेत में काम कर रही हैं। कपड़े सब के मैले और फटे पुराने हैं। कई ऐसी होंगी, जिन्हें रात मे भर पेट भोजन नहीं मिला होगा। कई ऐसी होगी, जिन्हें अकारण क्रोधी पति ने पीटा होगा। फिर भी वे गा रही हैं—

सँवलिया रे काहें मारै नजरिया।
मारै नजरिया जगावै पिरितिया। सँवलिया रे॥
जैसे दूध मे पानी मिलतु हैं,
वैसे मिलौं तोरे साथ। सँवलिया रे॥

जैसे अकास प चिड़िया उड़तु हैं,
वैसे उड़ौं तोरे साथ। सँवलिया रे ॥

सावन मे गाँव-गाँव में हिंडोले पड़ जाते हैं। जिन पर दिन में और रात मे लडकियाँ और बहुएँ झूलती और गाती हैं। किसी को ठीक-ठीक भोजन-वस्त्र नहीं मिलता। किसी की सास कर्कशा है और वह नरक-यंत्रणा भोग रही है। फिर भी सब प्रसन्न मन से गाती हैं—

प्रेम पिरित रस बिरवा रे तुम पिय चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजौ देखेउ मुरझि न जाय ॥
प्रेम पिरित रस बिरवा ॥

सावन का महीना है। बहुओ का मन नैहर के लिये तड़पने लगता है। हिंडोले के गीतो मे अपनी यह तडप वे गा-गाकर सुना रही हैं—

ठाढ़ी झरोखवाँ मैं चितवउँ नैहरे से केउ नाहीं आइ।
ओहि रे मयरिया कैसन बपई जेकर ससुरे में सावन होइ ॥

कहार लोग बहुओं को पालकी या डोली मे नैहर की ओर लिये जा रहे हैं। कंधे पर बोझा है। आँखे रास्ते पर लगी हैं। डोली ढोने ही की जीविका है। आमदनी कम है। घर मे खानेवाले बहुत हैं। हरवक्त चिंता सिर पर सवार है। फिर भी वे गाते जाते हैं—

सोच मन काहे क करी।
मोरे मालिक सिरी भगवान ॥ सोच० ॥

बरसात मे मेले बहुत होते हैं। स्त्रियाँ झुंड की झुंड मेलों मे जाती हैं। दुखी-सुखी सब घरों की स्त्रियाँ साथ गाती हुई चलती हैं। मेले के गीत प्रायः शांत और श्रृङ्गार-रस ही के होते हैं। उत्तेजक नहीं होते। स्त्रियाँ गाती चलती हैं—

रघुबर सँग जाव, हम न अवध माँ रहबै।
जौ रघुबर रथ पर जइहैं, भुँइये चली जाव। हम० ॥१॥

जौ रघुबर बन फल खइहैं, फोकली बिनि खाव। हम० ॥२॥
जौ रघुबर पात बिछैहैं, भुइयाँ परि जाव। हम० ॥३॥

गाँवों में कहीं कहीं मंदिर होते हैं, या साधु की कुटी होती है। कुछ लोग शाम को वहाँ जमा होते हैं। कोई संतानहीन होता है, कोई भाइयों से लड़-झगड कर आता है। किसी की अपनी स्त्री से नहीं पटती। कोई नितान्त दरिद्र है। पर गीत की दुनिया में सब अपना दुःख भूल जाते हैं—

कुटी में कुछ लोग गा रहे हैं। बाकी लोग बैठे सुन रहे हैं—

संतो नदी बहै इक धारा।
जैसे जल में पुरइन उपजै जल ही में करै पसारा।
वाके पानि पत्र नहिं भीजै ढुरकि परै जैसे पारा॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर पिय को वचन नहिं टारा।
आप तरै औरन को तारै तारै कुल परिवारा॥
जैसे सूर चढ़ै लड़ने को पग पीछे नहिँ टारा।
जिनकी सुरति भई लड़ने को प्रेम मगन ललकारा॥
भवसागर एक नदी बहत है लख चौरासी धारा।
धर्मी धर्मी पार उतरिगे पापी बूड़े मँझधारा॥

ऐसे गीत सुनकर बहुत से पापी पाप कम करने लगते हैं। बहुत से सत्य छोड़नेवाले सँभल जाते हैं। बहुत सी कर्कशा स्त्रियाँ पति की आज्ञाकारिणी हो जाती हैं। ऐसे गीत सामाजिक जीवन के मल को धोते रहते हैं।

कोई युवक अपनी जवानी की उमंग में है। वह अकेला गाता जा रहा है—

चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।
मैं चितवत तू चितवत नाहीं, नेह सिरानो जाय॥

दूर से आता हुआ पथिक थका-माँदा है। फिर भी वह गा रहा है—

झूला किन डारो रे अमरैयाँ।

रैनि अँधेरी ताल किनारे बुनिया परै फुइयाँ फुइयाँ॥

अमर कवि तुलसी को मैंने गाँवों में घर-घर मौजूद पाया। सबसे बड़ा आश्चर्य मुझे उस दिन हुआ था, जब मैंने जौनपुर की कचहरी में, एक जीर्ण-शीर्ण, अत्यंत दीन, देखने में निपट गँवार केवट को, जिससे पुलीस का एक सिपाही किसी मुकदमे में कुछ कहलाना चाहता था, अपने साथियों से अलग यह कहते सुना—

जानि न जाइ निसाचर माया।

तुलसीदास की व्यापकता देखकर मैं तो अवाक् रह गया। तुलसीदास केवट के घर में भी घुसे हैं, चमार के घर में भी मौजूद हैं, अहीर के घर में भी उपस्थित हैं। कितनों को अच्छी सलाह दे रहे हैं। कितनों को कुमार्ग से हटा रहे हैं। कितनों को सुमार्ग पर ले चल रहे हैं। हिन्दी भाषा-भाषी-समाज तुलसी का विराट् रूप है। गाँवों में असंख्य ऐसे लोग मिलेंगे, जो पढ़े-लिखे नहीं; जिन्हें संसार का अनुभव नहीं; पर वे जीवन के भयानक वन में तुलसी की चौपाई या दोहे की पगडंडी पकड़े निर्भय चले जा रहे हैं। कितने ही लोगों ने अपने जीवन को एक श्लोक, या एक भजन के सुपुर्द कर रक्खा है।

गाँवों की चौपाल मनोरंजक स्थान है। फुरसत के वक्त महल्ले के लोग चौपाल में आ बैठते हैं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। बीच-बीच मे कहावतें भी चलती रहती हैं। अच्छे से अच्छे रस-भरे महावरे आनंद बढ़ाया करते हैं। चौपाल में घाघ और भड्डरी भी मौजूद रहते हैं। कोई कह रहा है—

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान।

ममिला बिगरै साँझ बिहान॥

'राजा बालक हो और उसका दीवान पुराना हो तो उन दोनों में नहीं पटेगी।'

कोई कह रहा है :—

आलस नींद किसानै नासै, चोरै नासै खाँसी।
अँखिया लीचर बेसवै नासै, बावै नासै दासी॥

'आलस्य और नींद से किसान, खाँसी से चोर, कीचड़वाली आँखों से वेश्या और दासी की संगति से बावा (साधू) का नाश होता है।'

कोई कह रहा है :—

जबरा की मेहरारू, गाँव भर की काकी।
अबरा की मेहरारू, गाँव भर की भौजी॥

'जबरदस्त की स्त्री को सब काकी कहते हैं। पर निर्बल की स्त्री को सब भौजाई समझते हैं।'

कोई कह रहा है :—

बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार॥

'जो कोई कहे कि बैल रक्खे बिना मैं खेती करता हूँ, भाइयों के सहयोग बिना मैं दूसरों से लड़ाई ठानता हूँ और बिना स्त्री गृहस्थी चलाता हूँ, वह चौदह पुश्त का झूठा है।

इसी प्रकार की हज़ारों अनुभव की बातें गाँवों में हरवक्त होती रहती हैं।

एक बार जाड़ों में गाँव की सैर कर आइये। रात के पिछले पहर में कोल्हू और जाँत के गीत सुनकर आप का मन मुग्ध हो जायगा।

गर्मी के दिनों में विवाह की धूम रहती है। महल्ले की स्त्रियाँ वर और कन्या के घरों पर जमा होकर विवाह के गीत गाया करती हैं।

देहात के जीवन में मुझे गीतों की प्रधानता पद-पद पर प्रतीत होने लगी। भयानक दुःखों से ओत-प्रोत जीवन में ये गीत कैसे उत्पन्न हुये?

जैसे कीचड़ में कमल। मैं गाँवों की यह छटा देखकर मन ही मन मुग्ध हो गया। पर गीतों के संग्रह की ओर मेरी प्रवृत्ति बहुत दिनों तक नहीं हुई थी। केवल मैं मन ही मन उसका रसानुभव किया करता था। ग्राम-गीतों के लिये ज़मीन तैयार थी। एक घटना-विशेष ने एक दिन उसमें बीज डाल दिया। घटना इस प्रकार से संघटित हुई थी—

पाँच-छः वर्ष पहले की बात है, मैं जौनपुर से प्रयाग आ रहा था। एक स्टेशन पर कुछ स्त्रियाँ, जो संभवतः अहीर या चमार जाति की थीं कुछ मर्दों को, जो कलकत्ते जा रहे थे, पहुँचाने आई थीं और रो रही थीं। जौनपुर ज़िले के लोग कलकत्ते, बम्बई और कानपुर में बहुत रहते हैं, और प्रायः सब नौकरी करते हैं। इससे जौनपुर जिले में किसी भी स्टेशन पर रेल-यात्री को यह दृश्य सहज ही में देखने को मिल सकता है। ट्रेन स्त्रियों को रोती हुई छोड़कर चल दी। कलकत्ते जाने-वाले मर्द संयोग से थर्ड क्लास के उसी डब्बे में आ बैठे थे, जिसमें मैं था। उनके साथ दो-तीन स्त्रियाँ भी थीं, जो अपने पतियों के साथ या कलकत्ता-प्रवासी पतियों के पास कलकत्ते जा रही थीं।

युक्तप्रांत में, ख़ासकर देहातों में, स्त्रियाँ मौक़े-बेमौक़े बड़ी बुरी तरह रोती हैं। देहाती मेलों में जाकर देखिये तो सैकड़ों स्त्रियाँ एक दूसरे का गला पकड़े हुये रोती मिलेंगी। रोने के उनके स्वर तो भिन्न-भिन्न होते ही हैं, वे रोती-रोती कुछ कहती भी जाती हैं। ध्यान देकर सुनने से उनके रुदन में और कथन में बड़े-बड़े दुःखों का वर्णन, उनकी अन्तर्ज्वालाओं का इतिहास और अनेकों मार्मिक पीड़ाओं से पैदा हुआ हाहाकार सुनने को मिलेगा। जो स्त्रियाँ उम्र में छोटी होती हैं, या भोलेपन के कारण कुछ कह नहीं सकतीं, वे एक स्वर से केवल रोती हैं। ये बातें स्त्रियाँ साधारण बोल-चाल में कह सकती हैं, पर शायद उनका ख़याल है कि रो-रो कर कहने से कुछ अधिक प्रभाव पड़ता है। यही बात नहीं, कि स्त्रियाँ दुःख से ही रोती हैं, वे हर्ष से भी रो पड़ती हैं। देहातों में जब किसी स्त्री का बाप

या भाई मिलने आता है, तब वह उसका पैर पकड़कर रोने लगती है। यद्यपि उसे प्रसन्न होना चाहिये था। और रोना ही आवश्यक है तो आने पर नहीं, बल्कि जाते समय रोना चाहिये। क्योंकि वियोग के समय हृदय का व्यथित होना स्वाभाविक है। पर बात-बात में रोते रहना मुझे तो अस्वाभाविक-सा मालूम होता है।

जब कोई व्यक्ति कमाने के लिये विदेश जाने लगता है, तब भी स्त्रियाँ चिल्ला-चिल्लाकर, अपनी निर्बलता का चित्र खींच-खींचकर और कुटुम्ब के मृत व्यक्तियों की याद दिला-दिलाकर रोती हैं। उधर विदेश जानेवाला भी मुँह से यद्यपि कुछ कहता नहीं, पर स्त्रियों के विलाप की चोट खा-खाकर सिसकने तो लगता ही है। जिस समय गार्ड सीटी बजाता है, उस समय ट्रेन के जल्दी जाने का भय स्त्रियों में अधिक विरह-वेदना उत्पन्न कर देता है और वे ज़ोर-ज़ोर से रोने लगती हैं। अंत में ड्राइवर का एक हाथ दोनों पार्टियों को दूर-दूर करके उन्हें स्मृति के स्वप्नों में छोड देता है। मुझे तो यह एक पुरानी प्रथा को घसीटे चलने-के सिवा और कुछ नहीं जान पडता। पहले आवागमन के मार्ग आज कल की तरह सुरक्षित और सुगम नहीं थे। न रेल थी, न तार थे और न डाक का ही कोई समुचित प्रबन्ध था। रास्ते चोरों और ठगों से भरे पड़े थे। जंगल और नालों में ठगों के गरोह के गरोह डेरा डाले रहते थे। वे यात्रियों का धन ही नहीं, प्राण भी हरण कर लेते थे। उस समय जीविका की तलाश में जो व्यक्ति घर से निकलता था, वह यह सोचकर जाता था कि लौटें या न लौटें। दस-दस, बारह-बारह वर्ष लोग कमाते रहते थे, तब कहीं लौटते थे। रोगों से और ठगों से जो लोग मर जाते थे, उनका उनके घरवालों को पता ही नहीं चलता था। घर लौट आना पुनर्जन्म के समान समझा जाता था। इन्ही कठिनाइयों के कारण उन दिनो 'विदेश' या 'परदेश' की सीमा बहुत संकुचित थी। दस-बीस कोस के फ़ासले पर भी जो लोग कमाई करने जाते थे, उनको भी लोग

कहा करते थे कि 'परदेश गये हैं।' रेल, तार, सड़कों और सुप्रबंध ने अब 'विदेश' और 'परदेश' शब्द को हिमालय से उत्तर, लंका से दक्षिण, ब्रह्मा से पूर्व और बिलोचिस्तान से पश्चिम तक ढकेल दिया है। आज-कल लोग ४८ घंटों मे हिन्दुस्तान के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आते-जाते हैं। पर स्त्रियों ने अभी उस पुराने 'विदेश' और 'परदेश' को नहीं छोडा है। 'विदेश' जाने का नाम सुनते ही वे पुरानी प्रथा के अनुसार रोना-धोना आवश्यक समझती हैं। यद्यपि बहुत सी स्त्रियाँ यह जानती हैं कि घर-गृहस्थी पर कोई संकट पड़ने से वे अपने 'परदेशी' को चिट्ठी या तार भेज सकती हैं और उनका 'परदेशी' रेल-द्वारा दो ही तीन दिनों में उनके निकट सकुशल पहुँच सकता है। पर जान पडता है, किसी ने उनको अभी तक बताया नहीं कि समय बहुत आगे खिसक आया है। अब रोने की ज़रूरत नहीं है। वे बेचारी अठारहवीं शताब्दी ही में खडी रो रही हैं।

मुझे यह रोने की प्रथा असामयिक और अनावश्यक जान पडी। क्योंकि मैं इन विचारों का पोपक हूँ कि स्त्रियाँ किसी भी नौजवान कुटुम्बी को घर में बैठा न रहने दें। दो-चार वर्ष की कडी मिहनत के बाद सुस्ताने के लिये भले ही वे दो-चार महीने घर पर रह लें; नहीं तो स्त्रियों को चाहिये कि उनको वे कमाने के लिये घर से खदेडा करें। अब वह ज़माना नहीं है कि एक कमाये और घर भर खायें। न उस ज़माने को जीवित रखने की आवश्यकता ही है। हरएक को अपनी शक्तियों का विकास होने देना चाहिये। हरएक को कमाना चाहिये और सुख से रहना चाहिये। स्त्रियों में यदि ऐसी भावना जाग उठे, तो मैं समझता हूँ, उनका रोना बहुत अंशों में हर्ष में परिणत हो जाय। जैसे, धन कमाने के लिये वे अपने पति को बाहर भेजने में हर्ष प्रकट करें और पुत्र को शाबाशी दें। न कि रोकर विरह का एक तूफान पैदा करें, जिससे 'परदेश' जानेवाले की आधी हिम्मत को द्वार पर ही लकवा मार जाय।

मैं स्त्रियों के रोने के सम्बन्ध में यही सब बातें सोच रहा था। इतने में 'परदेशियों' की स्त्रियों ने गाना शुरू कर दिया। स्त्रियों का स्वभाव पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्वच्छ और सरल होता है। चतुर पुरुष अपने हर्ष-विषाद का प्रदर्शन देश-काल और स्वार्थ को देखकर करते हैं। पर स्त्रियाँ इस तरह के छल में प्रवीण नहीं होतीं। उनके मन में हर्ष-विषाद उठते ही वे उसे प्रकट कर देती हैं। 'परदेशियों' की स्त्रियों ने जो गीत गाया, उसकी एक ही कड़ी मुझे याद है। वह यह है—

'रेलिया सवति मोर पिया लइके भागी।'

रेल की तुलना सौत से होती हुई सुनकर मैं यकायक चौंक उठा। यह तो एक बिल्कुल नई उपमा है। किसी स्त्री ने ही यह गीत रचा होगा। नहीं तो, ऐसी मर्म की बात कहने की इस जमाने में फ़ुरसत ही किसको? क्या स्त्रियाँ भी कवितामय हृदय रखती हैं? मैं उस कड़ी के साथ ही ये बातें सोचने लगा। कई सौ वर्ष पहले रहीम ने स्त्रियों की तरफ़ से एक बरवा कहा था। जिसमें सौत की तुलना हंसिनी से की गई है। उस कड़ी के सुनने के साथ ही मुझे वह बरवा याद आया था—

पिय सन अस मन मिलयूँ, जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया, लइ बिलगानि॥

इसमें हंस-हंसिनी के एक विशेष गुण—सो भी कवियों के कथनानुसार, पक्षि-विद्या-विशारदों के कथनानुसार नहीं—मिले हुये पय और पानी को अलग कर देने पर लक्ष्य करके विचार बाँधा गया है। हंसिनी के इस कल्पित गुण को जाननेवाले सहृदय रसिकजन ही इस बरवे को सुनकर सिर हिला सकते हैं। पर रेल तो प्रत्यक्ष सौत का-सा कार्य करती है। वह पति को लेकर भाग जाती है। भागना धर्म दोनों का एक सा है। मुझे गीत रचनेवाली के हृदय की सरसता बड़ी ही मधुर जान पड़ी। बस, इसी घटना के बाद से मैं ग्राम-गीतों के संग्रह की ओर आकर्षित हुआ हूँ।

इसके बाद एक दिन एक मेले में देहाती स्त्रियों के मुख से एक यह कड़ी भी सुनकर मैंने अनुभव किया कि उगे हुये अंकुर को किसी ने सींच दिया—

हम चितवत तुम चितवत नाहीं,
तोरी चितवन में मन लागो पिया।

इस गीत के भाव ने भी हृदय में आकर्षण पैदा किया था।

यद्यपि मेरा जन्म देहात में हुआ है और मेरी आयु के प्रारम्भ के अठारह-बीस वर्ष लगातार देहात ही में बीते हैं। इससे मैं देहाती जीवन और रीति-रस्म से बहुत कुछ परिचित हूँ और देहात में आमतौर से प्रचलित दोहे, चौपाई, सवैया, कवित्त आदि भी लड़कपन से जानता हूँ। पर बड़े होने पर—हिन्दी के कवियों से परिचित होने पर—मैं देहाती कंठस्थ साहित्य को गँवारों का कथन समझकर उसकी उपेक्षा किया करता था और प्रसंग पड़ने पर उसकी हँसी उड़ाने में भी अभ्यस्त था। पर उस दिन की रेल की घटना ने मेरे प्रवाह को बदल दिया। मैं भाषा की चकाचौंध तलाश करता फिरता था, उस दिन से मैं भावों की मिठास ढूँढ़ने लगा। मधु की मक्खी फूलों के रूप पर मुग्ध नहीं होती, वह तो मधु चाहती है। ठीक वैसी ही प्रवृत्ति मेरी हो चली। मै अब देहाती गीतों को ध्यान से सुनने लगा और उनमें छिपे हुये एक प्राचीन, किन्तु मेरे लिये बिल्कुल नवीन जगत् का चित्र देखने लगा।

एक दिन सुलतानपुर ज़िले के एक गाँव में मैं जा रहा था। एक अहीर का लड़का गोरू चराते-चराते यह बिरहा गा रहा था—

बिरहा गावउँ बाघ की नाईं दल बादल घहराय।
सुनि के गोरिया उचकि उठि धावै बिरहा क सबद ओनाय॥

जिन्हें 'ओनाय' शब्द का देहाती भाव मालूम है, वही इसका रस ले सकते हैं। पहले ऐसे बिरहे मैंने सैकड़ों सुने होंगे, पर एक भी याद नहीं रहा। अब जब कि मैं अलंकार, नायिकाभेद और नखशिख से परि-

चित हुआ, यह बिरहा मुझे बहुत सरस जान पड़ा।

एक दिन एक अहीर ने कहीं राह चलते-चलते—मुझे इस समय याद नहीं पड़ता है, कहाँ—यह विरहा गाया था—

भुखिया के मारे विरहा विसरिगा भूलि गइ कजरी कबीर।
देखि क गोरी क मोहिनी सुरति अब उठै न करेजवा मँ पीर॥

भूख के प्रभाव का ऐसा सच्चा और सजीव वर्णन तो शायद ही कोई कवि कर सके। भूख के मारे विरहा बनाने या गानेवाले के कलेजे में गोरी की मोहिनी सूरत देखकर चाहे पीर न पैदा हुई हो; पर विरहा सुनकर ग्राम-गीतों के लिये प्रबल भूख की पीर मेरे हृदय में अवश्य पैदा होगई।

स्व० पंडित मन्नन द्विवेदी, बी० ए०, आज़मगढ़ में तहसीलदार थे। मेरी उनसे मित्रता थी। वे प्रयाग आते तो मिलने पर जाँत के गीतों की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। उनको जाँत के गीत सुनने का एक व्यसन-सा था। गाँवों में स्त्रियाँ रात के पिछले पहर में जब आटा पीसती हुई गाने लगती थीं, तब तहसीलदार साहब उनके पिछवाड़े चुपचाप खड़े होकर उनके गीत सुना करते थे। यह बात मैंने उन्हीं की ज़बानी सुनी थी। शायद कविता-कौमुदी के दूसरे भाग में, उनकी जीवनी में, मैंने इस बात का उल्लेख किया भी है। द्विवेदीजी ने सन् १९१३ में 'सरवरिया' नाम की एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, जिसमें सरवार (गोरखपुर और बस्ती ज़िले) की भाषा में वहाँ के गीत और छोटी-छोटी कहानियाँ अङ्गरेज़ी अर्थ-सहित दी हुई हैं। 'सरवरिया' से परिचित होकर भी मैं द्विवेदीजी के प्रयत्न की—उनकी गीत-रसिकता की—वैसी ही हँसी उड़ाया करता था, जैसी आजकल बहुत से शिक्षित कहे जानेवाले लोग मेरी उड़ाते हैं। कारण यह था कि शहर में रहते रहने के कारण मैं गीतों से स्वयं परिचित नहीं था। और भाव की अपेक्षा भाषा के लालित्य ही को प्रधान समझे हुये था।

सन् १९२४ या २५ में श्रीयुत संतरामजी ने सरस्वती में पंजाब के

कुछ गीत हिन्दी अर्थ-सहित प्रकाशित कराये। वे गीत मुझे बहुत पसंद आये। मैंने सोचा, ऐसे सरस गीत युक्तप्रांत में भी होंगे। तब से मैं भी गीतों की खोज में लगा। सब से पहले जाँत के दो गीत मुझे दिअरा राज (सुलतानपुर) में मिले। मैंने उन्हें अर्थ-सहित 'सरस्वती' में प्रकाशित कराया। जिन जिन लोगों की दृष्टि से वे गीत गुज़रे, उनमें से बहुतों ने, जिनमें बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी हैं, उन्हें पसंद किया और कइयों ने मुझे पत्र लिखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट भी की। इससे मैं उत्साहित हुआ। गीत-संग्रह के काम मे सब से पहली सहायता सुल्तानपुर डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के तत्कालीन चेयरमैन, 'सद्गुरु-रहस्य' नामक भक्ति-सम्बंधी मौलिक ग्रंथ के रचयिता, दिअरा-राजवंश के रत्न, रायबहादुर कुमार कौशलेन्द्रप्रताप साहि से मिली। आप ने अपने नाम से एक पत्र छपवाकर अध्यापकों से गीत-संग्रह कराने के लिये अपने ही ज़िले में नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के तमाम डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के चेयरमैनों के नाम भेजवाया। इस उद्योग से केवल इतना ही लाभ हुआ, कि सुल्तानपुर ज़िले के कुछ गीत जमा करके अध्यापकों ने मेरे पास भेज दिये। पर डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के अधिकांश चेयरमैनों ने पत्रोत्तर देने की भी ज़िम्मेदारी क़बूल नहीं की।

यहीं से मेरे उद्योग का श्रीगणेश समझना चाहिये। पहले मैंने सोचा कि प्रयाग मे रहकर डाक-द्वारा मैं गीत जमा कर लूँगा। इसलिये मैंने अपने घनिष्ठ मित्रों, साहित्य-बंधुओं और पत्र-परिचितों को पत्र लिख-लिखकर गीत-संग्रह के लिये प्रार्थना की। मित्रों ने संकोच-वश दो एक गीत भेजकर लिख दिया कि देहाती गीतों मे क्या रस है? इस व्यर्थ काम मे क्यों पड़ते हो? साहित्य-बंधुओं ने लिखा—'हमें आपके काम से हार्दिक सहानुभूति है। ईश्वर आपको सफलता दे।' जो काम मनुष्य नहीं करना चाहता, वह उसे ईश्वर को सौंप देता है। मानो ईश्वर बेकार है और मनुष्यों-द्वारा कुछ काम पाने की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। पत्र-

परिचितों में बहुतों ने हाँ-ना कुछ नहीं किया। कुछ ने बिल्कुल निराशा-जनक उत्तर दिया। इस प्रकार मेरा यह उद्योग भी निष्फल गया।

अब समाचार-पत्रों-द्वारा आन्दोलन करने की बात मुझे सूझी। सन् १९२५ में, मैं 'सरस्वती' में दो गीत छपा चुका था। तीन-चार गीत मेरे पास और रह गये थे, जिन्हें मैं देहात से स्वयं लिख लाया था। मैं इन्हें भी किसी मासिक-पत्र में दे देना चाहता था। सरस्वती के सम्पादक श्रीयुक्त पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और पंडित देवीदत्त शुक्ल ने गीत-संग्रह के काम में मुझे उत्साहित किया और गीतों के लिये प्रति मास सरस्वती के कुछ पृष्ठ देना स्वीकार किया। मैं सरस्वती में प्रति मास गीत भेजने लगा। इस प्रयत्न से मुझे अच्छी सफलता मिली। गीतों की मधुरता पर सरस्वती के पाठक मुग्ध हो गये। उन्होंने अब मेरी पुकार पर कान दिया। अब प्रत्येक डाक से हिन्दुस्तान के प्रायः सब प्रान्तों से पत्र आने लगे। सरस्वती के बाद दूसरा मासिक पत्र, जिससे मुझे गीत-संग्रह में बड़ी सहायता मिली, 'चाँद' है। मैंने गीतों पर दो-तीन लेख चाँद में भी लिखे। चाँद की पढ़नेवाली अधिकांश स्त्रियाँ हैं। मेरे गीत अधिकांश स्त्रियों से सम्बंध रखनेवाले हैं। इसलिये मेरे काम की तरफ स्त्रियाँ स्वभावतः अधिक आकर्षित हुईं। कुछ गीत मैंने माधुरी, सुधा और मतवाला को भी दिये थे। इससे हिन्दी-जगत् में गीतों की चर्चा ख़ूब हो चली। जो गीत मैंने पत्रों में छपाये थे, वे चुने हुये थे और हिन्दी के किसी भी प्रसिद्ध कवि की कविता से टक्कर ले सकते थे। गीतों की महिमा के लिये मुझे कुछ विशेष कहना न पड़ा, गीतों ने स्वयं अपने लिये जगह पैदा कर ली। पर ससाचार-पत्रों में आने से गीत सुननेवाले और मेरे काम की प्रशंसा ही करनेवाले मुझे अधिक मिले। गीत लिखकर भेजनेवाले गिनती के दो ही एक मिले। फिर भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त करके इतना लाभ तो मुझे हुआ ही, कि पहले दो प्रयत्नों में निष्फल होने की ग्लानि मेरे चित्त से निकल गई।

संग्रह का काम बहुत कठिन था। इतने बड़े देश में, जिसमें सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं, मैं अकेला कहाँ-कहाँ जा सकता हूँ? और यदि जाऊँ भी, तो राह-ख़र्च के लिये आवश्यक धन कहाँ से आयेगा? और बिना अपने किये चिट्ठी-पत्री और समाचार-पत्रों-द्वारा संग्रह का काम हो नहीं सकता। ये सब चिन्ता की बातें मेरे दिमाग़ में घूमने लगीं। बहुत सोच-विचार के पश्चात् मैं ने यह निश्चय किया कि गीत-संग्रह के काम में अध्यापकों, ज़मींदारों, राजाओं और कलक्टरों से सहायता ली जाय। अध्यापक चाहें, तो यह काम बड़ी आसानी से कर सकते हैं। ज़मींदार तो देहात के सब कुछ हई हैं। राजा अपने ज़िलेदारों से गीत-संग्रह करा सकते हैं। और कलक्टर तो ज़िले का राजा ही ठहरा। उसकी इच्छा मालूम होते ही, उसे ख़ुश करने के लिये, ज़िले के रईस, ताल्लुक़दार और ज़मींदार स्वयं गीत ले-लेकर हाज़िर हो सकते हैं।

पर यह काम भी चिट्ठी-पत्री से नहीं हो सकता। इसके लिये स्वयं जाकर मिलना और प्रभावशाली लोगों का इन्फ्लुएंस डालना आवश्यक है। सम्भव है, एक एक व्यक्ति की 'हाज़िरी' में कई-कई दिन लग जायँ। इसलिये निजी कामकाज से हाथ खींचकर, केवल इसी काम में पूरा समय लगाने की जरूरत महसूस हुई। ख़ैर; समय तो अपने अधीन था। पर धन कहाँ से आयेगा? ऐसी संस्थायें तो इस देश में हैं नहीं, जो ऐसे आवश्यक और नये काम करनेवाले के लिये सब प्रकार की सुविधायें कर देतीं। मेरी जान पहचानवालों में ऐसे रईस भी नहीं, जिन्हें इस काम से शौक़ हो और वे इसका आर्थिक भार अपने ऊपर उठा लें। यदि यही काम कोई अँग्रेज़ करता, तो कितने ही राजा-रईस उसके लिये अपने राज मे आफ़िस खुलवा देते और उसका कुल ख़र्च उठा लेते। यह सुलभता भी मुझे नहीं थी। पर गीतों के संग्रह का काम मैं बहुत ही आवश्यक समझने लग गया था और उसके लिये ऐसी सच्ची लगन मन में जाग उठी थी कि सब कठिनाइयों के मुक़ाबले में मुझे उतर

पढ़ना अनिवार्य हो गया। इसलिये ईश्वर का नाम लेकर, सन् १९२६ के सितम्बर महीने से, मैं ने गीत-यात्रा शुरू कर दी। पहले मैं प्रयाग और उसके आस-पास के जिलों—जौनपुर, प्रतापगढ़, रायबरेली, मिर्ज़ापुर, सुल्तानपुर आदि—के देहातों मे जाने-आने लगा।

देहात मे जाने से गीत-संग्रह की नई-नई कठिनाइयाँ सामने आने लगीं।

सब से बड़ी कठिनाई स्त्रियों से गीत लेने में पड़ती थी। स्त्रियाँ गीत बोलकर लिखा ही नहीं सकतीं। बोलकर लिखाते समय उनको गीत याद ही नहीं आते। वे गाती जायँ और कोई लिखता जाय, तभी काम हो सकता है। सो भी कई स्त्रियाँ एक साथ बैठकर गावें, तभी उनके दिमाग़ में गीत की कड़ियाँ फूल की पंखड़ियों की तरह खुलती रहती हैं। अकेली गाने में शायद ही कोई स्त्री पूरा गीत गा सके। युवती स्त्रियों से गीत लेने में तो और भी कठिनाई है। एक तो परदा। दूसरे पर पुरुष के सामने गाने के लिये लज्जावश उनका कण्ठ ही नहीं फूटता। कन्यायें तो बहुत ही कम ऐसी मिलती हैं, जो पूरा गीत जानती हों। कारण यह जान पड़ता है कि गीत याद करने का काम तो स्त्रियों का जन्म-भर के लिये है। दस-पाँच जब मिलकर गाती हैं, तब किसी को कोई कड़ी याद आ जाती है, किसी को कोई। इस तरह सब का सहारा पाकर गीत का गोवर्द्धन किसी तरह उठा लिया जाता है। कन्यायें छोटी उम्र की होने के कारण गीत की प्राइमरी क्लास में रहती हैं। इससे पूरा नहीं जानतीं।

स्त्रियों से गीत लेने में उनकी स्मरण-शक्तिवाली यह कठिनाई कम नहीं है। मेरे तो धैर्य की परीक्षा हो जाया करती थी। कभी-कभी तो एक-एक गीत के लिये पूरा एक दिन लग गया है। फिर भी शाम होने तक उसकी एक-दो कड़ियाँ संदिग्ध ही थीं। कभी-कभी एक गीत एक गाँव में अधूरा ही प्रचलित मिलता। उसकी पूर्ति दूसरे गाँव में होती।

इस प्रकार एक-एक गीत के पीछे पड़े बिना सच्चा काम नहीं हो सकता था।

गीत संग्रह करने में मुझे जो-जो तकलीफ़ें भोगनी पड़ी हैं, मेरा शरीर और मन उनके लिये असमर्थ था। केवल गीतों के लिये सच्ची लगन ही मुझे उन तकलीफ़ों से पार लगाने में समर्थ हुई है।

जरा ध्यान में यह दृश्य देखिये तो—सावन का महीना है। घटा घिरी हुई है। कभी झीसे पड़ रहे हैं। कभी लहरे पर लहरे आ रहे हैं। पुरवा हवा के झोंके चल रहे हैं। धान के खेत में, घुटने तक पानी मे खड़ी चमारिने खेत में उगे हुये घास-पात को खोंटकर—नोचकर निकाल रही हैं। वे गा भी रही हैं। शरीर तो उनका धान के खेत मे काम कर रहा है, और मन गीत की दुनिया में है। मैं धान के मेड पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ। जिन्होंने धान के मेड देखे होंगे, वे समझ सकते हैं कि धान के मेंड़ पर बैठना तलवार की धार पर बैठने के समान है। किसानों की एक अजीब आदत होती है—वे हर साल मेंड़ को काटते रहते हैं। कटते-कटते मेड़ इतने पतले हो जाते हैं कि उन पर पैर रखकर चलना कठिन हो जाता है। बैठना तो असंभव ही समझिये। धान के मेंड़ों से तो ईश्वर ही बचावे। क्योंकि तलवार की धार की तरह पतले मेंड़ के दोनों ओर के खेत लबालब पानी से भरे रहते हैं। ज़रा सी दृष्टि चूकी, या ध्यान बँटा कि धड़ाम से पानी और कीचड़ के अंदर। कितनी ही बार मैं इस विपत्ति को भोग चुका हूँ।

कई बार सुबह से लेकर दोपहर तक बरसते हुये पानी मे, छाते के नीचे खड़े-खड़े मैंने चमारिनों के गीत सुने और लिखे हैं। कहीं बैठने की जगह ही नहीं मिली।

जो गीत मैंने चमारिनों के घरों पर जाकर लिखे हैं, उनके लिखने में मुझे अपने मन को बड़ी कड़ी परीक्षा में बैठाना पड़ा है। ध्यान में देखिये—गाँव से बिल्कुल बाहर चमार का घर है, जिसकी दीवारें लोनी से गल

गई हैं। दीवारों के अन्दर के कंकड खीस काढ़े हैं। दीवारों में सैकड़ों दरारें, छेद, बिल और गुफायें हैं, जिनमें छिपकलियों, मकड़ियों, चींटियों, चूहों, झींगुरों के सैकड़ों परिवार निवास कर रहे हैं। दीवारों पर बीसों स्थान से फटा हुआ, सहस्रों नेत्रोंवाला, एक सड़ा-गला छप्पर रक्खा है। एक ही घर है। उसी में खाना भी पकता है, उसी मे चक्की भी है, उसी मे सैकड़ों स्थानों पर सिले हुये मैले-कुचैले कपड़े भी पड़े हैं। घर में छोटा बच्चा है तो एक किनारे उसका पाखाना भी पड़ा है। चमार-चमारिन को पेट के धंधे ही से फ़ुरसत नहीं मिलती, पाखाना कौन उठाता? एक किनारे मडुवा, साँवाँ या धान पडा हुआ है। यही उनका आहार है। एक तरफ़ घास की चटाई लपेटी रक्खी है, जिसे घर के लोग जाड़ों में ओढ़ते और बरसात में बिछाते हैं। गरमी में ओढ़ने-बिछाने की ज्यादा ज़रूरत ही नहीं पड़ती। जमीन पर सो गये, आसमान ओढ़ लिया, किसी तरह रात कट गई। झोपड़ी के आस-पास सुअर और उनके छौने घूम रहे हैं। छौने कभी-कभी घर के अंदर भी घुस आते हैं। घर के आस-पास खेत हैं, जो सुअर के गू से भरे हुये हैं। पानी बरस जाने से गू सड़कर जमीन पर फैल रहा है। उसकी बू से लवेंडर सूँघने वाली शहर की नाक फटी जा रही है। एक किनारे चूल्हे पर मरी हुई गाय का मांस पक रहा है। मैं उसी झोपड़े के द्वार पर दीवार से पीठ टेके, रूमाल पर बैठा हुआ, एक साठ बरस की बुढ्ढी चमारिन से गीत लिख रहा हूँ। बुड्ढी की धोती में जुलाहे से अधिक सीनेवाले को मेहनत करनी पड़ी है। वह उसी धोती को कई बरस से पहन रही है और एक ही धोती होने के कारण वह धोती धो भी नहीं सकती और नहाती भी कम है। इससे उसके शरीर और धोती की बदबू नाक-भौं को सिकोड़ने के लिये काफ़ी है। बताइये, ऐसे स्थानों से गीत-संग्रह का काम बड़े साहस का है या नहीं? एक तो ब्राह्मण-वंश में पैदा होने का अभिमान ही मुझमें क्या कम? दूसरे चमारों के लिये वंश-परम्परा से चली आती हुई घृणा भी भरपूर;

तीसरे 'खाओ-पिओ और मौज करो' वाली विलायती शिक्षा वहाँ से उठ चलने के लिये नोच-कोंच रही है; चौथे शहर की साफ़-सुथरी सड़कों पर, वगुलों के पंख जैसा सफेद धुला हुआ कपड़ा पहनकर निकलने की आदत वहाँ से भाग चलने को फुसला रही है; पाँचवें तेल-साबुन से चमकीले तथा मुसकुराते हुये शहर के चेहरों के अन्दर से निकली हुई महावरेदार तथा रस और अलङ्कारों से अलंकृत भाषा कान पकड़ कर खींच रही है। इन सब के मुकाबले में केवल है—गीतों का प्रेम। अब आप मेरी मानसिक दशा का अंदाज़ा लगा सकते हैं कि मुझे प्रतिदिन मन की किन-किन भयानक घाटियों के अंदर से निकलना पड़ता रहा होगा।

शारीरिक कष्ट का यह हाल, कि गाँवों में न धर्मशाले हैं, न सरायें। बाहर से जानेवाले लोग ठहरें तो कहाँ ठहरें? मैं दोपहर-दोपहर तक धान के मेंडों पर या चमारों के घरों पर बैठा गीत लिखा करता था। दोपहर को खेत में काम करनेवालों या वालियों को छुट्टी मिलती, तो मैं भी वहाँ से उठकर गाँव के किसी ब्राह्मण या ठाकुर के द्वार पर डेरा डालता। चना-चवैना और गुड़ ही पर दिन बिताना पड़ता था। कभी-कभी तो आलस्य और रसोई बनाने की असुविधा के कारण रात भी लाई-चने की शरण में बितानी पड़ती थी। गुड़ तो मेरा ख़ास साथी ही था। उसे तो मैंने गत गीत-यात्रा के चार वर्षों में इतना खाया कि आज वह डायाबिटीज़ के नाम से स्वास्थ्य का शत्रु बन बैठा है और उसका अंत ही नहीं दिखाई पड़ता।

अब एक सामाजिक कठिनाई का ज़िक्र सुनिये—देहात के लोग बहुत बेकार रहते हैं। काम के दिनों में भी दोपहर के बाद का उनका सारा वक्त किसी चौपाल में बैठकर गप्पें हाँकने, एक दूसरे की निन्दा करने और तम्बाकू खाने और पीने में जाता है। मैं भी उन्हीं में जा बैठता। पर मेल मिलता नहीं था। वे बेचारे एक मैली-सी धोती पहने नंग-धड़ंग बैठते थे।

उनके बीच में मैं सफेद धोती-कुरता और टोपी पहनकर बैठता था। काम भी क्या ? गीत-संग्रह; जो बहुत से शिक्षित कहे जानेवालों की दृष्टि में पागलपन समझा जाता है, गाँव के गँवारों की दृष्टि में तो वह एक मज़ाक़ के सिवा और कुछ हुई नहीं। मेरे काम का महत्त्व समझना उनकी बुद्धि से बहुत दूर था। इसलिये मन में पैदा हुये कौतूहल की पूर्ति के लिये उनको नई-नई कल्पनायें करनी पड़ती थीं। कोई कहता—बाबूजी किसी और मतलब से देहात मे आये हैं। कोई कहता—अरे, यह खुफिया पुलिस का कोई दारोगा है। किसी बदमाश का टोह लेने आया है। कोई कहता—बाबू साहब औरत की तलाश मे आये हैं। कोई ख़ूब सूरत लड़की या औरत देखेंगे तो ले भागेंगे। कोई कहता—अरे! ये शहर मे कोई कुसूर करके भगे हैं। देहात मे हजरत छिपे-छिपे फिर रहे हैं। इसी प्रकार के तीरों का निशाना बनकर मैं गाँवों में रहता था।

सन् १९२६, २७, २८ के बरसात के महीनों में मैंने गाँवों में जा-जाकर निरवाही और हिंडोले के गीत और जाड़े के महीनों में जाँत और कोल्हू के गीत लिखे थे। सोहर और गरमी के गीत—जैसे विवाह और जनेऊ के गीतों के लिये मैं गाँवों में नहीं जा सका। गीतों के संग्रह मे देर होती देखकर मैंने कुछ देहाती पढ़े-लिखे लोगों को वेतन देकर गीत जमा करने के लिये रक्खा। इनमें से अधिकांश ने मुझे ख़ूबही ठगा। कई तो प्रयाग आकर मुझ से काफ़ी रुपये ले गये और ऐसे बैठे कि उन्होंने फिर साँस ही डकार न ली। कइयों ने कुछ गीत भेजे और फिर गीत लिखाने वाली बुढ़ियों को देने के लिये रुपये तलब किये, जो गीतों के लोभ-वश मुझे देने पड़े। पर वे रुपये गीत की सूरत में फिर कभी नहीं लौटे। इससे कितने ही गीत तो दो-दो तीन-तीन रुपये फ़ी गीत की लागत के पड़ गये हैं।

प्रतिदिन मुझे २०—२५ पत्र भी लिखने पड़ते थे। कुछ पत्र तो आये हुये गीतों की पहुँच के होते थे, कुछ परिचित और अपरिचित व्यक्तियों

को गीत भेजने के लिये होते थे। उन दिनों गीतों के लिये मैं कितने मनोयोग से पत्र लिखता था, इसके दो-एक नमूने दे देना पाठकों के लिये बहुत मनोरंजक होगा।

१९२७ के अंत में मैं काशी गया था और वहाँ प्रायः सभी साहित्यिक मित्रों से मिलकर गीत-संग्रह के कार्य में हाथ-बँटाने की मैंने उनसे प्रार्थना की थी। बाबू जयशंकरप्रसाद ने एक नाई से मेरी मुलाकात कराई थी, जो प्रचलित गीतों का अच्छा जानकार कहा जाता था। नाई ने गीतों के लिये बड़े-बड़े वादे किये थे। पर या तो प्रसादजी के आलस्य या नाई की उपेक्षा से मुझे आजतक उसके गीत नहीं मिले। १९२८ की जनवरी में मैंने प्रसादजी को यह पत्र लिखा था—

प्रिय प्रसादजी,

आप से, मिले न अवतक गीत।
डाक देखते थक गया, गये बहुत दिन बीत ॥ १ ॥
नाई भाई से नहीं, क्या कुछ निकला काम।
सचमुच क्या चाणक्य का, सच्चा हुआ कलाम* ॥ २ ॥
जो कुछ संग्रह हो चुका, उसे दीजिये भेज।
डाक जोहते ही कहीं, बीत न जाये एज† ॥ ३ ॥

इसी प्रकार एक दूसरे मित्र को मैंने लिखा था—

मैं विरही हूँ गीत का, धर मजनूँ का भेस।
झोली डाले गीत की, घूम रहा हूँ देस ॥ १ ॥
अन्न वस्त्र लेता नहीं, नहीं विभव की चाह।
मुझे चाहिये गीत वह, जिसमें हो कुछ आह ॥ २ ॥

इस प्रकार के बीसों पत्र पद्य में—भिन्न-भिन्न छंदों में—मैंने लिखे थे। सब की नक़लें यहाँ स्थानाभाव से नहीं दी जा सकतीं।

---

* नराणां नापितो धूर्त्तः। चाणक्य।

† एज (Age)=आयु।

१९२७ का पूरा वर्ष मैंने युक्तप्रांत और विहार के गीतों के संग्रह में लगा दिया। जो काम पत्र-द्वारा हो सका, उसे पत्र से किया, जो वैतनिक व्यक्तियों से हो सका, उसे उनसे लिया और जो मेरे स्वयं जाने से हुआ, उसे मैंने स्वयं जाकर किया। इसी वर्ष में बनारस, आज़मगढ़, वलिया और ग़ाज़ीपुर गया। आज़मगढ़ के सुप्रसिद्ध रईस, हिन्दी के विशारद, रायबहादुर, बाबू मुकुन्दलालजी गुप्त से मुझे बड़ी सहायता मिली। उन्होंने गीत-संग्रह के लिये नौकर रक्खे। अपने इस्टेट के मुलाज़िमों को गीत जमा करने को लिखा। साथ ही मेरे आगे के काम के लिये कुछ रुपये भी मनीआर्डर से भेजे। काशी के बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने भी अपने इस्टेट में गीत-संग्रह के लिये आज्ञा-पत्र जारी किया और उसका अच्छा परिणाम भी हुआ। काशी के तत्कालीन कलक्टर श्रीयुक्त वी० एन० मेहता I. C. S. से भी मैं मिला। उन्होंने मेरे काम से बड़ी सहानुभूति प्रकट की और खेती की कहावतों के सम्बंध की स्वरचित एक पुस्तक भी मुझे प्रदान की। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती इरावती मेहता को भी गीतों से बड़ा अनुराग है। उन्होंने भी इस काम से बड़ी सहानुभूति प्रकट की।

काशी से मैं जौनपुर गया। जौनपुर के राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे, M. L. C., जो बड़े ही साहित्य-रसिक और सहृदय व्यक्ति हैं, गीतों की ओर बहुत ही आकर्षित हुये। उन्होंने ख़ास हुक्म भेजकर अपने राजभर में गीत जमा करा के मेरे पास भेजवा दिये। युक्त-प्रांत के पश्चिमी जिलों में जाने का अवकाश मुझे नहीं मिला। इससे उधर के गीत मेरे पास कम ही आये।

बिहार के गीत मुझे डाक-द्वारा इतने काफ़ी मिल गये कि मुझे उधर जाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। बिहार की स्त्रियों में युक्त-प्रांत की स्त्रियों से अधिक शिक्षा का प्रचार जान पड़ता है। बिहार की स्त्रियों में गीत लिख रखने की प्रथा है, जो युक्त-प्रांत में मेरे देखने में

बहुत कम आई । बिहार से बहुत-सी हस्त-लिखित कापियाँ मेरे पास आई थीं, जिनसे मैंने गीत नक़ल कर के उन्हे वापस भेजा। बिहार की बहुत सी शिक्षिता बहनों ने गीत-संग्रह का काम हाथ में लिया था, और प्रत्येक ने पचासों गीत मेरे पास भेजे थे। युक्तप्रांत में स्त्रियों ने उतना उत्साह नहीं दिखलाया। फिर भी युक्तप्रांत की कुछ स्त्रियों ने इस काम में खासी दिलचस्पी ली, और मुझे सहायता पहुँचाई है। जिनका नाम मैंने सहायकों की नामावली में धन्यवाद-पूर्वक दिया है।

इस प्रकार उत्तर भारत मे गीत-संग्रह का चक्र चलाकर मैं अन्य प्रांतों के गीतों का अध्ययन करने के लिये, ८ नवम्बर, १९२७, को प्रयाग से बम्बई के लिये चल पड़ा। बम्बई में मैंने मराठी और गुजराती लोक-गीतों की छपी पुस्तकें ख़रीदीं। कुछ व्यक्तियों से भी मिला और उनसे गीतों का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त किया।

१६ नवम्बर, १९२७ को मैं प्रातःकाल ९॥ बजे, नेत्रवती जहाज़ से द्वारका के लिये रवाना हुआ। मेरा इरादा द्वारका से प्रवेश कर के काठियावाड़ और गुजरात का भ्रमण करने का था। अतएव ता० १७ नवम्बर १९२७ को ९॥ बजे सवेरे मैं द्वारका पहुँचा। द्वारका और बेट द्वारका में मैं तीन दिन रहा। वहीं मैंने काठियावाड में दौरा करने का प्रोग्राम तैयार किया और उसके अनुसार जामनगर, राजकोट, पोरबन्दर, सोमनाथ, जूनागढ, गिरनार, गोंडल, मोरवी, वाँकानेर, ध्रांगध्रा, पालि-ताना, वढवान और लिम्डी की यात्रायें की। यात्रा में मैं अकेला था। इसलिये खाने की तकलीफ़ें और यात्रा की अन्य असुविधायें भी बहुत भोगनी पड़ीं।

मैं काम-चलाऊ गुजराती भाषा जानता हूँ। इससे मुझे गुजरात की यात्रा में साथी मिलते गये। किसी नगर में, किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के यहाँ ठहर जाने से, दूसरे नगर के कुछ भले आदमियों के नाम और पते और कभी-कभी पत्र भी मिल ही जाते हैं। और इससे ठहरने

की असुविधायें हल होती रहती हैं। काठियावाड़ की यात्रा के मेरे अनुभव बड़े मधुर हैं। काठियावाड़ और गुजरात के लोग बड़े सहृदय होते हैं। मुझे गुजरात स्वभाव से ही प्रिय है। काठियावाड़ के दौरे में वह प्रियता और भी बढ़ गई। अब वहाँ की एक घटना का यहाँ उल्लेख किये बिना मैं आगे नहीं चलना चाहता।

मैं पोरबंदर से लौट रहा था। ट्रेन में एक साथी और मिल गये। वे काठियावाड ही के थे। धनी आदमी हैं। गुजरात और काठियावाड व्यापारियों का प्रांत होने के कारण वहाँ के लोग धन का मूल्य समझते हैं, और जहाँ तक हो सकता है, थर्ड क्लास ही में सफर करते हैं। इससे थर्ड क्लास में भी ऐसे-ऐसे सहृदय, सुशिक्षित और देश-कालज्ञ लोग मिल जाते हैं, जैसे युक्तप्रांत के सेकंड क्लास में भी दुर्लभ हैं। अस्तु; एक ही सीट पर बैठने के कारण मेरी उनकी बातचीत होने लगी। वे सुशिक्षित हैं। उनकी स्त्री भी शिक्षिता हैं। मैं गीतों का अध्ययन करने निकला हूँ, यह जानकर वे बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा—आप मेरी स्त्री से ज़रूर मिलिये। उसको भी गीतों का शौक है।

मैं उनके साथ उनके घर गया। घर पक्का, नया बना हुआ, तिमंज़िला था। दूसरी और तीसरी मंजिल पर वे रहते थे। मुझे अपने साथ ऊपर ले गये। पहले उनकी माँ मिलीं। माँ की अवस्था पचास से कम न होगी। माँ को मेरा परिचय दिया गया। माँ मुझे बैठक में लिवा ले गईं। एक कुर्सी पर मुझे बैठाकर वे भी पास की कुर्सी पर बैठ गईं। उनकी मधुर वाणी, उनका निष्कपट प्रेम और उनके हृदय की सरलता ने मुझे १० मिनट के अंदर ही उनका पुत्र बना लिया। उन्होंने निस्संकोच भाव से अपना, अपने पुत्र, पौत्र और पुत्रवधू का हाल कहा। फिर मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछा। इसके बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर ठंढा और गरम पानी और तेल-साबुन मँगाकर बाथरूम मे रखवाया। फिर मुझे स्नान कर आने के लिये भेजकर वे अपने बेटे के पास चली गईं।

मैं नहा-धोकर और कपड़े पहनकर आया, तो क्या देखता हूँ कि माँ दूध, फल, मिठाई, नमकीन तथा खाने के कुछ और स्वादिष्ट पदार्थ थाल में रक्खे हुये बैठी हैं और मक्खियाँ हाँक रही हैं। पास ही एक आसन भी पड़ा है। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—बेटा! सवेरे से तुम भूखे हो, कुछ खा लो।

सचमुच मैं बहुत भूखा था। खाने के लिये बैठ गया। वे मक्खियाँ हाँकने लगीं। मैंने बहुत आग्रह किया कि आप अब कष्ट न करें, और स्वयं नहाने-खाने जायँ, मैं नौकर से काम ले लूँगा। पर वे मुझे खिला-पिलाकर, हाथ-मुँह धुलाकर, झूले पर सुलाये बिना नहीं टलीं। उनका अकृत्रिम प्रेम देखकर मैं तो मुग्ध हो गया।

वहाँ प्रत्येक घर मे झूला रखने का रिवाज है। झूले पर पड़ते ही मैं सो गया। दो बजे उठा। हाथ-मुँह धोकर पत्रों के उत्तर लिखने लगा। साढ़े तीन बजे मेरे मित्र का नौकर आया और बोला—आप को सेठजी चा पीने के लिये बुला रहे हैं।

मैं नौकर के पीछे हो लिया। एक सुन्दर सजे-सजाये कमरे में सेठजी और उनकी धर्म-पत्नी संगमर्मर की मेज़ के पास बैठे थे। मेरे पहुँचने पर मेरे मित्र ने अपनी स्त्री से मेरा परिचय कराया। स्त्री की अवस्था बीस-बाईस वर्ष से अधिक न होगी। सुशिक्षिता स्त्री मुझसे निस्संकोच भाव से बातें करने लगी। हम लोग करीब एक घंटे तक चा पीते और बातें करते रहे। स्त्री ने गीतों के लिये अपना आंतरिक अनुराग प्रकट किया। उसने युक्तप्रांत के कुछ गीत मुझ से सुने भी। मैंने अपनी इच्छा वहाँ का गर्वा सुनने और रास नामक नाच देखने की प्रकट की। स्त्री ने कहा—कल मैं कुछ बहनों को बुलाऊँगी और आप को गर्वा सुनवा दूँगी।

दूसरे दिन सवेरे ८ बजे मुझे जलपान करा के एक बड़े कमरे में बैठा दिया गया। थोड़ी देर बाद स्त्रियाँ आने लगीं। गुजरात सुन्दरता के लिये तो प्रसिद्ध ही है। उस पर भी वहाँ की शारीरिक स्वच्छता, गहनों

का कम पहनना और पहनावे का ढंग इतना अच्छा है कि उनसे सौन्दर्य चमक उठता है। वहाँ की स्त्रियों की चाल भी एक ख़ास ढंग की और मनोहर होती है, जैसी भारतवर्ष के और किसी प्रांत में नहीं दिखाई पड़ती।

देखते ही देखते मानो रविवर्मा के तीस-चालीस सजीव चित्र वहाँ आ बैठे। मेरी मित्राणी ने सब को मेरा परिचय दिया। उनमे से एक ने कहा—आप अपने प्रांत के गीत हम लोगों को सुनाइये। मैंने उनको तीन-चार गीत सुना दिये और उनके अर्थ भी बता दिये। मेरे गीतों का बड़ा ही अच्छा प्रभाव उन स्त्रियों के हृदयों पर पड़ा। वे मुग्ध हो गईं। कइयों की आँखों से आँसू लुढ़क पड़े। पता नहीं, उन दिनों मेरी वाणी में ऐसा प्रभाव कहाँ से और कैसे आ गया था कि मैं गीत सुनाकर कठोर से कठोर व्यक्तियों को भी रुला और हँसा सकता था।

मेरी मित्राणी के अनुरोध से उस झुंड मे से १५-१६ स्त्रियाँ उठ कर एक दूसरे कमरे में गईं; जहाँ मैं भी बुलाया गया। वहाँ उन्होंने 'रास' नाचकर मुझे दिखाया और गर्वा गाकर सुनाया। रास देखकर मुझे निश्चय हुआ कि असली रास यही है, जो कृष्ण और गोपियों के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रजवाले जो रास करते हैं, वह इसकी नक़ल का विकृत रूप है। श्रीकृष्ण जब द्वारका मे रहे थे, उस समय उनकी युवावस्था थी, और उसी समय का यह नाच अबतक प्रचलित है।

गुजरात और काठियावाड़ में यह नाच प्रायः प्रत्येक गाँव में, प्रत्येक पूर्णिमा की रात में होता है। संध्या के भोजनोपरांत महल्ले की स्त्रियाँ किसी स्थान विशेष पर एकत्र होकर रास नाचती हैं। गुजरात की पूर्णिमा स्त्रियों के इस आनंदोत्सव से कैसी सुहावनी हो जाती होगी, जरा कल्पना कीजिये।

गर्वा एक खास तरह का गीत है। इसे गाते समय स्त्रियाँ एक गोल चक्कर में घूमती हुई हाथों से बड़ा श्रवण-सुखद ताल देती हैं। घूमते समय कभी आगे की तरफ़ झुक जाती हैं, कभी बग़ल की तरफ और कभी सीधी खड़ी हो जाती हैं। यह दृश्य बड़ा ही नयन-मनोहर होता है।

गुजरात का यह सुप्रसिद्ध नृत्य देखकर और गान सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। गुजराती गीतों के यशस्वी लेखक श्रीयुक्त जवेरचंद मेघाणी 'रढियाली रात' में लिखते हैं—

'आकाश ना चौक माँ ज्यारे चंदा राणी पोतानी कोटि कोटि तारला रूपी सहीयरोने लईने जाणे के रमवा नीकलती, त्यारे गुजरातनी शेरीए शेरीए कुमारिकाओना ने नवोढ़ाओना वृन्दो वलतां'।

'एवी एवी गोरियो एकठी थाय, ओढणांनी गातरी वाली छाती पर अक्केक के बब्बे गाँठों वाले, पछी भान भूले, धरती ने धूजावे, गगन ने गजावे, पचास पचास हाथ ना तालोटा पडना होय पण जाणे के एकज सुन्दरी गाई रही छे'।

'नदीना व्हेन जेवी मृदुताथी एनो कंठस्वर व्हेवा माँडे, व्हेन तूटेज नहिँ, मीठास टपकती ज रहे। ये वखते आकाश अने धरतीनी सृष्टि शुं एक नहोती थई जती? चंद्र अने ताराओ शुं ये रासडाना मुगा प्रेक्षको नहोता लागता'।

काठियावाड़ में खद्दर का प्रचार बहुत है। वहाँ के किसान प्रायः खद्दर ही पहनते हैं और बहुत सुखी हैं। वहाँ के राजाओं का व्यवहार प्रजा के साथ बहुत संतोषजनक है। प्रायः सभी राजा सुशिक्षित और हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति के रक्षक हैं। किसानों से मिलकर मुझे बहुत हर्ष होता था। किसानों के यहाँ ठहरने पर मुझे उनका अतुलनीय प्रेम प्राप्त होता था।

काठियावाड़ की बहुत-सी सुखद स्मृतियाँ साथ लेकर मैं अजमेर आया। अजमेर में भी गीत-संग्रह के लिये कुछ मित्र तैयार करके तथा कुछ गीत प्राप्त करके मैं जोधपुर गया। जोधपुर में मेरे कितने ही पत्र-परिचित मित्र प्रत्यक्ष हुये। गीत-संग्रह के लम्बे-चौड़े वादे लेकर, और कुछ गीत प्राप्त भी करके, मैं फिर अजमेर वापस आया, और वहाँ से उदयपुर, नाथद्वारा, चित्तौरगढ़ गया।

महाराणा प्रतापसिंह के साथी भीलों के गीत प्राप्त करने का प्रबंध किया और वहाँ की अच्छी तरह सैर करके फिर अजमेर वापस आया। अजमेर से फिर जयपुर गया। जयपुर में मेरे कई मित्र हैं, जिनसे मैं मिला। वहाँ से सीकर, सीकर से फतहपुर (शेखावाटी), फतहपुर से पिलानी गया। पिलानी बिड़ला-परिवार का मूलस्थान है। श्रीयुक्त जुगलकिशोरजी, श्रीयुक्त घनश्यामदासजी, श्रीयुक्त रामेश्वरदासजी बिड़ला-बंधु उन दिनों वहीं थे। मैं श्रीयुक्त घनश्यामदासजी के पास ठहरा। गीत-संग्रह के लिये श्रीयुक्त घनश्यामदासजी ने मुझे पहले भी आर्थिक सहायता दी थी, पिलानी में भी दी। बिड़ला-बंधु चार भाई हैं। चौथे भाई श्रीयुक्त ब्रजमोहनजी उन दिनों कलकत्ते में थे। उनसे मिलने का अवसर मुझे अगले वर्ष काश्मीर में मिला। चारों भाइयों का मानसिक विकास बड़ा ही सुन्दर हुआ है। सब को स्वदेश और हिन्दू-जाति के कल्याण और शिक्षा-सदाचार की वृद्धि के लिये आन्तरिक अनुराग है। श्रीयुक्त जुगलकिशोरजी को हिन्दू-जाति की उन्नति के लिये गहरा प्रेम है। श्रीयुक्त घनश्यामदासजी को और श्रीयुत रामेश्वरदासजी को संगीत का भी शौक है। दोनों भाई सरोद अच्छा बजाना जानते भी हैं।

राजपूताने के लिये हमारा अनुमान था कि वहाँ मुझे अच्छे गीत नहीं मिलेंगे। पर मेरा अनुमान ग़लत साबित हुआ और मारवाड़ ऐसे रूखे-सूखे प्रान्त में भी मुझे प्रेम और करुणरस के झरने प्रवाहित मिले। वहाँ भी ग्राम-कविता का विकास उसी उन्माद के साथ हुआ है, जैसा भारत के अन्य प्रान्तों में। वहाँ भी पाबू जी जैसे वीरों की कथाएँ देहात में उसी तरह प्रचलित हैं, जैसे युक्तप्रान्त में आल्हा। संयोग-वियोग-शृङ्गार की तो बात ही अलग है, इस विषय में तो कोई प्रान्त पिछड़ा हुआ नहीं है। वहाँ युक्तप्रांत के घाघ और भड्डरी की तरह राजिया, किसनिया, केलिया, ईलिया, छोटिया, दानिया, नाथिया, पुसिया, बाघजी, बीझरा, भेरिया, मोतिया और सगतिया आदि देहाती कवि हुये

हैं, जिन्होंने ग्रामीणों में नीति और सदाचार के भाव अबतक बना रक्खे हैं। मानों ये समाज के पहरेदार हैं।

किसी भी समाज का शुद्ध प्रतिबिम्ब तो उसके गीतों में मिलता है। शेखावाटी के मारवाड़ी समाज का भी प्रतिबिम्ब उसके गीतों में विद्यमान है। स्त्रियों के गीतों में सीठने आदि कुछ अश्लील गीत अवश्य हैं, पर युक्तप्रांत मे समधी जिमाते समय जो गारी गाई जाती है, उसकी सी अश्लीलता तो इन गीतों में नहीं है।

पन्द्रह-सोलह वर्ष पहले जब मुझे लगातार चार-पाँच वर्ष शेखावटी (फतहपुर) मे रहने का अवसर मिला था, तब मारवाड़ी जाति का सुधार चाहनेवाले बन्धुओं ने मुझे मारवाड़ी सीठनों की गन्दी आलोचनायें ही सुनाई थीं। उन आलोचनाओं ने मुझे उन गीतों तक पहुँचने ही नहीं दिया था, जो उच्चकोटि की संस्कृति को सींचते और सदा हरी-भरी रखते हैं, समाज मे जो प्रेम और करुणा की मधुर धारा को सदा प्रवाहित रखते हैं और जो स्त्री-जीवन के मार्ग-प्रदर्शक हैं। मुझे जो मारवाड़ी गीत मिले, उनमें स्वाभाविकता तो हई है, इसके अतिरिक्त उनमें मनोभावों के गहरे प्रतिबिम्ब भी हैं। मारवाड़ी गीतों के रचनेवाले, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष—यद्यपि अधिकांश गीत स्त्रियों ही के रचे हुये होंगे—कवि नहीं थे। यह तो मानी हुई बात है। पर उनकी रचना में कविता का मनोहर विकास हुआ है, यह गीत सुनते ही मालूम होने लगता है। मारवाड़ी गीतों में सीठनों की निन्दा तो बहुतों ने की, पर स्त्रियों में प्रचलित उपदेशपूर्ण गीतों की ओर किसने ध्यान दिया? कितने ही अच्छे गीत वृद्धा स्त्रियों के साथ काल के गाल में सदा के लिये विलीन हो गये होंगे। अब भी जो गीत बच रहे हैं, उनके संग्रह की ओर कौन ध्यान देता है? क्या उनके द्वारा समाज में सुरुचि नहीं पैदा की जा सकती?

राजपूताना तो कभी वीरों का प्रान्त था। इससे वीररस के भी

गीत उधर खूब प्रचलित हैं। भीलों के गीत प्रायः वीररसपूर्ण हैं।

पिलानी में मैं कई दिन रहा। गीत-संग्रह के काम की कुछ व्यवस्था हो जाने पर मैं वहाँ से पंजाब के लिये रवाना हो गया। पंजाबी गीतों के लिये मुझे अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। क्योंकि श्रीयुक्त संतरामजी का संग्रह प्रेस में था। उस के लिये मैं उसके प्रकाशक महाशय राजपाल से मिला था, जिनकी हत्या, अभी थोड़े दिन हुये, किसी धर्मांध मुसल्मान ने की है। पंजाब मे उससे अधिक संग्रह मैं कर भी नहीं सकता था। अस्तु; लाहोर, अमृतसर, और लुधियाना होता हुआ मैं प्रयाग लौट आया।

इस लम्बी यात्रा से लौटकर मैंने युक्तप्रांत के गाँवों की यात्रा फिर शुरू की। यदि ओढ़ना-बिछौना ढोने की कोई असुविधा न हो, तो जाड़े के महीने यात्रा के लिये बड़े अच्छे होते हैं।

सन् १९२८ की मई में मैंने गीतों के लिये काश्मीर की यात्रा की। वहाँ मैं ढाई महीने के लगभग रहा। काश्मीर के गीत काश्मीर ही की तरह सुन्दर हैं। उनमें वर्णित भाव फारसी कविता के भावों की तरह बड़े ही मधुर हैं। काश्मीर में स्व० लाला लाजपतराय ने मेरे गीत सुने थे और मेरे काम से बड़ी सहानुभूति प्रकट की थी। चमारिनों के गीत सुनकर उनके हृदय की आर्द्रता आँखों में उमड आई थी। अछूतों के लिये उनके हृदय मे सचमुच बडा ही अनुराग था। उन्होंने एक पत्र लिखकर सब शिक्षितों और अशिक्षितों से मेरे काम में सहायक होने की अपील की थी। काश्मीर में काश्मीरी गीतों के लिये मुझे श्रीयुक्त ब्रजमोहनजी बिड़ला ने आर्थिक सहायता दी थी।

काश्मीर से लौटकर मैं बीमार हो गया। बीमार तो मैं पहले ही से था, पर मुझे यह कहना चाहिये कि काश्मीर से लौटने पर मुझे अपनी बीमारी का पता चला। यात्रा मे खान-पान की असुविधा गत दो-तीन वर्षों से चली आ रही थी। दिनभर दौड़ते-दौड़ते थक जाने पर रसोई बनाने की हिम्मत किसको होती? मिठाई या फल से

पेट भरकर सो रहता। देहात की मिठाई तो गुड़ ही का एक रूपान्तर है। खोये का तो वहाँ नाम नहीं होता। वही रूपान्तरित गुड खा-खाकर मैंने डायाविटीज़ रोग पैदा कर लिया। देहात में किसी के यहाँ ठहरता, तो पूरियाँ बनवाकर खिलाना वह मेरा वड़ा सत्कार करना समझता। मैं रोटी, दाल, तरकारी बनाकर खाने का कितना ही आग्रह करता, पर देहात में, ख़ासकर ब्राह्मण-क्षत्रियों मे, पूरियों को जो महत्व-पद मिला है, उससे मैं उसको नहीं हटा सकता था। परिणाम यह हुआ कि गुड और पूरियों ने मेरे स्वास्थ्य को खा डाला। पता नहीं, इस जीवन में इस रोग से कब छुटकारा मिले। फिर भी ग्राम-गीतों के संग्रह में मुझे जो आनन्द मिला है और मिल रहा है, उसके लिये मैं अपना शरीर दान करके भी सन्तुष्ट ही होता।

फिर भी १९२८ की वरसात में मैंने गीत-यात्रा जारी रक्खी। सन् १९२६—२७—२८ में कुल मिलाकर लगभग ९-१० हज़ार मील की यात्रा मैंने पैदल और रेल से की। और गीत-संग्रह में सब प्रकार के ख़र्च मिलाकर कुछ ३८-३९ सौ रुपये ख़र्च किये। समय, धन और स्वास्थ्य तीनों को अपनी शक्ति से अधिक ख़र्च करके मैंने पाया क्या? १०-१२ हज़ार गीत, और ग्राम्य जीवन के अनमोल अनुभव।

यद्यपि मैंने कई हज़ार गीत जमा किये हैं, पर उन्हें मैं समुद्र में एक बूँद से अधिक नहीं समझता। एक-एक ज़िले के गीतों के संग्रह में बीसों वर्ष चाहिये। मेरे पास इतना समय है भी नहीं; और हो भी, तो इसी एक काम के पीछे मैं इतना समय दे भी नहीं सकता। गत चार वर्षों मे मैंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूम-फिरकर सब प्रकार के थोड़े-बहुत गीत जमा कर लिये हैं। पर संग्रह होना चाहिये एक सिलसिले से। और इस काम के लिये प्रत्येक ज़िले में ग्राम-गीत-समिति बननी चाहिये, जिसमें सब श्रेणी और सब समाज के लोग सम्मिलित किये जायँ। पर समिति बनाकर बाक़ायदा काम करने के लिये बहुत बड़े आयोजन की

ज़रूरत है। और आयोजन के पहले सर्वसाधारण को ग्राम-गीतों की उपयोगिता बताने की आवश्यकता है। यही बताने के लिये मैंने यह आवश्यक समझा, कि मेरे पास जितने गीत हैं, उनमें से कुछ गीत चुन-कर, हिन्दी-अर्थ-सहित उन्हें शिक्षित और अशिक्षित जनता के सामने रक्खूँ। जिससे लोग गीतों के संग्रह की ओर ध्यान दें। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने कुछ चुने हुये गीतों की दो पुस्तकें तैयार की हैं। जिसका पहला भाग यह है। दूसरा भाग, जिसमें निम्नलिखिति विषय होंगे, इसके बाद प्रकाशित होगा—

आल्हा, लोरिक, हीर-राँझा, ढोला-मारू, नयका आदि गीत-कथाएँ; काश्मीरी गीत, पंजाबी गीत, मारवाड़ी गीत, मेवाड़ी गीत, सिंधी गीत मराठी गीत, गुजराती गीत, तेलगू गीत, तामिल गीत, मलयालम गीत, उड़िया गीत, बँगाली गीत, आसामी गीत, मैथिल गीत, नेपाली गीत, अल्मोड़ा और गढ़वाल के गीत, घाघ और भड्डुरी की कहावतें, खेती की कहावतें, नीति के वचन, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, लावनी, पचरा, दादरा, दोहे, कवित्त, सवैया, छंद आदि।

इन दो भागों में ग्राम-साहित्य का दिग्दर्शन हो जायगा और आशा है कि इनके द्वारा शिक्षित समाज का ध्यान इन खोई हुई मणियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर जमा कर लेने की ओर आकर्षित होगा।

ग्राम-गीतों के संग्रह से देश या समाज को क्या लाभ पहुँचेगा? यह एक प्रश्न है, जिसका उत्तर पाने के लिये बहुत से लोग लालायित होंगे।

सब से पहला लाभ तो यह है कि हम एक कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे सुरक्षित कर लेंगे।

दूसरा लाभ इन गीतों के संग्रह से यह होगा कि हमको स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा देखने को मिलेगी। जिनको हमने मूर्ख समझ रक्खा है, उनके मस्तिष्क से ऐसे-ऐसे कवित्वपूर्ण गीत निकले हैं कि उनपर हिन्दी के कितने ही कवियों की रचनायें निछावर की जा सकती हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदास के शब्दों में 'उनमें रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति मे भी तथा तुलसीदास, सूरदास से भी अधिक है।' क्या यह एक आश्चर्य की बात नहीं है ? अतएव ऐसी आश्चर्य की वस्तु का संग्रह क्या आवश्यक नहीं है ?

तीसरा लाभ इन गीतों से यह होगा कि हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता की शैली पर इनका प्रभाव पड़ेगा। गीतों की रचना प्राकृतिक शैली पर हुई है। उनमें कल्पित नहीं, बल्कि स्वाभाविक रस का विकास हुआ है। अतएव उसका प्रभाव भी शीघ्र और स्थायी होता है। मुझे आशा है, कि गीतों का अध्ययन करके हमारे वर्तमान कवि-गण अपनी शैली मे परिवर्तन करेंगे।

चौथे, हम गीतों में वर्णित अपने देश के भिन्न-भिन्न रस्म-रिवाजों और रहन-सहन से जानकार हो जायँगे। इस जानकारी से देश के नेता, और समाज-सुधारक सभी लाभ उठा सकते हैं।

पाँचवें, गीतों-द्वारा हम जनता को यह बता सकेंगे कि पूर्व-काल में, जब के बने ये गीत हैं, बाल-विवाह की प्रथा नहीं प्रचलित थी। वर-कन्या अपनी पसंद के अनुसार जीवन-संगी चुनते थे। गीतों में सर्वत्र ऐसा वर्णन मिलता है। यद्यपि वर-कन्या को अब वैसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं, पर गीतों में विवाह का प्राचीन आदर्श तो क़ायम है। यदि ग्राम-गीतो-द्वारा हम यह बात अपने देश के माता-पिताओं के हृदय में उतार सकें, तो गीतों से यह एक बहुत बड़ा लाभ समझा जायगा।

छठें, हम गीतों में वर्णित भाई-बहन के प्रेम की वृद्धि करेंगे। पति-पत्नी के प्रेम को अधिक मधुर, चिरस्थायी और सुखमय बनायेंगे। बहू के प्रति सास की कठोरता, तथा ननद-भौजाई और देवरानी-जेठानी के झगड़े कम करेंगे। कन्याओं में सती-धर्म के प्रति शाश्वत श्रद्धा की नींव डालेंगे। बहू पर होनेवाले अत्याचारों की मात्रा कम करेंगे। पति-व्रत-धर्म की महिमा का प्रचार करके हम पति-पत्नी के जीवन को अधिक

विश्वसनीय और आनन्दमय बनायेंगे। नीति के वचनो का प्रचार करके हम अपढ और अशिक्षित जनता की बुद्धि में स्फूर्ति उत्पन्न करेंगे। पिता-पुत्र में स्वाभाविक पवित्रता, युवकों में उच्चाभिलाषा और वृद्धों में संतोष की वृद्धि करेंगे। पुरुषों को एक नारीव्रत की शिक्षा देंगे।

सातवें, हम हिन्दी-साहित्य में नये-नये महावरों, कहावतों, पहेलियों और नवीन शब्दों की वृद्धि करेंगे।

अंतिम बात को मैं जरा विस्तार-पूर्वक कहना चाहता हूँ—

आजकल हिन्दी मे जो ग्रंथ या लेख निकल रहे हैं, उनमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, मेरी गिनती में वे तीन सौ से अधिक नहीं आये। इतने थोड़े शब्दों के अंदर हिन्दी की विद्वत्ता घेरकर रक्खी गई है। हम इतने ही शब्दों में सोचते हैं, लेख या पुस्तकें लिखते हैं और व्याख्यान देते हैं। हमारे घरों में, खेतों में, कारख़ानों में प्रतिदिन काम में आने वाले कितने ही पदार्थों के नाम हिन्दी में नहीं हैं; कितने ही भावों के लिये उपयुक्त शब्द नहीं हैं। गाँवों की बोली में प्रायः सभी पदार्थों के नाम और भावों को ठीक-ठीक प्रकट करनेवाले शब्द मौजूद हैं। हिन्दी के लिये क्या यह दुर्भाग्य की बात नहीं है? देहाती कविता में कितने ऐसे शब्द प्रचलित हैं, हिन्दी में जिनकी बड़ी आवश्यकता है। बिना उनके हम कितने ही भावों को स्पष्ट रूप से प्रकट ही नहीं कर सकते। कुछ उदाहरण लीजिये—'बिराना' एक क्रिया है। जिसके लिये हिन्दी में 'मुँह चिढाना' दो शब्द है। फिर भी 'बिराना' का भाव 'मुँह चिढ़ाने' से कुछ भिन्न है। इसी प्रकार 'डाहना' शब्द है। गाँव के लोग कहते हैं—'उन्होंने मुझे डाह डाला'। डाहना के लिये हिन्दी में 'जलाना' शब्द प्रयुक्त होता है। पर 'डाहना' का भाव 'जलाना' से कहीं अधिक व्यापक और गंभीर है। जलाने में केवल नीरसता है। पर डाहने में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलहने का माधुर्य भी है। इसी प्रकार 'बराना' शब्द है। जिसके दो अर्थ हैं—बचकर चलना और चुनना। जैसे, हम उनकी राह बराते हैं। तथा

अच्छे-अच्छे आम बरा लो। पहले वाक्य में 'राह बराना' 'बचकर चलने' से कहीं अधिक व्यापक है। अँग्रेज़ी में इसका ठीक-ठीक अर्थ देने वाला Avoid शब्द है। दूसरे वाक्य में 'बरा लेने' के भाव की पूर्ति 'चुन लेने' मे नहीं हो सकती। कोंछ या कोंइछा शब्द को लीजिये। स्त्रियाँ जब कोई चीज़ आँचल में लेती हैं तब चीज़ को बीच में रखकर वे आँचल के दोनों कोनों को या तो दोनोंओर कमर मे खोंस लेती हैं, या हाथ में थाम लेती हैं। उसीको कोंछ या कोंइछा कहते हैं। आँचल में कोई पदार्थ लेने से उसका जो रूप बन जाता है, हिन्दी में उसका कोई नाम ही नहीं है। इसी प्रकार 'निहुरना' शब्द है। हिन्दी में इसके लिये 'झुकना' शब्द है। पर झुकना कई स्थानों में प्रयुक्त होता है। जैसे, कमर झुक गई; सिर झुक गया; झंडा झुक गया; आदमी झुक गया; इत्यादि। पर 'निहुरना' शब्द केवल कमर झुक जाने के लिये ही है। स्त्री निहुरे-निहुरे झाड़ू दे रही है, ऐसा कहा जाता है। पर झंडा निहुर गया, ऐसा कोई नहीं कह सकता। इसी प्रकार एक ओठँगाना शब्द है, जिसका अर्थ है—किसी लंबी चीज़ को किसी दीवार या वृक्ष के सहारे खड़ी करना। हिन्दी मे इसका पर्याय-वाची शब्द नहीं। विसूरना शब्द को लीजिये। इस एक शब्द में चिन्ता, दुख और करुणा की स्मृति कसकर रक्खी गई है। हिन्दी में इसका अर्थ देने वाला कोई शब्द नहीं। खेती के कामों और उसके औज़ारों के बहुत से नाम हिन्दी में नहीं प्रचलित हैं। हिन्दी के लेखकों को जब कहीं उनके नामों की आवश्यकता पड़ती है तब वे एक शब्द न देकर उसका लम्बा-चौड़ा भावार्थ लिख देते हैं। यह कितनी बड़ी परा-धीनता और शब्द-रङ्कता है!

ग्राम-गीतों के दौरे में जाकर मैंने देहात से बहुत से नये शब्द पकड़ लाये हैं, जिनकी सूची आगे दी जाती है। यदि ये सब शब्द हिन्दी-जगत् में चलने लगे तो इनकी सहायता से भावों के प्रकट करने का काम कितना सरल हो जायगा, यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

मैं इन नये शब्दों की सूची के साथ यह प्रस्ताव हिन्दी-जगत के सम्मुख उपस्थित करता हूँ कि इनमें से अधिक आवश्यक शब्द भाषा में ले लिये जायँ और इनका प्रयोग प्रारंभ किया जाय—

अगोरना=प्रतीक्षा करना, बाट जोहना।

अदहन=दाल या चावल पकाने का गरम पानी।

अगवार=मकान के आगे का हिस्सा।

अगवारी=हल के फल में लगा हुआ लकड़ी का टुकड़ा।

अहकना=तरसना।

अहदी=सुस्त।

अहरा=कुछ उपलों को एक-जगह रखकर जलाते हैं और उस पर खाना पकाते हैं, उसे अहरा कहते हैं।

अंडू=अंडेवाला वह बैल या घोड़ा जो आख्ता न हो।

अहँअ्=नहीं।

अह्यरना=लकड़ी चीरना।

आँट=शत्रुता, पेंच।

आँठा=ठोस जमे हुये दही का टुकड़ा।

आँटी=मूठी भर घास का बंडल।

इनरी=नई ब्याई हुई गाय या भैंस का उबाला हुआ दूध, जो जम जाता है।

उकेलना=खाल या छाल निकालना।

उचारना=जड़ सहित उखाड़ लेना।

उटंग=ऊँचा। केवल स्त्रियों की धोती या लँहगे के लिये प्रयुक्त होता है।

उड़ासना=खाट उठा देना।

उँड़ेलना=एक वर्तन से दूसरे वर्तन में डालना।

उढ़रना=अपने पति को छोड़कर दूसरे के साथ भाग जाना।

उतारा=मंजिल, जहाँ यात्री ठहरते हैं।

उदंत=वह जानवर जिसके पक्के दाँत न निकले हों।

उबकना=क़ै करने को जी चाहना; मुँह से बाहर निकलने का प्रयत्न करना।

उबहन=कुएँ से पानी निकालने की रस्सी।

उलरना=कूदना, उछलना।

उसिनना=उबालना। केवल नाज के लिये आता है।

ऊमी=गेहूँ, जौ की अधपकी बाल जो भूनकर खाई जाती है।

ऐपन=हल्दी, दही आदि पदार्थों का मिश्रण, धार्मिक संस्कारों में जिससे तिलक किया जाता है।

ओगारना=कुँवा साफ़ करना।

ओढ़र=बहाना।

ओत=बचत।

ओनचन=चारपाई कड़ी करने की रस्सी।

ओबरी=स्त्री की ख़ास कोठरी, जिसमें पति के सिवा अन्य पुरुष नहीं जा सकते।

ओरदावन=चारपाई कड़ी करने की रस्सी।

ओरी=छप्पर का किनारा, जहाँ से बरसात का पानी चूता है।

ओलती=ओरी।

ओसर=गाय या भैंस, जो ब्याई न हो।

ओसारा=बरामदा, (Portico)

ओहार=पालकी का परदा।

कइन=बाँस की पतली टहनी।

कगर=किनारा।

कचारना=
कछारना= } पटक-पटक कर धोना, पैर से कपड़ा धोना।

कछाँड़=स्त्रियाँ पुरुषों की तरह धोती चढ़ा लेती हैं, उसे कछाँड कहते हैं।

कनियाँ=गोद, कंधा।

कमोरा, कमोरी=मिट्टी का बर्त्तन, जिसमें दही बिलोया जाता है।

कठौता=काठ की परात।

कठोली=काठ की थाली।

कजरौटा=काजल रखने का लोहे का पात्र।

करोत=आरा।

करोना=खुरचना।

करोनी=दूध गरम करने पर बरतन की पेंदी में जो दूध का जला हुआ भाग चिपका रहता है, उसे करोनी कहते हैं।

करौना=चिपककर कड़ा हो जाना।

करौ=कड़ा।

करेर=मज़बूत।

कलोर=गाय जो ब्याई न हो (Heifer)

कातर=कोल्हू में लगी हुई एक लकड़ी, जिस पर बैठकर तेली बैल हाँकता है।

काँवरि=कंधे पर बोझ उठाकर ले जाने के लिये बाँस का एक

टुकड़ा, जिसके दोनों ओर रस्सी
में बाँधकर टोकरे या गठरियाँ
लटकाई जाती हैं।

किंगरी=छोटी सारंगी।

कीलां=मथानी का दाँत।

कूचा, कूँचा=झाड़ू

कुड़ा=हल का वह हिस्सा जो
हलवाहे के हाथ में रहता है।

कुपक=आँख का एक रोग।

कुरिया=छोटा झोंपड़ा, जो खेत की
रखवाली के लिये बनाया
जाता है।

कुलाचना=कूदना।

कूँड़ा=मिट्टी का बड़ा घड़ा।

कूँड़ी=पत्थर की कटोरी, जिसमें भाँग
आदि चीज़ें घोंटी जाती हैं।

कूनना=छीलन लगाना।

कूरा, कूरी=राशि, (Heap)।

कूला=क्यारी।

केराव=छोटी मटर

कोआ=कटहल का बीज; महुवे
का फल।

कोंचना=चोंकना, (Prick)

कोंढ़ा=कुंडी, हुक।

कोंढ़ी=फल का बतिया।

कोंछ=आँचल, गोद।

कोसा=घड़े आदि ढँकने के लिये
मिट्टी का एक ढक्कन।

कोहबर=वह घर, जिसमें घर के
देवताओं के चित्र बने होते हैं
और जहाँ विवाह के उपरांत
वर-वधू पहले-पहल साथ
बैठते हैं।

कोहा=मिट्टी का बड़ा कटोरा।

कौंखाना=सोते समय बड़बड़ाना।

खँगारना=धोना।

खड़बीहड़=खुरदरा, ऊँचा-नीचा

खपरी=घड़ा या हाँड़ी का पेंदा
जिसमें चना-चबेना भूनते हैं।

खपटा=टूटा हुआ खपड़ा।

खपाच=बाँस का छोटा चिरा हुआ
टुकड़ा।

खरिका=दाँत साफ करने का
तिनका।

खरिहक, खरिहरा=फसल के अंत में
हलवाहों को जो नाज दिया
जाता है, वह खरिहक-हरा
कहलाता है।

खलैंया=झटका।

खाँचा, खाँची=अरहर के डंठल का
बना हुआ टोकरा, जिसमें घास
और भूसा ढोते हैं।

खुरपा, खुरपी=घास छीलने का हथियार।

खोरा=कटोरा।

खोरिया=कटोरी।

खूँथ=कटे हुये पेड़ के तने का हिस्सा, जो जड़ से लगा हो।

खूनना=कूटना।

खेड़ा=गाँव के पास की ज़मीन।

खेदना=दौड़ाना।

खेप=बोझा

खेना=नाव चलाना।

खेवा=नाव से नदी को पार करना।

खोइया=रस निकाल लेने पर ईख का बचा हुआ डंठल।

खोंच=किसी नोकदार चीज़ की चोट।

खोंची=ग़ल्ले या घास की चुङ्गी।

खोंसना=धँसाना (Thrust)

खोप=कोना, पिछवाड़ा।

खौरा=कुत्ते, भेंड़ आदि का एक रोग, जिसमे बाल झड़ जाते हैं।

गगरा=लोहे या ताँबे का घड़ा।

गगरी=मिट्टी का घड़ा।

गँजिया=पतली लम्बी थैली, जिसमें देहात के लोग रुपया पैसा रखकर कमर में बाँध लेते हैं।

गँठिया=बोरा।

गँड़ासा=चारा काटने का औज़ार।

गद्दर=आधा पका।

गबरू, गभरू=नौजवान।

गरू=भारी (गुरु)।

गलका=फोड़ा जो उँगलियों में निकलता है।

गलियारा=घर के भीतर जाने की गली।

गाँजना=ढेर लगाना।

गाटा=जमीन का टुकड़ा।

गाड़=गड्ढा, जिसमें किसान लोग अनाज रखते हैं।

गाड़ा=खाद आदि ढोने की छोटी गाड़ी।

गाढ़=संकट।

गाढ़ा=ठोस, मोटा।

गाभा=अंकुर।

गाही=पाँच की एक राशि।

गेंडुरी=घास की गोल रस्सी, जिस पर घड़ा रक्खा जाता है।

गोंजना=सानना।

गुइयाँ=सखी, सहेली।

गुड़म्बा=उबाले हुये आम और गुड़ के योग से बनी हुई चीज़।

गूँथना=पिरोना ।
गुरगी=छोटी लड़की ।
गुराँव=खलियान ।
गुहरी=उपली ।
गँड़ी=ईख का लगभग १ इंच लंबा टुकड़ा ।
गोयँड़=गाँव के निकट का खेत ।
गोती=सजातीय ।
गोनरी=घास की चटाई ।
गोफन=ढेला दूर तक फेंकने की एक जाली ।
गोबरी=गोबर का प्लास्तर ।
गोरसी=दूध रखने का बरतन ।
गोरू=पशु ।
गोला=घर, जिसमें गल्ला जमा रहता है ।
गोहराना=पुकारना ।
गोहार=सहायता के लिये पुकार ।
गौं=घात ।
घँघोरना=द्रव पदार्थ को हाथ से मिलाकर खराब कर देना ।
घटिहा=ठग, धोखा देनेवाला ।
घड़ोंची=पानी का घड़ा रखने का चबूतरा ।
घरनई, घन्नई=घड़ों की नाव ।
घर्रा=कुँए से पानी निकालने का एक तरीक़ा, जिसमें चमड़े का मोट लगता है और उसे १०, १२ आदमी खींचते हैं ।
घामड़=निर्बुद्धि ।
घुघुरी, घुँगनी=उबाला हुआ नाज ।
घुन्ना=चुप्पा, धोखेबाज़ ।
घोघी=कम्बल या दूसरे ओढ़ने का एक सिरा मोड़कर सिर पर डाल लिया जाता है उसे घोघी कहते हैं ।
घोसी=मुसलमान दूधवाला । अहीर से मुसलमान हुआ हिन्दू ।
चकरा=जिस पर गरम गुड़ फैलाया जाता है ।
चकवड़=बरसात का एक पौदा, जिसकी पत्तियाँ देखकर देहात के लोग सूर्यास्त और सूर्योदय का पता लगाते हैं ।
चफइल=फैला हुआ ।
चँगेरा=डलिया ।
चरखी=कुएँ से पानी निकालने का यंत्र ।
चरफर=फुर्त, तेज ।
चटक=तेज रंग ।
चहेंटना=खदेड़ना ।
चहला=कीचड़ ।

चहँटा=कीचड़ ।
चगड़=धूर्त
चाईं=उठाईगीर ।
चाईंचूईं=सिर का एक रोग जो प्राय: लड़कों को होता है ।
चापर=वरवाद, नष्ट, चौपट ।
चटकना=गरजना । पतली दरोरें पड जाना । थप्पड ।
चिना=इमली का वीज ।
चिकनिया=छैला ।
चिकवा=भेंड़-वकरी का मांस वेंचनेवाला ।
चिचोरना=दाँत से फाड-फाड़कर चवाना ।
चिचियाना=चिल्लाना ।
चित्ती=धब्बा ।
चिनगा=जला हुआ गुड ।
चिनगी=चिनगारी ।
चिरकुट=चिथडा ।
चिरायन्द=बाल या चमडा जलने की गंध ।
चीखुर=गिलहरी ।
चीलर=कपड़े का जूँ ।
चुकता=पूरी अदाई ।
चुकौता=अंत ।
चुन्धला=धुँधली दृष्टिवाला ।
चुरना=पकना । यह शब्द दाल, भात, तरकारी के लिये ही प्रयुक्त होता है ।
चुभकी=डुवकी ।
चुर्की=शिखा ।
चेखुर=मकई की जड ।
चैला=जलाने के लिये फाडी हुई लकडी ।
चैली=चैले के छोटे टुकड़े ।
चोटा=चीनी का अंश निकाल लेने पर गुड का जो तरल अंश वच रहता है, वह चोटा कहलाता है ।
चोट्टा=चोर
छरिन्दा=अकेला (छडी लिये हुये) ।
छान=छप्पर ।
छालिया=सुपारी ।
छीमी=फली ।
छेरी=वकरी ।
छोत=गाय या भैंस जितना एक वार में हगती हैं, उतना एक छोत कहलाता है ।
छोपना=दीवार या चवूतरा या नाँद पर गीली मिट्टी रखना ।
जाँगर=वल, ज़ोर ।
जाउरि=खीर ।

जुआ—हल का वह भाग, जिसमें बैल की गर्दन रहती है।
झँगार—मटर या आलू का डंठल।
झंखना—शोक करना।
झँझरी—जालीदार खिड़की।
झाँकड़, झाँखर—सूखी झाड़ी।
झाँस—ठूठ, घटिया।
झिलँगा—टूटी हुई चारपाई।
झोप्पा—फलों का गुच्छा।
झौवा, झौंआ—अरहर के तने का बना हुआ टोकरा या टोकरी।
टंच—ठीक, तैयार।
टहकना—गलना। यह शब्द घी और तेल के लिये ही प्रयुक्त होता है।
टिकरी—छोटी रोटी।
टिकोरा—आम की कैरी।
टोह—खोज। (Search)
ठड्डा—जबरदस्त।
ठिलिया—छोटा घड़ा।
ठोकवा—महुवे की रोटी।
डबरा—छोटा गढ़ा; आसपास।
डबकोरना—पानी को उथल-पुथल करके भरना।
डाँकना—उल्लंघन करना।
डाँगर—दुबला जानवर।
डाँठ—जौ गेहूँ का डंठल।
डाढ़ा—जंगल, आग।
डाँड़ी—तराजू की लकड़ी, जिसके सहारे तराजू के दोनों पल्ले लटकते हैं।
डासना—बिछाना।
डीह—उजड़े हुये गाँव की पुरानी जगह।
डेहरी—नाज रखने का कोठिला।
डोभना—सीना, तागे डालना।
डोरा—धागा।
ढकोलना—जल्दी-जल्दी पानी पीना।
ढयइल—गँदला।
ढाटा—सिर के चारोओर कान के ऊपर से रूमाल बाँधना।
ढील—जूँ।
ढेलवाँस—ढेला दूर तक फेंकने के लिये रस्सी की जाली।
ढेंढी—कली।
ढेंपी—फल का मुँह जो टहनी से जुड़ा रहता है।
ढोंका—छोटा टुकड़ा।
ढोली—२०० पानों का एक बंडल।
तक—तराजू।
तनिक—ज़रा सा।
तागना—डोरा डालना, सीना।

तावड़तोड़=तत्काल।

तिडीविड़ी=तितर-वितर;

तेहा=तेज, मिजाज़।

तोडा=कमी, अभाव।

दँवरी=माँड़ने के लिये 'पैर' पर घूमनेवाले बैलों का समूह।

दीअट=दिया रखने का स्टैंड।

दौरी=बाँस की बनी टोकरी।

धडी=५ सेर का वज़न।

धनकटी=धान कटने का मौसम।

धागा=तागा।

निहंग=नंगा, असावधान।

निहोरा=कृपा।

पगडंडी=केवल पैदल चलने का रास्ता

पखारना=धोना।

पगहा=पशुओं के बाँधने की रस्सी।

पछोरना=सूप से फटकना।

पटरा=लकड़ी का तख्ता।

पडछती=मिट्टी की दीवार पर छप्पर।

पटपर=बरसात के बाद धूप से सूखी हुई मुलायम ज़मीन।

परई=मिट्टी का बड़ा सिकोरा।

परकना=आदी हो जाना।

परछना=दूल्हा-दुलहिन के सिर पर मुशल, वट्टा तथा आरती घुमाना।

परेता=जिसमें तागा लपेटा जाता है।

पलानना=घोड़ा या बैल लादना।

पल्ला=फ़ासला, दूर, किनारा, एक किवाड़ा या धोती।

पसर=रात में गोरू चराना।

पसाना=चावल का माँड़ निकालना।

पसूजना=सीना।

पाँचा=भूसा या घास उठाने का लकड़ी का औज़ार।

पाटा=तख्ता।

पाटी=खाट की लम्बाई की तरफ की लकड़ी या बाँस। माँग की दोनों तरफ़ का भाग।

पाथना=गोबर के उपले बनाना।

पारी=बारी

पिहाना=डेहरी का ढक्कन।

पैर=माँड़ने के लिये फैलाया हुआ डंठल।

पोटली=छोटी गठरी।

पोना=रोटी बनाना।

पुरइनि=कमल का पत्ता।

पुरखिन=गृहस्थी चलाने में होशियार स्त्री।

पुरवट=चमड़े के बड़े थैले मे बैलों के द्वारा कुएँ से पानी निकालना।

पुरसा=एक आदमी की ऊँचाई।

पैक=हरकारा।

पैड़ी=सीढ़ी।

पैना=हल जोतनेवाले का चाबुक।

फर्च=साफ़।

फरी=ढाल।

फाँका=मूठी भर।

फरुहा=फावडा।

फुनगी=टहनी का सिरा, जहाँ नये और कोमल पत्ते होते हैं।

फिरिहिरी=पत्तों का बना हुआ एक खिलौना।

फेंटा=कमरबंद, पगडी।

फट्ठा=बाँस का चिरा हुआ लंबा टुकडा। मुँहफट, धूर्त्त।

फोकट=मुफ्त।

फरियाना=निथरना। अलग करना।

फैंच=बाँस का बारीक टुकडा।

बखरी=घर।

बटुवा=थैली।

बतिया=छोटा फल।

बतौरी=रसोली।

बरारी=रस्सी।

बराव=परहेज।

बाँगर=ऊँची ज़मीन।

बाँड़ा=पुँछकटा।

बिदोरना=मुँह बनाना।

बझना=फँसना।

बूकना=सिल पर पीसना।

बूँचा=कनकटा।

बूटा=कपड़े पर फूल की छाप।

बेठन=कोई चीज़ लपेटने का कपड़ा।

बेढ़ना=पशुओं को किसी घेरे में क़ैद करना।

बेढ़नी=रोटी, जिसके भीतर पिसी हुई मटर भरी रहती है।

बेंट=हत्था, हैंडिल।

बेना=बाँस के छिलकों का बना हुआ पङ्खा।

बेलाना=चकले पर बेलन से रोटी बनाना।

बेवहर=उधार।

बेहन=धान के पौधे उगाकर फिर वे खेत में लगाये जाते हैं, उसे बेहन या बेरन कहते हैं।

बेआना=पेशगी रुपया।

बया=बाज़ार में तौलने का पेशा करनेवाला व्यक्ति।

बयाई=बया की उजरत।

बैना=ब्याह आदि के बाद मित्रों में जो मिठाई बाँटी जाती है, उसे बैना कहते हैं।

बेर्रा=चना और जौ या मटर और

जौ मिला हुआ नाज ।
बिलल्ला=मूर्ख ।
बिलहरा=पान रखने के लिये चटाई का बना हुआ डब्बा ।
बिलोना=दही मथना ।
बिसरना=भूल जाना ।
बिसायन्ध=सड़ने की बदबू ।
बिसार=बीज ।
बीता=बालिश्त ।
बोरसी=आग रखने के लिये मिट्टी का पात्र ।
बोहनी=सवेरे की पहली बिक्री ।
ब्याया=बच्चे देना । यह शब्द केवल पशुओ के लिये आता है ।
बेंवडा=द्वार पर लगी हुई टट्टी को रोक रखने की लकड़ी या बाँस।
भकुआ=मूर्ख ।
भुजिया=उबाले हुए धान का चावल ।
मड़ार=पुराना कुआँ जो खराब हो गया हो ।
मरजीया=मोती निकालनेवाला ।
महतो=चौधरी ।
महरा=पालकी ढोने वाला, कहार ।
महीन=बारीक, पतला ।
मींजना=हाथ से मसलना ।
मुँगरी=मिट्टी पीटने की लकड़ी ।
मुरहा=निःशील ।
मूसना=चोरी करना ।
मूका=घूँसा ।
मून्दना=ढकना ।
मोखा=ताक या दीवार में एक छोटा छेद, जिससे हवा और रोशनी कमरे में आती है ।
मोटरा=बोझा, बंडल ।
मोटरी=छोटी गठरी ।
मोहार=द्वार ।
मौनी=मूँज की बनी हुई छोटी डलिया ।
रखौनी=खेत रखाने की मजूरी।
रगी=वर्षा के बाद जब धूप निकल आती है, उसे रगी कहते हैं ।
रगेदना=खदेड़ना ।
रनबन=अरण्य वन ।
रपटना=फिसलना, खदेड़ना ।
रमझल्ला=झगडा ।
रहठा=अरहर का डंठल ।
रहसना=प्रसन्न होना ।
रहाइस=रहना ।
राउत=सरदार, महतो ।
राँधना=पकाना ।
राँपी=सेंध लगाने का औज़ार।

रिगिर=हठ ।
रूँधना=काँटेदार झाड़ी से घेरना ।
रैदाम=चमार ।
रोगदानी=खेल में बेईमानी करना ।
लकठा=मकई का डंठल ।
लगा लगाना=शुरू करना ।
लग्गी=फल तोड़ने का लंबा पतला बाँस जिसके सिरे पर एक छोटी लकड़ी आड़ी-तिर्छी बाँधी रहती है ।
लच्छा=सूत का बंडल ।
लढ़ा=गाड़ी ।
लतरी=पुरानी जूती ।
लपोढ़िया=खुशामदी ।
लोर=आग की लपट ।
लहकना=लपट उठना ।
लहना=उधार ।
लाठा=ज़मीन नापने का बाँस ।
लेरुआ=गाय का नया ब्याया हुआ बच्चा ।
लिहाड़ा=नीच ।
लीबड़=कीचड़ ।
लुचुई=रोटी जो आटे में घी मिला कर बनाई जाती है ।
लुञ्जा=हाथ या पैर से लँगड़ा ।
लूगा=कपड़ा ।
लूला=हाथ से लँगड़ा ।
लेसना=दिया जलाना ।
लोंदा=गीली मिट्टी का अंश ।
लोथ=लाश ।
लोना=नमकीन मिट्टी जिसमें दीवार गल जाती है ।
लोहबंदा=लाठी, जिसके निचले किनारे पर लोहा लगा हो ।
सँकेत=सँकड़ा ।
सकारे=बड़े सबेरे ।
सकिलना=पूरा पड़ना ।
सनकारना=इशारा करना ।
सन्ती=बदले में ।
सपरना=पूरा पड़ना ।
सपेरा=साँप पकड़ने वाला ।
सँपेला, सँपोला=साँप का बच्चा ।
सवाचना=सावधान करना, गिनना, परीक्षा करना,
सहलाना=किसी अंग पर धीरे-धीरे हाथ फेरना ।
सहेजना=सुपुर्द करना, सावधान करना । प्रबंध करना ।
सौजा=शिकार ।
साटा=अदला-बदला ।
साढ़ी=खूब गरम दूध के ऊपर का मोटा जमा हुआ अंश ।

सांटना=एक साथ करना।
साँटा=पतली छड़ी।
सानना=मिलाना।
सानी=भूसा और पानी मिलाकर पशुओं को खाने के लिये दिया जाता है।
सिजिल=ठीक, पसंद-योग्य।
सिझाना=पकाना।
सिरकी=मेंह से बचने के लिये सरकंडे का बना हुआ छप्पर।
सिरावन=हेंगा, पटेला।
सिराना=काम पूरा होना।
सिर्री=सिडी, पागल।
सिहरना=ठंडक से काँपना।
सुटुकना=पतली छड़ी या चाबुक से मारना।
सूआ=तोता, शुक।
सेंत=मुफ़्त।
सैका=ईख का रस कड़ाह में डालने का पात्र।
सैँतना=रसोई घर लीपना।
सैल=हल के जुए की एक लकड़ी।
सौनना=मिलाना, सानना।
हँकारना=पुकारना, बुलाना।
हरिस=हल में लगी हुई बड़ी लकड़ी, जिसमें बैल जुतते हैं।
हरकना=रोकना।
हलकना=छलकना।
हलकोरना=हाथ से पानी हिलाना।
हलकोरा=लहर।
हलोरना=इकट्ठा करना, अच्छा-अच्छा चुनना।
हँसिया=खेत काटने का एक औज़ार।
हाड़=बैर, दुश्मनी
हाथा=पानी उलीचने का एक औज़ार।
हामी भरना=स्वीकार करना।
हुडुक=धोबियों का एक बाजा।
हुँडार=भेड़िया
हुमकना=जोर करके आगे को उठना।
हुमसाना=ज़ोर लगा कर किसी भारी चीज़ को उठाना।
हुरसा=चंदन घिसने का पत्थर।
हूँड़=बदला
हूलना=चोंकना, धँसाना।
हेंगा=पटेला।
हेठ=नीचा।
हेठी=अपमान।
हौली=शराब की दूकान।

जितने शब्द यहाँ लिखे गये हैं, उनमें अधिकांश ऐसे हैं, जिनके पर्यायवाची शब्द हिन्दी में नहीं हैं; पर जिनकी आवश्यकता हिन्दी के

लेखकों को पड़ती ही रहती है। कई शब्दों के जो अर्थ मैंने लिखे हैं, वे उन शब्दों के आंतरिक भाव को ठीक-ठीक प्रकट नहीं करते हैं। पर स्थानाभाव से मैं उनको विस्तारपूर्वक खोलकर नहीं लिख सका हूँ। जैसे 'अहकना' का अर्थ मैंने 'तरसना' लिख दिया है। पर 'अहकने' में जो तड़प छिपी है, वह 'तरसने' में नहीं है। 'गींजना' का अर्थ मैंने 'सानना' लिखा है। पर 'गींजने' और 'सानने' की क्रिया मे अंतर है। इसी प्रकार घँघोरना, पखारना, परकना, सवाचना, सहेजना, हलकोरना, सौनना आदि शब्दों के अर्थ विस्तार के साथ लिखे जायँ, तभी उनके भीतर छिपे हुये भाव स्पष्ट होंगे। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न स्थानों में मेरे लिखे अर्थ से भिन्न भी हो सकते हैं। ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में मेरा आग्रह नहीं कि वे मेरे लिखे अर्थ ही में स्वीकृत किये जायँ। मैंने जो अर्थ दिये हैं, वे स्थान-विशेष के हैं; ऐसा ही समझना चाहिये।

मुझे आशा है कि हिन्दी-भाषा की उन्नति चाहनेवाले विद्वद्गण मेरे प्रस्ताव को हाथ में लेंगे और यदि इनमें से दस-बीस शब्द भी हिन्दी में ले लिये गये तो मैं अपने परिश्रम को बहुमूल्य समझूँगा।

यह देखकर मुझे कितनी ही बार आंतरिक वेदना हुई है कि हमारे देशवासियो की ज्ञान-पिपासा शांत सी पड़ती जाती है। दूसरी जातियों से ज्ञान प्राप्त करने की प्रवृत्ति तो कहाँ? हम अपने पूर्वजो ही का अनुभूत ज्ञान छोड़ते जा रहे हैं। पता नहीं, इस पतन की सीमा कहाँ है?

अमेरिका के लोग रेड इंडियनों में प्रवेश करके उनकी एक-एक बात के जानने में लगे हैं। योरप के लोग अफ्रिका के मनुष्य-भक्षकों तक के बीच में पहुँचकर उनके रीति-रस्म की खोज में लगे हैं। मनुष्य ही के नहीं, युरोप-अमेरिका के विद्वान् पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक के रहन-सहन और स्वभाव की खोज करने में दिन-रात लगे रहते हैं। और हम? हम अपने ही देश-वासियों से अपरिचित हैं। गीत ही को लीजिये; अंग्रेज़ी में

ग्राम-गीत-साहित्य पर सैकड़ों पुस्तकें हैं। विभिन्न जातियों के रस्म-रिवाजों की जानकारी के लिये अंग्रेज़ विद्वानों ने अपना एक-एक जीवन लगा दिया है, और अपने देश-वासियों के कल्याण के लिये अपनी मातृ-भाषा का भाण्डार भरा है। यूरोप मे ग्राम-गीतों के संग्रह के लिये कितनी ही सोसाइटियाँ हैं। वहाँ ग्राम-गीतों का जमा करना एक पेशा हो गया है, और गीत जमा करनेवालों की एक जाति बन गई है। रूस ने अभी थोड़े ही दिन हुये, अपने देश के ग्राम-गीतों का एक-एक शब्द लिख लिया है। पर हम ? हम त्याग और वैराग्य का पाठ रट रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि हम अपने मिथ्या त्याग और नक़ली वैराग्य को लेकर पराधीन हैं और वे संसार मे पूर्णतः लिप्त होकर भी स्वाधीन हैं। हमारी दशा कैसी शोचनीय है !

आटा पीसनेवाली चक्की हमारे जाँत के गीतों को भी पीसती जा रही है। मदरसे किसानों, अहीरो, धोबियों और चमारों के गीतों को चुपचाप चाटते जा रहे हैं; कन्या-पाठशालायें नीरस, लक्ष्यहीन, प्रभाव-रहित, निर्जीव और हृदय को स्पर्श न करनेवाली तुकबन्दियों से कन्याओं को उनके मधुर, उपदेशप्रद और लय-विशिष्ट गीतों से दूर घसीटे जा रही हैं। और हम चुपचाप बैठे टुकुर-टुकुर ताक रहे हैं। स्व० लाला लाजपत-राय ने श्रीनगर (काश्मीर) में गीतों की चर्चा छिड़ने पर एक गहरी आह के साथ यह वाक्य कहा था—We are losing every thing, यह अक्षरशः सत्य है। हमारी दशा उस ग़ाफिल मुसाफिर की सी है जो अंधा भी है और सो भी रहा है।

मुझे इस बात से भी बड़ा दुःख है कि हमारी शिक्षिता बहनें अपने घरों में प्रचलित, सरस, उपदेशजनक और स्वाभाविकता से सजीव गीतों को भूलती जा रही हैं, या उन्हें मूर्खों की चीज़ समझकर उनकी उपेक्षा कर रही हैं। गीतों का स्थान ग़ज़लें ले रही हैं, जो वे सिर-पैर की होने के सिवाय उच्च आदर्श से गिरी हुई भी होती हैं। इस गड़बड़ के अपराधी

पुरुष हैं। पुरुषों ने अव तक स्त्रियों को वताया ही नहीं था कि उनके गीत उच्च-कोटि की कविता से पूर्ण और हिन्दू-जाति में जीवन को जाग्रत रखनेवाले हैं। स्त्रियाँ भोले-भाले स्वभाव की होती ही हैं। वे 'घर की खाँड़ किरकिरी लागै, वाहर का गुड़ मीठा' वाली कहावत का शिकार हो गईं।

ग्राम-गीतों का संग्रह करके मैंने हिन्दी-साहित्य की कैसी सेवा की है? यह समालोचकों के कहने की वात है। पर मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि अपने इस कार्य-द्वारा अवश्य ही मैंने स्त्री-जाति की एक सुन्दर सेवा कर दी है। स्त्री-समाज मे प्रचलित गीत न केवल पुरुषों को चकित और विमोहित करने वाले हैं, वल्कि स्त्रियों की प्रखर वुद्धि और कवितामय हृदय के द्योतक भी हैं। ग्राम-गीतों को पढ़कर स्त्रियों को मूर्खा कहने का साहस अव कौन कर सकता है? विना पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने गीतों में वह रस भरा है, जिसे पानकर कितने ही विद्वान् पुरुष कवि वन सकते हैं। जिसे श्रवण कर कितने ही छायावादी-मायावादी कवि हाथ से क़लम रख दे सकते हैं। अतएव स्त्रियों को अपनी इस नैसर्गिक सम्पत्ति पर गर्व करना चाहिये।

मेरे प्रयत्न का समाचार पाकर कितनी ही वहनों ने पत्र-द्वारा हर्ष प्रकट किया है; कितनी ही देवियों ने धन्यवाद और कितनी ही माताओं ने आशीर्वाद भेजा है। मेरे उत्साह ने इन सव से शक्ति प्राप्त की है। और मैंने जाना कि धन्यवाद और आशीर्वाद किस प्रकार फल-प्रद होते हैं।

ग्राम-गीतों ने जनता में एक अनिर्वचनीय सुख की सृष्टि की है। मैंने अपने मिलने-जुलने वालों से वार-वार सुना है कि किसी मासिक पत्र का नया अङ्क हाथ में आते ही उसके पाठक सव से पहले उसमें ग्राम-गीत खोजते हैं। कितने ही सहृदय मित्रों से मैंने यह भी सुना है कि उनकी कामिनियों ने अपने कोकिल-कंठ-विनिन्दक स्वर से गीत सुनाकर उनके मानस-जगत् पर आनन्द-सुधा की वृष्टि की है। कितनी ही

सुन्दरियों ने गीत गाकर अपने रूठे हुए पतियों को मनाया है। कितनी ही देवियों ने बेटी की विदा के गीत गा-गाकर, सजल नेत्रों से, अपनी कन्याओं के सिर पर हाथ फेर-फेरकर, करुणरस से अपने आस-पास के वातावरण को भिगो दिया है। कितनी ही ललनाओं ने गीत सुना-सुना कर अपने रसिक पतियों पर जादू डाला है। कितनी ही प्रमदाओं ने अपने परदेशी पतियों को पत्र में गीत लिखकर भेजा है और उन्हें घर आने को उत्सुक किया है। शिक्षिता बहनों ने गीतों की महिमा जानकर स्त्री-जाति की बुद्धि पर गर्व से सिर ऊँचा किया है। मेरे पास सब के प्रमाण हैं। ग्राम-गीतों ने अंतःपुरों, चौपालों, बाग़-बग़ीचों, खेतों और खलियानों में कहीं शृङ्गाररस का, कहीं करुणरस का, कहीं हास्यरस का और कहीं वीररस का स्रोत खोल दिया है। सहृदय नर-नारी उसमें डुबकी ले रहे हैं, रसपान कर रहे हैं, मुग्ध हो रहे हैं और थोड़ी देर के लिए संसार के माया-जाल से मुक्त होकर स्वर्गीय सुख का रसास्वादन कर रहे हैं। मैं भी अपने प्रयत्न की सफलता पर मन ही मन मुग्ध हो रहा हूँ।

गीतों में जो कवित्व है, उसे ही मैं अपनी लेखनी-द्वारा प्रकट करने में समर्थ हुआ हूँ। पर ये गीत जब स्त्री-कंठ से निकलते हैं, तब इनका सौन्दर्य, इनका माधुर्य और इनका उन्माद कुछ और ही हो जाता है। इससे गीतों का आधे से अधिक रस तो स्त्रियों के कंठ ही में रह गया है। खेद है, मैं उसे क़लम की नोक द्वारा अपने पाठकों तक नहीं पहुँचा सका। यूरोप-अमेरिका में यह काम फोनोग्राफ के रिकार्डों से लिया जाता है। विधाता ने स्त्रियों के कंठ में जो मिठास रख दी है, जो लचक भर दी है, उसे मैं लोहे की लेखनी में कहाँ से ला सकता हूँ?

जब गृह-देवियाँ एकत्र होकर पूरे उन्माद के साथ गीत गाती हैं, तब उन्हें सुनकर चराचर के प्राण तरङ्गित हो उठते हैं। आकाश चकित-सा जान पड़ता है, प्रकृति कान लगाकर सुनती हुई-सी दिखाई पड़ती

है। मैं एक अच्छे अनुभवी की हैसियत से अपने उन मित्रों से, जो कौवाली और टप्पे सुनने को बाहर मारे-मारे फिरते हैं, सानुरोध कहता हूँ कि लौटो, अपने अन्तःपुरों को लौटो। कस्तूरी-मृग की तरह सुगन्ध-स्रोत की तलाश में कहाँ फिर रहे हो? स्वर का सच्चा सुख तुम्हारे अन्तः पुर में है। वहाँ की हृत्तन्त्री का तार जरा अपने मधुर वचनों से छू दो, फिर देखो, कैसा सुखमय जीवन जाग उठता है।

अब मुझे अपनी प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में निवेदन करना है—

पहले मैंने सोचा था कि ज़िले-ज़िले के गीत अलग-अलग दूँ। पर इसमें पहली अड़चन तो यह पड़ी कि युक्तप्रांत के पश्चिमी ज़िलों के गीत मेरे पास बहुत ही कम निकले। क्योंकि मैंने उधर के ज़िलों का दौरा नहीं किया था। पत्रों-द्वारा जो गीत मुझे मिले हैं, उनमें किसी-किसी ज़िले का तो एक भी संग्रहणीय गीत नहीं है। इससे मैंने इस विचार को स्थगित कर दिया। मैंने गीतों का चुनाव ज़िलेवार गीतों के बंधन से मुक्त होकर किया है। जिस गीत में मैंने कुछ कवित्व देखा या जिसमें किसी सामाजिक प्रथा या कला का उल्लेख पाया, उसे ही मैंने चुन लिया है। इस चुनाव में युक्तप्रांत के पूर्वी ज़िलों के और बिहार प्रांत के गीत अधिक आ गये हैं।

मेरे पास जो गीत जिस रूप में आया है, मैंने उसे वैसा ही रहने दिया है। अपनी तरफ़ से मैंने उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया। हाँ, कई स्थानों से आये हुये एक ही गीत में मुझे जो पाठान्तर मिले हैं, उनमें से मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार, जिसे ठीक समझा, उसे रखकर बाक़ी छोड़ दिया है। इससे किसी पाठक को किसी गीत में कोई कड़ी उनकी जानकारी से कम या अधिक मिले, तो वे उसे मेरा घटाया या बढ़ाया हुआ न समझें, बल्कि उसे पाठान्तर ही समझें।

गीत लिखनेवालों की अशुद्धियाँ कहीं-कहीं मैंने ज़रूर शुद्ध कर ली हैं। जैसे—बहुत से लिखनेवालों ने देहाती शब्दों को शुद्ध कर के लिख

भेजा है। देहात में 'परदेसिया' बोला जाता है, उन्होंने 'परदेशिया', लिखा है। देहात के 'दसरथ' को उन्होंने संस्कृत का 'दशरथ' करके लिखा है। मैंने ऐसे स्थानों पर अपनी स्वतंत्रता का उपयोग किया है और अपनी जानकारी में जो शब्द देहात में जिस रूप में प्रचलित है, मैंने इस पुस्तक में उसे उसी रूप में स्थान दिया है।

युक्तप्रांत के पूर्वी ज़िलों और बिहार की बोलचाल के बहुत से शब्द ऐसे हैं, जो ठीक-ठीक लिखे नहीं जा सकते। देवनागरी लिपि में उनकी ध्वनियों के लिये चिन्ह निश्चित नहीं हैं। जैसे—

आधे तलवा में हंस चूनैं आधे में हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सोहावन एकरे कमल बिनु॥

इसमें 'सोहावन' शब्द के पहले अक्षर 'सो' की ध्वनि उच्चारण में हलकी पड़ती है। 'सोना' शब्द में 'सो' का जैसा ज़ोरदार उच्चारण होता है, वैसा 'सोहावन' में नहीं होता। पर इसके लिये कोई चिन्ह अभी तक निश्चित नहीं हुआ है। एक उदाहरण और लीजिये—

उड़त उड़त तू जायो रे सुगना बैठेउ डरिया ओनाय।
डरिया ओनाय बैठा परवना फुलायउ चितया नजरिया घुमाय॥

इसमे कई शब्द ऐसे आ गये हैं जिनका उच्चारण उनकी लिखावट से भिन्न है। जैसे—'डरिया ओनाय बैठा' का 'बैठा' वास्तव में 'बैठअ्' जैसा और 'चितया' 'चितयअ्' से मिलता-जुलता होता है। पर लिपि की अपूर्णता से विवश होकर मैंने उसे वर्तमान नागरी वर्णों में जैसा हो सकता था, वैसा लिख दिया है। इसी में 'बैठेउ' शब्द है। इसमें 'ठे' का रूप तो पूरा है, पर गीत के शब्द में उसका उच्चारण हलका होता है। यह हलकापन प्रकट करने के लिये नागरी लिपि में कोई चिन्ह नहीं है। गीतों ही के लिखने में नहीं, बहुत से अँग्रेज़ी और फ़ारसी के शब्दों को भी उनके उच्चारण के अनुसार ठीक-ठीक लिखने में नागरी लिपि की यह अपूर्णता बड़ी बाधा पहुँचाती है। जैसे—

Tell me not in mournful numbers,
Life is but an empty dream.

इसमें पहला शब्द 'टेल' है। किन्तु इसका पहला अक्षर 'टे' अँग्रेज़ी में हलका निकलता है, जिसे प्रकट करने के लिये हिन्दी में कोई चिन्ह नहीं।

इसी प्रकार फ़ारसी के—

गुफ़्तम अज़ इश्क़े बुताँ
ऐ दिल चे हासिल करदई।
गुफ़्त मारा हासिले जुज़
नाला हाये ख़ाम नेस्त॥

इसके दूसरे चरण में 'चे' की और चौथे चरण में 'ला' की आवाज़ हलकी है, जिनके लिये हिन्दी में कोई चिन्ह नहीं है।

उर्दू का एक शेर है—

दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं।
ख़ुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं॥

इसमें हसरत के आगे वाले 'से' का रूप देखने में तो पूरा है, पर बोलने में वह अधूरा है। यही दशा 'अहले' के 'ले' और 'हम तो' के 'तो' की है। देवनागरी लिपि की यह कमी जल्द पूरी होनी चाहिये।

गीतों में जो शब्द जैसा गाया जाता है, वैसा ही वह पढ़ा भी जाय, इसके लिये यथासम्भव प्रयत्न मैं ने किया है। जैसे—

ना मोरी सासु बुलावइ न ननद बुलावइ।
मोरे राजा! राम भजन की है बेर मैं जिअरा लइके बइठब॥

इसमें मैं ने 'बुलावै', 'लैके' और 'बैठब' न लिखकर उनके उच्चारण के अनुसार 'बुलावइ' 'लइके' और 'बइठब' लिखा है। पर अनेक स्थानों पर मैं इस नियम का पालन नहीं कर सका हूँ। क्योंकि मैंने एक ही शब्द के उच्चारण में थोड़ी ही दूर पर बहुत सूक्ष्म अन्तर भी सुना है। इस-

लिये जहाँ से जैसा गीत लिखकर आया है, मैंने उसे उसी रूप में दे दिया है।

गीतों के अर्थ लिखने में मैंने मूल के भाव को अधिक स्पष्ट करने का बहुत ध्यान रक्खा है। इससे कहीं-कहीं अर्थ में दो-एक वाक्य बढ़ा देने पड़े हैं।

गीतों में पाठान्तर बहुत मिलते हैं। पहले फुटनोट में पाठान्तर देने का विचार मैं ने किया था; पर सब पाठान्तरों का उल्लेख करने से पुस्तक बहुत बढ़ जाती, इसलिये नमूने के तौर पर निरवाही के गीतों में कुछ गीतों के पाठान्तर दे दिये गये हैं। उन्हें देखकर पाठकगण पाठान्तर देने की कठिनाई का अनुमान कर सकते हैं।

हिन्दी में इस रूप में मेरा यह पहला ही प्रयत्न है। इसलिये मुझे स्वयं अपना मार्ग-प्रदर्शक बनना पड़ा है। गीत-संग्रह का काम प्रारंभ करने के पहले मैंने केवल स्व० मन्नन द्विवेदी की 'सरवरिया' नामकी पुस्तिका देखी थी। पर इस पुस्तिका से मुझे उल्लेख-योग्य कोई सहायता नहीं मिली। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् और मेरे सहृदय मित्र लाला सीताराम, बी० ए०, से मैंने सुना था कि न्यस्फ़ील्ड साहब ने गीतों का एक संग्रह किया था। पर उसका अब पता नहीं है। कुछ अन्य अंग्रेज़ों ने भी यह काम किया है। पर उनकी कोई छपी पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। इंडियन ऐंटीक्वैरी की पुरानी जिल्दों में ग्राम-गीतों (Folk-songs) और गीत-कथाओं (Folk-lores) पर बहुत से लेख निकले हैं। पर मैंने उनमें से एक गीत भी अपनी पुस्तक में नहीं लिया। अतएव यह पुस्तक मेरे स्वतंत्र परिश्रम का फल है। कोई मार्ग-प्रदर्शक न होने से इसके सम्पादन में मुझ से त्रुटियाँ अवश्य हुई होंगी। मैं उन सब का ज़िम्मेदार हूँ।

हाँ, भिन्न-भिन्न देशों के ग्राम-गीत-सम्बंधी ज्ञान बढ़ाने में मैंने अंग्रेजी पुस्तकों से अवश्य सहायता ली है। ग्राम-गीत और गीत-कथाओं के सम्बंध मे अंग्रेजी में बहुत सी पुस्तकें हैं। उन्हें देखकर—अंग्रेज़ी भाषा का वैभव देखकर—अंग्रेज़ विद्वानों का परिश्रम, उनकी सुरुचि और

भाषा-सेवा देखकर—हृदय आनंद से गद्‌गद् हो जाता है। भूमिका के अंत में मैंने ग्राम-गीत-सम्बंधी अंग्रेज़ी पुस्तकों की एक लम्बी सूची दी है। इनमें से पन्द्रह-बीस पुस्तकें मैंने गत वर्ष बम्बई से एक मित्र-द्वारा काश्मीर में मँगाकर पढ़ी थीं; कुछ पुस्तकें इलाहाबाद की पबलिक लाइब्रेरी में बैठकर पढ़ीं और कुछ पुस्तकें मुझे मिली ही नहीं, यद्यपि उनके लिये मैंने हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े अंग्रेज़ी बुकसेलरों को लिखकर पूछा था।

मेरी प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित होने में आवश्यकता से कुछ अधिक देरी लग गई। पहला कारण तो मेरी अस्वस्थता है। दूसरा धन की कमी। १०-१२ हजार गीत जो संग्रहीत थे, उन्हें मैंने पढ़कर कुछ अच्छे-अच्छे गीत छाँट तो लिये। पर उन्हें लिखता कौन? सस्ते क्लर्कों से काम चलने का नहीं था। क्योंकि देहाती शब्दों को ठीक-ठीक पढने और समझने के सिवा क्लर्क में हिन्दी-भाषा का भी काफ़ी ज्ञान होना अनिवार्य था। ऐसे क्लर्क ५०) मासिक से कम में नहीं मिल सकते। कम से कम तीन-चार क्लर्क रक्खे जाते, तब कहीं तीन-चार महीने में सब चुने हुये गीत नक़ल किये जा सकते थे। मैं इनके वेतन का प्रबन्ध नहीं कर सका। मेरी प्रार्थना पर इस काम के लिये कलकत्ते से श्रीयुक्त बाबू ब्रजमोहन जी बिड़ला ने कुछ रुपये भेजे थे। पर मैंने उन्हें गीत जमा करने वालों के बाक़ी वेतन में ख़र्च कर डाला। इससे विवश होकर मैंने स्वयं चार-पाँच महीने के लगातार परिश्रम से सब गीत लिख डाले। उनका अर्थ लिखना तो मेरे हिस्से का काम था ही। यदि मैं आर्थिक प्रबन्ध कर सका होता, तो यह पुस्तक १९२८ के दिसम्बर में अवश्य निकल गई होती।

मुझे हार्दिक हर्ष है कि इस नये रास्ते पर चलनेवाला मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसने एक मंज़िल ख़तम कर ली है। मेरा काम गीतों की उपयोगिता प्रकट करके, उनके संग्रह के लिये जनता में सुरुचि और प्रयत्न जाग्रत करने का था। अपनी समझ मे मैंने उसे पूरा कर लिया। अब

रास्ता खुल गया है। उसकी सब मंज़िलें चलकर पूरी करने वाले लोग आगे आयेंगे। मैंने जो कुछ किया, वह हिन्दी-संसार के सम्मुख है। वह चाहे भला हुआ हो, या बुरा, सब हिन्दी-संसार को समर्पित है। गीत उसी के रत्न हैं, जो उसी के चारोंओर बिखरे पड़े हैं। उनका कोई क़द्रदान नहीं था। मैंने उनमें से थोड़े रत्नों को उठाकर आगे रक्खा है और बताया है कि ये रत्न हैं, इनकी रक्षा होनी चाहिये। मैं इतना ही कर सकता भी था।

ये रत्न मुझे बहुत ही प्यारे हैं। क्योंकि इनको मैंने अपना बहुमूल्य स्वास्थ्य, जिसका मूल्य रुपयों से नहीं आँका जा सकता, व्यय करके प्राप्त किया है। यह वह पौधा है, जिसे मैंने अपने स्वास्थ्य से सींचा है। ईश्वर करे, यह बढ़े, फूले, फले। इसकी छाया में, संसार के घोर दुःखों से दग्ध जन कुछ देर विश्राम लेकर शीतल, स्वस्थ और सुखी हों।

इस कार्य में मुझे बहुत से मित्रों और बहनों ने सहायता पहुँचाई है। सचमुच यदि उनकी सहायता मुझे न मिली होती, तो मैं गीतों का अगाध, और अपार सागर एक छोटी सी नौका पर चढ़कर नहीं तर सकता था। सब के नामों की सूची मैंने अलग दी है। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं, जिन्होंने गीत भेजे हैं। पर कुछ ने पत्र-द्वारा अपनी सम्मतियाँ भेजकर मेरे हृदय को बल प्रदान किया है। जब कितने ही शिक्षित कहे जाने वाले लोग मेरी हँसी उड़ाते थे, मेरे उद्योग को पागलपन बतलाते थे, कितने ही लोग कहते थे कि मैं धन के लोभ से इस कार्य मे प्रवृत्त हुआ हूँ, तब ये ही पत्र मुझे मार्ग से विचलित नहीं होने देते थे और मेरे धैर्य को क़ायम रखते थे। अतएव इन पत्रों का महत्व मैं कम नहीं समझता हूँ। ऐसे कुछ पत्रों की प्रतिलिपियाँ भी मैं भूमिका के अंत में दे रहा हूँ। मैं इन सब का हृदय से कृतज्ञ हूँ और अपने पाठकों से निवेदन करता हूँ कि यदि वे मेरे काम से संतुष्ट हों, तो वे भी मेरे सहायकों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें।

अंत में मैं अपनी त्रुटियों के लिये, जो मनुष्य होने के नाते सर्वथा संभव हैं, क्षमा माँगकर, विदा लेता हूँ। यदि ईश्वर की कृपा हुई तो अगले वर्ष के प्रारम्भ में इस पुस्तक का दूसरा भाग लेकर मैं फिर उपस्थित होऊँगा।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी—८६ } रामनरेश त्रिपाठी

सहायकों की नामावली

गीत-संग्रह के कार्य में जिन-जिन देवियों और सज्जनों ने मुझे किसी प्रकार की सहायता दी है, उनकी नामावली नीचे दी जाती है—

देवियाँ

१—श्रीमती रानी रघुवंशकुमारी, राजमाता दिअरा, सुलतानपुर

२—श्रीमती अखंडसौभाग्य रानी चन्द्रावती देवी, बिजवा राज, खीरी-लखीमपुर

३—श्रीमती शारदाकुमारी देवी, मुज़फ़्फ़रपुर

४—श्रीमती कुसुमकुमारी देवी, भदेई, फतहगढ़

५—श्रीमती कमलावती देवी, आरा

६—श्रीमती धर्मपत्नी भैया जगदीशदत्त राम पांडेय, सिंगहाचंदा स्टेट, गोंडा

७—श्रीमती राजकुँवरबाई, इन्दौर

८—श्रीमती ब्रजकिशोरी देवी, टाँड़ा, फ़ैज़ाबाद

९—श्रीमती ललिताप्यारी देवी, पटना

१०—श्रीमती कमलेश्वरी कुँजरू, ग्वालियर

११—श्रीमती शोभावती श्रीवास्तव, वस्ती

१२—श्रीमती अन्नपूर्णाकुमारी वर्मा, मुज़फ़्फ़रपुर

१३—श्रीमती सरस्वती देवी, मदायन, इटावा

१४—श्रीमती धर्मपत्नी सत्यदेवनारायणसिंह, भवदेपुर, सीतामढ़ी

१५—श्रीमती ललिताप्यारी देवी, सवौर, भागलपुर

१६—श्रीमती श्यामाप्यारी देवी, ,, भागलपुर

१७—श्रीमती विद्यावती देवी, फोरबसगंज

१८—श्रीमती सुशीलादेवी, कलकत्ता

१९—श्रीमती सरलादेवी, वरखेरवा, हरदोई

२०—श्रीमती इंद्राणीदेवी धर्मपत्नी पं० गजाधर प्रसाद, वरखेरवा, हरदोई

२१—श्रीमती सुन्दरदेवी, हाथगाँव, फतहपुर

२२—श्रीमती किशोरीदेवी, सुलतानपुर, पटना

२३—श्रीमती सुखदादेवी, नौबतपुर, पटना

२४—श्रीमती शारदादेवी, सिहिन, गया

२५—स्व० शकुनकुमारी चौहान, चोहट बीरम, सीतापुर

सज्जन

१—श्री० कुमार कौशलेन्द्रप्रताप साहि, रायबहादुर,
दिअरा राज, सुलतानपुर

२—श्री० बाबू मुकुन्दलाल गुप्त, रायबहादुर, अज़मतगढ़, आज़मगढ़

३—श्री० बाबू शिवप्रसाद गुप्त, काशी

४—श्री० बाबू घनश्यामदासजी बिड़ला, M. L. A. कलकत्ता

५—श्री० ठाकुर गोपालशरणसिंह, नईगढ़ी, रीवाँ

६—श्री० राव शिवबहादुरसिंह, चोरहट, रीवाँ

७—श्री० लाला लाजपतराय, लाहोर

८—श्री० डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शान्तिनिकेतन

९—श्री० डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी, एम० ए०,
डी० लिट्० (लंडन) कलकत्ता

१०—श्री० प्रो० नलिनीमोहन सान्याल, एम० ए०, कलकत्ता

११—श्री० बाबू क्षितिमोहनसेन, एम० ए०, शांतिनिकेतन

१२—श्री० पंडित तारादत्त गैरोला, एम० ए०, रायबहादुर, पौड़ी, गढ़वाल

१३—श्री० पंडित लोचनप्रसाद पांडेय, बालपुर, बिलासपुर
१४—श्री० बाबू जयशङ्कर प्रसाद, काशी
१५—श्री० कुँवर शिवनाथसिंह, मलसीसर, जयपुर
१६—श्री० बाबू श्रीगोपाल नेवटिया, बम्बई
१७—श्री० बाबू आनन्दकिशोर नेवटिया, फतहपुर, जयपुर
१८—श्री० पंडित रामाज्ञा द्विवेदी, एम० ए०, बस्ती
१९—श्री० प्रो० रमाकांत त्रिपाठी, एम० ए०, जोधपुर
२०—श्री० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, बी० ए०, जयपुर
२१—श्री० कुँवर जगदीशसिंह गहलोत, जोधपुर
२२—श्री० जवेरचंद कालिदास मेघाणी, बी० ए०, भावनगर (काठियावाड़)
२३—श्री० बाबू ब्रजमोहन बिड़ला, कलकत्ता
२४—श्री० पंडित शिवदत्त कन्डवाल, नैनीताल
२५—श्री० बाबू दामोदर सहाय सिंह, डि० इ० स्कूल्स, छपरा
२६—श्री० पंडित भगवतीप्रसाद व्यास, अमिलिया, फ़ैज़ाबाद
२७—श्री० पंडित अमृतलाल अवस्थी, जोधपुर
२८—श्री० बाबू रामनारायण जी दूगड़, उदयपुर (मेवाड़)
२९—श्री० बाबू रामपदार्थ गुप्त, कोइरीपुर, जौनपुर
३०—श्री० मु० सतनरायनलाल साहब, डि० इ० स्कूल्स, जौनपुर
३१—श्री० मास्टर काशीराम, मनसियारी, अल्मोड़ा
३२—श्री० कुँवर कन्हैयाजू, चरखारी
३३—श्री० पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा, रायबहादुर, अजमेर
३४—श्री० पंडित रामकरणजी आसोपा, जोधपुर
३५—श्री० पंडित विश्वेश्वरनाथ रेउ, जोधपुर
३६—श्री० बाबू जीवनराम वैश्य, महुदीपुर, बदाऊँ
३७—श्री० पं० भवानीसहाय शर्मा, जेवनार, बलरामपुर, गोंडा

३८—श्री० एस० एन० श्रीवास्तव, निमेज़, शाहाबाद
३९—श्री० पंडित रामरघुवीर अग्निहोत्री, सबलपुर, फरुखाबाद
४०—श्री० पंडित रामचन्द्र शास्त्री, कुंभकोनम्, मद्रास
४१—श्री० बाबू ब्रजबिहारीलाल गौड़, काशी
४२—श्री० मास्टर रामलौट, ट्रेनिंगस्कूल, जगदीशपुर, सुलतानपुर
४३—श्री० ठाकुर रामसरोवर शर्मा, लहरियासराय
४४—श्री० बाबू गंगाशरणसिंह, खरगपुर, पटना
४५—श्री० पंडित पारसनाथ त्रिपाठी, शाहाबाद
४६—श्री० पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी, बी० ए०, कलकत्ता
४७—श्री० पंडित शिवन्न शास्त्री, गुडीवाड़ा, मद्रास
४८—श्री० पंडित उमाशंकर पाठक, डूँगरपुर
४९—श्री० पंडित हृषीकेश शर्मा, ट्रिप्लिकेन, मद्रास
५०—श्री० माननीय पंडित श्यामबिहारी मिश्र, एम ए०, लखनऊ
५१—श्री० बाबू अविनाशचंद्र गौड़, लहरपुर, सीतापुर
५२—श्री० पंडित कन्हैयालाल मिश्र, जाँजगीर, बिलासपुर
५३—श्री० ठाकुर मंगलप्रसादसिंह, पोखरपुर, सारन
५४—श्री० राजा श्रीकृष्णदत्त दुबे, M. L. C., जौनपुर
५५—श्री० रायसाहब मदनमोहन सेठ, एम० ए०, एल-एल० बी०, झाँसी
५६—श्री० पंडित लीलाधर शर्मा, हापड़, मेरठ
५७—श्री० बाबू बनवारीलाल सिंगई, बम्बई
५८—श्री० पंडित सूर्यनारायण चतुर्वेदी, जयपुर
५९—श्री० कुँवर सुरेशसिंह, कालाकांकर, प्रतापगढ़
६०—श्री० पंडित सूर्यकरण पारीक, एम० ए०, बीकानेर
६१—श्री० पंडित परशुराम चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-एल बी०, बलिया
६२—श्री० बाबू गुरुभक्तसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०, गाजीपुर
६३—श्री० पंडित शिवनाथ शास्त्री, श्रीनगर, काश्मीर

६४—श्री० संतरामजी, लाहौर

६५—श्री० पंडित जगन्नाथराव डुल्लू, एम० ए०, एल-एल० बी०, इन्दौर

नोट—इस नामावली में यदि किसी सज्जन का नाम, जिन से मुझे सहायता मिली हो, न आया हो, तो वे कृपया क्षमा करें और मुझे सूचित करें। मैं अगले संस्करण में उनके शुभ नाम को सादर स्थान दूँगा।

रा० न० त्रि०

पत्र

(१)

स्वर्गीय लाला लाजपतराय

My dear Tripathiji,

I am really happy to hear that you are making a collection of Folk-lore songs of the provinces of Northern India. I congratulate you on your enterprise because the real history of the country and its moral and social ideals are so much locked up in these Folk-lores that their loss will be a real disaster. We are losing every thing valuable in our Folk-lore traditions, and any body who restores them to life again and makes them available to the educated people would do a lasting service to the country and also to the Hindu culture I hope, therefore, that patriotic Indians whether educated or uneducated will help you in this work. I wish you success from the bottom of my heart.

Yours sincerely
(Sd.) LAJPAT RAI

अर्थ—

प्रिय त्रिपाठी जी,

यह सुनकर मैं सचमुच सुखी हुआ कि आप उत्तर भारत के ग्राम-गीतों का एक संग्रह कर रहे हैं। मैं आपको इस काम को हाथ में लेने के लिये धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में इतना अधिक बंद है कि इन का नाश हमारे लिये बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। ग्राम-गीतों में जो प्राचीन गाथायें उपलब्ध हैं, हम उन सबको खोते जा रहे हैं। जो व्यक्ति इन गीतों को फिर शिक्षितों के सामने लाकर इनको सजीव करेगा, वह देश की ही नहीं, हिन्दू-संस्कृति की भी एक चिरस्थायी सेवा करेगा। अतएव मैं प्रत्येक देशभक्त से, चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित, आशा करता हूँ कि इस कार्य में वह आपकी सहायता करेगा। मैं अंतःकरण से आपकी सफलता चाहता हूँ।

लाजपतराय

(२)

डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर के सेक्रेटरी लिखते हैं—

Dear Mr. Tripathi,

Dr. Rabindranath Tagore is very glad to know that you have been taking great pains in collecting Rural Songs from different parts of India. He has deep sympathies for your work and would very much like to help you if only he could spare the time. The work that he has already undertaken demands all his time and thought. He deeply regrets his inability

to be of any assistance to you in the very necessary and valuable work you have taken upon yourself.

He sends his blessings and wishes you every success.

दूसरे पत्र में—

Dr. Tagore is very glad to learn that you have been able to finish your book which he hopes will find appreciative readers and help to spread the love of Folk-literature among our countrymen.

अर्थ—

प्रिय त्रिपाठी जी,

डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर यह जानकर अत्यंत प्रसन्न हैं कि आप भारत के विभिन्न प्रान्तों के ग्राम-गीतों के संग्रह में बहुत उद्योग कर रहे हैं। आप के साथ वे गहरी सहानुभूति रखते हैं। और यदि वे समय बचा सकते तो आप को सहायता पहुँचाने को बहुत उत्सुक थे। आज-कल जो काम उन्होने हाथ में ले रक्खा है, उसमें उनका कुल समय और विचार का लगना आवश्यक है। आप के अत्यंत आवश्यक और बहुमूल्य कार्य में कुछ भी सहायता न पहुँचा सकने के लिये उनको हार्दिक खेद है।

वे अपना आशीर्वाद भेजते हैं और आप की सब प्रकार में सफलता चाहते हैं।

दूसरे पत्र में—

डाक्टर टैगोर यह जानकर बहुत प्रसन्न हैं कि आप ने पुस्तक समाप्त कर ली। उनको आशा है कि उसको सुयोग्य पाठक मिलेंगे और वह हमारे देश के लोगों में ग्राम-साहित्य के लिये प्रेम उत्पन्न करने में सहायक होगी।

(२)

श्रीयुत बाबू भगवान्दास, एम० ए०—

नमस्कार,

कुछ दिन हुए आपका विज्ञापन "आज" में देखा था—ग्राम-गीतों के संग्रह के विषय में—बहुत प्रसन्न हुआ। तब से आपको लिखने की इच्छा थी। आज फिर आपका 'नोट' देखा कि प्रायः पाँच सहस्र मील का पर्यटन आपने किया और अधिक करने का विचार है और बहुत सा संग्रह भी हुआ, तो आज आलस्य छोड़ लिख ही रहा हूँ। कब तक पहली जिल्द निकलेगी? उसे देखने का बड़ा कुतूहल है। जो दो-चार ऐसे गीत मैंने सुने हैं, उनमे मुझे तो रस की मात्रा व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और भवभूति से भी तथा तुलसीदास, सूरदास से भी अधिक जान पड़ी। संस्कृतज्ञों को और परिष्कृत हिन्दी-काव्यज्ञों को यह बात मेरी प्रायः अच्छी न जान पड़ेगी और स्यात् अत्युक्ति होगी। पर इस विषय में आपका उत्साह देखकर मेरा भी ऐसा कहने का उत्साह हुआ। औरों से कहने की हिम्मत नहीं थी। भारी खेद मुझे यह है कि शक्ति बहुत थोड़ी, अन्य कार्यों का व्यग्रता बहुत। कोई भी काम अच्छी तरह नहीं बन पड़ा। इन गीतों का भी आकंठ रस न ले सका। अब आपके संग्रह-द्वारा नई पुश्त को तो मिल सकेगा। मुझे नहीं तो नहीं सही। क्योंकि यदि आपका संग्रह जल्दी निकला भी, तो अब इतनी शक्ति नहीं, और अभी भी अन्य कार्यों से इतना अवकाश नहीं जो उसका रसास्वाद अच्छी तरह कर सकूँ। पर कुछ तो अवश्य देखूँगा।

सच्ची बात तो यह है कि "परिष्कार" मिश्री और चीनी में अधिक हो, पर गहिरी मिठास और प्राण (vitamin) भी, जैसा अब पाश्चात्य वैज्ञानिक पहचानने लगे हैं, गुड़ ही में अधिक है, और उससे भी अधिक ताजी ऊख में।

"हरि जी जो मोरे तुम सत के बिअहुता
अँचरहि अगिया देवहु रे जी,"
"हम हीं तो तोर बनिजरवा
लुटाओ मोरी बरधी खरी।"
"फटही लुगरिया मोरा एकै तो पहिरनवा
ओहू में देवरवा की भगड्या, मोरे बीरन।"

मुझे तो संस्कृत में ऐसा रस नहीं आता। हाँ भागवत मे है—दूसरे प्रकार का।

शुभचिन्तक
भगवान्‌दास

(४)

श्रीयुक्त बाबू रामानन्द चटर्जी (सम्पादक-माडर्न रिव्यू)—

Dear Mr. Tripathi,

Your efforts to collect and publish Folk-Songs are highly praisworthy. Your collection is sure to be useful and valuable. The work deserves every support and encouragement.

Yours sincerely
Ramanand Chatterji

अर्थ—

प्रिय त्रिपाठी जी,

ग्राम-गीतों के संग्रह और प्रकाशन के लिये आपका उद्योग बहुत ही प्रशंसनीय है। यह निश्चय है कि आपका संग्रह बहुत उपयोगी और बहुमूल्य होगा। इस कार्य को सब प्रकार का समर्थन, सहयोग और उत्साह मिलना चाहिये।

रामानंद चटर्जी

(५)

माननीय परिडत मदनमोहन मालवीय—

प्रिय त्रिपाठीजी,

ग्राम-गीत-संग्रह का जो भाग आपने मुझे दिखाया है, उसको देखकर मुझको अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ है। इसमें अनेक गीतों में बहुत रस, बहुत मिठास और मन पर चोट करनेवाले भाव बड़ी सरल भाषा में भरे हुये हैं। जो लोग कविता के हृदय को पहचाननेवाले हैं, और जिनको हमारे गाँवों में बसनेवाले सीधे और भोले भाले भाई और बहनों के जीवन का ज्ञान है, वे इस संग्रह में उनके सुख-दुख, मान-अपमान, उनके मन की कामना और धर्म के भाव के उद्गार में बहुत रस पावेंगे। इन गीतों के संग्रह का आपका परिश्रम अति प्रशंसनीय है। इस परिश्रम से आपने हिन्दी-जगत को सदा के लिये उपकृत किया है। मुझे निश्चय है कि कविता के प्रेमी आपके इस संग्रह का प्रेम से स्वागत करेंगे।

मदनमोहन मालवीय

(६)

माननीय पंडित श्यामबिहारी मिश्र, एम० ए०,

(मेम्बर कौंसिल आफ़ स्टेट, रिटायर्ड डिप्टी कमिश्नर)

My friend Pandit Ram Naresh Tripathi has taken a tedious and difficult task which has involved plenty of patience, worry and expense to him. The Hindi knowing public, and indeed all patriotic people, should be thankful to Mr Tripathi for the self-imposed labour of love undertaken by him in

resuming from oblivion songs and folk-lore which are rapidly disappearing with the advance of modern civilization.

Mr. Tripathi deserves the fullest support of all right-thinking persons, and I am confident that he will have it when his work comes to the notice of such people This is really the work of institution, and it is extremely nice of Mr. Tripathi to have undertaken it. I wish him the fullest success in his noble and very patriotic task.

S B MISRA

अर्थ—

मेरे मित्र पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने एक बहुत ही कठिन काम हाथ में ले रक्खा है, जिसमें उनका बहुत धैर्य, चिन्ता और धन लगा है। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता ही को नहीं, बल्कि समस्त देशभक्त सज्जनों को त्रिपाठीजी का कृतज्ञ होना चाहिये, जो कष्ट उठाकर खोये हुए गीतों को फिर से प्राप्त करने में लगे हैं, जो वर्तमान सभ्यता की वृद्धि के साथ ग़ायब होते जा रहे थे। समस्त सच्चे विचारवान् लोगों को चाहिये कि वे त्रिपाठीजी को पूर्ण सहायता दें। मुझे पूरा विश्वास है कि जब उनका काम उनकी दृष्टि के सामने आयेगा, तब उनको अवश्य सहायता मिलेगी। वास्तव में यह काम संस्था का है, और इस काम को हाथ में लेना त्रिपाठीजी के लिये बड़े गौरव की बात है। मैं उनके बहुत ही उच्च और देशभक्ति-पूर्ण काम में पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्यामबिहारी मिश्र

ग्राम-गीत (Folk-Lore-Songs) सम्बंधी अंग्रेज़ी पुस्तकों की सूची

1. Linguistic Survey of India.
2. Indian Antiquary.
3. Encyclopaedia Britannica.
4. D. G Russetti—Ballade of Fair Ladies.
5. Dobson—The Prodigals.
6. Long—Ballades in Blue China.
7. Proff. Child—English and Scottish popular Ballades.
8. Proff. Gummer—The Beginning of Poetry.
9. M R. Cox—Introduction to Folk-lore.
10. Baring Gould—Strange Survivals—1892.
11. Busk—The Folk-songs of Italy—1887.
12. Clodd—Myths and Dreams—1885.
13. Thiselton Dyer—The Folk-lore of Plants—1889.
14. Elton—Origins of English History—1882.
15. Fiske—Myths and myth-makers—1873.

16. Folk-lore Society's Publications.
17. Journals of the American Folk-lore Society.
18. Martirengo—Cesarexs—Essays in the study of Folk-songs—1886.
19. Powell and Vigfusson—Corpus Poeticum Boreale—1883.
20 Taylor—Early History of 'Mankind'—1865. Primitive Culture, 3rd edition—1891.
21. Dr. Taylor—Primitive Culture, 2 Vol—1903.
22. Mr. E Sidney Hartland—The Legend of Perseus, 3 Vols 1894-96
23. Mr. Frazer—The Golden Bough—1900.
24. Mr. G. Laurence Gomme—Ethnology in Folk-lore—1892.
25. A. Featherman—Social History of the Races of Mankind—1881-19, 7 Vols.
26. G. L. Gomme—Folk-lore Relics of Early Village Life—1885.
The Village Community—1890.
27. Brand—Popular Antiquities of England, Scotland and Ireland.
28. J. C. Halliwell—Popular Rhymes and Nursery Tales—1849.
29. Chambers—Popular Rhymes of Scotland.
30. W. M. Henderson—Notes on the Folk-lore of

the Northern counties of England and the Borders—1879.

31. Charlotte Burne—Shropshire Folk-lore—1883-85.

32. W. Gregor—Notes on the Folk-lore of the North-East of Scotland—1881.

33. Hunt—Popular Romances of the West of England—1881.

34. A. W. Moore—The Folk-lore of the Isle of Man—1891.

35 Lucy Cornett—The (1) women of Turkey and their Folk-lore, (2) Greek Folk poesy.

36. Sir H. M. Elliot—Memoirs on the History, Folk-lore and the Distribution of the Races of the North W. Pr. of India—1869.

37. Natesa Shastri—Folk-lore in Southern India, · 3 Prts.

38 N. B. Dennys—The Folk-lore of China.

39. G. McTheal—Kafir Folk-lore—1886.

40. Toru Dutta—Ancient Ballades and Legends of Hindustan—1882.

41. C. E. Gover—Folk-songs of Southern India—1872.

42. Dinesh Chandra Sen—History of Bengali Language and Literature—1911.

बँगला

१—श्रीक्षितिमोहन सेन—हारामणि

२—मयमनसिंह गीतिका

गुजराती

१—जवेरचंद मेघाणी—रढियाली रात, ३ भाग

२—स्व० रणजीतराय महेता—लोकगीत

३—नर्मदाशंकर लालशंकर—नागर स्त्रीओ माँ गवाता गीत ।

पंजाबी

१—संतराम—पंजाबी गीत

मारवाड़ी

१—मदनलाल वैश्य—मारवाडी गीतमाला

२—निहालचंद वर्मा—मारवाडी गीत

३—खेताराम माली—मारवाडी गीत-संग्रह

४—ताराचंद ओझा—मारवाडी स्त्री-गीत-संग्रह

नोट—गढवाली, नेपाली और मराठी भाषा के गीतों की भी कुछ छपी पुस्तकें मेरे पास हैं। पर उनमें प्रकाशित गीत मुझे नवीन जान पड़े। इसलिये उनके नाम इस सूची में नहीं दिये गये।

रा० न० त्रि०

ग्राम-गीतों का परिचय

ग्राम-गीतों का परिचय

ग्राम-गीतों की उत्पत्ति

ग्राम-गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलङ्कार नहीं, केवल रस है; छन्द नहीं, केवल लय है; लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।

प्रकृति जब तरङ्ग में आती है, तब वह गान करती है। उसके गीतों मे हृदय का इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता।

प्रकृति के गान में मनुष्य-समाज इस प्रकार प्रतिविम्बित होता है, जैसे कविता में कवि, क्षमा में मनोबल और तपस्या में त्याग।

प्रकृति संगीतमय है। ग्रह-गण एक नियत कक्षा में फिरकर उस संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं। झरनो का अविराम नाद, पत्तों की मर्मर-ध्वनि, चंचल जल का कलकल, मेघ का गरजना, पानी का छमाछम वरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, मनुष्यों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ और विचित्र उच्चारण, खग, पशु, कीट-पतङ्ग आदि की बोलियाँ, ये सब उस संगीत के सहायक मंद्र और तार स्वर और लय हैं। वज्रपात थाप है और नदियों का प्रवाह मूर्च्छना। ग्राम-गीत प्रकृति के उसी महा संगीत के अंश हैं।

पूर्व काल मे किसी व्याध के तीर से क्रौंच पक्षी को निहत देखकर

मर्माहत महर्षि वाल्मीकि के हृदय में स्वभावतः करुणा उत्पन्न हुई थी। उसी करुणा से कविता का जन्म हुआ था।

जो हृदय वाल्मीकि के पास था, वह गाँवों में सदा रहता है, अब भी है। उसी मे से प्रकृति का गान निकला करता है।

कविता प्रकृति का गान है। वह मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलती है। इसीसे कृत्रिम सभ्यता के प्रकाश में उसका विकास नहीं होता।

ग्राम-गीतो का जन्म-स्थान गाँव है। जिनकी वाणी में मस्तिष्क नहीं, हृदय है; जिनके विनय के परदे में छल नहीं, पश्चात्ताप है; जिनकी मैत्री के फूल में स्वार्थ का कीट नहीं, प्रेम का परिमल है, जिनके मानस-जगत् में आनन्द है, सुख है, शान्ति है; प्रेम है, करुणा है, संतोष है; त्याग है, क्षमा है, विश्वास है; उन्हीं ग्रामीण मनुष्यों के—स्त्री-पुरुषों के बीच में हृदय-नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम-गीत हैं।

गीतों में कविता

कविता क्या है ? इस विषय मे संस्कृत और अंग्रेजी के कवियो की व्याख्यायें मनन करने योग्य हैं—

विश्वनाथ कहते हैं—

वाक्यं रसात्मकं काव्यम्

(साहित्य-दर्पण)

'रसात्मक वाक्य काव्य है'

मम्मट कहते हैं—

नियतिकृतनियमरहितामाह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

(काव्यप्रकाश)

'सृष्टि के नियमों से रहित, आनंद-स्वरूप स्वतंत्र (देश काल-सम्बन्धी

नियमों से रहित) और नवरसों से सुन्दर, काव्य-सृष्टि की निर्माण करनेवाली, सत्कवियों की वाणी की जय हो।'

मङ्खक कहते हैं—

अर्थोऽस्ति चेन्न पदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेतद्
व्यर्थं विना रसमहो गहनं कवित्वम्॥

'अर्थ है तो पद-शुद्धि नहीं; पद-शुद्धि है तो रीति नहीं; रीति भी है तो शब्दों का विन्यास अजीब तरह का है; यदि वह भी है तो नई कल्पनायें नहीं हैं। रस के बिना यह कठिन कविता का मार्ग व्यर्थ ही है।'

संस्कृत के एक बहुदर्शी कवि का कथन है—

अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चि-
त्सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः।
नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः॥

'जिसमें अर्थ कुछ छिपा हो कुछ प्रकट, जैसे महाराष्ट्र स्त्रियों के स्तन; वही वाणी प्रशंसनीय है। आंध्र स्त्रियों के स्तन के समान बिल्कुल प्रकट रहना भी अच्छा नहीं और न गुजरात की स्त्रियों के स्तन के समान बिल्कुल छिपा ही रहना उचित है।'

संस्कृत के एक अन्य सूक्ष्मदर्शी कवि का अनुभव है—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तमाभाति लावण्यमिवाङ्गनायाः॥

'जैसे स्त्रियों में शरीर के गठन के सिवा लावण्य नाम की एक वस्तु होती है, वैसे ही महाकवियों की वाणी में भी एक अद्भुत विशेषता होती है, जिसका केवल भान होता है।

संस्कृत के एक कवि का कथन है—

परश्लोकान्स्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः ।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः
सुहृद्या वैशद्यं दधति किल केषांचन गिरः ॥

'दूसरों के कतिपय श्लोकों को कण्ठस्थ करके चार पद के श्लोक बनाने वाले कवियों की कमी नहीं है। ऐसे कवि बहुत से हैं। पर निरन्तर निकलनेवाली समुद्र की लहरियों के समान हृदय को वश करनेवाली और स्वच्छ, वाणी विरले ही की होती है।'

अंग्रेज़ कवि वर्ड्स्वर्थ कहते हैं—

'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings.'

'कविता आप से आप उमड़ने वाली जोरदार भावों की उमंग है।'

सर जान लवक कहते हैं—

'Poetry lifts the veil from the beauty of the world which would otherwise be hidden, and throws over the most familiar objects the glow and halo of imagination.'

'कविता जगत् के सौन्दर्य पर से परदा उठाती है। नहीं तो वह छिपा ही रहता। वह सुपरिचित वस्तुओं के चारोंओर भी कल्पना का प्रकाश और कान्ति डालती है।'

सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ कवि शेक्सपिअर, जिसके विषय मे एक समालोचक मुग्ध होकर कहता है—

O Nature ! O Shakespeare ! which of ye drew from the other ?

'हे प्रकृति ! हे शेक्सपियर ! तुम दोनों में से कौन किसका प्रति-बिम्ब है ?'

कवि के विषय में कहते हैं—

The Poet's eye, in a fine frenzy rolling,
Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven;
And, as imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet's pen
Turns them to shapes and gives to airy nothing
A local habitation, and a name—

'कवि की आँख सुन्दर मस्ती में लोटती हुई पृथ्वी से आकाश और आकाश से पृथ्वी तक अपनी दृष्टि डालती है।

'और जैसे कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूपवान बना देती है, वैसे ही कवि की लेखनी उनको आकार में परिणत कर देती है, और एक हवाई नाचीज को स्थान और नाम प्रदान कर देती है।'

विश्वनाथ की व्याख्या सब से अच्छी है। जिस वाक्य में रस हो, वही काव्य है—इस व्याख्या के अनुसार गीत ही काव्य हैं; क्योंकि गीतों में सर्वत्र रस प्रवाहित है।

मम्मट के मत से सत्कवियों की वाणी आनंद से परिपूर्ण और रसों से सुन्दर होनी चाहिये। गीतों में आनन्द और रस दोनों हैं।

मङ्खक भी रसहीन पद्य-रचना को कविता नहीं मानते।

उस बहुदर्शी कवि के कथनानुसार महाराष्ट्र स्त्रियों के स्तन से गीतों ही की तुलना ठीक उतर सकती है। गीतों ही मे अर्थ स्पष्ट और भाव कुछ प्रकट और कुछ गुप्त रहते हैं।

संस्कृत के सूक्ष्मदर्शी कवि के कथनानुसार गीतों ही में उनके शब्द-संगठन के सिवा एक अद्भुत लावण्य छिपा हुआ है।

समुद्र की लहरियों के समान निरन्तर निकलने वाले ग्राम-गीत ही हैं, जो अत्यन्त विशद और हृदय को वश करनेवाले हैं।

वर्ड्स्वर्थ की व्याख्या ग्राम-गीतों ही के लिये सत्य हो सकती है। क्योंकि ग्राम-गीत ही आप से आप उमड़ने वाले भावों की उमंग हैं। गीतों की रचना न किसी राजा-महाराजा की प्रेरणा से होती है और न किसी सम्पादक की प्रार्थना से। गीत कविता के स्वाभाविक श्रोत हैं।

गीत कविता की एक महान् जल-राशि के समान हैं। कवि-गण उस जल-राशि में से भिन्न-भिन्न दिशाओं को महाकाव्य रूपी नहरें ले गये हैं। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उन्होने अपनी-अपनी नहरों को सजा रक्खा है। पर उनमे जल उस महान् जल-राशि ही का है। पर कुछ ऐसे भी हैं, जिन्होंने सुन्दर-सुन्दर अलङ्कारों से नहर को पाट दिया है। उनकी नहरें देखने मे सुन्दर तो हो गई हैं ज़रूर, पर उसमे जल नहीं है, प्रवाह नहीं है, रस नहीं है। लोग उन्हें देखकर अलंकृत करनेवाले की प्रशंसा करते हैं, पर उनके निर्मल और शीतल जल का आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। उनमें स्नान करके वे अपने मन और तन की तपन नहीं बुझा सकते।

संस्कृत और हिन्दी-कवियों ने कविता देवी को इतने अलङ्कार पहना दिये हैं कि उनके बोझ से उसका रस रूपी प्राण निकल गया है। पर वे मुर्दे को अलङ्कार पहनाते ही जा रहे हैं।

शेक्सपियर के कथनानुसार कवि की दृष्टि बहुत व्यापक होनी चाहिये। पर जो स्वयं व्यापक है, पृथ्वी और स्वर्ग जिसके अंतर्गत हैं, वही प्रकृति यदि कविता करे, तो उसकी कविता कृत्रिम कवियों की कविता से तो कहीं अधिक सत्य और सरस होगी न? गीतों की रचयिता स्वयं प्रकृति है। अतएव उसमें कविता का स्वाभाविक सौन्दर्य विकसित हुआ है।

गीतो में रस की मात्रा संस्कृत और हिन्दी के रससिद्ध कवियो की कविता से कहीं अधिक है। कालिदास और तुलसीदास को समझने के

लिये पहले कालिदास और तुलसीदास बनना पड़ता है। अँग्रेज़ी में एक कहावत है—

'A Milton is required to understand a Milton'

'मिल्टन को मिल्टन ही समझ सकता है।'

सिद्ध कवियों की कविता का आनन्द वही उठा सकता है, जिसने छन्द, व्याकरण और अलङ्कार-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन किया है। ऐसी कविता को हम स्वाभाविक कविता नहीं कह सकते। यह तो माली-निर्मित उस क्यारी की तरह है, जिसके पौधे कैंची से कतर कर ठीक किये रहते हैं और जो ख़ास तरह की रुचि से विवश होकर सजाई जाती है। पर ग्राम-गीत प्रकृति का वह उद्यान है, जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी-तटों पर, स्वतन्त्र रूप से विकसित होता है। वह अकृत्रिम है। सिद्ध कवियों की कविता किसी बँगले का वह फूल है, जिसका सर्वस्व माली है। पर ग्राम-गीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते हैं, मेघ जिसे नहलाते हैं, सूर्य जिसकी आँखें खोलता है, मन्द-मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुँह चूमता है और ओस जिस पर गुलाब-जल छिड़कती है। उसकी समता बँगले का क़ैदी फूल नहीं कर सकता।

जब तक मनुष्य का हृदय स्वतंत्र था, तब तक उसकी भाषा भी शीशे की तरह पारदर्शक और हीरे की तरह निर्मल थी, और उसमें से मनुष्य का हृदय साफ़ दिखलाई पड़ता था। जब से हृदय पर मस्तिष्क का अधिकार प्रारम्भ हुआ, बुद्धि का विकास हुआ, सभ्यता का कृत्रिम प्रकाश फैला; तब से भाषा भी धुँधली, भ्रमोत्पादक और आशङ्कामूलक हो गई। अतएव जिसे सभ्यता का विकास कहा जाता है, उसे हृदय की पराधीनता या कृत्रिमता का जागरण कहना चाहिये। वर्तमान सभ्य समाज में हृदय नाम का कोई पदार्थ नहीं है। वहाँ केवल मस्तिष्क है। वहाँ की भाषा में मस्तिष्क ही दिखलाई पड़ता है।

वर्तमान सभ्य-समाज हृदय ही से दूर नहीं हो गया है, प्रकृति

से भी दूर चला गया है। सभ्य समाज में परस्पर विश्वास नहीं; आत्मैक्य का भाव नहीं; शान्ति नहीं; स्वभाव नहीं। वहाँ मस्तिष्क का षड्यन्त्र है, भय है, आशङ्का है, असूया है, राग-द्वेष है और वेश, वाणी, विवेक और व्यवहार सब में बनावट है। सभ्य-समाज का हास्य प्रकृति का हाहाकार है। सभ्य-समाज का उन्माद प्रकृति का नैराश्य है।

सभ्यता की वृद्धि के साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से। बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो। प्रायः हृदय के विषय मे मस्तिष्क सदा झूठ बोलता है। कितनी ही बार मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है, पर उसका मस्तिष्क शान्ति और विनय की बातें करता हुआ पाया जाता है। हृदय में कामना रहती है, पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है। हृदय में लोभ रहता है, पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है। बहुत ही कम उच्च कोटि के सत्पुरुष ऐसे होंगे, जिनके हृदय और मस्तिष्क में मेल हो। अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते हैं, वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।

इस सभ्यता का प्रभाव कविता पर भी पड़ा है। नागरिक कवि की कविता में आदर्शवाद अधिक होता है, स्वाभाविकता कम। पर ग्रामीण-कविता में स्वाभाविकता ही का अंश अधिक रहता है। क्योंकि सभ्य-समाज को मोहनेवाली सभ्यता से ग्रामीण कवि अपरिचित होते हैं। इससे अपनी बातों में वे कृत्रिमता ला नहीं सकते। उनके हृदय में जो भाव रहता है, मस्तिष्क वही कह देता है। उसमें वह अपनी ओर से नमक-मिर्च नहीं लगाता। समय का प्रभाव है कि ऐसे सत्यवादी लोग असभ्य कहे जाते हैं, और हृदय में कुछ और मुँह से कुछ कहनेवाले लोग सभ्य!

सभ्य-समाज में आकर कविता भी सभ्य हो गई है। पिङ्गल, व्याकरण,

रस, अलङ्कार और मुहावरे नामक सभ्यता के शुभ लक्षणों से उसका नख-शिख दुरुस्त है। पर गाँव में वह अपने असली रूप ही में निवास करती है। वहाँ वह अधिक स्वतन्त्र और अधिक स्वाभाविक है। पर उसमें कृत्रिमता, जो सभ्यता की जान है, न होने के कारण सभ्य-समाज में उसकी गति नहीं। इसी से शिक्षित कहे जानेवाले लोग प्रायः उससे अनभिज्ञ रहते हैं। पर कविता की दृष्टि से उसका महत्व सभ्य-समाज की कविता से कम नहीं, बल्कि अधिक ही है।

प्रकृति ने प्रत्येक समाज में कवि उत्पन्न किये हैं। अहीरों के लिए बिरहे तुलसी ने नहीं बनाये थे; न कहारों के लिए कहरवा सूरदास ने। धोबी, चमार, नाई, बारी, पासी और कुम्हारों में कबीर, बिहारी, केशव, भूषण, देव और पद्माकर नहीं पैदा हुए थे। पर इन जातियों में भी कविता किसी न किसी रूप में वर्तमान है। और कहीं-कहीं तो वह इन कवियों की कविता के टक्कर की है।

ग्राम-गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्राम-गीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्राम-गीत में रस है, महाकाव्य में अलङ्कार। रस स्वाभाविक है, अलङ्कार मनुष्य-निर्मित। रस मनुष्यमात्र के लिये है, अलङ्कार केवल उन थोड़े से लोगों के लिए, जो उससे परिचित हैं। इसी से ग्राम-गीतों की महिमा महाकवियों की वाणी से कहीं अधिक है।

ग्राम-गीतों में मनुष्य के हृदय का शुद्ध प्रतिबिम्ब है। अलङ्कारों ने कवियों को और साहित्य-मर्मज्ञों को मिथ्या कल्पना के ऐसे मैदान में ले जाकर खड़ा कर दिया है, जहाँ मस्तिष्क के दाँव-पेच के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ तक कि वहाँ पहुँचकर आलङ्कारिक कवि स्वयं अपने को झूठा कहने लगे थे। संस्कृत के एक कवि की वाणी में यह सत्य निकल ही पड़ा है—

वृथागाथाश्लोकैरलमलमलीकां मम रुजं ।
कदाचिद्धूर्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति ॥

'स्तुति के श्लोक बनाकर भेजने से क्या लाभ ? मेरे दुःखों की चर्चा से भी कोई लाभ नहीं। संभव है, वह धूर्त इन बातों को कवि-कल्पना समझे।'

वाल्मीकि और तुलसी ने हृदय का साथ नहीं छोड़ा था। वे मस्तिष्क की सुनते थे सही, पर हृदय ही की कहते थे। इससे उनकी रचना में रस है, और वही रस सुनने वालों का मन मोह लेता है।

हमारा विश्वास है कि हिन्दी के कवि-गण ग्राम-कविता का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करेंगे और साहित्य में बढ़ती हुई 'दिमाग़ी ऐयाशी' को रोककर कविता की आदि जननी की सुख और शान्तिमयी गोद में जाने को वैसे ही लालायित होंगे, जैसे एक अंग्रेज कवि अपनी माता के लिये हुआ था—

Backward, turn backward, O time, in your flight;
Make me a child again, just for to-night !
Mother, come back from the echoless shore;
Take me again to your heart as of yore—
Kiss from my forehead the furrows of care,
Smooth the few silver threads out of my hair,
Over my slumbers your loving watch keep,
Rock me to sleep, mother,—rock me to sleep.

'ऐ समय ! अपनी उड़ान में तुम एक बार पीछे लौटो, पीछे लौटो। मुझे केवल एक रात के लिये फिर बालक बना दो। हे माँ ! उस तट से, जहाँ प्रतिध्वनि नहीं उठती, पीछे लौट आओ। पहले की तरह मुझे फिर हृदय से लगा लो। मेरे माथे से फ़िक्र की रेखाओं को चूम लो। मेरे सिर के दो-चार बाल, जो सफ़ेद हो गये हैं, उन पर हाथ फेर दो। मैं जब

सोऊँ, तब अपनी प्यारी नज़र से मुझे देखती रहो। हे माँ! झुलाकर मुझे सुला दो—झुलाकर मुझे सुला दो।'

गीतों की प्राचीनता

वाल्मीकि, व्यास, भास और कालिदास, तथा कबीर, तुलसी और सूर की कविताओं का तो समय भी निश्चित है, पर गीतों की रचना का कोई समय निश्चित नहीं है। गीत तो प्रकृति का निरन्तर गान है। जब से पृथ्वी पर मनुष्य हैं, तब से गीत भी हैं। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ चलता रहता है। कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये। कितने ही गीतों ने देश-काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली स्वरूप को कायम रक्खा। बहुत से गीतों की आयु हज़ारों वर्ष की होगी। वे थोड़े फेर-फार के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुये हैं।

वेदों के मंत्र-द्रष्टाओं का तो पता है, पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं। जैसे कोई नदी किसी घोर अंधकारमयी गुफ़ा में से बहकर आती हो, और किसी को उसके उद्‌गम का पता न हो, ठीक यही दशा गीतों की है। इनके आदि-स्थान का कोई इतिहास संसार में नहीं है। महाकवियों की कविता से भी अधिक सरस गीतों की रचना जिन्होंने की है, उन्हें गीतों के साथ अपना नाम देने का ज़रा भर भी मोह नहीं हुआ है। यह महान् त्याग गीत रचनेवालों के विशाल हृदय के उपयुक्त ही है।

राम के जन्म पर आदिकवि वाल्मीकि लिखते हैं—

जगुः कलं च गंधर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत्॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः॥

गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः ।
विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः ॥
प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधवन्दिनाम् ।

'गन्धर्वों ने मधुर शब्द से गान किया; अप्सरायें नाचने लगीं; देवताओं ने दुन्दुभी बजाई; आकाश से फूलों की वर्षा हुई। अयोध्या में जन-समूह से भरा हुआ बड़ा उत्सव हुआ। गलियाँ नट, नाचने-गाने तथा बजानेवाले सूत, मागध, वन्दिजनों से गुञ्जायमान और सब रत्नों से पूर्ण बड़ी शोभित हुईं। राजा ने सब को पारितोषिक दिये।'

अब जानना यह है कि गन्धर्व क्या गाते थे? अप्सरायें केवल नाचती थीं? या नृत्य के साथ कुछ गाती भी थीं? नट, मागध, सूत और वंदी-जन क्या गाते थे?

भागवतकार लिखते हैं—

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे
जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकै—
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥

भागवत—दशम स्कंध

'एक दिन बालक श्रीकृष्ण के जन्मदिन के उपलक्ष्य में नन्द के यहाँ महोत्सव हुआ। उसमें व्रज की सब गोपियाँ आईं। उनके साथ मिलकर यशोदा ने बालक का अभिषेक कराया। गाना-बजाना हुआ। ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन मंत्र पढ़े।'

उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ।
मालां बिभ्रद् वैजयंतीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥

भागवत—दशम स्कंध

'वैजयन्ती माला पहने हुये श्रीकृष्ण उन असंख्य वनिताओं के समूह

में कभी आप गाते और कभी उनका गाना सुनते हुये इधर-उधर घूमकर वन को सुशोभित करने लगे।'

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः।
गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः॥

भागवत—दशम स्कंध

'कोई-कोई स्नेह के मारे आनन्द से परिपूर्ण होकर मंद और मधुर स्वर से श्रीकृष्ण के मन को मोहनेवाले गीत गाने लगते थे।'

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।
उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः॥

भागवत—दशम स्कंध

'कभी-कभी श्रीकृष्ण मदांध भौरों के साथ आप भी गाने लगते और संकर्षण के साथ फूल-मालाएँ पहने हुये अपनी लीलाओं के गाने वाले सखाओं के मधुर गान सुनते।'

प्रश्न यह है कि बालक कृष्ण के अभिषेक के समय यशोदा के घर में क्या-क्या गीत गाये गये ? वनिताओं के समूह में श्रीकृष्ण कभी स्वयं क्या गाते थे ? वनिताएँ क्या गाती थीं ? और गोप-गण क्या गीत गाते थे ?

विज्जका कहती हैं—

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली ।
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्वन्धुराः ॥
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल—
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥

'धान कूटनेवालियों का गान बड़ा ही मनोहर मालूम होता है। वे बड़ी अदा के साथ मूसल हाथ में लिये हुई हैं। मूसल के उठाने तथा गिराने के कारण चूड़ियाँ बज रही हैं। उन चूड़ियों के शब्द से वह गान और भी मनोहर हो गया है। जब वे मूसल गिराती हैं, उस समय उनके

मुँह से हुङ्कार निकलता है, और हृदय कम्पित हो जाता है। वही गान का गमक बन रहा है।

धान कूटनेवाली क्या गाती थीं ?

किसी ने कहा है—

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः॥

'सुभाषित से, गीत से, युवती स्त्रियों के हाव-भाव से जिसका मन चंचल नहीं होता, वह योगी है, या पशु।

वह कौन सा गीत है ? जिससे हृदय भिद जाता है।

तुलसीदास कहते हैं:—

चली संग लइ सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी॥

अथवा—

नारि वृन्द सुर जेंवत जानी।
लगीं देन गारी मृदुबानी॥

सयानी सखियाँ क्या गीत गाती थीं ? और स्त्रियाँ क्या गाली देने लगी थीं ?

वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास, इनमें से किसी ने यह नहीं बताया कि वे गीत कौन से थे ? अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत रहे होंगे, जो आज भी हैं। समय के अनुसार उन्होंने भाषा का जामा बदल लिया है। जैसे, हिन्दू लोग पहले पीताम्बर ओढ़ते थे। मुसल्मानी राज में कुरते पहनने लगे और अब अंग्रेजी-राज में कोट पहनते हैं। पर कपड़ों के अंदर शरीर है हिन्दू ही का। इसी प्रकार गीतों का सिलसिला प्राचीनकाल से एक-सा चला आ रहा है। भाव पुराने हैं। भाषा नई है।

पूर्वकाल में गन्धर्वों की एक जाति ही अलग थी, जो गाने का पेशा करती थी। प्राचीन काव्यों में जहाँ कहीं उत्सव आदि का वर्णन आया

है, वहाँ गंधर्वों का ज़िक्र अवश्य आया है। विवाह आदि संस्कारों के अवसरों पर यज्ञ होते थे, जिनमें सामवेद का गान हुआ करता था। नाटकों का समय आया, तब विवाह आदि उत्सवों में नाटक कराये जाने लगे। जैसा कि बौद्ध-काव्य 'अवदान कल्पलता' में अशोक के पुत्र कुणाल के विवाहोत्सव में एक नाटक खेले जाने का वर्णन मिलता है। नाटकों में स्त्री-पुरुष दोनों भाग लेते थे। जान पड़ता है, नाटकों के बहुल प्रचार का बुरा परिणाम समाज के सदाचार पर पड़ने लगा। तब सद्गृहस्थों में उसकी ओर से अरुचि पैदा होने लगी और तब से प्रत्येक कुटुम्ब ने गान के सम्बन्ध में अपने को स्वतंत्र कर लिया। संस्कारों, व्रतों और त्यौहारों में स्त्रियाँ स्वयं गाने लगीं। इस प्रकार गंधर्वों और नाटक के पात्रों से उन्होंने अपने परिवार को अलग खींच लिया।

नाटक के पात्र नाटकों का प्रचार कम पड़ जाने से बेकार हो गये। कुछ तो स्वतंत्र रूप से गाने-बजाने का पेशा करने लगे। कुछ समाज में रल-मिलकर पेट के दूसरे धंधों में लग गये। पात्रियाँ पहले तो उत्सवों में गाने-बजाने का पेशा करती रहीं। पर जब उससे जीविका की पूर्ति न होती दिखी, तब उन्होंने वेश्या का पेशा इख्तियार कर लिया, जो उनके निकट ही था। आज भी वेश्याओं को देहात में लोग पातर, पातरी अथवा पतुरिया कहते हैं, जो नाटक की पात्री का अपभ्रंश है। नाटक के पात्रों को लोग कैसी घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे, इसका भी प्रमाण अभी तक मौजूद है। देहात में जब कोई व्यक्ति किसी को नीच बताना चाहता है, तब वह कहता है—'अरे वह बड़ा पातर आदमी है'; यह 'पातर' वही नाटक का पात्र है।

जो गीत आजकल देहात में गाये जाते हैं, उनमें कुछ गीत ऐसे हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति का समय निकाला जा सकता है। जैसे—

जौने देस हिँगिया न महकै न जिरिया सुवासित।
तौने देस चले हैं कवन रामा छुरिया बेसाहै कटरिया बेसाहै॥

यह गीत कम से कम अंग्रेज़ी राज से पहले का तो हुई है, जब कि लोग छुरी और कटारी बाँधते थे और प्रसिद्ध स्थानों में जाकर खरीद लाया करते थे।

हम यहाँ कुछ ऐसे पुराने गीत देते हैं, जो मुगलों के समय के हैं—

[१]

घोड़े चढ़ु दुलहा तूँ घोड़े चढ़ु यहि रन वन में।
दुलहा बाँधि लेहु ढाल तरुवारि त यहि रन वन में॥ १॥
पहिनो पियरी पीतामर यहि रन वन में।
दुलहा बाँधि लेहु लटपट पाग त यहि रन वन में॥ २॥
कैसे के बाँधौ पाग त यहि रन बन में।
दुलहिनि मरम न जान्यों तोहार त यहि रन बन में॥ ३॥
जतिया तो हमरी पंडित कै यहि रन वन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन वन में॥ ४॥
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन वन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन वन में॥ ५॥
यतनी वचनिया के सुनतइ यहि रन वन में।
दुलहा घोड़े पीठि लिहेनि बैठाय त यहि रन वन में॥ ६॥
यक वन गैलें दुसर वन यहि रन वन में।
दुलहा तिसरे में लागी पियास त यहि रन वन में॥ ७॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन वन में।
दुलहा बुँद यक पनिया पियाउ त यहि रन वन में॥ ८॥
ताल औ कुँइयाँ सुखानी त यहि रन वन में।
पनिया रकत के भाव विकाय त यहि रन वन में॥ ९॥
उँचवे चढ़ि के निहारेनि यहि रन वन में।
दुलहिनि झरना वहे जुड़ पानि त यहि रन वन में॥१०॥

दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन वन में।
दुलहिनि ठाढ़े हैं मुगुल पचास त यहि रन वन में ॥११॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन वन में।
दुलहा बूँद एक पनिया पियाउ त यहि रन वन में।
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया त यहि रन बन में ॥१२॥
यतना बचन सुनि पायेन त यहि रन वन में।
दुलहा खींचि लिहेनि तरवरिया त यहि रन बन में ॥१३॥
ठाढ़े एक ओर मुगुल पचास त यहि रन वन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन वन में ॥१४॥
रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन वन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन वन में ॥१५॥
पतवा के दोनवा लगायनि यहि रन वन में।
दुलहिनि पनिया पियहु डभकोरि त यहि रन बन में ॥१६॥
पनिया पियै दुलहिन बैठीं त यहि रन बन में।
दुलहा पटुकन करैं बयारि त यहि रन वन में ॥१७॥
दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि त यहि रन वन में।
दुलहा हम तोहरे हाथ बिकानि त यहि रन बन में ॥१८॥
यतनी बचनिया के साथ त यहि रन वन में।
दुलहिन मलवा दिहिन गर डारि त यहि रन वन में ॥१९॥

हे दुलहा! घोड़े पर चढ़ लो, घोड़े पर चढ़ लो। इस निर्जन और भयानक वन में ढाल-तलवार बाँध लो ॥१॥

पीला पीताम्बर पहन लो और जल्दी-जल्दी पगड़ी बाँध लो ॥२॥

पुरुष ने कहा—मैं कैसे पगड़ी बाँधू? मैं तो जानता ही नहीं कि तुम कौन हो? ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं तो ब्राह्मण-कन्या हूँ। मुग़लों के डर से इस जंगल में छिपी हूँ ॥४॥

मुग़लों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला । मैं मुग़लों के डर से इस जंगल में लुकी हूँ ॥५॥

इतना सुनते ही पुरुष ने स्त्री को घोड़े पर बैठा लिया ॥६॥

वे एक बन से दूसरे में गये । तीसरे बन में स्त्री को प्यास लगी ॥७॥

स्त्री ने कहा—हे जीवन के संगी ! बड़ी प्यास लगी है । एक बूँद पानी पिलाओ ॥८॥

पुरुष ने कहा—इस बन में सभी ताल और कुएँ सूख गये हैं । पानी तो लोहू के भाव का हो गया है ॥९॥

पुरुष ने ऊँचे चढ़कर देखा तो बन में ठंडे पानी का एक झरना बहता दिखाई दिया । उसने कहा—हे दुलहिन ! ठंडे पानी का एक झरना बह तो रहा है ॥१०॥

पर वहाँ पचास मुग़ल खड़े हैं ॥११॥

स्त्री ने कहा—हे दुलहा ! हे जीवन के संगी ! इस घोर बन में तुम मुझे एक बूँद पानी पिलाओ । हे दुल्हा ! नहीं तो हमारी तुम्हारी प्रीति अब छूट रही है ॥१२॥

इतना सुनते ही पुरुष ने हाथ में तल्वार खींच ली ॥१३॥

उस बन में एक ओर तो पचास मुग़ल खड़े हैं और एक ओर अकेला दुल्हा ॥१४॥

पचासों मुग़लों को मारकर दुलहा राजा युद्ध जीतकर अकेला खड़ा है ॥१५॥

पत्ते के दोने में दुल्हे ने दुलहिन को पानी दिया और कहा—दुलहिन ! खूब तृप्त होकर पानी पिओ ॥१६॥

दुलहिन बैठकर पानी पीती है और दुलहा दुपट्टे के छोर से हवा कर रहा है ॥१७॥

दुलहिन ने कहा—हे दुलहा ! तुमने मेरा धर्म रख लिया । मैं तुम्हारे हाथ बिक गई हूँ ॥१८॥

इतना कहकर दुलहिन ने दुल्हे के गले में अपनी माला डाल दी। अर्थात् उसको वरण कर लिया ॥१९॥

[२]

विरना झीनी झीनी पतिया अमिलि कइ,
विरना डोभइ बरियवा क पूत। बलैया लेउँ वीरन ॥१॥
विरना हाली हाली डोभउ बरिया पूत,
मोरा विरना जेवनवाँ क ठाढ़। " ॥ २ ॥
विरना हाली हाली जेंवउ विरन मोरा,
विरना तुरुक लड़इया क ठाढ़, "
विरना मुगल लड़इया क ठाढ़। " ॥ ३ ॥
विरना मुगल की ओरियाँ सब साठि जने,
मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़। " ॥ ४ ॥
विरना मुगल जुझैं सब साठि जने,
मोरा भइया समर जीति ठाढ़। " ॥ ५ ॥
विरना कोखिया बखानउँ मयरिया के,
जेकर पुतवा समर जीति ठाढ़। " ॥ ६ ॥
विरना भगिया बखानउँ बहिनियाँ कै,
जेकर भइया समर जीति ठाढ़। " ॥ ७ ॥
विरना मँगिया बखानउँ मैं भौजी कै,
जेकर समिया समर जीति ठाढ़। " ॥ ८ ॥

बहन कहती है—हे भाई! इमली की नन्हीं-नन्हीं पत्तियाँ बारी का लड़का डोभ रहा है ॥१॥

हे बारी के लड़के! जल्दी-जल्दी डोभो। मेरा भाई जीमने के लिये खड़ा है ॥२॥

हे भाई! जल्दी-जल्दी जीम लो। तुर्क (या मुग़ल) युद्ध के लिये खड़ा है ॥३॥

मुग़ल की ओर सब साठ आदमी हैं। और मेरा भाई अकेला ही खड़ा है ॥४॥

मुग़ल के सब साठो आदमी जूझ गये। मेरा भाई युद्ध जीतकर खड़ा है ॥५॥

मैं उस माता की कोख को सराहती हूँ, जिसका पुत्र युद्ध जीत कर खड़ा है ॥६॥

मैं उस बहन के भाग्य की बड़ाई करती हूँ, जिसका भाई युद्ध जीत कर खड़ा है ॥७॥

मैं अपनी भावज के सुहाग का बखान करती हूँ, जिसका स्वामी युद्ध जीतकर खड़ा है ॥८॥

[३]

छव महिना के बेटी रजलो, रजलो के मइआ मरि हो जाय।
बारह बरिस मैं दुधवा पिअवलों, रजलो मोगलवा से हो लोभाय ॥ १ ॥
गेहुवाँ के रोटिया बनवलीं, उपर मुरगिया कै रे झोर।
जेवहिं बइठले मोगला, रजलो बेनियाँ हो डोलाय ॥ २ ॥
सूप अइसन डाढ़ी मोगलवा, ये बरधा अइसन आँखि।
ओही मुहें लिहलन मोगल चुमवाँ, रजलो के छूटि उकिलाइ ॥ ३ ॥

रजलो बेटी छः महीने की थी, जब उसकी माँ मर गई। मैंने बारह बरस तक रजलो को दूध पिलाकर पाला-पोसा। अब वह मुग़ल के प्रेम में फँस गई ॥१॥

रजलो ने गेहूँ की रोटी बनाई। ऊपर से मुर्गी के अंडे का शोरवा रख दिया। मुग़ल जीमने बैठा। रजलो पंखी हाँकने लगी ॥२॥

मुगल की दाढ़ी सूप जैसी है और आँखें बैल जैसी। उसी दाढ़ीवाले मुँह से मुगल ने रजलो का मुँह चूमा तो रजलो को क़ै हो गई ॥३॥

[४]

हमरे बलमुआ के ग्रुठो भर धोतिया निरमोहिया।
जइसे चले मीर उमराव रे लोभिया ॥

यह गीत उस ज़माने का है, जब मुग़लों का राज था और मीरों और उमरावों का अकड़ कर चलना आदर्श समझा जाता था।

[५]

छोटी मोटी दुहनी दुधे कै विना रे अगिनि वाफ लेइ।
यहि दूध पिअइँ विरन मोरा भइया लड़ैं मोगलवा के साथ॥

अर्थ स्पष्ट है। यह छोटी कन्या का गीत है जो ताजा दुहा हुआ दूध देखकर अपना हृदयोद्गार प्रकट कर रही है।

ये तो ऐतिहासिक प्रमाण हैं। मुग़लों का वर्णन आने से यह तो स्पष्ट ही है कि ये गीत मुग़लों के ज़माने के हैं। इनके सिवा गीतों में वहुत सी ऐसी प्रथाओं का वर्णन मिलता है जो प्राचीन समय में प्रचलित थीं, किन्तु अव नहीं है। जैसे, कन्या का अपने लिये स्वयं वर पसंद करना और किसी कुमारी से विवाह के लिये वर का स्वयं प्रस्ताव करना। ये दोनों प्रथायें इस देश मे पहले थीं, अव नहीं हैं। दूसरी प्रथा इस समय यूरोप में है। पर पहली प्रथा शायद सभ्य-समाज में कहीं नहीं है। इत्यादि।

गीतों के रचयिता

गीतों के रचयिता क्या? गीत-द्रष्टा स्त्री-पुरुष दोनों हैं। किन्तु ये स्त्री-पुरुष ऐसे हैं, जो काग़ज और क़लम का उपयोग नहीं जानते हैं। प्रायः सभी गीत अदृश्य में उत्पन्न हुये हैं और ग्रामीण जनता के कंठ में निवास करते हैं। जो गीत स्त्रियाँ स्वयं गाती हैं, उनकी रचयिता वे स्वयं हैं। गीतों की भाषा उनके विषय और वर्णन-शैली ही इस वात के प्रमाण हैं। जो गीत पुरुष गाते हैं, वे पुरुषों के रचे हुये हैं। हम ने गीतों का गहरा अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला है कि स्त्रियों के गीतों में पुरुषों का मिलाया हुआ एक शब्द भी नहीं है। स्त्री-गीतों की सारी कीर्ति स्त्रियों के हिस्से की है। यह सम्भव हो सकता है कि एक-एक

गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे हों, पर मस्तिष्क थे स्त्रियों ही के, यह निश्चित है।

गीतों की व्यापकता

जन्म से लेकर मृत्यु तक हिन्दुओं का सामाजिक जीवन गीतमय है। हिन्दुओं के पूर्वज उच्च कोटि के सभ्य थे। प्रत्येक मङ्गल-कार्य में उन्होने संगीत को मुख्य स्थान दिया है। कविता का प्रेम इस जाति में इतना अधिक है कि त्योहारों और संस्कारों की तो बात ही क्या? कोई घर, कोई वन, कोई खेत, कोई मैदान, कोई पर्वत और कोई नदी-तट ऐसा न मिलेगा जो कभी न कभी गीतों से गूँज न उठा हो। शायद ही किसी हिन्दू का कण्ठ बचा हो, जिससे कभी न कभी कोई गीत न फूट निकला हो।

उत्सवों में मनोरञ्जन के लिए हिन्दू-जाति में सङ्गीत तो मुख्य है ही, प्रत्येक परिश्रम के काम के साथ भी गीत लगा हुआ है। राह चलते हुए स्त्री-पुरुष गीत गा-गाकर थकान मिटाते चलते हैं। पालकी लिये हुए कहार गीत गाकर रास्ता काटते हैं। चरवाहा सुनसान जङ्गल को अपने गीतों से जाग्रत करता है। रात में कोल्हू चलाकर ईख का रस निकालने वाला किसान अपने रसीले गीतों से रस बरसाता है।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अपने कामों में गीतों की सहायता अधिक ली है। संस्कार के अवसरों पर प्रायः कुल गीत स्त्रियाँ ही गाती हैं। जाँत पीसने, धान रोपने, खेत निराने, खेत गोड़ने और काटने के समय गाँव की स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उनमें गृहस्थी के सुख-दुःख की बड़ी ही मार्मिक बातें भरी होती हैं।

गीतों के रूप में कविता का सबसे अधिक प्रचार स्त्रियों में पाया जाता है। लड़का होने पर, मुण्डन के समय, यज्ञोपवीत के अवसर, पर विवाहोत्सव में स्त्रियों के कण्ठ से गीतों का झरना प्रवाहित हो जाता है। ये गीत प्रायः स्त्री-कवियों ही के रचे हुए होते हैं। न इनमें पिङ्गल का

हाथ है, न व्याकरण का। स्वाभाविक बातें हैं, अकृत्रिम भाषा में कह दी गई हैं। भारतवर्ष का कोई प्रान्त, कोई समाज ऐसा नहीं, जिसमें गीतों का प्रवेश इस प्रकार न हो, जैसे माला के फूलों में तागे का। मनुष्य-समाज सर्वत्र गीत-मय है।

काश्मीर में झेलम के किनारे, खेतों में, वनों में, रास्तों पर, बड़े आनन्द से लोग गाते फिरते हैं—

फुलया लज्यमो गुलनय कोसमन त विय सुम्बलनय।
यम्बूरज़ल वुम्बरनि लयि वनितोम अदफ़र यिये॥

(काश्मीरी)

'कोसम और सम्बुल आदि फूलों में शिगूफा निकल आया है। यम्बूरज़ल नामका फूल भौंरे के प्रेम में गल गया है। बताओ, कब आओगे ?'

क्याह यावुन यीयना फीरिथ।
मानंदि तीर ज़न गुम नीरिथ॥
दम तिहुँदय क्याह यिय दरकार।
यस नह सूति आसि पनुन यार॥
व्यय अफसूस अथ गछि मूरिथ।
मानंदि तीर ज़न गुम नीरिथ

(काश्मीरी)

'हाय ! क्या वह यौवन फिर आयेगा ! जो तीर की तरह निकल गया।

'जिसका प्रेमी पास नहीं, उसका जीवन किस काम का ! वह हाथ मलकर पछतायगा कि हाय ! यौवन तीर की तरह निकल गया।'

यार चुलमय चूरि चूरि
मूरि थावुनम लोल नार।

(काश्मीरी)

'मुझ टहनी में प्रेम की आग लगाकर मेरा प्रेमी चुपके से चला गया।'

यहाँ यह जान लेना चाहिये कि काश्मीर के वहुत से हरे गीले वृक्ष भी आग छू जाने से जलने लगते हैं। अतएव टहनी में आग लगना वहाँ के लिये कोई साधारण वात नहीं है।

यारस रूसतूय वाग फुलमय
कुस म्य छान्यम करक्याह।
(काश्मीरी)

'हाय! यदि समय पाकर मेरे यौवन रूपी वाग में वसंत आया तो उसका रस कौन लेगा?'

कर्म खाव दर्म खोरन त्राव।
गछ् आत्मतीर्थ तन मन नाव॥
वखच् सर् प्रयम् पोञ्ञ छाव।
न्यंद्र मो त्राव न्यंद्र मो त्राव॥
(काश्मीरी)

'कर्म की खड़ाऊँ धर्म के पाँव में पहनकर आत्मा के तीर्थ में चलो। भक्ति के तालाव में प्रेम के पानी से तन-मन को धोओ। उठो, नींद को छोड़ो।'

तंव लावित हूरि चुलमय दूरि हाविथ चूरि रुय।
मिहर छा महताव छा गुलजार छा रुखसार छा॥
(काश्मीरी)

'हे सखी! दूर से चोरी-चोरी मुँह छिपाकर मुझको तरसाता हुआ चला गया। वह सूर्य था? या चाँद? या उपवन? या कपोल? कौन था?'

अव जरा पंजाव में उतर आइये। सुनिये, घर कैसे उन्नत होते हैं—

वे वधावेआ सज्जना, सुआवेआ सज्जना
पह घर किन्हीं गुणीं वण दे ।
पह घर लिप्पेआ परोलेआ, कुंगुप छिड़केआ,
पह घर इन्हीं गुणी वण दे ॥
जम्मन पुज सपुत्तड़े, आमन नूँहाँ सुहागनाँ,
पह घर इन्हीं गुणी वण दे ।
जम्मन धीआँ सुंजूइयाँ, आमन छैल जुआई,
पह घर इन्हीं गुणी वण दे ॥
(पंजाबी)

'हे साजन ! यह घर किस तरह बनता है ?

यह घर लीप-पोतकर और केसर छिड़ककर बनता है ।

सपूत उत्पन्न हों, और अच्छे गुणोंवाली कुलवधुएँ आयें; इन्हीं गुणों से घर बनते हैं ।

बुद्धिमती बेटियाँ पैदा हों, और बाँके जमाई आये, इन्हीं गुणों से घर बनते हैं ।'

राजपूताने में आइये । स्त्रियाँ हवेलियों में गा रही हैं—

वाय चल्या छा भँवरजी ! पीपली जी,
हाँ जी ढोला ! हो गई घेर घुमेर ।
बैठाँ की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हाँरी सास सपूती रा पूत !
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥ १ ॥
ब्याय चल्या छा भँवरजी ! गोरड़ी जी,
हाँ जी ढोला ! हो गई जोध जुवान ।
बिलसण की रुत चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारा लाल नणद रा वो वीर !
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥ २ ॥

कुँण थारा घुड़ला भँवरजी ! कस दिया जी,
हाँ जी ढोला ! कुँण थाने कस दिया जीण ।
कुण्या जी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी,
ओ जी म्हारे हीवड़े का जीवड़ा !
मतना सिधारो पूरब की चाकरी जी ॥ ३ ॥
वड़े वीरे घुड़ला गोरी ! कस दिया जी,
हाँ ये गोरी ! साथीड़ा कस दिया जीण ।
वावाजी रा हुकमा चाल्या चाकरी जी ॥ ४ ॥
रोक रुपैयो भँवरजी मैं वणूँ जी,
हाँ जी ढोला ! वण ज्याऊँ पीली पीली म्होर ।
भीड़ पड़े जद भँवरजी ! वरतल्यो जी,
ओ जी म्हारी सेजाँ रा सिणगार !
पीया जी ! प्यारी ने सागे ले चलो जी ॥ ५ ॥
कदे न ल्याया भँवर जी ! सीरणी जी,
हाँ जी ढोला ! कदे न करी मनुवार ।
कदेय न पुछी मनड़े री वारता जी,
ओ जी म्हारी लाल नणद रा वो वीर !
थाँ विन गोरी ने पलक न आवड़े जी ॥ ६ ॥
कदे न ल्याया भँवरजी ! सूतली जी,
हाँ जी ढोला ! कदे वी वुणी नहीं खाट ।
कदेय न सूत्या रलमिल सेज में जी,
ओ जी पियाजी ! अव घर आओ,
थारी प्यारी उडीके महल में जी ॥ ७ ॥
थारे वावाजी ने चाये भँवरजी ! धन घणो जी,
हाँ जी ढोला ! कपड़े री लोभण थारी माय ।

सेजाँरी लोभण उडीके गोरड़ी जी,
थारी गोरी उड़ावे काग।
अब घर आओजी क धाई थारी नोकरी जी ॥ ८ ॥
अब के तो ल्यावाँ गोरी ! सीरणी ये,
हाँ ये गोरी ! अब करस्याँ मनुवार।
घर आय पूछाँ मनड़े री वारता जी ॥ ९ ॥
अब के ल्यावाँ गोरी सूतली जी,
हाँ ये गोरी ! आय वुणाँगा खाट।
पीछै सोस्याँ रलमिल थारी सेज में जी ॥ १० ॥
चरखो तो ले ल्यूँ भँवर जी ! राँगलो जी,
हाँ जी ढोला ! पीड़ो लाल गुलाल।
तकवो तो ले ल्यूँ जी भँवर जी ! बीजलसार को जी,
ओ जी म्हारी जोड़ी का भरतार !
पूणी मँगाल्यूँ जी क बीकानेर की जी ॥ ११ ॥
म्होर म्होर की कातूँ भँवरजी ! कूकड़ी जी,
हाँ जी ढोला ! रोक रुपैये रो तार।
मैं कातूँ थे बैठा विणज ल्यो जी
ओ जी म्हारी लाल नणद रावो वीर !
जल्दी घर आओ प्यारी ने पलक न आवड़ेजी ॥ १२ ॥
गोरी की कुमाई खासी राँडिया रे,
हाँ ये गोरी ! के गाँधी के मणियार।
म्हें छा वेटा साहूकार का जी,
ये जी म्हारी घणीये पियारी नार !
गोरी की कुमाई से पूरा ना पड़े जी ॥ १३ ॥
साँवण खेती भँवरजी ! थे करी जे,
हाँ जी ढोला ! भादुड़े कर्योछो नीनाण।

सीटाँ की रुत छाया भँवर जी ! परदेस में जी,
ओ जी म्हारा वर्णां कमाऊ उमराव !
थारी पियारी ने पलक न आवड़े जी ॥ १४ ॥
उजड़ खेड़ा भँवर जी ! फर वसे जी,
हाँ जी ढोला ! निरधन के धन होय ।
जोवन गये पीछे फना वावड़े जी,
ओ जी थाने लिखूँ वारम्वार ।
जल्दी घर आओ जी क थारी धण एकली जी ॥ १५ ॥
जोवन सदा न भँवर जी ! थिर रहे जी,
हाँ जी ढोला ! फिरती घिरती छाँय ।
पुल का तो वाया जीक मोती नीपजै जी,
ओ जी थारी प्यारी जी जोवे वाट,
जल्दी पधारो देश में जी ॥ १६ ॥

'स्त्री कहती है—हे पति ! तुमने पीपल लगाया था । हे प्राणनाथ ! वह अब खूब घनी छायावाला हो गया है । जब उसकी छाया में बैठने की ऋतु आई, तब तुम परदेश को चले । हे मेरी सुपुत्रवती सास के पुत्र ! तुम कमाने के लिए पूरब मत पधारो ॥१॥

तुमने जिस गोरी से विवाह किया था, वह यौवन-मद से मतवाली हो गई है । जब विलास की ऋतु आई, तब तुम कमाने चले । हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! कमाने के लिए पूरब न जाओ ॥२॥

हे मेरे नाथ ! किसने तुम्हारा घोड़ा कस दिया ? किसने उस पर ज़ीन रख दिया ? किसकी आज्ञा से तुम परदेश जा रहे हो ? हे मेरे हृदय के जीव ! तुम कमाने के लिए पूरब मत जाओ ॥३॥

पति ने कहा—बड़े भाई ने घोड़ा कस दिया और साथियों ने उस पर ज़ीन रख दिया । बाबा की आज्ञा से मैं कमाने जा रहा हूँ ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे नाथ ! मैं तुम्हारे लिए रुपया बन जाऊँगी । मैं

तुम्हारे लिए पीली-पीली मोहर बन जाऊँगी। हे प्राणधन! जब ज़रूरत पड़े, उसे काम में लाना। हे मेरे सेज के शृङ्गार! प्रियतम! अपनी प्यारी को भी साथ ले चलो ॥५॥

पति परदेश चला गया। स्त्री पति को पत्र लिखती है:—

हे स्वामी! तुम न कभी मिठाई लाये और न मुझे प्यार से खिलाया। न तुमने कभी मन की बात ही पूछी। हे मेरी प्यारी ननद के भाई! तुम्हारे बिना तुम्हारी गोरी को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ती ॥६॥

न तुम कभी सूतली ले आये, न तुमने खाट ही बुनाया; न कभी हम दोनों हिलमिल कर सेज पर सोये। हे प्रियतम! अब घर आओ। तुम्हारी प्यारी महल में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है ॥७॥

तुम्हारे बाबाजी को तो बहुत धन चाहिए। और हे पति! तुम्हारी माँ कपड़े की लोभिन है। सेज की लोभिन तुम्हारी गोरी प्रतीक्षा कर रही है। तुमको बुला लाने के लिए तुम्हारी गोरी कौआ उड़ाया करती है। तुम्हारी कमाई से मैं बाज आई। तुम घर आओ ॥८॥

पति ने पत्र का उत्तर लिखा—हे गोरी! अबकी बार मिठाई लाऊँगा और प्यार से तुमको खिलाऊँगा। घर आकर मन की बात भी पूछूँगा ॥९॥

अब की सूतली भी लाऊँगा, खाट भी बिनूँगा और फिर हम दोनों हिल-मिल कर बड़े सुख से तुम्हारी सेज में सोयेंगे ॥१०॥

पत्नी लिखती है—हे प्रियतम! हे मेरे समान यौवन-पूर्ण! हम एक सुन्दर चरखा, एक रंगीला पीढ़ा और अच्छे लोहे का एक तकवा ख़रीद लेंगे तथा बीकानेर से रुई की पोंणी मँगा लेंगे ॥११॥

हे पति! मैं मोहर मोहर की कूकड़ी कातूँगी, और रुपयों के मूल्य के तार। मैं कातूँगी, तुम बुन लेना। यह व्यवसाय हम करेंगे। हे मेरी प्यारी ननन्द के भाई! जल्दी घर आओ। पल भर के लिए भी मुझे चैन नहीं पड़ती है ॥१२॥

पति ने लिखा—स्त्री की कमाई कोई निकम्मा आदमी खायगा या कोई छुन्न बेचनेवाला या कोई मनिहार। मैं तो साहूकार का बेटा हूँ। हे मेरी अत्यंत प्यारी स्त्री! स्त्री की कमाई से काम नहीं चलेगा ॥१३॥

स्त्री ने लिखा—सावन में तुमने खेती की थी और भादों में निराया था। जब भुट्टे खाने का समय आया, तब तुम परदेश में हो। हे मेरे बहुत कमानेवाले राजा! अब घर आओ। तुम्हारी प्यारी को पल भर भी चैन नहीं पड़ती ॥१४॥

हे पति! गाँव उजड़ कर फिर बस जाता है। निर्धन को धन भी मिल जाता है। पर गया हुआ यौवन फिर नहीं लौटता। हे मेरे प्राणाधार! मैं तुमको बार-बार लिखती हूँ। जल्दी आओ। तुम्हारी प्यारी अकेली है ॥१५॥

हे पति! यौवन सदा स्थिर नहीं रहता। यह तो बादल की छाया के समान है। समय पर बोया हुआ मोती उपजता है। हे पति! तुम्हारी बाट जोह रही हूँ। जल्दी घर पधारो ॥१६॥'

इस गीत में विरहिणी की पुकार बड़ी ही मार्मिक है। यह गीत पढ़कर कौन ऐसा परदेशी युवक होगा जो अपनी विरहिणी की ओर एक बार आकर्षित न होगा? इस गीत में विरहिणी के अंतस्तल का प्रेम छलका पड़ता है। वह अपने पति को लिखती है कि आओ, मैं चरखा कातकर और तुम कपड़ा बुनकर, हम दोनों किसी तरह अपना जीवन-निर्वाह कर लेंगे, पर तुम परदेश में न रहो। यह गीत सुनकर महात्मा गाँधीजी तो अवश्य ही प्रसन्न होंगे, और मारवाड़ियों को चरखे और खद्दर की प्राचीनता बताने के लिए उनके सामने वे यह गीत प्रमाण-रूप से उपस्थित कर सकेंगे। पति ने जो पत्नी को यह लिखा कि—"मैं साहूकार का बेटा हूँ, स्त्री की कमाई क्यों खाऊँ," यह वाक्य मारवाड़ियों के व्यापारी जीवन की रीढ़ है। इस "साहूकार के बेटे" के भीतर मार-

बाड़ियों का अदम्य उत्साह, अथक परिश्रम, अप्रतिम उद्योग और अपरि-मित कष्ट-सहिष्णुता-व्याप्त है।

एक गीत और—

आज म्हारी ईमली फल लयो।

बहू रिमझिम महलाँ से ऊतरी, बहू कर सोला सिणगार।

आज० ॥ १ ॥

म्हारा सासूजी पूछया ए बहू थारे गहणारो अर्थ बताव।

सासू गहणा नै के पूछो, गहणा म्हारा देवर जेठ।

गहणा म्हारी भोली बाईजी रो वीर ॥ आज० ॥ २ ॥

म्हारा सुसरोजी घर का राजा, सासूजी म्हारी अर्थ भँडार।

म्हारा जेठ बाजूबंद बाँकड़ा, जिठाणी म्हारी बाजूबंद

की लूंग ॥ आज० ॥ ३ ॥

म्हारो देवर चुड़लो दाँत को, देवराणी म्हारी चुड़ला री टीप।

म्हारा कंवरजी मोती बाटला, कुलवहू म्हारा मोत्याँ बीच

की लाल ॥ आज० ॥ ४ ॥

म्हारी धीयज धोली पान की, जँवाई म्हारे चमेल्याँ रो फूल।

म्हारी नणद कसूमल काँचली, नणदोई म्हारो गजमोत्याँ

रो हार ॥ आज० ॥ ५ ॥

म्हारा सायब सिर को सेवरो, सायबाणी म्हें तो सेजाँरा सिणगार।

म्हें तो वार्याजी बहूजी थारे बोलनै, लडायो म्हारो सो परिवार

॥ आज० ॥ ६ ॥

म्हें तो वार्याजी सासूजी थारी कूख नै, थे तो जाया

अर्जुन भीम।

म्हें तो वार्याजी बाई जी थारी गोदनै, थे खिलाया लिछमण राम ॥७॥

आज म्हारी ईमली फल लयो ॥

'आज मेरी इमली में फल आया है। वहू सोलह शृंगार करके छमछम करती हुई महल से उतरी ॥१॥

सास ने पूछा—हे बहू ! तुम्हारे पास क्या-क्या गहने हैं ? बहू ने कहा—हे सासजी ! मेरे गहने की बात क्या पूछती हो ? मेरे गहने तो मेरे देवर और जेठ हैं। मेरा गहना तो मेरी सुशील ननद का भाई अर्थात् मेरा पति है ॥२॥

मेरे ससुरजी घर के राजा हैं और सासूजी भंडार की मालकिन। मेरे जेठजी तो बाजूबंद हैं और जेठानीजी बाजूबन्द की लटकन ॥३॥

'मेरा देवर मेरी हाथी दाँत की चूडी है, और देवरानी उसकी टीप। मेरा पुत्र मोतियों का हार है और मेरी पुत्रबधू मोतियों के बीच का लाल ॥४॥

मेरी कन्या जरीदार चोली है और मेरा जामाता चमेली का फूल है। मेरी ननद कुसुम्भी चोली है और ननदोई गजमुक्ताओं का हार ॥५॥

मेरे स्वामी सिर के मुकुट और मैं उसकी सेज का शृंगार हूँ। यह सुनकर सास ने कहा—बहू ! मैं तो तुम्हारी बोल पर न्योछावर हूँ। तुमने मेरे सारे परिवार को सुखी किया ॥६॥

बहू ने कहा—सासजी ! मैं तो तुम्हारी कोख पर न्योछावर हूँ। तुमने तो अर्जुन और भीम ऐसे प्रतापी पुत्र पैदा किये हैं। और हे ननद ! मैं तुम्हारी गोद पर न्योछावर हूँ। तुमने तो राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाया है ॥७॥'

गीत की अंतिम पंक्तियों पर ज़रा ग़ौर से विचार कीजिएगा। यह उस समय का गीत है, जब मातायें अर्जुन और भीम ऐसे पुत्र उत्पन्न करती थीं, और बहनें राम और लक्ष्मण ऐसे भाइयों को गोद में खिलाती थीं। सास ने जो बहू के नीति-युक्त व्यवहार और मधुर भाषण की प्रशंसा की है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह एक परिवार को प्रेम-बंधन में बाँधने के लिए है, न कि फूट फैलाने के लिए; जैसा कि आजकल है। यदि हमारे सुधारक अर्जुन भीम की माताओं वाला और राम लक्ष्मण की

वहनों वाला समाज लौटा लाने में समर्थ हुये तो मारवाड़ी समाज के सौभाग्य का क्या कहना !

सिंध में चलिये, लोग 'ऊमर और मार्वी' के गीत गा रहे हैं—

पट पहिरींदास कीना की, वागा मू ना वानन था।
दम दम खेता जा, मूखे खियालड़ी खनन था॥
लोई कीना लहियान लिगान तन मन लारे।
पीरूँ चूँ दीद् आस पंदा में शला लामन माँझ लावाँ॥
पट पहिरींदास कीना की खातरूँ कीना सुवाँ।
सजन मुहिरये सुना जी ना हे फलारी तवहाँरवे॥
असीन मान्हू मला चढ्यूँ वहयूँ वारे वलारा वन्यूं।
कुल्हे फाटुर कोरो कंजरो सुवारे हिना सन सथीनद्स।
वेही वेहियाला साँदे विछामी सहिरयूँ खान सुवाइनद्स॥
चावे शेरल अद्ल थिंदो जुलुम जोरी कम ना इन्दो।
थे इन्साफ! ओमर! तुहिनजा मान सहिरयूँ रवे सुराइनद्स॥
वझाये वतन रवे सारे साहु दियान।
जगा में आद् जियान जे वजे माहू मलीर दे॥

'मार्वी नामक स्त्री ऊमर से कहती है—मैं आप के दिये हुए रेशमी वस्त्रों को क्या करूँगी ?

मैं तो जिस समय से अपना घर-बार छोड़कर यहाँ आई हूँ, मुझे सोते-जागते, प्रति-क्षण अपने खेतों ही की सुध आती रही है।

मेरा जी यही चाहता है कि मैं शीघ्र अपने शरीर से इन वस्त्रों को उतार दूँ।

रह-रह कर मैं पेरू* फलों को जंगल में जाकर तोड़ने के लिये उत्कण्ठित हो उठती हूँ।

---

* यह सिन्ध में होता है

मैं रेशमी कपड़े नहीं पहनूँगी और न राजसी बिछौने ही पर लेटूँगी।

हे राजन्! आपको इस बात का अनुमान नहीं हो सकता कि अपने खेत-पात तथा अपने स्वजनों को छोड़ने से मुझे कितनी मानसिक पीड़ा हो रही है।

मेरा जन्म तो ऐसे कुल में हुआ है जिसमें लोग पशु चराते हैं, और रात्रि के समय हिंसक जीवों से अपनी तथा अपने पशुओं की रक्षा करने के लिये अपनी झोपड़ियों में आग जलती रखते हैं।

मैं ये रेशमी कपड़े तो क्या पहनूँगी? मैं तो जैसा कि सदा से कहती आई हूँ, कैंची से एक मोटे कपड़े की अँगिया ब्योंत लूँगी, जो कन्धों पर खुली रहेगी।

उसे मैं अपनी सहेलियों से अनुनय कर के सिला लूँगी।

राजन्! मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए। अपना राज-बल दिखाकर आप मेरे हृदय पर अपना प्रभुत्व नहीं जमा सकते।

पर हे ओमर! यदि आप मुझे अपने देश को लौट जाने की आज्ञा देने की कृपा करेंगे, तो विश्वास रखिये कि मैं अपने साथी-संगियों से आपके न्याय-प्रेम की कहानियाँ कहूँगी।

यदि मुझे आपने कदाचित मुक्त न किया, तो मैं अपने देश और घर की स्मृति में अपने प्राण समर्पण कर दूँगी।

क्योंकि मेरा यह अचल विश्वास है कि यदि मैं जीवितावस्था में स्वदेश न पहुँच पाई और मेरा मृतक शरीर ही वहाँ पहुँचा, तो मैं अनन्त काल तक जीवित रहूँगी।'

गुजरात में चलिये। गीतों का इतना प्रचार है कि मृत्यु-जैसा शोक-पूर्ण अवसर भी उससे नहीं बचने पाया है।

कोई बालक मर गया है, स्त्रियाँ गा रही हैं—

हाय हाये रे सरोवरिआनी पाले रे।
हाय हाये रे आँवलियानी डाले रे।
हाय हाये रे रमतेलो ना दीठो कुँवर रे।
हाय हाये रे सघलाँ सरोवर जोयाँ रे।
हाय हाये रे सघली निशालों जोइयों।
हाय हाये रे ना दीठो भणतो कुँवर रे।
हाय हाये रे सघला ओरड़ा जोया रे।
हाय हाये रे ना दीठो जमतो कुँवर रे।
हाय हाये रे सघलुँ कटम जोयूँ रे।
हाय हाये रे ना दीठो फाकाने म्होले रे।

'हाय! हाय! मैंने तालाव का किनारा, आम की डाल, सव देख डाले। सारा तालाब देख डाला। कहीं कुँवर को खेलता हुआ नहीं देखती हूँ।

हाय! हाय! मैंने सारी पाठशालाएँ देख डालीं। मेरा कुँवर कहीं पढ़ता हुआ नहीं दिखाई पड़ा।

हाय! हाय! मैंने सब कोठरियाँ देख डालीं। मेरा कुँवर कहीं जीमता हुआ नहीं दिखाई पड़ा।

हाय! हाय! मैंने सारा कुटुम्ब देख डाला। काका का दुलारा वेटा कहीं दिखाई नहीं पड़ा।'

कोई कन्या ससुराल जा रही है। वह कहती है—

अमे रे लीला वननी चरकलड़ी उड़ी जाशुँ परदेश जो।
आज रे दादाजीना देशमाँ काले जाशुँ परदेश जो॥

(गुजराती)

'मैं तो हरे-भरे वन की चिड़िया हूँ। उड़कर परदेश चली जाऊँगी। आज दादाजी के देश में हूँ, कल परदेश जाऊँगी।'

कैसा कारुणिक दृश्य है !

युक्तप्रांत की कन्यायें भी यही कहती हैं—

जैसे बना कै कोइलिया, उड़ि बागाँ गईं फुलवरियाँ गईं।
वैसे बवैया घर छोड़ि कै, हम ससुरे चली, ससुररिया चली ॥

महाराष्ट्र में चलिये। कोंकण प्रांत में एक मल्लाह प्रेम का गीत गा रहा है—

चिमणा बनुन, गडे, नाचेन, ग ! नाचेन, ग !
झाडाझाडावरि बसेन, ग ! बसेन, ग !
साँजसकाल तुला सुमरेन, ग ! सुमरेन, ग !
मचवा डुलेन, तसा डुलेन, ग ! डुलेन, ग !
हलू हलू, गड़े, चढ़ेन, ग ! चढ़ेन, ग !
डोलकाठीवर बसेन, ग ! बसेन, ग !
प्रीत खरी ही बघेन, ग ! बघेन, ग !
मासा बनुन, गड़े, पोहेन, ग ! पोहेन, ग !
साँजसकाल पाठिं लागेन, ग ! लागेन, ग !
नालेवरती ओणविन, ग ! ओणविन, ग !
बुचड़ा बघून, खुलेन, ग ! खुलेन, ग !
चाँदणि तूँ ही चमकसि, ग ! चमकसि, ग !

'तेरे लिये मैं चिड़िया बनकर, प्रत्येक वृक्ष पर बैठकर, साँझ-सबेरे तेरी याद करता रहूँगा। नाव जैसे डुलती है, वैसे ही डुलता रहूँगा। मस्तूल पर धीरे-धीरे चढ़कर, उस पर बैठकर, तेरे प्रेम का सुख अनुभव करूँगा। मछली बनकर पानी में, साँझ-सबेरे तेरे पीछे लगकर, पतवार पर झुककर, तेरे गुथे हुये बालों को देखकर, प्रसन्न होऊँगा। तू चाँदनी जैसी चमक रही है।'

संस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
भार्या गृहद्वारि जनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
कर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

'धन पृथ्वी में गड़ा रह जाता है, पशु बँधे ही रह जाते हैं, स्त्री घर के दरवाज़े तक, बंधु-बांधव श्मशान तक और शरीर चिता तक साथ देती है। परलोक के मार्ग में केवल कर्म जीव के आगे-आगे चलता है।'

पर मद्रास में गीतों ने भी श्मशान तक मनुष्य का साथ दिया है।

माता के शव को चिता पर चढ़ाते समय कुम्भकोनम् (तामिल प्रांत-मद्रास) में यह गीत गाया जाता है—

ऐ रेण्डु तिंगला अङ्गमेला नोन्दु पेत्तु।
पैयलेण्ट पोदे परिन्देडुत्तु चेय्य इयु॥
कैप्पुरत्तिलेन्दी कलशप्पाल तन्दाले।
एप्पिरप्पिल काप्पेन इनि॥

(तामिल)

'दस महीने पेट में रखकर, बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर, जच्चाखाने में औरों से "बच्चा पैदा हुआ" यह बात सुनकर और तुरन्त प्रेम से हाथ में लेकर जिस माता ने स्तन-घट से दूध पिलाया था, उस प्रेम-मूर्ति माता को आगे मैं किस जन्म में देखूँगा ?

वट्टिलिलुँ तोट्टिलिलुँ मरमेलुँ तोलमेलुँ।
कट्टिलिलुँ वैत्तु एन्नै कादलितुमूट्ट॥
शिहिलिट्टुकाप्पारिर शीशट्टुँ ताय्यको।
विरहिलिट्टु त्तीयमुट्टुवेन॥

(तामिल)

'झूले में, पालने में, छाती पर, कन्धे पर या खाट पर सुलाकर' लाड़-

प्यार से थपकियाँ दे-देकर, जिसने मुझे सदा आराम दिया और कभी गोद में उठाकर तमाशा दिखाया, क्या उस माता को चिता पर जलाऊँ ?'

आन्ध्र देश में आइये। यहाँ की भाषा तेलगू है। यह भाषा प्रेम के गीतों से रमी हुई है। राह चलते हुये स्त्री-पुरुष गाते चलते हैं—

पट्टुचंटि मोह मो कानि ओ पल्लाग इंतित अनग रादे।
मट्टु माय देवमी मनसु देलियग लेक मनल नेड़ वापे
नय्यो—ओ मगुवा॥
कलिकि निन्नेड़ वासिनदि मोदलु नीरुपु कनुल कट्टिनट्टुलुंडुने।
चेलिय ने नोकटि दलचेद नन्न नीसेगु चेलिमि तलपै
युंडुने॥
सोलसि ने नेमैन व्राय नीयाकार शोभन मै कनुपिंचुने।
पिलिचि पेल्ल नो कटि विलुव वोलचिन नीदु पेरु मुंदुग
दोचुने—ओ मगुवा॥

'हे सुन्दरि! तुम पर यह मेरा कैसा अनोखा मोह है। जिसका पारावार नहीं। जब से तुम्हारा वियोग हुआ है, जिसको देखता हूँ, वही तुम्हारा रूप बन जाता है। चित्त में जिसका विचार करता हूँ, वही तुम्हारे प्रेम का विचार बन जाता है। जो कुछ मैं लिखता हूँ, वही तुम्हारा सुन्दर आकार प्रतीत होता है। नाम लेकर किसी को बुलाने लगता हूँ, तो मुँह से तुम्हारा ही नाम निकल पड़ता है।'

बंगाल में आइये, एक मल्लाह गा रहा है—

मन माँझी तोर बैठा नेरे आमी आर बाइते पारी ना।
जनम भरे बाइलाम तरी रे तरी भाइटाय सुजाय उजाय ना।
नायेर गुड़ा भाँगा, छापर लड़ारे, आमी आर बाइते पारी ना।
(बँगला-गीत)

'ऐ माँझी! तू अपने पतवार को ले। मैं और नहीं खे सकता। मैं जीवन भर अपनी नाव को नदी के चढ़ाव की ओर खेता रहा। लेकिन

यह मेरे खेने से और भी पीछे हटती गई। नाव के सिरे टूट गये हैं, और तख्ते गिरे जा रहे हैं। मैं अब इसे खे नहीं सकता।'

बिहार, युक्तप्रांत और मध्यप्रांत में आइये, चारों ओर मानस-जगत् पर गीतों का साम्राज्य है—

कोई गाता चला जा रहा है—

काग़ा नैन निकास दूँ, पिया पास ले जाय।
पहिले दरस दिखाय कै, पीछे लीजौ खाय॥
कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो माँस।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस॥
सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय॥
साजन हम तुम एक हैं, कहन सुनन के दोय।
मन से मन को तोलिये, दो मन कभी न होय॥

कहीं सुहाग की रात है। आनन्द में मग्न वधू गा रही है—

आजु सोहाग कै रात चंदा तुम उइहौ।
चंदा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ॥
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ मुरुग मति बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तू पह जिनि फाटेउ॥
आजु करहु बड़ी राति चंदा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चलि मोरा सुरुज बिलम करि अइहौ॥

'आज सोहाग की रात है। हे चन्द्र! तुम उदय होना। पर हे सूर्य तुम उदय मत होना।

हे मुर्गे! तुम आज न बोलना। बोलकर मेरे हृदय को विरस मत करना। हे पौ! तुम आज न फटना। कहीं मेरी छाती न फट जाय।

हे चाँद! तुम आज बड़ी रात करना और उदय होना। हे मेरे सूर्य! तुम आज धीरे-धीरे चलकर देर से आना।'

गीतों की दुनिया मे हिन्दू-मुसलमानों मे वैर नहीं। मुसलमान भी हिन्दुस्तान को अपना देश और यहाँ की गंगा-जमुना को अपनी नदियं समझते हैं। देखिये—

अल्ला मेरे आवेंगे, मुहम्मद आवेंगे।
आगे गंगा थाम ली, जमुना हिलोरें लेयँ।
बीच खड़ी बीबी फातिमा, उम्मत बलैया लेय॥
उतरा पसीना नूर का, हुआ चमेली फूल।
मलिनिया गूँथे सेहरा, दूल्हा बने रसूल॥

इटावा

मथुरा की चौबाइनें उन देशों के नाम गिना रही हैं, जहाँ से शोभा-श्रृंगार की चीज़ें आती हैं—

हजारी बन्ना तू भले आयो रे।
हाथी तो लायो बन्ना कजरी देश के।
हजारी……॥
घोड़े तो लायो बन्ना काबुल देश के।
हजारी……॥
नौवत तो लायो बन्ना बूँदी देश के।
हजारी……॥
सोनो तो लायो बन्ना लंका देश के।
हजारी……॥
रूपो तो लायो बन्ना दाँदल देश के।
हजारी……॥
मोती तो लायो बन्ना सूरत देस के।
हजारी……॥
चुन्नी तो लायो बन्ना दरियावाद के।
हजारी……॥

सालू तो लायो बन्ना दक्खिन देश के।
हजारी...... ॥
मिस्सी तो लायो बन्ना दूर गुजरात के।
हजारी...... ॥
दासी तो लायो बन्ना चंचल देश की।
हजारी...... ॥
दुलहिन तो लायो बन्ना सिंहलदीप की।
हजारी......॥

आगरे में कोई स्त्री रंगरेज से अपनी चूनरी रँगा रही है। वह उसे समझा रही है कि किस स्थान पर क्या-क्या चित्र छापना—

काँकर कुइयाँ कँकरीली, वहाँ बसे रँगरेज—अमर रँग चुनरी।
रँगिया ऐसी रे रँगिये चुनरी, ढिग ढिग रँगियो सहेलरी—
खेलत ही दिन जाय।
मुरहाँ लिखियो सास ननदिया इँदरी धरत रँग जाय।
लामन लिखियो सोतली, चलत फिरत रंग जाय।
घुँघियाँ लिखियो मेरे वीरन, तिन देखत नैन सिरायँ।
अमर रँग चुनरी।

(मुरहाँ=सिर। इंदरी=गेंडुली, जिस पर पानी का घड़ा रक्खा जाता है। लामन=घाँघरा। घुँघियाँ=घूँघट।)

हम लोग काश्मीर से चले थे। चलिये गढ़वाल और अल्मोड़ा के पहाड़ों पर इस यात्रा को समाप्त करें।

गढ़वाल में लोग गा रहे हैं—

आई गेन रितु बौड़ी दाईं जैसु फेरो। झुमैलो।
उवा देसी उवा जाला उंदा देसी उंदो॥ ”

‘बसंत ऋतु दाँवरी (जौ-गेहूँ को माँड़ते वक्त बैलों का चक्कर) की तरह फिर आगई। ऊपर देश के लोग ऊपर चले जायँगे, नीचे देश के नीचे।

लंबी लंबी पुगड़्यो माँ रऽरऽ शब्द होलो ।
गेहूँ की जौ की सारे पिंग्ली होइ गैने ॥

'लंबे-लंबे खेतों में हल जोतते हुये किसानों का रऽरऽ शब्द होगा । गेहूँ-जौ के खेत पीले हो गये हैं ।

गाला गीत बसंती गौं का छोरा दी छोरी ।
ढाँडी काँठी गैने ग्वेरू का गितूना ॥

'गाँवों में बालक-बालिकाएँ बसंत के गीत गायेंगे । ग्वालों के गीतों से शिखर और उपत्यकाएँ गूँज रही हैं ।

नी होला छुछि मेरा की मैत्या भाइ वैणा ।
फूटी फूटी सदी रौरे औदे याद मैने ॥

'मुझ अभागिनी से मायके में कोई भाई-बहन नहीं हैं । सदेई को मायके की याद आ रही है और वह फूट-फूट कर रो रही है ।'

अल्मोड़े में आइये । यहाँ धान का खेत निराते समय कुछ स्त्रियाँ गा रही हैं—

बाटा में की सेरी रूपा वै यकली क्य धान गोड़ै,
यकली मैं हुँलो बटवा छकली कै लौंलो हौ ॥ १ ॥
कथ गया त्यरा रुपा दौराणी ज्यठाणी वै,
कथ गया त्यरा द्यवर ज्यठाणा हौ ॥ २ ॥
कथ गई तेरी रुपा वै ननद पौणी हौ,
काँ गई त्यरा रुपा वै सासु सौरा हौ ॥ ३ ॥
ज्यठण मेरी बटवा चुला की रस्यारो हौ,
दौराण मेरी बटवा खरकै घसारी हौ ॥ ४ ॥
ज्यठाणो म्यरो बटवा सभा भैटियो हौ,
द्यवर म्यरो बटवा भैंसिया ग्वावो हौ ॥ ५ ॥
ननद पौणी बटवा पयावा न्हैं गईं हौ,
सासुन सौरा म्यरा विरध है गीं हौ ॥ ६ ॥

बाटा में की सेरी तू रुपा ब्वपरी का घाम क्य धान गोड़े,
धान गोडुलो वटवा साल जमोव हौ ॥ ७ ॥
कथ गयो त्यरो वावी व्यवायो हौ,
घुना साँटी को वटवा व्या करी गयो हौ ॥ ८ ॥
वी दिन वटी वटवा पलटी नी चायो हौ,
सिलंग डावी लगै गयो भरफूलै ह्वै गे हौ ॥ ९ ॥
मैं रुपा ह्वे गयो भर जोवन बठवा लोग,
वी दिन वटी वीले पलटी नी चायो हौ ॥१०॥
मैं हुँलो त्यरो रुपा वै वावी व्यवायो हौ,
तू वावी व्यवौंणो ह ये आपणी मैं वैणी को हौ ॥११॥
यक वोल वोली ग छै आव जन वोले हौ,
दूसरो वोल वोलले ऐ फिर मैं वैणी की मँगाले ॥१२॥
हिट हिट तू रुपा सिलंगी का सेव रुपा रौतेली,
सिलंगी का सेव पिपर्वी का हवा ॥१३॥
म्यरा वावी व्यवौणा का खुटन नवीहर ज्वतौ हौ,
जाँघन वीका दुडी को सुराव हौ ॥१४॥
आडन वीका गंगाजी वागो सिरन वीका प्वतषै की पाग,
कमर वीका रेशमी फेंटा रै वटवा लोग हाथन वीका
लुवासार छड़ी हौ ॥१५॥
नवीहर ज्वतौ रुपा वै फाटी गयो,
दुडी का सुराव फाटी फूटी गई हौ ॥१६॥
मैं त्यो व्यवौणो हुलो रुपा वै तेरी डोली कछौंलै,
अलिया वलिया हुँलो त्वरो हौवो वै खौंलौ ॥१७॥

'रास्ते के निकट के खेत में रुपा ! तू क्यों अकेले धान निराती है ? तब वह कहती है—मैं तो अकेली ही हूँ और दूसरा अपने साथ किसको लाऊँ ? ॥१॥

तेरी देवरानी जेठानी कहाँ गईं ? तेरे देवर जेठ कहाँ गये ? ॥२॥

तेरी ननद और पौंड़ी (स्वामी की बड़ी बहन) कहाँ गईं ? तेरे सास ससुर कहाँ गये ? ॥३॥

रुपा कहती है—मेरी जेठानी रसोई बना रही है। देवरानी गायों के लिये घास काटने गई है ॥४॥

मेरे जेठ हे पथिक ! सभा मे बैठे हैं। मेरे देवर भैंसों को चराने गये हैं ॥५॥

ननद और पौणी अपनी-अपनी ससुराल चली गई हैं। सास-ससुर वृद्ध हो गये हैं ॥६॥

रास्ते के निकट के खेत में इस दोपहर के घाम में रुपा ! तू कौन से धान निराती है ? तब वह कहती है—मैं साल व जमोल (धानों की जातियाँ) नामी धानों को गोड़ती हूँ ॥७॥

तेरा स्वामी कहाँ गया ? रुपा कहती है—मैं बहुत छोटी ही थी, तब मेरे साथ उसने पाणिग्रहण किया था ॥८॥

पाणि-ग्रहण के बाद विदेश को गया था। तब से वह नहीं लौटा। उसके लगाये सिलंग के पेड़ में फूल लग गया है ॥९॥

मैं अब हे पथिक ! युवती हो चुकी हूँ। लेकिन वह अभी तक नहीं लौटा ॥१०

वह कहता है—मैं ही तेरा स्वामी हूँ। रुपा क्रोधित होकर कहती है—तू अपनी माँ और बहन का स्वामी होगा ॥११॥

तू ने मुझसे इतना कह दिया, अब आगे को चुप रह। यदि आ
को दूसरा शब्द तू बोला, तो मैं फिर तुझे गाली दूँगी ॥१२॥

उसका स्वामी फिर कहता है—रुपा ! तू (उसी) सिलंग की छाया में चल। पीपल के वृक्ष के नीचे हवादार स्थान में चल ॥१३॥

तब रुपा कहती है—मेरे स्वामी के पैरों मे नलीवाला जूता था। उसकी जंघा में दुडी (एक प्रकार का कपड़ा) का पाजामा था ॥१४॥

उसके बदन में गंगाजल के समान रंगवाला वस्त्र था। सिर में उसके प्वतन्नै (एक प्रकार का करड़ा) का पाग था। उसके कमर में हे पथिक ! रेशमी फेंटा था। उसके हाथों में लोहे के मूँठवाली छड़ी थी ॥१५॥

उसका पति कहता है—रूपा ! नली वाला जूता फट गया है। टुडी का पाजामा भी फट गया है ॥१६॥

मैं अगर तेरा पति होऊँगा तो तुझे पालकी में ले जाऊँगा। यदि कोई लबार हुआ तो तेरे यहाँ हल जोतूँगा। अन्त में वह उसको पालकी में लेही जाता है ॥१७॥

ग्राम-गीतों के प्रकार

ग्राम-गीत कई श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं—जैसे,

१—संस्कार सम्बंधी गीत

२—चक्की और चरखे के गीत

३—धर्म-गीत—त्योहारों पर गाये जाने वाले गीत-भजन आदि

४—ऋतु-सम्बंधी—सावन, फागुन और चैत्र के गीत।

५—खेती के गीत

६—भिखमंगों के गीत

७—मेले के गीत

८—भिन्न-भिन्न ज्ञातियों के गीत—जैसे, अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, कुम्हार, भुजवा आदि

९—वीर-गाथा—जैसे, आल्हा, लोरिक, हीर-राँझा, ढोला-मारू आदि। अंग्रेज़ी में जिसे Ballade कहते हैं।

१०—गीत-कथा—छोटी-छोटी कहानियाँ, जो गा-गा कर कही जाती हैं। अंग्रेजी में जिसे Folk-lore कहते हैं।

११—अनुभव के वचन—जैसे, घाघ, भड्डरी आदि।

गीतों में एकात्मता

शकुंतला में कालिदास ने मृग-शिशु और वृक्षों के साथ मनुष्य की जिस एकात्मता का चित्र खींचकर अपने को विश्व-वन्द्य बना लिया है, वह एकात्मता गीतों में सर्वत्र प्रकट है। मेघदूत में मेघ संदेश-वाहक है। गीतों में भौंरा, कोयल, तोता, चील्ह, श्यामा पक्षी, घटा, कौआ आदि अनेक चर और अचर हैं, जो मनुष्यों के सहचर की तरह काम करते हुये दिखाये गये हैं।

देखिये—

अरे अरे काला भँवरवा अँगन मोरे आओ।
भँवरा आजु मोरे काज बिआह नेवत दै आओ॥
× × ×

अरी अरी कारी कोइलि तोर जतिया भिहावन।
कोइलरि बोलिया बोलउ अनमोल त सब जग मोहइ॥
अरी अरी कारी कोइलिया अँगन मोरे आवउ।
कोइलरि आजु मोरे पहिला बिआह नेवत दै आवउ॥
× × ×

सावन सुगना मैं गुर बिउ पालेउँ चैत चना कै दालि।
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क बर हेरइ जाव॥
× × ×

ताको देखौं भौंरा दूध भात खोरवाँ।
अरे पिया आगे खबर जनाउ, कि फागुन आयउ॥
× × ×

सरगा उड़इ एक चिल्हिया सरब गुन आगरि।
चिल्हिया जहँ पठवौं तहँ जातेउ सनेसिया लइ अउतेउ॥
× × ×

अरे अरे श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु।
मोरी चिरई! अरी मोरी चिरई! सिरकी भितर बनिजरवा,
जगाइ लइ आवउ—मनाइ लइ आवउ॥

× × ×

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिया फोड़ करैं॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवैं॥

भारत के प्रायः सब प्रान्तों के गीतों में पशु, पक्षी, लता-वृक्ष और मेघ-माला के साथ एकात्मता का सुन्दर चित्र है। यहाँ मारवाड़ का एक 'कुर्जां' नामक गीत दिया जाता है:—

तूँ छै ये कुर्जां भायली, तूँ छै धरम की भैण,
एक संदेशो ये बाई म्हारी ले उडो ये म्हारी राज—
कुर्जां म्हारा पीव मिला दे ये।
वीं लसकरियेने जाय कहिये क्यूँ परणी थे मोय?
परण पिराछित क्यूँ लियो ये जी रह्या क्यूँ
न अनख कुँवार—कुँवारीने बर तो घणाँ छा जी।
ऊठी कुर्जां ढलती माँझल रात,
दिनड़ो उगायो मारूजी रा देश में जी म्हाँका राज।
बैठ्या पला मारू तखत बिछाय,
कागद राल्या भँवर जी की गोद में जी म्हाँका राज।
आवो ये कुर्जां बैठो म्हारे पास,
कुणाँजीरी भेजी अठे आईजी म्हाँका राज।
थारी धण की भेजी अठे आई जी,
थारी धण का कागद साथ भँवर थे बाँच लेवो
म्हाँका राज।

जाय,
अन्न विना रयां ये न
दूध दह्यांका थांरी धण खण लिया जी म्हाँका राज।
बिंदली को सरब सुहाग,
काजल टीकीको थारी धण खण लियोजी म्हाँका राज।
सोयाँ विना रह्यो ये न जाय,
हिंगलू ढोल्याको थारी धण खण लियोजी म्हाँका राज।
चुनड़ी को . सरब सुहाग,
गोट मिसरुको थारी धण खण लियो जी म्हाँका राज।
आज उणमणा हो रयाजी, रह्यो के सँदेशो आय,
के चित आयो थारो देसड़ोजी के चित आया माई बाप,
भायेला दिलगीरी क्यूँ लाया जी।
ना चित आयो म्हारो देसड़ो ना चित आया माई बाप,
ना चित आयो म्हारो गोरी चित आई जी।
भायेला म्हाने थारो साथ,
ओ ल्यां साथीड़ां थारी नोकरीजी,
ओ ल्यां राजाजी थारी सिधारस्याँ जी।
भायेला म्हें तो देश घोड़ेपर जीन,
झटसी घुड़ला कस लिया जी करली पुगाद्यो जी।
करवा म्हाने वेग पुगाद्यो जी।
दाँतण करो कुवा बावड़ी जी, मल-मल करो असनान।
भँवर थांने वेग पुगाद्याँ जी।

कुर्जां एक छोटी चिड़िया होती है। एक विरहिणी उससे कहती है—
'हे कुर्जां! तू मेरी प्यारी सखी है। तू मेरी धर्म की बहन है। हे बहन! मेरा यह संदेशा लेकर उड़ो और मेरे प्रियतम को मुझसे मिला दो।

उस लश्करिये* को जाकर कहना कि तुमने मुझे क्यों व्याहा था ? तुम कँवारे क्यों न रह गये ? मुझ कँवारी के लिये तो वहुत से वर मिल जाते।

आधी रात ढलने पर कुर्जां उठी। दिन उगते-उगते वह मारवाड़ देश में पहुँच गई।

पति तख़्त विछाकर वैठा था। कुर्जां ने पति की गोद में स्त्री का पत्र गिरा दिया।

पति ने कहा—कुर्जां ! आओ, मेरे पास वैठो। किसकी भेजी हुई तुम यहाँ आई हो ?

कुर्जां ने कहा—तुम्हारी स्त्री ने मुझे यहाँ भेजा है। उसकी चिट्ठी साथ लाई हूँ। उसे वाँच लो।

तुम्हारी स्त्री का यह हाल है कि जीने के लिये वेचारी को अन्न तो लेना ही पड़ता है। पर उसने दूध दही न लेने की प्रतिज्ञा कर ली है। सुहाग-चिन्ह बिन्दी को तो रहने दिया है, पर काजल की टीकी न लगाने का उसने प्रण कर लिया है।

सोये बिना कैसे रहा जा सकता है ? पर उसने पलँग पर न सोने का प्रण कर लिया है।

सुहाग-चिन्ह चुनड़ी तो कैसे छोड़ी जा सकती है ? पर गोटे किनारी के रेशमी वस्त्रों के न पहनने का उसने प्रण कर लिया है।

कुर्जां की जवानी अपनी प्यारी का संदेशा सुनकर पति उदास हुआ है। उसके साथी पूछते हैं—आज अनमने से क्यों दिखाई पड़ते हो ? क्या वात है ? क्या कहीं से कोई संदेशा आया है ? या देश की

---

* मारवाड़ी मे पति के लिये लसकरिया, राज, पिया, साजन, चतुर, भँवर, ढोला, मारू, हंजामारू, बादीला, छला, नणद का वीर आदि कई शब्द हैं।

याद आई है ? या माँ-बाप की सुध आई है ? मित्र ! चित्त पर उदासी क्यों झलक रही है ?

पति कहता है—हे मित्र ! न मुझे देश याद आ रहा है, न मा-बाप की सुध आ रही है। मुझे मेरी प्यारी स्त्री याद आ रही है।

लो, साथियो ! तुम्हारा साथ छोड़ता हूँ। लो, राजाजी ! आपकी नौकरी छोड़ता हूँ। मैं तो अपने देश जा रहा हूँ।

झटपट घोड़ा कसकर उस पर जीन रख ली और उसने घोड़े से कहा—हे घोड़े ! मुझे जल्दी पहुँचा दो। घोड़े ने कहा—हे स्वामी ! कुँवे पर दातुन करो, बावड़ी में खूब मलमल कर नहा लो। मैं जल्दी ही पहुँचा दूँगा।'

गीतों में करुणा-रस

करुणा तो कविता की जननी ही है। जैसे कहानियों में अद्भुत रस प्रधान होता है, वैसे ही गीतों में करुणरस। मनुष्य के जीवन में साधारण से साधारण प्रसंग में भी काव्य रहता है। उसको प्रकट करना, उसे स्वादिष्ट बनाकर उसके लिये जनता में सुरुचि उत्पन्न करना गीतों की विशेषता है। गीतों में जैसा प्रभावोत्पादक करुणरस रहता है, वैसा किसी महाकाव्य में भी हमारे देखने या सुनने में नहीं आया। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, तुलसी या सूर किसी की कविता पढ़कर करुणरस से हम उतने प्रभावित नहीं होते, जितने गीतों से हुये हैं। वास्तव में जैसा भवभूति ने कहा है, करुणरस ही एक रस है, वही विषय-सम्बन्ध से अनेक रसों में परिवर्तित हो जाता है—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेवहि तत्समस्तम्॥

'रस एक ही है और वह करुणरस है। प्रकारान्तर से वही अनेक रूपों में प्रकट होता है। जैसे जल एक ही है, पर रूप-भेद के कारण वह भँवर, बुद्बुद, तरङ्ग आदि नाम धारण करता है।'

गीतों में करुणरस की महिमा स्पष्ट है। यहाँ करुणरस के कुछ गीत दिये जाते हैं—

छापक पेड़ छिउलिया त पतवन गहवर।
अरे रामा, तेहि तर ठाढ़ी हरिनिया त मन
अति अनमनि ॥१॥
चरतै चरत हरिनवा त हरिनी से पूँछइ।
हरिनी! की तोर चरहा झुरान कि पानी
विनु मुरझिउ ॥२॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी विनु मुरझिउँ।
हरिना! आजु राजाजी के छट्ठी तुहँ मारि
डरि हैं ॥३॥
मचियै वैठी कौसिल्या रानी हरिनी अरज करइ।
रानी! मसवा त सिझहिँ रोसइयाँ खलरिया
हमैं देतिउ ॥४॥
पेड़वा से टँगतिउँ खलरिया त हेरिफेरि देखितिउँ।
रानी! देखि देखि मन समुझाइत जनुक
हरिना जीतइ ॥५॥
जाहु हरिनी घर अपने खलरिया नाहीं देवइ।
हरिनी! खलरी क खँझड़ी मिढ़ उबइ त राम
मोर खेलिहइँ ॥६॥
जब जब वाजइ खँजड़िया सवद सुनि अनकइ।
हरिनी ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हरिन क
विसूरइ ॥७॥

'ढाक का एक छोटा सा घने पत्तों वाला पेड़ है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है। उसका मन बहुत बेचैन है ॥१॥

चरते-चरते हरिन ने पूछा—हे हरिनी ! तू उदास क्यों है ? क्या तेरा चरागाह सूख गया है ? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है ? ॥२॥

हरिनी ने कहा—हे प्रियतम ! न मेरा चरागाह ही सूखा है, और न पानी ही की कमी है। बात यह है कि आज राजा के पुत्र की छट्ठी है। आज तुम मारे जाओगे ॥३॥

रानी कौशल्या मचिया पर बैठी हैं। हरिनी ने उनसे विनती की—हे रानी ! हरिन का मांस तो आप की रसोई में सीझ रहा है, उसकी खाल आप मुझे दिलवा दें ॥४॥

मैं हरिन की खाल को पेड़ से टाँग दूँगी और उसे घूम-फिर कर देखूँगी। हे रानी। उसे देख-देखकर मैं मन को समझाऊँगी, मानो हरिन जीता ही है ॥५॥

कौशल्या ने कहा—हे हरिनी ! अपने घर जाओ। खाल नहीं मिलेगी। खाल की खँजड़ी बनेगी। मेरे राम उसे बजाकर खेलेंगे ॥६॥

उस खाल से बनी हुई खँजड़ी जब-जब बजती थी, तब-तब हरिनी कान उठाकर उसका शब्द सुनती थी और उसी ढाक के नीचे खड़ी होकर वह हरिन को बिसूरती थी ॥७॥

देखिये, यह गीत कैसा करुणरस से पूर्ण है।

हरिनी हरिन की खाल इसलिए माँगती थी कि वह उसे देख-देखकर हृदय को ढाढ़स देगी और 'हरिन जीता है' इस भ्रम को सत्य समझकर एक कल्पित सुख का अनुभव करेगी। मनुष्यों में कितनी ही ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो अपने मृत पति या पुत्र की चीजें बड़ी सावधानी से रख छोड़ती हैं और एकान्त में उन्हें देख-देखकर एक अद्भुत प्रकार का सुख अनुभव किया करती हैं।

अंत में हरिन के खाल की खँजड़ी बनी। खँजड़ी जब बजती थी, तब उसकी ध्वनि से हरिनी के हृदय में प्रेम का एक इतिहास जाग्रत होता था, और वह उसी इतिहास में लय हो जाती थी। कैसा मनोहर चित्र है! कैसी सहृदयता है! कौन ऐसा सहृदय है जो इस दृश्य को ध्यान में देखकर रो न दे।

शकुन्तला को बिदा करते समय महर्षि कण्व वृक्षों से कहते हैं—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्॥

'तुमको जल दिये बिना जो पहले जल पीने की इच्छा भी नहीं करती थी, पुष्पाभरण पसंद होने पर भी स्नेह-वश जो तुम्हारे पत्ते नहीं तोड़ती थी, तुम में जब पहले-पहल फूल निकलता था, तब जो उत्सव किया करती थी, वही शकुन्तला आज पति-गृह को जा रही है। हे वृक्षो! तुम सब जाने की आज्ञा दो।'

महर्षि कण्व ने यह बात किनसे कही? गूँगे वृक्षों और लताओं से, जो आजतक न कभी बोले है, न बोलेंगे। पर महर्षि की दृष्टि में वृक्ष भी मनुष्य का सा हृदय रखते थे, और वे भी वियोग का दुःख अनुभव कर सकते थे। प्रकृति के साथ ऐसी तन्मयता—ऐसी आत्मीयता हमें या तो कालिदास की रचना में देखने को मिलती है, या ग्राम-गीतों में।

अब पाठक ऊपर के गीत को एक बार फिर पढ़ जायँ। गीत की हरिनी की मूक वेदना मनुष्य के हृदय को हिला दे सकती है। यहाँ हरिनी के बहाने किसी सहृदया स्त्री ने अपना चित्र लाकर खड़ा कर दिया है। पशुओं के मन में किस समय क्या बात उठती है, यह हम मनुष्य लोग नहीं जान सकते। पर हमारे मन में जो-जो तरंगें उठती हैं, उन्हें हम पशुओं के मन में कल्पित करके उन तरङ्गों को अधिक

कोमल, मधुर और उत्तेजक बना लेते हैं। गीत बनाने वाली स्त्री ने यही काम किया है।

यह गीत छट्ठी के दिन गाया जाता है। इसकी लय सोहर की है। इस प्रकार के गीतों से स्त्रियाँ मनुष्य-जगत् में प्रेम और करुणा की शिथिल पड़ती हुई धाराओं को फिर प्रबल वेगवती बना देती हैं। विधाता की सृष्टि में स्त्रियाँ अद्भुत पदार्थ हैं।

एक और गीत सुनिये। इसमें माता के हृदय की व्यथा है।

सोने के खरउवाँ राजा राम कउसिला से अरज करइँ।
हुकुम न देउ मोरी मैया मैं बन क सिधारउँ॥
जौने राम दुधवा पिआयउँ घिऊ सेनि अवरेउँ।
अरे मोरा भितराँ से बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ॥
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव।
अरे रामा, सीता रानी हाथे कर चुरिया मैं कैसे बन भाखउँ॥
राम गए दुपहरिया लखन तिजहरियउँ।
सीता मोरी गईं सँझलौके मैं कैसे जियरा बोधउँ॥
पोयउँ मैं घिये क सोहरिया दुधे कर जाउरि।
अरे रामा, यतना जेंवन मोर बिलभा राम मोर बन गये॥
चारि मँदिल चारि दीप बरै हमरा अकेल बरइ।
रामा मोरे लेखे जग अँधियार राम मोर बन गए॥
भितराँ से निकसीं कउसिला नैनन नीर बहइ।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने बन होइहैं॥
घर घर फिरहिं कउसिला त लरिका बटोरहिं।
लरिकौ छन एक रचहु धमारि राम बिसरावउँ॥
राम बिना सूनि अजोध्या लखन बिन मन्दिल।
मोरी सीता बिन सूनी रसोइयाँ कइसे जिअरा बोधव॥

मंदिल दीप जरइबै औ सेजिया लगइबै।
रामा आधी रात होरिला दुलरबै जनुक राम घरहिन॥
सवना भदवना क दिनवा घुमरि घन बरसइँ।
रामा राम लखन दुनों भइया कतहुँ होइहैं भीजत॥
रिमिझि-झिमिक दयू बरसइ मोरे नाहीं भावइ।
दैवा वोहि वन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरिकन॥
राम क भीजे मटुकवा लखन सिर पटुका।
मोरी सीता क भीजे सेंदुरवा लवटि घर आवउ॥

'सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े रामचन्द्र अपनी माता कौशल्या से निवेदन कर रहे हैं—माँ आज्ञा दो न ? मैं वन को जाऊँ।

कौशल्य कहती हैं—जिस राम को मैंने दूध में घी औटाकर पिलाया, उसे वन जाने की आज्ञा कैसे दूँ ? मेरा भीतर से कलेजा फटा जा रहा है।

राम तो मेरे प्राण हैं; लक्ष्मण आँख की पुतली और सीता मेरे हाथ की चूड़ी। मैं इन्हें बन जाने को कैसे कहूँ ?।

राम दोपहर को, लक्ष्मण तीसरे पहर को और मेरी सीता रानी गोधूलि-वेला में वन को गईं। मैं कैसे धीरज धरूँ ?।

मैंने घी की पूरी पोई थी और दूध की खीर पकाई थी। हाय ! मेरे राम बन को चले गए। मुझे सारा भोजन विष-सा लगता है।

चारों मंदिरों में चार दीपक जल रहे हैं। मेरे मंदिर में एक ही जल रहा है। पर मेरे लेखे सारा संसार अंधकारमय लगता है। क्योंकि मेरे राम बन को चले गए।

कौशल्या भीतर से निकलीं। उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वह विसूर रही हैं—हाय ! राम, लक्ष्मण और सीता किस बन में होंगे ?।

कौशल्या घर-घर फिरकर लड़के जमा करती और कहती हैं—हे

लड़को ! तुम हिल-मिलकर कुछ देर खेलो-कूदो। जिससे मैं थोड़ी देर के लिये राम को भूल जाऊँ।

राम के बिना मेरी अयोध्या सूनी है, लक्ष्मण के बिना महल और सीता के बिना रसोईं। मैं कैसे धीरज धरूँ ?।

रात को मैं दीपक जलाऊँगी; सेज बिछाऊँगी; और आधी रात को अपने पुत्र को प्यार करूँगी। मानो मेरे राम घर ही में हैं।

सावन-भादों के दिन हैं। बादल घुम-घुमकर बरस रहे हैं। हाय ! राम, लक्ष्मण दोनों भाई कहीं भीगते होंगे।

यह बादल रिम-झिम बरस रहा है। मुझे अच्छा नहीं लगता। हे बादल ! तुम उस बन में जाकर न बरसना, जहाँ मेरे लड़के हैं।

राम का मुकुट भीग रहा है, लक्ष्मण का दुपट्टा। और मेरी सीता की माँग का सिंदूर भींग रहा है। तुम तीनों घर लौट आओ।

यह गीत करुण-रस से ओतप्रोत है। ऐसा हृदय-द्रावक वर्णन न तो वाल्मीकि ने किया है, न कालिदास और भवभूति ने, और न तुलसी और सूरदास ही ने। कौशल्या के दुःख का स्त्रियों ने बड़ी गहराई से अनुभव किया है। यही कारण है कि इस कविता में स्वाभाविकता यथेष्ट मात्रा में है; कोरी कवि की कल्पना नहीं है। राम के वन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने इतना सुन्दर नहीं किया है। न स्त्रियों के सिवा कोई कर ही सकता था।

करुण रस का एक गीत हम यहाँ और देते है। इस पुस्तक में इस एक ही विषय के दो तीन गीत हैं। हम सब में से थोड़ा-थोड़ा अंश लेंगे।

ननद भौजाई दुनौं पानी गईं अरे पानी गईं।
भौजी जौन रवन तुहैं हरि लेइ ग उरेहि देखावहु ॥ १॥
जौ मैं रवना उरेहौं उरेहि देखावउँ।
सुनि पैहैं बिरन तुम्हार त देसवा निकरिहैं॥ २॥

लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
भौजी लाख दोहइया लछिमन भइया जो भइया से बतावउँ॥ ३॥
मागौं न गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
ननदी समुहे कै ओवरी लिपावउ मैं रवना उरेहौं॥ ४॥
माँगिन गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
सीता समुहें के ओवरी लिपाइन रवना उरेहैं॥ ५॥
हँथवहु सिरजिन गोड़वहु नयना बनाइन।
आइ गये हैं सिरीराम अँचर छोरि मूँदेनि॥ ६॥
जेवन बैठें सिरीराम बहिन लोहि लाइन।
भइया जौन रवन तोर वैरी त भौजी उरेहैं॥ ७॥
अरे रे लछिमन भइया विपतिया कै साथी।
सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहै॥ ८॥
जे भौजी भूखे के भोजन नाँगे को वस्तर।
से भौजी गरुहे गरभ से मैं कैसे निकारौं॥ ९॥
अरे रे लछिमन भइया विपतिया के नायक।
सीता क देसवा निकारौ इ त रवना उरेहै॥१०॥
अरे रे भौजी सीतल रानी बड़ी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहँका नेवतवा विहान वन चलवइ॥११॥
ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर।
देवरा! ना रे जनक अस बाप मैं केहि के जइहौं॥१२॥
कोंछवा के लिहिन सरसइया छिटत सीता निकसीं।
सरसौ यहीं केअइहीं लछिमन देवरा कँदरियातोरि खइहीं॥१३॥
एक बन डाँकिन दुसर वन डाँकिन तिसरे बिन्द्रावन।
देवरा एक बुँद पनिया पिअउतेउ पिअसिया से व्याकुल॥१४॥
बैठहु न भौजी चँदन तरे चँदना विरिछ तरे।
भौजी पनिया क खोज करि आई त तुमकाँ पियाई॥१५॥

बहै लागी जुडुली बयरिया कदम जूड़ि छहियाँ।
सीता भुइयाँ परीं कुम्हिलाय पिअसिया से ब्याकुल ॥१६॥
तोरिन पतवा कदम कर दोनवा बनाइन।
टाँगिन लवँगिया के डरिया लछन चलें घरके ॥१७॥
सोये साये सीता जागीं झझकि सीता उठी हैं।
कहवाँ गये लछिमन देवरा त हमैं न बतायउ ॥
हिरदइया भरि देखतिउँ नजर भरि रोउतिउँ ॥१८॥
को मोरे आगे पीछे बैठइ को लट छोरै॥
को मोरी जगइ रइनिया त नरवा छिनावइ ॥१९॥
बन से निकरीं बन-तपसिन सितै समुझावैं॥
सीता हम तोरे आगे पीछे बैठब हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रइनिया त नरवा छिनउबै ॥२०॥
होत बिहान लोही लागत होरिल जनम भये।
सीता लकड़ी क करहु अँजोर संतति मुख देखहु ॥२१॥
तुम पुत भयहु बिपति में बहुतै सँसति में।
पुत कुसै ओढ़न कुस डासन बन-फल भोजन ॥२२॥
जो पुत होते अजोध्या में वही पुर पाटन।
राजा दसरथ पटना लुटौतें कौसिल्या रानी अभरन ॥२३॥
अरे रे हँकरौ न बन के नउअवा बेगिहिं चलि आवहु।
नउवा हमरा रोचन लै जाउ अजोध्यइ पहुँचावउ ॥२४॥
पहिले दिहौ राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तीसरे रोचन लछिमन देवरा पै पिऐ न जनायउ ॥२५॥
पहिले दिहिसि राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तिसरे लछिमन देवरा पै पिऐ न जनायसि ॥२६॥

राजा दसरथ दिहिन आपन घोड़वा कौसिल्या रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहिन पाँचौ जोड़वा विहँसि नउआ
घर चल्यौ ॥२७॥

चारिउ खूँट क सगरवा त राम दतुइन करैं।
भइया भहर भहर करै माथ रोचन कहँ पायउ।
भइया केकरे भये नँदलाल त जिया जुड़वायन ॥२८॥
भौजी तो हमरे सितल रानी बसहिं विन्द्रावन।
उनके भये हैं नंदलाल रोचन सिर धारेन ॥२९॥
हाथ क दतुइन हथ रहि मुख कै मुख रही।
ढुरै लागी मोतियन आँसु पितरवर भीजै ॥३०॥
हँकरौ न वन के नउआ वेगि चलि आवहु।
नउआ सीता के हलिया वतावहु सीतै लइ अउवै ॥३१॥
कुस रे ओढ़न कुस डासन वनफल भोजन।
साहव लकड़ी क किहिन अँजोर संतति मुख देखिन ॥३२॥
अरे रे लछिमन भइया विपतिया के नायक।
भइया एक वेर जातेउ मधुवन क भौजइआ लइ अउतेउ ॥३३॥
अजोध्या के चलि गयें मधुवन उतरें।
भौजी राम क फिरा है हँकार त तुम का वुलावैं ॥३४॥
जाउ लछन घर अपने त हम नाहिं जावै।
जौ रे जियैं नँदलाल तो उनहीं क वजिहैं ॥३५॥

'ननद और भौजाई दोनों पानी के लिए गईं'। रास्ते में ननद ने कहा—हे भौजी! जो रावण तुम्हें हर ले गया था, उसका चित्र वनाकर मुझे दिखाओ ॥१॥

भौजाई ने कहा—मैं रावण का चित्र वनाकर तुम्हें दिखाऊँ और तुम्हारे भाई सुन पायें, तो मुझे देश से निकाल देंगे ॥२॥

ननद ने कहा—मैं राजा दशरथ की लाख शपथ कर के, राम का

माथा छूकर और लक्ष्मण भाई की लाख क़सम खाकर कहती हूँ, भाई से न कहूँगी ॥३॥

भौजाई ने कहा—अच्छा, गंगाजल लाओ। और हे ननद! सामने की कोठरी लीप-पोतकर ठीक कर दो, तो मैं रावण का चित्र बना दूँ ॥४॥

गंगा-जल आया और सामने की कोठरी लिपाई गई। भौजाई ने रावण का चित्र बनाया ॥५॥

पहले हाथ बनाया; फिर पैर। फिर आँखें बनाईं। इतने में श्रीराम आ गये। सीता ने झटपट आँचल खोलकर उसे ढक लिया ॥६॥

श्रीराम भोजन करने बैठे। बहन ने चुगली खाई—हे भाई! रावण, जो तुम्हारा वैरी है, उसका चित्र भौजी ने बनाया है ॥७॥

राम ने कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे देश से निकाल दो ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—जो सीता भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र बाँटती है, और जिसे गर्भ भी है; मैं उसे देश से कैसे निकालूँ? ॥९॥

राम ने फिर कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे घर से निकाल दो ॥१०॥

लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी! हे सीता रानी! हे बड़ी ठकुराइन! मुझको और तुमको न्योता आया है। कल बन को चलेंगे ॥११॥

सीता ने कहा—हे देवर! मेरे न नैहर है, न ससुराल। न जनक ऐसा बाप ही है। मैं किसके यहाँ जाऊँगी? ॥१२॥

सीता आँचल में सरसों लेकर रास्ते में बखेरती हुईं निकलीं। इस विचार से कि लक्ष्मण इधर से आयेंगे, तो सरसों के मुलायम डंठल तोड़कर खायँगे ॥१३॥

एक वन को पार किया। दूसरे बन को पार किया। तीसरा वृन्दावन था। सीता ने कहा—हे देवर! प्यास लगी है। बहुत व्याकुल हूँ। एक बूँद पानी कहीं मिले, तो ले आओ ॥१४॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भौजी ! इस चंदन के वृक्ष के नीचे बैठ जाओ । मैं खोजकर पानी ले आऊँ, तब तुमको पिलाऊँ ॥१५॥

ठंडी हवा बहने लगी । कदम्ब की छाया शीतल थी ही । सीता प्यास से व्याकुल होकर, कुम्हलाकर, धरती पर लेट गईं ॥१६॥

लक्ष्मण पानी लेकर लौटे । कदम्ब के पत्ते का दोना बनाकर, उसमें पानी भरकर लक्ष्मण ने उसे लवंग की डाल से लटका दिया और स्वयं घर का रास्ता लिया ॥१७॥

सीता सो-साकर झिझक कर उठीं । उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण देवर ! तुम कहाँ गये ? मुझे नहीं बताया । तुमको मैं जी-भरकर देख तो लेती और तुमको देखकर आँख भरकर रो तो लेती ॥१८॥

हाय ! यहाँ वन में मेरे आगे-पीछे कौन बैठेगा ? कौन मेरी लट खोलेगा ? कौन मेरी रात जागेगा ? और कौन बच्चे की नाल काटेगा ?॥१९॥

सीता का विलाप सुनकर वन की तपस्विनियाँ निकलीं । वे सीता को समझाने लगीं—हे सीता ! हम तुम्हारे आगे-पीछे रहेंगी । हम तुम्हारी लट खोलेंगी । हम तुम्हारी रात जागेंगी और हम बच्चे की नाल काटेंगी ॥२०॥

सवेरा हुआ । पौ फटते ही बालक का जन्म हुआ । तपस्विनियों ने कहा—हे सीता ! लकड़ी जलाकर उसके उजाले में अपने बच्चे का मुँह तो देखो ॥२१॥

सीता बच्चे से कहने लगीं—हे बेटा ! तुम विपत्ति में पैदा हुये हो । कुश ही तुम्हारा ओढ़ना, कुश ही बिछौना और वन-फल ही तुम्हारा आहार है ॥२२॥

हे पुत्र ! यदि तुम अयोध्या में पैदा हुये होते, तो आज राजा दशरथ सारा शहर और रानी कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥२३॥

अरे ! वन के नाई को बुलाओ न ? जल्दी आवे । हे नाई ! मेरा रोचन अयोध्या पहुँचाओ ॥२४॥

पहले राजा दशरथ को देना। दूसरे कौशल्या रानी को देना। तीसरे देवर लक्ष्मण को देना। पर मेरे पति को न बताना ॥२५॥

नाई ने पहले राजा दशरथ को दिया। फिर कौशल्या को और फिर लक्ष्मण को। पर राम को नहीं जनाया ॥२६॥

राजा दशरथ ने नाई को अपना घोड़ा दिया। कौशल्या ने गहना दिया। लक्ष्मण ने पाँचो जोड़े (पगड़ी, अँगरखा, दुपट्टा, धोती और जूता) दिये। नाई खुशी से हँसता हुआ घर लौटा ॥२७॥

चौकोर बड़े तालाब के किनारे राम दातुन कर रहे थे। इतने में लक्ष्मण आ गये। उनके माथे पर रोचन का तिलक देखकर राम ने पूछा—हे भाई! तुम्हारा माथा खूब दमक रहा है। यह रोचन कहाँ से आया? किसके पुत्र हुआ है? पुत्र ने किसका हृदय शीतल किया है? ॥२८॥

लक्ष्मण ने कहा—मेरी भौजी सीता रानी, जो वृन्दाबन में रहती हैं, उनके पुत्र हुआ है। उसी का रोचन मैंने माथे पर लगाया है ॥२९॥

यह सुनते ही राम के हाथ की दातुन हाथ ही में और मुँह की दातुन मुँही में रह गई। राम की आँखों से मोती ऐसे आँसू ढुलने लगे और उनका पीताम्बर भीगने लगा ॥३०॥

राम ने कहा—वन का नाई कहाँ गया? बुलाओ। हे नाई! सीता का समाचार मुझे सुनाओ। मैं सीता को ले आऊँगा ॥३१॥

नाई ने कहा—हे मालिक! कुश का ओढ़ना, कुश का बिछौना और बन-फल का आहार है। सीता ने लकड़ी का उजाला करके तब अपने पुत्र का मुँह देखा है ॥३२॥

राम ने कहा—हे मेरे विपत्ति के नायक भाई लक्ष्मण! एक बार तुम मधुबन जाओ और अपनी भौजाई को ले आओ ॥३३॥

लक्ष्मण अयोध्या से चलकर मधुबन में उतरे। लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी! तुम को राम ने बुलाया है ॥३४॥

सीता ने कहा—हे लक्ष्मण ! तुम लौट जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। यदि मेरे लाल जीते रहेंगे, तो ये उन्हीं के कहलायेंगे ॥३५॥

लक्ष्मण के मनाने पर भी जब सीता नहीं आईं, तब राम ने वशिष्ठ को भेजा।

राम ने कहा—

अरे रे गुरू वसिष्ठ मुनि पैयाँ तोरी लागौं।
गुरु तुमरे मनाये सीता अइहीं मनाय लै आवहु ॥

वशिष्ठ मनाने गये। वे सीता के पास पहुँचे।

पतवा क दोनवा बनाइन गंगाजल पानी।
सीता धोवैं लागीं गुरुजी के चरन औ मथवा चढ़ावैं ॥

सीता से पूजित होकर गुरु परम प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा—

यतनी अकिलि सीता तोहरे तु बुधि कै आगरि।
सीता किन तुम हरा है गेयान राम बिसरायउ ॥

सीता ने कहा—

सब कै हाल गुरू जानौ अजान बनि पूछौ।
गुरु ! अस कै राम मोहिं डाहेनि कि कैसे चित मिलिहै ॥
अगिया में राम मोहिं डारेनि लाइ भूँजि काढेनि।
गुरु गरुए गरभ से निकारेनि त कैसे चित मिलिहै ॥

सीता गुरु के मनाने से भी नहीं आईं। तब राम स्वयं गये। वन में जाकर उन्होंने देखा कि दो बालक गुली-डंडा खेल रहे हैं। राम ने उनसे पूछा—

केकर तू पुतवा नतिअवा केकर हो भतिजवा।
लरिकौ कौनी मयरिया कै कोखिया जनमि जुड़वायउ ॥

लड़कों ने कहा—

बाप क नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो।
हम राजा जनक के हैं नतिया सीता कै दुलरुआ हो ॥

यह सुनकर राम की क्या दशा हुई ?

यतना बचन राम सुनलेनि सुनहू न पउलेनि।
रामा तरर तरर चुवै आँसु पटुकवन पोंछइँ॥

आगे ऋषि की कुटी थी। उसके सामने कदम्ब का सुन्दर वृक्ष था, जिसके नीचे सीता बैठकर केश सुखा रही थीं। राम जाकर उनके पीछे खड़े हो गये। सीता ने पलटकर देखा तो राम खड़े हैं। राम ने कहा—

रानी छोड़ि देउ जियरा बिरोग अजोधिया बसावउ।
सीता तोरे बिन जग अँधियार त जिवन अकारथ॥

सीता ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

सीता अँखियाँ में भरलीं बिरोग एकटक देखिन।
सीता धरती में गईं समाय कुछौ नाहीं बोलिन।

ऐसा कौन सहृदय है जो इस गीत को पढ़कर रो न दे। सारे गीत में कई स्थल ऐसे हैं, जहाँ हृदयवान् मनुष्य रोये बिना नहीं रह सकता। पहला हृदय-विदारक दृश्य वह है, जब सीता ने लकड़ी का उजाला करके अपने नवजात शिशु का मुँह देखा था। उस अवसर पर माता का विलाप पत्थर को भी पिघला देनेवाला है। और 'पियहिं न बतायउ' में क्या कम अनुताप छिपा हुआ है ? निर्दोष और मनस्विनी सीता का आत्माभिमान उसी 'पियहिं न बतायउ' के पिटारे में कसकर बंद है।

दूसरा करुणा का स्रोत खोल देनेवाला दृश्य वह है जब राम ने गुल्ली-डंडा खेलनेवाले लड़कों से उनके पिता का नाम पूछा था। लड़कों ने कहा—हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। राम के हृदय पर यह सोचकर कैसी गहरी चोट लगी होगी कि मनस्विनी सीता ने लड़कों को उनके पिता का नाम नहीं बताया था। तीसरा दृश्य वह है, जब सीता राम को एकटक देखती हुई बिना कुछ बोले धरती में समा गईं। इस एकटक देखने और कुछ न बोलने ही में सीता ने सब कुछ कह डाला।

करुण-रस का जैसा सुन्दर चित्र इस गीत में है, वैसा किसी महा

कवि की कविता में नहीं मिलता। भवभूति की कविता में भी नहीं।

उर्दू-कविता में करुणरस बहुत है। पर उसमें दिमाग़ का खेल ज़्यादा है, हृदय की सच्ची तड़प बहुत ही कम। मीर का एक शेर हमें याद है, जो तत्काल एक करुण दृश्य सामने खड़ा कर देता है—

शाम ही से बुझा सा रहता है।
दिल हुआ है चिराग़ मुफ़लिस का॥

दिल का तो हमें पता नहीं, पर गरीब का चिराग शाम ही से बुझा-सा रहता है, यह हम जानते हैं।

पर—

खल्क कहता है जिसे दिल तेरे दीवाने का।
एक गोशा है ये आलम उसी वीराने का॥

फानी

× × ×

किसी ने बात न पूछी दिले शिकस्ता की।
कोई ख़रीद के टूटा पियाला क्या करता?

आतश

× × ×

दिल वह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके।
पछताओगे, सुनो हो, ये बस्ती उजाड़ के॥

याद

× × ×

शबे हिज्र थी और मैं रो रहा था।
कोई जागता था कोई सो रहा था॥

× × ×

अब के जनूँ में फ़ासला शायद न कुछ रहे।
दामन के चाक और गरेबाँ के चाक में॥

इन शेरों को पढ़कर या सुनकर मुँह से केवल 'वाह' 'वाह' निकल सकता है, दिल से आह नहीं। क्योंकि इनमें कहने का चमत्कार है, शब्दों का हेर-फेर है, हृदय की अनुभूत वेदना नहीं।

गीतों की भाषा

गीतों की भाषा बिल्कुल सीधी-सादी और सुगम होती है। उसमें न व्याकरण का चमत्कार होता है, न शब्दों का लालित्य ही। शब्दों की लीला जैसी संस्कृत में, मोरोपन्त की मराठी केकावलि में और हिन्दी के कुछ प्राचीन कवियों की कविता में देखने को मिलती है, गीतों में कहीं उसकी गंध भी नहीं होती।

यथा नयति कैलासं नगं गानसरस्वती।
तथा नयति कैलासं न गंगा न सरस्वती।

रागार्णव

× × ×

असुतरां सुतरां स्थितिमुन्नतामसुमतां सुमतां महतां वहन्।
उरुचितैरुचितैर्मणिराशिभिः स्वरुचितैरुचितैरवभात्ययम्॥

धनञ्जय

× × ×

कृपा करिशि तूं जगत्रयनिवास दासांवरी।
वशी प्रकट हे निजाश्रितजनां सदा सांवरी॥

मोरोपंत—केकावलि

× × ×

वसुधाधर में वसुधाधर में औ सुधाधर में त्यों सुधा में लसै।
अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अलिवृन्दन में अतिसै सरसै॥
हिय हारन में हर हारन में हिमि हारन में रघुराज लसै।
ब्रजवारन वारन वारन वारन वारन वार वसंत बसै॥

रघुराजसिंह

शब्दों का ऐसा खेल गीतों में नहीं मिलेगा। जो गीत जिस प्रांत का है, वह वहाँ की सरल से सरल भाषा में है। उसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जो हरवक्त सर्वसाधारण की जीभ पर रहते हैं और जिनके लिये कोष के पन्ने उलटने की जरूरत नहीं पड़ती।

क्या ही अच्छा होता, यदि हम राजशेखर के शब्दों में प्राकृत के स्थान पर गीतों की भाषा के लिये यह कह सकते—

यद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां
जिह्वासु यन्मोदते।
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटु—
र्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णपदं पदं रतिपते—
स्तत्प्राकृतं यद्वच—
स्तांल्लाटाँल्ललितांगि पश्य नुदती—
दृष्टेर्निमेषव्रतम्॥

राजशेखर

'संस्कृत भाषा जिससे निकली है, सुलोचनाओं की जिह्वा पर जो आनन्द करती है, जिसके सुन लेने पर अन्य भाषा के अक्षर कठोर जान पड़ते हैं, जिसके असमस्त पद्य गद्य कामदेव का स्थान है, वह प्राकृत जिनकी बोली है, हे ललित अंगोंवाली! उस लाट देश को देखो। उसे देखने के लिये पलक भाँजना भूल जाओ।'

गीतों में प्रकृति-प्रेम

संस्कृत-कवियों में वाल्मीकि का प्रकृति-प्रेम अनुपम है। वन, पर्वत, समुद्र, हरियाली, उपत्यका और तरंग देखकर उनके हृदय में अपार आनंद उमड आता रहा होगा। रामायण में वृक्ष, लता और फूल-पत्तों का जहाँ कहीं नाम आया है, वहाँ वाल्मीकि कुछ सुन्दर विशेषणों से

उन्हें भूषित करने में नहीं चूके हैं। प्रकृति के लिये इतना अनुराग और किसी कवि में दिखाई नहीं पड़ता।

एक साधारण सी घटना है। सुग्रीव ने राम को बैठने के लिये साल-वृक्ष की एक शाखा दी। वाल्मीकि ने उस शाखा के साथ पर्ण-बहुलां और सुपुष्पिता दो विशेषण जड़ दिये। हनुमान् ने लक्ष्मण को बैठने के लिये चन्दन की एक शाखा दी। वाल्मीकि ने उसके साथ परमपुष्पिता शब्द जोड़कर अपने परम पुष्पित हृदय का परिचय दिया है।

ततः स पर्णबहुलां भङ्क्त्वा शाखां सुपुष्पिताम्।
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः॥
लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्प्लवगर्षभः।
शाखां चन्दनवृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम्॥

'तब सुग्रीव बहुत पत्तोंवाली, अच्छे फूलों से युक्त साल-वृक्ष की शाखा तोड़कर और बिछाकर राम के साथ बैठ गये।'

'वानरों में श्रेष्ठ हनुमान ने प्रसन्न होकर अति पुष्पित चन्दन वृक्ष की शाखा लक्ष्मण को (बैठने के लिये) दी।'

ठीक ऐसी ही दशा गीतों की है। गीत-रचयिताओं के हृदय में भी प्रकृति के लिये अपार अनुराग है। शायद ही कोई गीत ऐसा हो, जिसमें प्रकृति के लिये कुछ न कहा हो। स्थानाभाव से यहाँ थोड़े ही उदाहरण दिये जाते हैं—

जौ मैं जनतेउँ ये लवँगरि एतनी महँकबिउ।
लवँगरि, रँगतेउँ छयलवा क पाग सहरवा में महकत॥

× × ×

ससुरु दुअरवाँ जँम्हिरिया त लहर लहर करै, महर महर करै।
मोरे साहब अँगनवाँ रस चूवइ त जच्चा रानी भीजैं॥

× × ×

मोरे पिछवरवाँ लवँगिया की बगिया लवँगा फूलै आधी राति रे ।
तेहि तर उतरैं दुलहा दुलरुवा तुरहीं लवँगिया के फूल ॥

× × ×

आधे तलवा माँ हंस चूनैं आधे में हंसिनि ।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन ॥

× × ×

झिलमिल बहेला बयार पवन भल डोलि रही ।
डोले नवरँगिया क डार कोइलिया कुहुकि रही ॥

× × ×

बेइलि एक हरि लायनि दुधवा सिँचायनि ।
आप हरि भयें बनजारा बेइलि कुम्हिलानि ॥

× × ×

सावन मेहँदी बोवायउँ रे भादौं माँ दुइ दुइ पात ।
सैंयाँ मोरा छाये रे, बिदेसवाँ रे सीचौं मैं नयन निचोर ॥

× × ×

आधी फुलवरिया गुलबवा आधी में केवड़ा गमकइ ।
तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिनु ॥

× × ×

उवहु सुरुज मनि उवहु सुरुज मनि तुम बिन जग अँधियार ।
तुम बिन गौवाँ खरिकवा न लइहैं अहिरा दुहन नहिं जाय ॥

× × ×

छोटी मोटी तुलसी गछिया लम्बी लम्बी पतियां
फरे फूले तुलसी सुहावन रे खी ।

× × ×

अमवा महुलिया घन पेड़ तेही रे बीचे राह परी ।
रामा तेहि बिच ठाढ़ी एक तिरिया मनै माँ वैराग भरी ॥

× × ×

गीतों में चन्दन, लौंग, नीबू, नारंगी, आम, महुवा, कदम्ब, कोयल, पपीहा, तोता, मैना, श्यामा, हंस, हरिण, हरिणी, कमल, गुलाब, चमेली, केवड़ा तालाब आदि का वर्णन सर्वत्र मिलता है।

स्वाभाविकता

स्वाभाविकता कविता का प्राण है। गीतों में चाहे करुण रस हो, चाहे प्रेम या विरह; सब स्वाभाविकता की सीमा के अन्दर हैं। इसीसे गीत सीधे हृदय तक पहुँच जाते हैं। मस्तिष्क के पेंचीले रास्ते से गुज़रने की उन्हें जरूरत नहीं पड़ती। गुजरात के सुप्रसिद्ध विद्वान्, सत्याग्रहाश्रम (साबरमती) के एक रत्न कालेलकर का कथन है—

आजनो युग अत्यन्त कृत्रिम छे. आपणी भाषा, आपणा रिवाज, आपणो विवेक, आपणा हेतु, आपणी नीति-मत्ता, आपणुँ जीवन बधुँज कृत्रिम थई गयुँ छे. खुल्ली हवामाँ उघाड़े दिले फरताँ के सूताँ जेम आपणे लाजिए छीए अने डरिए छीए तेम सामाजिक, राजकीय अने कौटुम्बिक व्यवहारो माँ पण स्वाभाविक थवानी आपणी हीँमत नथी चालती, जाणे स्वाभाविकतामाँ मोत के सत्यानाशज रहेलुँ होय. लोक-साहित्यना अध्ययन थी—तेना पुनरुद्धार थी आपणे आ कृत्रिमतानुँ कवच तोड़ी शकशुं, अने स्वाभाविकतानी शुद्ध हवामाँ हरी फरी शकवा जेटली शक्ति केलवी शकशुं. स्वाभाविकतामांज आत्म-शुद्धि थवी शक्य छे. कृत्रिमतामां दंभ पाखंड अने अधर्म वधे छे. कृत्रिमता हमेशां आशा तो बहु बतावे छे, पण ते आशानी पूर्तिने नामे शून्य।'

'आज का जमाना अत्यन्त कृत्रिम है। अपनी भाषा, अपना रिवाज, अपना विवेक, अपना हेतु, अपनी नीतिमत्ता, अपना जीवन सभी कृत्रिम हो गये हैं। खुली हवा में उघाड़े फिरने या सोने में जैसे हम लोग लजाते हैं, और डरते हैं, वैसे ही सामाजिक, राजकीय और कौटुम्बिक व्यवहारों में भी स्वाभाविक होने की हमारी हिम्मत नहीं पड़ती,

मानो स्वाभाविकता में मृत्यु या सत्यानाश का भय है। ग्राम-साहित्य के अध्ययन से—उनके उद्धार से हम कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में हिर-फिरकर यथेच्छ शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। स्वाभाविकता ही में आत्म-शुद्धि संभव है। कृत्रिमता से दंभ, पाखंड और अधर्म बढ़ता है। कृत्रिमता सदा आशा तो बढ़ाती है, पर कभी उसकी पूर्त्ति नहीं होती।'

वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, सूर और तुलसी की कविता में स्वाभाविकता की मात्रा यथेष्ट है। इसीसे समाज में उनका आदर भी यथेष्ट है। इनमें भी सब से अधिक स्वाभाविकता वाल्मीकि की कविता में है। अस्वाभाविकता ने कवियों को मिथ्या-भाषी बना दिया है। कविता में स्वाभाविकता हृदय को कितनी प्यारी लगती है, यह दिखाने के लिये संस्कृत और हिन्दी के कुछ पद्य तथा ग्राम-गीत यहाँ दिये जाते हैं—
वररुचि कहते हैं—

हस्ते कपोलममलं पथि चक्षुर्मनस्त्वयि।

'सुन्दर कपोल हाथ पर है, आँखें मार्ग पर हैं और मन तुझ में है।'

कैसा स्वाभाविक वर्णन है। यदि इसी में कुछ कल्पना मिला दी जाती, तो यह रस न रह जाता।

शीला भट्टारिका की एक उक्ति है—

प्रियविरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते॥

'मैं प्रिया से रहित हूँ, इससे चिन्ता हृदय में आगई। यह देखकर निद्रा चली गई। कृतघ्नों का साथ कौन देता है?'

चिन्ता के आने पर निद्रा का चली जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। इससे एक नैतिक परिणाम निकालकर सुचतुरा कवयित्री ने स्वाभाविकता को अधिक मधुर कर दिया है।

शकुन्तला में कण्व के मुख से कालिदास कहते हैं—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया।
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिरनिशं चिन्ताजडं दर्शनम्॥
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

शकुन्तला

'आज शकुन्तला जायगी। इससे मेरा हृदय उत्कंठित हो गया है। गले में वाष्प के रुक जाने से आवाज़ नहीं निकलती। आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैं बनवासी हूँ, फिर भी स्नेह के कारण इतना व्याकुल हो गया हूँ। तब संसारी जन कन्या के नवीन वियोग-दुःख से क्यों पीड़ित न होते होंगे।'

अवश्य ही होते हैं। ग्राम-गीतों में बेटी की विदा के बाद स्नेह-विह्वल पिता के बहुत से वर्णन मिलते हैं।

भास ने स्त्री का कैसा सच्चा वर्णन किया है!—

दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या
हृष्टे प्रहृष्टा तथा।
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे
पथ्यं वचो भाषते॥
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा
मत्संस्तवे राज्यति।
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः
सैका बहुत्वं गता॥

'मेरे दुःखित होने पर जो दुःखी होती है, और हर्षित होने पर हर्षित होती है। मेरी दीनता में जो दीन हो जाती है। मेरे क्रोध के समय जो कोमल बातें करती है। समय समझती है। समझदारी की बातें करती है। और मेरे मित्रों पर अनुराग करती है। वह एक ही भार्या मंत्री, सखा, नौकर रूप से अनेक हो गई है।

व्यास कहते हैं—

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।

एक अंग्रेज़ी कवि ने भी स्त्री का ऐसा ही मनोहर वर्णन किया है—

A wife is half the man, his truest friend—
A loving wife is a perpetual spring
A virtue, pleasure, wealth; a faithfnl wife
Is his best aid in seeking heavenly bliss;
A sweetly speeking wife is a companion
In solitude; a father in advice;
A mother in all seasons of distress;
A rest in passing through lifes wilderness.

'स्त्री मनुष्य की अर्द्धांङ्गिनी है, उसका बहुत ही सच्चा मित्र है। प्रेम करनेवाली स्त्री एक शाश्वत बसंत, पवित्रता, आनंद और लक्ष्मी है। वफ़ादार स्त्री स्वर्गीय आनंद को प्राप्त करने के लिये एक श्रेष्ठ सहायिका है। मधुर-भाषिणी स्त्री एकान्त की एक संगिनी है। शिक्षा देने के लिए पिता के समान है। हरप्रकार के दुःखों में माँ के समान है और जीवन के बयाबान को पार करने में एक विश्राम है।'

भवभूति ने स्वाभाविक करुण-रस की रचना में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं रक्खा। बन में निकाली हुई सीता राम को देख रही हैं। उनके नेत्रों में आनंद और शोक दोनों है। भवभूति ने सीता की दृष्टि का बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है—

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-
प्रभवमवसृजन्ती तृष्णयोत्तानदीर्घा।
स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलबहलमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः॥

उत्तररामचरित

'आनन्द और शोक से उत्पन्न हुये आँसुओं से भरी हुई, सतृष्ण, खूब फूले हुये, स्नेहपूर्ण, स्वच्छ और विमोहित तुम्हारी दृष्टि दूध की नदी की तरह प्राणनाथ को स्नान करा रही है।'

कालिदास रघुवंश में राम के मुख से सीता को सम्बोधन कराके कहलाते हैं—

अत्रावियुक्तानि रथांगनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि॥

'यहीं पम्पासर पर मैंने अवियुक्त चक्रवाक-दम्पति को देखा था। वे आपस में एक दूसरे को कमल-केसर दे रहे थे। तुम से दूर रहने वाला मैं उनको बडी स्पृहा से देखता था।'

चक्रवाक-दम्पति को देखकर सीता-वियोगी राम की विह्वलता स्वाभाविक है। कालिदास की रचना मे स्वाभाविकता की मात्रा बहुत अधिक है। इसी से वह प्रिय भी है।

सोमदेव भट्ट कहते हैं—

विधुरप्यर्कति चन्दनमनलति मित्राण्यपि रिपवन्ति।
विधुरे वेधसि खिन्ने चेतसि विपरीतानि भवन्ति॥

'हृदय के खिन्न होने पर सब विपरीत हो जाते हैं। चन्द्रमा सूर्य के समान, चन्दन अग्नि के समान, और मित्र शत्रु के समान हो जाते हैं।'

सुख और दुःख तो हृदय में है। हृदय प्रसन्न होता है तो सारा संसार हँसता-सा दिखाई देता है। खिन्न होता है, तो जगत् उदास दिखाई पड़ता है।

हर्षदेव कहते हैं—

प्रविशामि किमंगेषु भवतीं निगरामि किम्।
चिरेण गतलब्धासि न जाने करवाणि किम्॥

'मैं तुम्हारे अंगों में प्रविष्ट हो जाऊँ? या तुमको निगल जाऊँ? बहुत दिनों पर तुम मिली हो, जानता नहीं, मैं क्या करूँ?'

सच है, प्रेम के आधिक्य से ऐसी ही दशा होती है।

एक कोई कवि किसी विरहिणी का वर्णन करता है—

अद्यापि हि नृशंसस्य पितुस्ते दिवसो गतः।
तमसा पिहितः पन्था एहि पुत्रक शेवहे॥

'आज का दिन भी बीत गया। फिर भी तुम्हारा निष्ठुर पिता नहीं आया। मार्ग अंधकार से छिप गया। अब क्या आवेंगे? आते भी होंगे तो कहीं ठहर गये होंगे। चलो, बेटा! सो रहें।'

यह वर्णन विरहिणियों के अनेक अस्वाभाविक वर्णनों से कहीं अधिक सत्य और सहृदय रसिक के हृदय में करुण-रस उत्पन्न करने वाला है।

संस्कृत का एक कवि किसी विरही का वर्णन करता है, जिसने आत्म-हत्या कर ली थी—

ग्रामेस्मिन्पथिकाय पान्थ वसतिर्नैवाधुना दीयते।
रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा।
तेनोद्गीय खलेन गर्जति घने स्मृत्वा प्रियां तत्कृतं।
येनाद्यापि करङ्कदण्डपतनाशङ्की जनस्तिष्ठति।

'हे पथिक! इस गाँव में आजकल यात्रियों को ठहरने का स्थान नहीं दिया जाता। क्योंकि कल रात में यहाँ मठ में एक युवा पुरुष सोया था। मेघ का गर्जन सुनकर, अपनी प्रियतमा का स्मरण करके उसने गाया और फिर उसने जो किया उसका स्मरण करके यहाँ वाले आज भी भय-भीत हैं।'

कवि ने अपने वर्णन-चमत्कार से स्वाभाविकता को अधिक सुन्दर बना दिया है।

एक कवि मारवाड़ के एक पति-पत्नी का वर्णन करता है—

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुद्वीक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां।
तन्वङ्ग्या परितोषबाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे॥

दत्वा पीलुशमीकरीरकवलं स्वेनाञ्चलेनादरात् ।
उन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभारावलग्नं रजः ॥

'पति आया है । दुर्गम मारवाड़ की भूमि से आने की कठिनाई को विचार कर सुन्दरी ने प्रसन्नता के आँसुओ के कारण चञ्चल नेत्रों से उस ऊँट का मुँह देखा । उसने पीलु, शमी और करीर आदि की पत्तियों का ग्रास बनाकर उसे दिया और आँचल से उसके कंधे की धूल साफ़ की ।'

जो अपने प्रियतम को ले आया, सुन्दरी ने उसका सत्कार सब से पहले किया । शुद्ध प्रेम का तो यह स्वभाव ही है ।

एक कवि प्रभात-काल का वर्णन करता है—

विरलविरलीभूतास्तारा: कलाविव सज्जना ।
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः ॥
व्यपसरित च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनो ।
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव ॥

'कलियुग में जिस प्रकार सज्जन थोड़े रह जाते हैं, उसी प्रकार आकाश मे तारे थोड़े रह गये । मुनि के मन के समान समस्त आकाश स्वच्छ हो गया । सज्जनों के चित्त से जिस प्रकार दुर्जन हट जाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार हट गया है । और उद्यमहीनों की लक्ष्मी की तरह रात्रि नष्ट हो गई है ।'

कवि ने यहाँ प्रभात के वर्णन के बहाने काव्य-रसिकों के हृदयों में उत्तम गुणों के विकसाने का प्रयत्न किया है । प्रभात के विषय में स्व० कुमारी तोरूदत्त की एक कविता भी बड़ी मधुर है—

Still barred thy doors ! The far east glows,
The morning wind blows fresh and free,
Should not the hour that wakes the rose,
Awaken also thee ?
All look for thee, Love, Light and Song,

Light in the sky deep red above,
Song, in the lark of pinions strong,
And in my heart true Love.

'तेरा द्वार अभी तक बन्द है। पूर्व दिशा चमक रही है। सवेरे की ताजी और स्वच्छन्द हवा बह रही है। जो घड़ी गुलाब को जगाती है, क्या वह तुझे नहीं जगायेगी ?

प्रेम, प्रकाश और गीत, सब तेरी राह देख रहे हैं। प्रकाश गहरे लाल आकाश में, गीत लार्क पक्षी में, और शुद्ध प्रेम मेरे हृदय में।'

कैसा सरल, मधुर और स्वाभाविक वर्णन है ? कहीं कृत्रिमता की झलक नहीं।

एक कवि एक ग़रीब पथिक का चित्र खींचता है—

मातर्धर्मपरे दयां मयि कुरु श्रान्तेऽद्य वैदेशिके।
द्वारालिन्दककोणकेऽथ निभृतं यातास्मि सुप्त्वा निशि॥
इत्युक्ते सहसा प्रचण्डगृहिणीवाक्येन निर्भर्त्सितः।
स्कंधन्यस्तपलालमुष्टिविभवः पान्थः पुनः प्रस्थितः॥

'हे धर्मात्मा माता ! मुझ पर दया करो। मैं थका हुआ हूँ। द्वार के चौकठ के कोने में रात भर सोकर मैं चला जाऊँगा। यह कहने पर प्रचण्ड गृहिणी के द्वारा दुत्कारा हुआ वह पथिक, जिसके पास कंधे पर मुट्ठी भर पुआल ही का धन था; वहाँ से चला गया।'

क्या इसे पढ़कर हृदय में तत्काल करुणा उत्पन्न नहीं होती ? इसमें अलङ्कार हो या न हो, पर रस तो है।

बस, स्वाभाविकता का प्रभाव दिखलाने के लिये इतने प्रमाण कम नहीं हैं।

गीत तो ऐसे स्वाभाविक वर्णनों से भरे पड़े हैं।

एक विरहिणी कहती है—

अरे अरे कारी बदरिया तुहइँ मोरि बादरि।
बदरी! जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाय॥

सावन का महीना आया। घटा देखकर पति को अपनी विरहिणी स्त्री की याद आई। वह घर आया। स्त्री द्वार बंद किये हुये सो रही थी। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा—तुम कुत्ते हो या बिल्ली? या मेरे ससुर के पहरेदार?

पति कहता है—

ना हम कुक्कुर बिलरिया न ससुर पहरिया।
धन! हम अहीं तोहरा नयकवा बदरिया बुलायसि॥

'न मैं कुत्ता हूँ, न बिल्ली। न तुम्हारे ससुर का पहरेदार ही हूँ। हे मेरी प्यारी स्त्री! मैं तुम्हारा पति हूँ। मुझे घटा बुला लाई है।'

'बदरिया बुलायसि' में कितना माधुर्य है! कैसी स्वाभाविकता है! हृदय का कैसा सुन्दर चित्र है!

कालिदास ने मेघदूत में मेघ से कहलाया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि॥

'मेरे गर्जन में यह गुण है कि वह परदेशियों को तुरन्त अपने-अपने घर जाने का चाव दिलाती है, और उनके मन में उत्सुकता पैदा करती है कि वे अपने घर पहुँचकर, अपनी स्त्री की वेणी खोलें।'

कालिदास ने जो बात एक वैज्ञानिक की तरह कही, वही बात गीत में कवि की कही हुई-सी है।

एक गीत में रुक्मिणी और कन्हाई का कथोपकथन, देखिये, कितना रसीला हुआ है—

गहिरी जमुनवाँ के तिरवाँ चनन गाछ रुखवा हो।
तिन डरिया पर हैं हिंडोलवा झुलहिं रानी रुकुमिनि हो॥१॥

झुलतहिं झुलत अबेर भा है औरौ देर भा है हो।
मोरा टूटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर हो ॥२॥
धावउ बहिनि चकैया तूँ हाली बेगि आवउ हो।
चकई ! चुनि लेव मोतिन क हार जमुन जल भीतर हो ॥३॥
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी ! सँझवै से चकवा हेरान ढूँढ़त नहिँ पावउँ हो ॥४॥

'गहरी नदी जमना के किनारे चन्दन का एक घना वृक्ष है। उसकी डाल पर हिंडोला पड़ा है। उस पर रानी रुक्मिणी झूल रही हैं ॥१॥

झूलते-झूलते बहुत देर हो गई। यकायक उनका मोती का हार टूट गया और मोती यमुना के जल में जा गिरे ॥२॥

रुक्मिणी ने चकई से कहा—हे चकई बहन ! जल्दी दौड़कर आओ, और मेरे हार के मोतियों को यमुना के भीतर से चुनकर निकाल दो ॥३॥

चकई स्वयं चकवा के वियोग में व्याकुल हो रही थी। उसने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर वज्र गिरे। साँझ ही से मेरा चकवा खो गया है। मैं ढूँढ़ रही हूँ और पाती नहीं हूँ ॥४॥

प्रियतम की खोज से बढ़कर संसार में और ज़रूरी काम क्या है ? सभी अपने प्रियतम की खोज में लगे हैं। चकई के मुख से यह सत्य अधिक सुन्दर लगता है। यही गीतों की महिमा है।

एक गीत में एक कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का एक पेड़ है। शायद उसी के हाथ का लगाया होगा। उसके लिये वह अपने बाबा से कहती है—

बाबा निमिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निमिया चिरैया बसेर—बलैया लेउँ बीरन ॥१॥
बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख देउ,
बिटिया चिरैया की नाईं " ॥२॥

सब रे चिरैया उड़ि जइहैं,
रहि जइहै निमिया अकेलि—चलैया लेउँ बीरन ॥३॥
सब रे बिटियवा जइहैं सासुर,
रहि जइहै माइ अकेलि " ॥४॥

'हे बाबा ! यह नीम का पेड़ मत काटना । इस पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं ॥१॥

हे बाबा ! बेटियों को भी कोई कष्ट न देना । बेटी और पंछी की दशा एक सी है ॥२॥

सब चिड़ियाँ उड़ जायँगी, नीम अकेली रह जायगी ॥३॥

सब बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल चली जायँगी, माँ अकेली रह जायगी ॥४॥

कैसा स्वाभाविक वर्णन है ।

नीम के साथ माँ की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना करके उदासीनता का जो चित्र इस गीत में अंकित है, कविता की दृष्टि से वह साधारण कोटि का नहीं है । हिन्दी-कविता में चिड़ियों के बसेरे की याद संसार की क्षणभंगुरता दिखाने में की जाती है । पर इस गीत में वह एक बिल्कुल नये रूप में है ।

एक गीत में एक कन्या सावन में नैहर जाने के लिए बेचैन दिखाई पड़ती है—

ठाढ़ी झरोखवा मैं चितवउँ,
नैहरे से केउ नाहीं आइ ॥१॥
ओहिरे मयरिया कैसन बपई रे
जिन मोरी सुधियौ न लीन ॥२॥
ओहिरे बहिनिया कैसन बीरन,
ससुरे में सावन होइ ॥३॥

कन्या कहती है—झरोखे के पास खड़ी मैं देख रही हूँ। नैहर से कोई नहीं आया ॥१॥

हाय! वे माँ-बाप कैसे हैं? जिन्होंने मेरी सुध तक न ली ॥२॥

अरे! उस बहन का वह भाई कैसा? जिसका सावन ससुराल में बीतेगा ॥३॥

कविता का अनन्द इसी में है कि सुनते ही हृदय में रस की धारा बहने लगे।

तुलसीदास ने कहा है—

> चम्पक हरवा अँग मिलि अधिक सुहाय।
> जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाय ॥

इसमें सीता के चम्पे-जैसे वर्ण का वर्णन है। सीता का वर्ण चम्पे से इतना मिलता-जुलता था कि चम्पे का हार सीता के वर्ण में अदृश्य हो जाता था। जब वह कुम्हलाता था और उसका रङ्ग फीका पड़ जाता था, तभी पता चलता था कि यह हार है। बिल्कुल स्वाभाविक वर्णन है। यदि तुलसीदास कहते कि सीता का वर्ण देखकर चम्पा लज्जा के मारे कुम्हला जाता है, तो अस्वाभाविक हो जाता। क्योंकि चम्पा जड़ पदार्थ है। उसको लज्जा हो नहीं सकती।

वर्तमान सभ्यता का कृत्रिम प्रकाश जिस जाति में जितना ही कम फैला है, उतना ही उस जाति के गीतों में स्वाभाविकता अधिक है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहे जाने वाले समाज में जो गीत प्रचलित हैं उनकी स्वाभाविकता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। शहरों में तो वह एक प्रकार से नष्ट ही हो गई है। शहरों के गीतों में विभवों का वर्णन—जैसे विवाह में हाथी-घोड़ों की बड़ी संख्या, बाजों के नाम, ठाट-बाट का ज़िक्र, कपड़ों और गहनों की लम्बी सूची, बारात की रौनक आदि का बड़ा वर्णन मिलेगा। मनोभावों का चित्र बहुत ही कम। पर देहात के गरीब किसानों—मुख्यतः में शूद्र वर्ण के गीतों में स्वाभाविक कविता

अभी तक मिलती है। निरवाही के गीत, जो मुख्यतः चमारिनें गाती हैं, स्वाभाविक सचाई से परिपूर्ण होते हैं। उनके पढ़ने और सुनने से मन में करुणा, प्रेम और सहृदयता जाग उठती है। किसी भी प्रकार के बुरे विकार नहीं उत्पन्न होते।

अस्वाभाविकता

राजशेखर कहते हैं—

उदन्वच्छिन्ना भूः स च निधिरपां योजनशतम्।
सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कथयति॥
इति प्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः।
सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते॥

'पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है। वह समुद्र सौ योजन लम्बा-चौड़ा है। सदा भ्रमण करनेवाला यह पथिक सूर्य आकाश का विस्तार बतलाता ही है। इस प्रकार जितने पदार्थ हैं, सब की कोई न कोई अवधि है, पर सज्जनों के बुद्धि-विकास की सीमा नहीं है।'

राजशेखर का कथन अक्षरशः सत्य है। सज्जनों के बुद्धि-विकास कहिये, या कल्पना की, सचमुच सीमा नहीं है। कहीं-कहीं हमारे संस्कृत के कविगण और उन्हीं की देखा-देखी 'पिछलगुए' हिन्दी के कविगण ऐसी उड़ान उड़े हैं कि पीछे फिरकर उन्होंने देखा ही नहीं कि जिस वस्तु के लिये उड़े हैं, वह कहाँ छूट गई है? महाकवियों ने कहीं-कहीं ऐसी कल्पनाएँ की हैं, जो मेकाले के शब्दों में पागलपन की सीमा के अन्दर आ गई हैं।

मेकाले कहते हैं—

Perhaps no person can be a poet or can even enjoy poetry without a certain unsoundness of mind.

'शायद कोई व्यक्ति न कवि हो सकता है, और न कविता का आनन्द ले सकता है, जिसकी विचारशक्ति में कुछ पागलपन न हो।

श्रीहर्ष कहते हैं—

कुरु करे गुरुमेकमयोघनं
बहिरितो मुकुरं च कुरुष्व मे।
विशति तत्र यदैव विधुस्तदा
सखि सुखादहितं जहि तं द्रुतम्॥

'हे सखि! अपने हाथ में हथौड़ा लो, और सामने एक दर्पण रक्खो। जब उस दर्पण में चन्द्रमा घुसे, तब उसे खूब मारो। क्योंकि वह शत्रु है।'

कहा जायगा कि विरहिणी पागल हो गई है, इसी से ऐसा प्रलाप कर रही है। पर विरहिणी का पागलपन सुनकर इस पद्य के श्रोताओं में उसके लिये सहानुभूति तो नहीं उत्पन्न होती। उल्टे हास्य-रस जाग्रत हो आता है।

क्षेमेन्द्र कहते हैं—

तद्वक्त्राब्जजितः प्रसह्य भजते क्षैण्यं क्षपावल्लभ—
स्तद्भ्रूविभ्रमतर्जितं च विनतिं धत्ते धनुर्मान्मथम्।
तस्याः पेलवपल्लवद्युतिमुषा शोणाधरेणार्दितं।
नूनं प्राप्य विरक्ततां वनमही विम्बं समालम्बते॥

'उसके मुख से हारकर चन्द्रमा लाचारी से क्षीण हो रहा है। उसके भ्रू-विलास से तिरस्कृत होकर कामदेव का धनुष नम्र हो गया है। उसके कोमल पल्लवों के समान सुन्दर लाल ओठों से पीड़ित होकर विम्बाफल विरक्त हो गया और यह सत्य बात है कि उसने वन में आश्रय लिया।'

चन्द्रमा, कामदेव का धनुष और विम्बाफल ये तीनों जड़ पदार्थ हैं। इनका क्षीण होना, नम्र होना और वन में आश्रय लेना पराधीन है। इनसे चेतन जैसा काम लेना अस्वाभाविक है या नहीं?

पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं—

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजञ्च मिलद्विकासम्।
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला॥

'तीर पर युवती का हँसता हुआ मुख है और जल में खिला कमल। दोनों को देखकर पुष्परस के लोभी भौंरों का मुग्ध समूह कभी इधर दौड़ता है, कभी उधर।'

खूब, भौंरे को भ्रान्ति हो रही है, या कवि को? भौंरा कमल के रस का प्रेमी है, न कि उसके आकार का। उसे गन्ध से भ्रान्ति हो सकती है, रूप से नहीं। कवियों ने हज़ारों वर्षों से काव्य-रसिकों को यह समझा रक्खा है कि हम मुख की उपमा कमल से देंगे। इसे समझ रखना। यह तो कवि और उसके प्रशंसकों के समझौते की बात है। बार-बार कहते-कहते और सुनते-सुनते एक मिथ्या कल्पना सत्य-सी हो गई है, नहीं तो कमल और मुख के आकार में इतना अन्तर है कि आदमी ही दोनों को एक नहीं मान सकता। भौंरे को नखशिख और नायिका-भेद तो पढ़ाया नहीं गया, वह कैसे जानेगा?

पंडित पाजक कहते हैं—

इंदुं तण्डुलखण्डमण्डलरुचिं नित्योदितं जातु चि-
द्दर्शे मेघघरट्टघट्टनवलाद्दिष्टं विधत्ते विधिः।
नूनं लोकहितेच्छया किरति यत्संतर्पणं सर्वतः
शुभ्रादभ्रविशिष्टपिष्टरुचिरं भूमौ तुषारं दिवः॥

'चन्द्रमा गोलाकार चावल की राशि के समान है। वह प्रतिदिन उदय होता है। किसी अमावास्या के दिन ब्रह्मा ने मेघरूपी चक्की में पीसकर उसे चूर-चूर कर दिया। मालूम होता है, लोक-कल्याण की इच्छा से सब को तृप्त करनेवाले उसी चूर्ण को ब्रह्मा आकाश से कुहरे के रूप में गिरा रहा है, जो स्वच्छ आटे के समान है।'

व्याकरण ऐसे नीरस विषय के रचयिता पाणिनि कहते हैं—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषिकाल मेघाः ।
अपश्यती वत्समिवेन्दुविम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुङ्करोति ॥

'वर्षा का समय है। आधी रात बीत गई है। मेघ गरज रहे हैं। मालूम होता है, बछड़ारूपी चन्द्रमा को न देखकर रातरूपी गाय हुंकार कर रही है।'

बछड़े को देखकर गाय का हुङ्कार करके दौडना इतना कोमल, इतना करुण है कि प्रत्येक माता उस दृश्य को देखकर ही नहीं, उसका वर्णन भी सुनकर प्रेम में मग्न हो जाती है। संस्कृत और हिन्दी-कवियों ने जहाँ कहीं माता और पुत्र का स्नेह दिखलाया है, वहाँ गाय और उसके बछड़े को याद किया है। जैसे—

साहं गौरिव सिंहेन विवत्सा वत्सला कृता ।
कैकेय्या पुरुषव्याघ्र वालवत्सेव गौर्बलात् ॥

वाल्मीकि

पाणिनि के श्लोक में रात को गाय, मेघ-गर्जन को गाय का हुङ्कार और चन्द्रमा को वछडा वनाया गया है, पर इसे श्रवणकर वात्सल्य रस का उद्दीपन तो नहीं होता।

पाणिनि ने कुछ और भी कौतूहल-जनक वातें कहीं हैं—

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः ।
धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥

'रात का समय है। अभिसारिका चली जा रही है। बिजली चमकी। उसके प्रकाश में मेघ ने अभिसारिका का मुख देखा। उसको संदेह हुआ कि कहीं धारा के साथ हमने चंद्रमा को तो नहीं उगल दिया। इससे वह वड़े दुःख से चिल्लाने लगा।'

मेघ मानों कोई चेतन पदार्थ है, उसे मनुष्य की-सी बुद्धि प्राप्त है; चन्द्रमा से उसका कोई विशेष स्नेह जान पड़ता है, ये वातें तो पाणिनि

ही जानते होंगे, पर मेघ के रोने का हाल सुनकर पृथ्वी पर के श्रोता तो अवश्य हँसने लगेंगे।

> क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरिताम्।
> प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्॥
> क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा-
> स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीव जलदाः॥

पाणिनि

'जिसने रात छोटी बनाई, जिसने ज़बरदस्ती नदियों का जल हरण किया, जिसने समस्त भूमि को तपाया, वह गरम किरणों वाला सूर्य इस समय कहाँ गया? यही देखने के लिये हाथ में बिजली का दीपक लेकर मेघ समस्त दिशाओं में घूम रहे हैं।'

इसे पढ़कर मुझे सूरत की एक घटना याद आई। कहा जाता है कि फिरंगी लोग जब पहले-पहल सूरत में आये, तब एक रात को वे लैम्प जलाकर मैदान में सो रहे थे। मच्छरों से तंग आकर उन्होंने लैम्प बुझा दिया। अंधकार हो जाने पर उन्हें कुछ जुगनू चमकते हुये दिखाई पड़े। वे यह कहकर बिछौने छोड़कर भागे कि मच्छर लोग लालटेन लेकर हमें ढूँढने आ रहे हैं। यह घटना सत्य हो या किसी मसखरे की कल्पना हो, पर ऊपर के श्लोक से मिलती-जुलती अवश्य है। सूरत में मच्छर लालटेन लेकर घूम रहे थे, पाणिनि के दिमाग़ में मेघ बिजली का दीपक लेकर सूर्य को तलाश रहे थे। अवश्य ही मेघों का उद्देश्य अच्छा था। सूर्य ने गर्मी में बड़े-बड़े अत्याचार किये थे और ख़ासकर प्रयाग-वासियों की दृष्टि में सूर्य का अपराध तो क्षमा के योग्य हुई नहीं। पर मेघों के साथ पाणिनि के शायद किसी पाठक की सहानुभूति न होगी। क्योंकि सभी शिक्षित लोग मेघ और सूर्य को अच्छी तरह जानते हैं।

विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया॥

पाणिनि

'सूर्य का पश्चिम दिशा से अनुराग देखकर पूर्व दिशा ने अपना मुँह काला कर लिया। सच है, ईर्ष्या से रहित स्त्री नहीं होती।'

पूर्व और पश्चिम दिशायें कुछ भी करने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। जो कुछ होता है, वह नियमित है, निश्चित है, अनिवार्य है, सुव्यवस्थित है। दिशायें सजीव नहीं हैं, अतएव उनसे सजीव का-सा काम लेना अस्वाभाविक है।

कालिदास से भी प्राचीन भास कहते हैं—

कपोले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन—
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति॥

'चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें कटोरे में पड़ी हैं, बिल्ली उसे दूध समझ कर चाट रही है। वृक्षों के छिद्र में पड़ी किरणों को कमल-तन्तु समझ कर हाथी खींचता है। बिछौने पर पड़ी हुई किरणों को स्त्रियाँ वस्त्र समझती हैं, इसी से उसे रतान्त में खींचती हैं। इस प्रकार प्रभा से मत्त होकर चन्द्रमा समस्त जगत् को पागल बना रहा है।'

समस्त जगत् को या कल्पना-ग्रस्त कवि को?

मङ्खक आँखें ढककर कुछ कह रहे हैं—

आलि कल्पय पुरः करदीपं
चन्द्रमण्डलमिति प्रथितेन।
नन्वनेन पिहितं मम चक्षु-
र्मङ्क्षु पाण्डुरतमोगुलकेन॥

'हे सखी! हमारे सामने हाथ का दीपक ले आओ। क्योंकि चन्द्र--

मण्डल नाम से प्रसिद्ध पीले अंधकार के द्वारा मेरी आँखें ढक गई हैं।'

पद्मनाभ करुणां कुरु भूयो
विग्रहेण परिपूर्य राहुम्।
येन तज्जठरकोटरशायी
जात्वयं विधुरयेन्न विधुर्नः॥
मङ्खक

'हे पद्मनाथ! आप फिर दया कीजिये और राहु का शरीर जोड़ दीजिये। जिसमे चन्द्रमा राहु के पेट में चला जाय और फिर हम लोगों को कभी पीड़ा न दे।'

माघ कहते हैं—

अम्बरं विनयतः प्रिय पाणे-
र्योषितश्च करयोः कलहस्य।
वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं
कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे॥

'प्रियतम का हाथ वस्त्र खींच रहा है। स्त्री के दोनों हाथ उसे रोक रहे हैं। इस प्रकार इन दोनों में कलह हो रही है। इस कलह को मिटाने के लिये स्त्री की करधनी और कंकण बार-बार बोल रहे हैं।'

यहाँ करधनी और कंकण में मनुष्य-बुद्धि का विकास हुआ है

राजानक रत्नाकर कहते हैं—

काञ्चीगुणैर्विरचिता जघनेषु लक्ष्मी-
र्लब्धा स्थितिः स्तनतटेषु च रत्नहारैः।
नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां
कार्श्यं निरर्गलमधार्यत मध्यभागैः॥

'करधनी से जघनों की शोभा बढ़ाई गई। रत्नों का हार स्तनों को पहनाया गया। पर मुझे कोई भूषण नहीं मिला. इसी दुःख से स्त्रियों का मध्य भाग दुर्बल हो गया।'

स्त्रियों का मध्यभाग स्वतंत्र दुःख अनुभव नहीं कर सकता। इससे कहीं युक्तिपूर्ण तो आलम और शेख का यह दोहा है—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।
कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन॥

इसमें कटि को क्षीण करने का काम विधि के हाथों से तो लिया गया है। ऊपर के श्लोक में तो कटि को अलग हृदय और मस्तिष्क दे दिया गया है।

विकटनितम्बा कहती हैं—

अय्ययि साहसकारिणि किं तव चङ्क्रमणेन।
टसदिति भङ्गमवाप्स्यसि कुचयुगभारभरेण॥

'अरी साहस करनेवाली! तुम क्यों चक्कर लगा रही हो? कहीं तुम स्तनों के भार से टस से टूट जाओगी तो?'

ख़ैरियत इतनी ही है कि बात परदे में है। कहीं स्तनों को विन्ध्याचल और हिमालय और कटि को कमलनाल या मृणाल-तन्तु कह दिया गया होता, तो ख़तरा था।

हर्षदेव कहते हैं—

विधायापूर्वपूर्णेन्दुमस्या मुखमभूद्ध्रुवम्।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः॥

'ब्रह्मा इस नायिका का मुख अपूर्व पूर्णचन्द्र के समान बनाकर बड़ा ही दुःखी हुआ। क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह कमल, जिसपर वह बैठा है, बन्द न हो जाय।'

हर्षदेव की एक उक्ति और है—

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते।
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा।

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रांततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलाङ्कितनुम् ॥

'इस चन्द्रमण्डल के मध्य में जो मेघखण्ड के समान मालूम पड़ता है, लोग उसे हरिण बतलाते हैं। पर मैं ऐसा नहीं समझता। मैं तो यह समझता हूँ कि तुम्हारे शत्रु की विरहिणी स्त्रियों ने अपने कटाक्षरूपी अंगारों से चन्द्रमा को खूब जलाया है, उससे उत्पन्न व्रण का यह चिह्न है।'

ठीक है, कटाक्षों से तो फोड़े होते ही हैं।

एक अज्ञात कवि का कथन भी सुनने योग्य है—

प्रसन्न सम्पादितचारुकान्ति—
जितोऽपि कान्तामुखशोभयाऽयम्।
धृष्टः शशाङ्कः पुनरभ्युदेति
लज्जा कुतोऽन्तर्मलिनाशयानाम् ॥

'सुन्दर कान्ति को बढ़ा लेनेवाला प्रसन्न चंद्रमा कान्ता के मुख की शोभा से हार गया। पर वह ढीठ है। इससे फिर-फिर उदय होता है। जिनका हृदय मलिन होता है, उन्हें लज्जा कहाँ?'

चन्द्रमा बेचारा तो पराधीन है। न अपनी खुशी से आता है, न अपनी खुशी से जाता है। उसे यह पता भी नहीं कि कोई कवि उसे गाली दे रहा है।

एक अज्ञात कवि ने ब्रह्मा की भूल पकड़ी है—

अहो प्रमादी भगवान्प्रजापतिः
कृशातिमध्या घटिता मृगेक्षणा।
यदि प्रमादादनिलेन भज्यते
कथं पुनः शक्ष्यति कर्तुमीदृशाम् ॥

'ब्रह्मा बड़े असावधान हैं। उन्होंने उस मृगनयनी नायिका का मध्य भाग बड़ा ही पतला बनाया है। यदि कभी प्रमाद-वश हवा लगने से वह टूट जाय तो वे फिर वैसा कैसे बना सकेंगे?'

हर्ष की बात इतनी ही है कि संस्कृत की ऐसी मृगनयनियाँ अब कहीं शेष नहीं रह गईं। अतएव हम लोगों की यह चिन्ता भी कवि महाशय के साथ गई।

अब ज़रा हिन्दी-कवियों की उड़ान देखिये—

बिहारी कहते हैं:—

सुनत पथिक-मुँह माह निसि, चलति लुवैं उहि गाम।
बिनु बूझे बिनुही कहे, जियति बिचारी बाम॥

'परदेशी पति ने पथिक के मुँह से सुना कि उस गाँव में माघ महीने की रात में लू चलती है। बिना पूछे ही उसने समझ लिया कि उसकी स्त्री जी रही है।'

मैं लै दयो लयो सुकर, छुवत छिनकि गौ नीरु।
लाल तिहारौ अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीरु॥

'हे लाल! तुम से अरगजा लेकर मैंने उसे दिया। उसका हाथ लगते ही अरगजे का पानी छनछनाकर जल गया और वह अरगजा अबीर होकर उसके उर पर लगा।'

औंधाई सीसी सु लखि, बिरह बरति बिललात।
बिचहीं सूखि गुलाब गौ, छींटौ छुई न गात॥

'उसको विरह से जलती और तड़पती हुई देखकर मैंने उस पर गुलाबजल की शीशी उँड़ेल दी। पर गुलाबजल उसके शरीर तक पहुँचने ही नहीं पाया। एक छींटा भी नहीं छू गया। बीच ही में सूख गया।'

बिहारी की विरहिणियाँ इस प्रकार आग हो रही थीं। विरह से हृदय में तड़प आ सकती है, न कि सारा शरीर आँवें या पजावे की तरह दहकने लगे। आग दूसरी चीज़ को जलाने के पहले स्वयं जल लेती है। पर बिहारी की विरहिनी स्वयं तो जीवित रहती है, पर जो चीज़ उससे छू जाती है उसे वह जला देती है। इससे अधिक अस्वाभाविकता और क्या होगी?

तोषनिधि कहते हैं—

गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भये बहि के पुनि नारे।
नारे भये नदिया बहि के नदिया नद ह्वै गये काटि करारे॥
बेगि चलौ तो चलौ उत को कवि तोष कहैं ब्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिंधु भये अब सिंधु ते ह्वै हैं जलाहल सारे॥

सूरदास ने आँसुओं की नदी में नाव भी चला दी है।

इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौं ताही पै चढ़िकै हरिजी के ढिग जाँव॥

बिचार तो ठीक है। अपनी ही नदी, अपनी ही नौका। जहाँ ठहरना हुआ, रोना बंद किया। आगे बढ़ना हुआ, रो दिया। सेज पर लेट-लेट कर जहाँ जी चाहा, पहुँच गये। पर ऐसा होता कहाँ है ?

तोषनिधि फिर कहते हैं—

कोऊ कहै बार सी सिवार सी कहत कोऊ
कोऊ कञ्जतार सी बतावत निसङ्क है।
मेरे जान सिरिफ लुनाई की लपेट लागी
ताही की लहक औ लचक होत बङ्क है॥
'तोषनिधि' जो पै बे अधार को बहम बाढ़े
तौ पै परतच्छ को प्रमान कौन टङ्क है।
जैसे भूमि अंबर के मध्य में न खम्भ कोऊ
तैसे लोल लोचनी के अङ्क में न लङ्क है॥

अर्थ स्पष्ट है।

केशवदास एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं—

भूत की मिठाई जैसी साधु की झुँठाई जैसी
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहूँ रितु है।

धीरा कैसो हास केसवदास दासी कैसो सुख
सूर कैसी सङ्क अङ्क रङ्क कैसो वितु है ॥
सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान
गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है।
कौने है सँवारी बृषभानु की कुमारी यह
तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥

देखा! इसको कल्पना कहते हैं। एक भी उपमा ऐसी नहीं, जिसे कोई आँखों से देख सके।

गंग कवि कहते हैं—

वैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो
लागत ही वाके तन भई विथा जर की॥
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पहँ
लागत ही औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो
जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी॥

भयानक विरहाग्नि से प्रज्वलित प्यारी को छूकर पवन इतना गरम हो गया था कि मानसर पहुँचने पर भी वह मानसर के जलचर, सेवार, पङ्क और भूमि को जलाकर राख करने में समर्थ रहा। पता नहीं, प्यारी के घर, गाँव या शहर की क्या दशा हुई? और प्यारी राख हो गई या प्रलयाग्नि की तरह सुलगती ही रहीं?

ऊपर दिये हुये श्लोकों और दोहे-कवित्तों में रस नहीं है, केवल अलङ्कार है। जिस रचना के सुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो, उस रचना को कविता कहना ही क्यों चाहिये? रस स्वाभाविक है, अलङ्कार यदि रस का सहायक हो तो स्वाभाविक, नहीं तो अस्वाभाविक है।

ऊपर के श्लोकों और हिन्दी-पद्यों के वर्णनों से रस का विरस हो जाता है। विरह के मारे विरहिणी का शरीर अग्नि का पिंड हो रहा है, उसकी साँस से नदी-तालाब सूख जाते हैं, विरहिणी सूखकर ऐसी हो गई है कि मृत्यु उसे चश्मा लगाकर ढूँढ़ रही है और नहीं पा रही है, इन वर्णनों से क्या सुननेवाले के हृदय में करुणा उत्पन्न होती है? या शृंगार-रस का उद्दीपन होता है? हमारी समझ में तो इनसे कहनेवाले पर हँसी ज़रूर आती है। किसी स्त्री की कमर इतनी पतली है कि आँखों से दिखाई नहीं पड़ती या कोई साहब अपने माशूक़ की जुदाई में इतना रोये कि उनके आँसुओं ही से समुन्दर बन गया। या कोई साहब इश्क़ की मौत मर गये। क़ब्र में गये। वहाँ उनके इश्क़ की आग ऐसी भड़की और उन्होंने आह के साथ ऐसा शोला उगला कि उसकी आँच से आसपास की क़ब्रों के मुरदे उठकर भाग खड़े हुये, ऐसी कल्पनाओं को कौन सच समझेगा और ऐसे मुसीबतज़दों पर कौन तरस खायेगा? कोई भी बात जब मर्यादा को उल्लंघन कर जाती है, तब वह हास्यास्पद हो जाती है। यही दशा कवियों की कल्पना की हुई है। कल्पना के पीछे चलकर कवि लोग स्वाभाविकता की सीमा को डाँक गये हैं।

तुलसीदास ने ग्रामीण स्त्रियों का चित्र खींचा है। गाँव की भोली-भाली स्त्रियाँ सीता से पूछती हैं—

कोटि मनोज लजावन हारे।
सुमुखि कहहु को आहिँ तुम्हारे॥

सीता से उनके पति के सम्बंध में कुछ पूछना स्त्रियों के लिये बहुत स्वाभाविक बात है। पर 'कोटि मनोज' वाली बात तो गाँव की भोली-भाली स्त्रियों के दिमाग की उपज नहीं जान पड़ती। यह तो तुलसीदास स्वयं स्त्रियों के मुँह में बैठकर अपनी बात कह रहे हैं, जो अस्वाभाविक सी हो गई है। मनोज को किसी ने देखा नहीं है। उसकी सुन्दरता की कल्पना भी कोई नहीं कर सकता। परम्परा से चली आती हुई एक

कल्पित कथा है कि कामदेव कोई था, जिसे शिवजी ने भस्म कर डाला था। वही सौन्दर्य का देवता माना जाता है। पर किनके मुख से ? जो उसकी कथा को जानते हैं और जो सौन्दर्य की कुछ न कुछ कल्पना कर सकते हैं। गाँव की स्त्रियाँ बेचारी कामदेव को क्या जानें ? उनके मुख से 'कोटि मनोज लजावन हारे' वाली बात अस्वाभाविक है, कल्पना की अतिशयता है।

कवियों ने सहृदय काव्य-रसिकों से समझौता-सा कर रक्खा है कि मैं जब अमुक बात अमुक प्रकार से कहूँ, तब तुम उसे अच्छा समझना और प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा करना। ऐसा ही होता भी है। कविता में रस हो या न हो, पर उसमें अलंकार होने से काव्य-मर्मज्ञ को उस पर मुग्ध होने के लिये विवश होना पड़ता है। पर यह स्वाभाविकता नहीं है। यह तो अलंकार की जानकारी का या कवियों और काव्य-मर्मज्ञों के उस समझौते का परिणाम है, जिसका नाम अलंकार-शास्त्र है।

जिस वक्त अलंकार-शास्त्र की सृष्टि हुई थी, तब यह सोचा गया था कि इससे रस की सिद्धि में सहायता मिलेगी। पर कवियों ने अलङ्कार को ऐसी प्रधानता दे दी कि कविता नीरस हो गई। कविता देवी के शरीर में गहने तो खूब पहना दिये गये, पर यह नहीं देखा गया कि उसमें प्राण हैं या नहीं ?

कल्पना की इस अतिशयता का सब से बुरा प्रभाव हिन्दुओं के इतिहास पर पड़ा है। किसी ऐतिहासिक पुरुष ने किस अवसर पर क्या कहा था ? अब वह निश्चित नहीं रह गया। बल्कि जितने कवि हो गये हैं और अब भी उस प्रकार के जितने हैं, सब ने अपनी-अपनी पहुँच के अनुसार एक ही इतिहास की रचना अलग-अलग रूपों में की है।

वाल्मीकि ने राम और हनुमान् की पहली भेंट में राम से परिचित होने पर हनुमान् का केवल यह वर्णन लिखा है—

ततः स तु महाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ॥

'तदनन्तर महाबुद्धिमान् मारुत के पुत्र हनुमान् राम-लक्ष्मण वीरों को सुग्रीव के पास ले गये।'

तुलसीदास ने इस अवसर पर एक दूसरे से ख़ूब ख़ुशामदें कराई हैं—

हनूमान् कहते हैं—

एक मंद मैं मोह वस, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहिँ बिसारेउ, दीनबन्धु भगवान्॥

राम कहते हैं—

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन तें दूना॥

दोनों में सत्य क्या है? तुलसीदास जो कह रहे हैं, राम ने वह वाक्य हनुमान् से कहा था या नहीं? यदि नहीं कहा था तो तुलसी ने या किसी ने, जिससे तुलसी ने लिया है, कल्पना करके लिखा क्यों? इतिहास तो सत्य चाहता है। भक्ति, प्रेम, श्रद्धा से तो वह बहकाया नहीं जा सकता।

कल्पना की अतिशयता यहाँ तक बढ़ गई है कि अब भी प्रतिदिन राम और कृष्ण के चरित्रों को लेकर कल्पना पर कल्पना जड़ी जा रही है। जिसके मुँह में जो समा रहा है, वह भक्ति की आड़ लेकर वही कहता जा रहा है। एक दिन ऐसा आयेगा कि सब की बातें मिथ्या मानी जानी लगेंगी।

कल्पना का जैसा दुरुपयोग हिन्दी-साहित्य में हुआ है, वैसा शायद ही किसी अन्य साहित्य में हुआ हो। प्रतिदिन हम देखते हैं कि राधा और कृष्ण के वहाने हिन्दी के कवि लोग अश्लील और असभ्य श्रृंगार की सैकड़ों कल्पनायें कर-करके जनता में 'दिमाग़ी ऐयाशी' की वृद्धि कर रहे हैं। फिर भी हम उसे नहीं रोकते।

ग्राम-गीत अस्वाभाविक कल्पना से, अत्युक्तियों से सर्वथा

रहित हैं। उनमें जहाँ कहीं शृंगार है, वहाँ पवित्र प्रेम भी है। जहाँ पति-पत्नी का प्रसंग है, वहाँ धर्म की प्रधानता भी है। जहाँ सौन्दर्य है, वहाँ पवित्रता भी है। जहाँ प्रेम है, वहाँ सरलता भी है।

गीतों में इतिहास

गीतों मे कभी-कभी इतिहास की बहुत सी बारीक बातें मिल जाया करती हैं। महाराष्ट्र के पौवाड़े इतिहास की बहुत बड़ी सम्पत्ति समझे जाते हैं। झाँसी के आसपास महारानी लक्ष्मीबाई से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से गीत पाये जाते हैं। एक बार मैं ने चमारिनों का एक गीत सुना था, जिस में औरंगज़ेब की निन्दा थी, जो उसने अपने बड़े भाई दारा को मरवा डाला था। उस गीत का कुछ अंश मैं ने नोट किया था, पर वह काग़ज़ ही कहीं गुम हो गया।

गीतों में बहुत सी छोटी-छोटी कहानियाँ मिलती हैं, जो बड़ी-बड़ी घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। एक गीत में बिहार के कुँवरसिंह का ज़िक्र आया है, जो १८५७ के प्रसिद्ध व्यक्तियों में हैं।

मेरे जन्म-ग्राम कोइरीपुर (ज़िला जौनपुर) के पास चाँदा नाम का एक गाँव है, जहाँ १८५७ के बलवे में अंग्रेजों और कालाकाँकर (प्रतापगढ़) के बिसेनवंशी राजा से घोर युद्ध हुआ था। अब भी उस गाँव के आसपास के गाँवों में इस युद्ध के गीत गाये जाते हैं। एक कड़ी मैं ने भी सुनी थी—

कालेकाँकर क बिसेनवा, चाँदे गाड़े वा निसनवाँ।

इसी प्रकार जाटों के गीतों में बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाएँ बीज-रूप से भरी हुई हैं।

गीतों में आदर्श गृहस्थी

गीतों में आदर्श गृहस्थी दशरथ की समझी गई है। सास के लिये कौशल्या, ससुर के लिये दशरथ, देवर के लिये लक्ष्मण, बहन के लिये

सुभद्रा और नगर के लिये अयोध्या तो निश्चित ही हैं। कितने ही गीतों में लव-कुश के जन्म पर सीता ने वन के नाऊ के हाथ दशरथ के लिये रोचन भेजा है, दशरथ ने लिया है और नाई को इनाम दिया है। पर रामायण के अनुसार लव-कुश के जन्म के समय दशरथ का देहान्त हो चुका था। ऐसे स्थानों पर दशरथ से अभिप्राय बहू के ससुर से होता है।

कहीं-कहीं राम की कथा में बहन सुभद्रा का भी नाम आता है। वहाँ सुभद्रा से बहनमात्र का अभिप्राय समझना चाहिये।

प्रायः सब जाति के लोगों ने दशरथ की गृहस्थी को अपना आदर्श माना है। नाम-धाम दशरथ का ले लिया है, पर ठाट-बाट, रहन-सहन अपना ही रक्खा है। जैसे,

अहीर आम तौर से गाते हैं—

राम क बगिया सिता कै फुलवारी।
लछिमन देवरा बइठ रखवारी॥
तोरि तोरि नेबुवा पठावैं ससुरारी।
वहि नेबुवा क बनै तरकारी॥

राम के बाग और सीता की फुलवाड़ी की रखवाली के लिये देवर लक्ष्मण का बैठना तो किसी तरह चल भी सकता है; पर अहीर ने लक्ष्मण को भी अहीर समझ लिया है और नीबू तोड़कर ससुराल भेजनेवाला काम जो उनके सुपुर्द कर दिया है, वह नहीं चल सकता। अहीरों को अपनी ससुराल से बड़ा प्रेम होता है। और वह अपने घरवालों की चोरा-चोरी खाने-पीने की चीजें चुपके से ससुराल भेजता भी रहता है। उसने लक्ष्मण को भी अपने जैसा समझ लिया। गीत के चौथे चरण में तो उसने अपना दूसरा रूप भी प्रकट कर दिया, जिसके लिये वह प्रसिद्ध होता है अर्थात् भोंदूपन। वह कहता है कि उस नीबू की तरकारी बना करती थी। बुद्धूपन की हद हो गई।

इसी प्रकार एक पासी के गीत से यह अर्थ निकलता है कि सीता साठ सुअर चराया करती थीं। यह सब दशरथ की गृहस्थी को आदर्श मानकर अपने को तन्मय कर देने का सुन्दर परिणाम है। प्रत्येक जाति का व्यक्ति समझता है कि राम और सीता हमारी ही जाति के थे। यही तो भगवान् का विराट रूप है।

गीतों की दुनिया में परदा नहीं है।

परदा हिन्दुओं की चीज़ नहीं। परदे का एक नाम यवनिका है। यह नाम ही इस बात का प्रमाण है कि परदा यवनों की चीज़ है। भय-वश हिन्दुओं ने परदे को अपने घरों में स्थान दिया है। पर गीतों में उसकी चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं समझी गई। इससे वे अछूते बचे रहे। गीतों में परदे का ज़िक्र कहीं नहीं मिलता। बहू अपने ससुर और जेठ से खुल्लमखुल्ला बातें करती हैं। ससुर, जेठ तथा अन्य लोग भी निस्संकोच भाव से बहू से बातें पूछते और कहते हैं।

गीतों में विवाह का आदर्श

विवाह प्राकृतिक नियम नहीं है, बल्कि समाज-स्वीकृत एक प्रथा है। स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण ही प्राकृतिक है। वह आकर्षण ही विवाह का मुख्य आधार है। विवाह के नियम मनुष्यों ने बनाये हैं। प्रकृति उन नियमों के अधीन नहीं है। युवावस्था प्राप्त होने पर स्त्री-पुरुष में जो स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न होता है, उसे विवाह के नियम रोक नहीं सकते। प्रकृति स्वतंत्र है। वह तो अपना काम करती ही रहती है। धर्म-शास्त्र अनुमोदन करे या न करे, प्रकृति का प्रवाह रुक नहीं सकता।

पूर्वकाल में विवाह की प्रथा प्रकृति के नियमों के अनुकूल थी। विवाह के नियम तो थे, पर स्वाभाविक आकर्षण प्रधान था, विवाह के नियम गौण। वर-कन्या जब एक दूसरे को पसंद कर लेते थे, तब वे

विवाह के बंधन में बँधते थे, गीतों में वर-कन्या की इस स्वतंत्रता का उल्लेख बार-बार मिलता है। सावित्री और सत्यवान का विवाह स्वाभाविक नियमों ही के अनुसार हुआ था। नल-दमयन्ती का विवाह भी करीब-करीब ऐसी ही स्वतंत्रता से हुआ था। कुछ दिनों के बाद इसमें त्रुटियाँ दिखाई पड़ने लगीं। वर-कन्या युवावस्था की उमङ्ग में चुनाव मे भूल करने लगे। तब उनके माता-पिताओं ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने वर की परीक्षा की प्रथा चलाई। परीक्षा कन्या नहीं लेती थी, उसका पिता लेता था। परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले ही को कन्या वरण कर सकती थी। फिर भी इस प्रथा का नाम स्वयम्वर था। सीता और द्रौपदी का विवाह इसी प्रथा के अनुसार हुआ था। चंदबरदायी के कथनानुसार यह प्रथा पृथ्वीराज के समय तक रही। पर इस समय संयोगता ने अपने पिता की पूरी अवज्ञा की थी। पिता-पुत्री के विचारों का यह संघर्ष स्वयम्वर की प्रथा पर कुल्हाड़े की तरह पड़ा। इसके बाद पिताओं ने पुत्र और पुत्री की विवाह-सम्बन्धी सब स्वतंत्रताएँ छीन लीं। अब पिता चाहे जैसे वर के साथ कन्या का विवाह कर देता है, कन्या किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकती। उसको जबरदस्ती धर्म-शास्त्र के नियमों की पाबंदी करनी पड़ती है।

पूर्वकाल में वर और कन्या का विवाह बड़ी अवस्था में हुआ करता था। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुक्त सी० वी० वैद्य, M. A., L-L. B., 'महाभारत-मीमांसा' में लिखते हैं—

'द्रौपदी विवाह के समय बड़ी थी। स्वयम्वर के अवसर पर वह निर्भयता से चली आई। कर्ण जब लक्ष्य वेधने को धनुष उठाने लगा, तब उसने करारा उत्तर दिया—'मैं सूत से विवाह न करूँगी'। ब्राह्मण रूपी अर्जुन के साथ वह प्रण जीते जाने पर, आनन्द से चली गई।

व्यासजी ने उसके लिये 'ब्रह्मवादिनी' और 'पंडिता' विशेषणों का प्रयोग किया है।'

अब देखिये, गीतों की दुनिया में विवाह का क्या नियम है ?

यद्यपि विवाह की प्रथा बहुत विकृत हो गई है, पर गीतों में वही पुराना आदर्श ही क़ायम है। गीतों की दुनिया में वर-कन्या अपनी-अपनी पसंद से चुनाव करते हैं। कुछ उदाहरण लीजिए—

वर कन्या की तलाश में निकला है—

कौन की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
किन घर कन्या कुमारी त दुलहो चाहिये॥

वर को जब पता चला कि अमुक घर में एक कन्या विवाह के योग्य हुई है, तब वह उस घर के आँगन में जा बैठा और कहने लगा—

तुम घर कन्या कुमारी त हमका ब्याहि देव।

कन्या को भी यह वर पसन्द आया। इससे जब कन्या का भाई यह कहता हुआ—

मारौं मैं पूत तपसिया बहिन मोरी माँगै।

तलवार लेकर मारने दौड़ा, तब—

भीतर से निकसीं लाड़ली मोतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जनम मेरो को खेइहैं॥

कन्या की अवस्था इतनी हो चुकी थी कि वह जन्म खेनेवाले की आवश्यकता समझने लगी थी।

एक गीत में कन्या कहती है—

बाबा जे चलेन मोर वर हेरन पाट पितम्बर डारि।
छोट देखि बाबा करवै न करिहैं बड़ा नाहीं नजरि समाय॥
अरे अरे बाबा सुघर वर हेरेउ हम बेटी तोहरी दुलारि।
तीन लोक माँ हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि॥

वही कन्या अंत में कहती है—

आसन देखि बाबा डासन दीहौ मुख देखि दीहौ बीरा पान।
अपनी सम्पति देखि दाइज दीहौ वर देखि दीहौ कन्यादान॥

ये बातें छोटी उम्रवाली कन्या की नहीं हो सकतीं।

एक गीत में कन्या एक तालाब में नहा रही है। पास ही एक युवक धोती धो रहा है। कन्या ने उसका परिचय पूछा। युवक ने जो उत्तर दिया, उससे कन्या यह जानकर बड़ी ही प्रसन्न हुई कि यही तो वह वर है, जिससे उसका विवाह होनेवाला है। वह दौड़कर अपनी माँ के पास जाती है और कहती है—

जे बर मोरी माया नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ।

यही बात वह अपनी भावज से भी कहती है। सोचने की बात है कि अबोध बालिका ऐसी बातें नहीं कह सकती है। ये बातें उन दिनों की हैं, जब विवाह कोई लज्जा की बात नहीं समझा जाता था।

एक गीत और लीजिये—

नीले नीले घोड़वा छैल असवरवा कुरखेते हनइ निसान।
खिरकी उघेरि के अम्मा जो देखइँ धिया दस आउरि होइ॥

वर नीले घोड़े पर असवार है, छैला है, ऐसा वीर है जो कुरुक्षेत्र में विजय का झंडा गाड़ सकता है। उसे देखकर कन्या की माँ का हृदय आनन्द से उमड़ आता है। वह कहती है—दस कन्यायें और हों तो अच्छा। कैसा स्वाभाविक वर्णन है! अवश्य ही यह वर बालक नहीं रहा होगा।

एक गीत में कन्या का पिता एक मालिन से कह रहा है—

दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय।

एक गीत में वर की आयु अधिक स्पष्ट हो गई है—

आँखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढ़ली कमान रे।
यतनी सुरति तुहूँ पायो दुलरुआ केहि गुन रह्यो कुँआर रे॥ १॥
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयनि
मेवाड़ रे।

जेठ भैया गयनि जीरा की लदनिया यहि गुन
रह्यों कुँआर रे ॥ २ ॥
दखिन के देसवा से लिखि पढ़ि आयउँ चिठिया
लिख्यों समुझाय रे।
आवहु बाबा रे आवहु काका आवहु सग जेठ भाइ रे ॥ ३ ॥
बाबा मोरे लेइ आये मोहरा पचास रे पितिया लेइ
आये हाथी घोड़ रे।
जेठभैया लायनिझारिपितम्बरअब मोरा रचा है बिआह रे ॥ ४ ॥

'हे दूल्हा ! आँखें तो तुम्हारी आम की फाँकों की तरह हैं, और भौंहें चढ़ी हुई कमान की तरह। हे प्यारे ! तुमने इतनी सुन्दरता पाई है। पर तुम क्वाँरे क्यों रह गये? ॥१॥

वर कहता है—मेरे बाबा कामरूप देश को गये थे। मेरे चचा मेवाड़ गये थे। जेठे भाई जीरा लादने गये थे। इस कारण से मैं क्वाँरा रह गया ॥२॥

मैं दक्षिण देश से पढ़-लिखकर लौटा, तब मैंने सब को चिट्ठियाँ लिखीं कि बाबा आओ, काका आओ, जेठे सगे भाई आओ ॥३॥

मेरे बाबा पचास मोहर लेकर आये। काका हाथी-घोड़ा ले आये। और जेठे भाई पीताम्बर ही पीताम्बर ले आये। अब मेरा विवाह हो रहा है ॥४॥'

यह विवाह बड़ी उम्र में तो हुआ ही था, साथ ही शिक्षा समाप्त कर लेने पर हुआ था। आश्चर्य है कि ऐसे गीत गा-गाकर भी लोग नन्हें-नन्हें बच्चों का विवाह कर देते हैं।

यह तो युक्तप्रान्त और बिहार के गीतों की साक्षी हुई। अब ज़रा देखिये, अन्य प्रांत के गीत क्या कहते हैं?

जैसे युक्तप्रांत के गीतों में कन्या अपने पिता को वर ढूँढ़ने भेजती है और यह बतला देती है कि उसे कैसा वर चाहिये, वैसा ही वर्णन पंजाबी गीतों में भी है—

बेटी, चन्नण दे ओहले लाडो क्यूँ खड़ी ?
मैं ताँ खड़ी सी बाबल जी दे बार, कन्या
कुँआर, बाबल वर लोड़िये।
नी जाइये, के हो जिहा वर लोड़िये ?
तारेआँ बिचीं चंद चंदाँ बिच्चों कान्ह,
कन्हैया वर लोड़िये। (पंजाबी)

'चन्दन वृक्ष की ओट मे प्यारी बेटी क्यों खड़ी है ?'

हे पिता ! मैं इसलिये खड़ी हूँ कि मुझ कुमारी के लिये वर चाहिये।

बेटी ! तुम्हें कैसा वर चाहिये ?

मुझे ऐसा वर चाहिये जो तारों में चन्द्रमा के समान और पुरुषों में श्रीकृष्ण के समान हो।'

पह बेटी बहुत अधीनी मेरे बाबल टोले वरो।
पह वर टोले ल्याँदा मेरी बेटी वर साँवलड़ा॥
(पंजाबी)

'बेटी बहुत नम्रता पूर्वक कहती है—हे पिताजी ! मेरे लिये वर ढूँढ़िये।

पुत्री ! मैं तेरे लिये सुन्दर वर ढूँढ़ लाया हूँ।'

चंगा वे बाबल घर वर टोल अच्छा जिहा नगर सुहावना
हरे राम राम।
(पंजाबी)

'हे पिता ! मेरे लिये अच्छा घर, अच्छा वर और अच्छा सा सुहावना नगर ढूँढ़िये।'

मारवाड़ का एक बहुत ही प्रचलित गीत है :—

काचा दाख हेट बनड़ी पान चाबे, फूल सूँघे,
करे ये बाबा जी सूँ बीनती।
बाबा जी देस देता परदेस दीजो म्हारी जोड़ी को वर हेरजो।
हँस खेल ये बाबा जी री प्यारी बनड़ी हेन्यो ये फूल गुलाब को॥

कालो मत हेरो बावा जी कुल ने लजावे।
गोरो मत हेरो बावा जी अंग पसीजे।
लाँबो मत हेरो बावा जी साँगर चूँटे।
ओछो मत हेरो बावा जी बावन्यू बतावे।
ऐसो वर हेरो कासी को वासी।
बाई के मन भासी हस्ती चढ़ आसी।

'कच्चे अंगूर के पेड़ के नीचे बनड़ी (ब्याही जानेवाली कन्या) खड़ी पान खा रही है और फूल सूँघ रही है। वह अपने बावाजी से प्रार्थना करती है—

हे बावा! मेरा विवाह अपने गाँव के आसपास करने के बजाय चाहे परदेश में करना, पर मेरी जोडी का वर ढूँढ़ना।

बावाजी ने कहा—हे बाई! तू हँस-खेल। मैंने तेरे लिये ऐसा अच्छा वर ढूँढ़ा है, जैसे गुलाब का फूल।

कन्या फिर कहती है—हे बाबा! काला वर मत ढूँढ़ना, वह कुटुम्ब को लज्जित करेगा। गोरा मत ढूँढ़ना, वह ज़रा सी मिहनत करेगा तो उसे पसीना आ जायगा। लम्बा न ढूँढ़ना, वह केवल साँगर (मारवाड़ के एक ऊँचे पेड़ की फली) तोड़ने के काम का है। छोटा मत ढूँढ़ना, वह बौना कहा जायगा। ऐसा वर ढूँढ़ना जो काशी में वास कर चुका हो अर्थात् शिक्षित हो। वह तुम्हारी बाई को पसंद आयेगा। वह हाथी पर चढ़कर आयेगा।'

देखिये, कैसा मार्मिक गीत है। यह गीत उस समय का है, जब यह माना जाता था कि कन्याओं के मुँह में भी जीभ होती है। आजकल मारवाड़ में ऐसी बात कोई कन्या मुँह से निकाले, तो समझा जायगा कि उसे पश्चिम की हवा लग गई है।

गुजरात की कन्या भी अपनी रुचि के अनुकूल वर चुनने की अधिकारिणी है। वह अपने दादाजी से कहती है—

दीकरी दादाजी ने विनवे। रढियालाँ रे मोती।
उँचो ते वर ना खोलशो॥ ”
उँचो ते उँटड़ो कहेवाशे। ”
दीकरी दादाजी ने विनवे॥ ”
नीचो ते वर ना खोलशो। ”
नीचो ते गटीओ कहेवाशे॥ ”
जाड़ो ते वर ना खोलशो। ”
जाड़ो ते भोंदू कहेवाशे॥ ”

'कन्या दादाजी से प्रार्थना करती है—हे दादाजी ! मेरे लिये ऊँचा वर न खोजना, उसे लोग ऊँट कहेंगे। मेरे लिये नीचा वर भी न खोजना, वह ठिँगना कहलायेगा। मेरे लिये मोटा वर भी न खोजना, उसे लोग भोंदू (मूर्ख) कहेंगे।'

छोटी उम्रवाली कन्या इस प्रकार वर की समालोचना नहीं कर सकती।

इतने अनुनय-विनय के उपरांत भी जब वेमेल विवाह होने लगे—कोई कन्या बालक के साथ व्याह दी गई, और कोई बूढ़े के साथ—तब फिर स्त्रियों की सरस्वती ने प्रतिवाद किया। भारत के प्रत्येक प्रान्त में वेमेल विवाह के विरुद्ध गीत गाये जाते हैं। सुनिये—

नाहक़ गौन दिहे मोर बावा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे॥ १॥
तेलवा लगायउँ बुकउवा लगायउँ खटिया प दिहेउँ ओलार रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लइ गइ बलमा हमार रे॥ २॥
सास मोरी रोवइँ ननद मोरी रोवइँ रोवइँ हमारि बलाइ रे।
कोठवा मैं ढूँढेउँ अटरिया मैं ढूँढ़ेउँ खटिया तरे रिरिआइँ रे॥ ३॥

'हा ! मेरे बाबा ने मेरा गौना नाहक ही किया। मेरा पति तो अभी बिल्कुल बालक है। मेरे दो देवर हैं, जो चीलर (कपड़े की सफेद जूँ) जैसे हैं, और पति चूहे जैसा है॥१॥

एक दिन मैंने पति को उबटन लगाया, तेल लगाया और फिर खाट पर सुला दिया। बिल्ली सौत की तरह चुपके-चुपके आई और मेरे पति को उठा ले गई ॥२॥

मेरी सास रो रही हैं, मेरी ननद रो रही है, मैं क्यों रोऊँ ? मेरी बला रोवे ! अंत में मैंने भी कोठे पर ढूँढ़ा, अटा पर खोजा, तो देखा कि पति तो खाट के नीचे पड़ा रिरिआ रहा है ॥३॥'

पति का इससे बीभत्स चित्र कोई क्या खींचेगा ? जिस समाज में पति देवता के समान पूज्य माना गया है, उसमें पति का ऐसा मज़ाक़ हँसने का विषय नहीं, पिताओं के विचार करने का विषय है। ऐसे बेमेल विवाहों में धर्मशास्त्र कहाँ तक धर्म की रक्षा कर सकेगा ?

गीतों में वृद्ध-विवाह का भी मज़ाक़ उड़ाया गया है—

पाँच बरिसवा क मोरि रँगरैली असिया बरिस क दमाद।
निकरि न आवै तू मोरि रँगरैली अजगर ठाढ़ दुआर॥

इसमें वृद्ध दूल्हे को अजगर बताना बहुत सरस और अर्थपूर्ण है। जैसे अजगर चल-फिर नहीं सकता, वैसे वृद्ध भी। जैसे अजगर अपने शिकार को निगल जाता है, वैसे वृद्ध पति भी बेचारी अबोध कन्या के जीवन के सुख को निगल जाता है।

राजपूताने में भीलों की प्रसिद्ध जाति है। ये वे ही भील हैं, जिनका सम्बन्ध महाराणा प्रताप के इतिहास से है। यद्यपि भीलों में बाल-विवाह या वृद्ध-विवाह की प्रथा नहीं है, पर कभी-कभी घटना-वश बेमेल विवाह भी हो जाते हैं। उनको लेकर गीतों में काफ़ी मज़ाक़ उड़ाया गया है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के सम्बन्ध के भील-स्त्रियों के दो गीत यहाँ दिये जाते हैं—

बार बरनी कन्याडी ने अडी वर नो बोर रे।
पाणी भरना जाऊँ तारे बाँहे बाँहे आवे रे।

वाँहें वाँहें आवे तारे कुँवाँ माँ हड़सेल्यूँ रे।
कुँवा माँ हड़सेल्यूँ तारे डाबक डूबक करे रे।
डाबक डूबक करे तारे अइयड़ला माँ दाज्यूँ रे।
अइयड़ला माँ दाज्यूँ तारे माँणे लम्बावी रे।
माँणे लम्बावी तारे काँने वलगायूँ रे।
वार वरनी कन्याड़ी ने अड़ी वर नो वोर रे।
वाहिदाँ रोलूँ तारे वाँहें वाँहे आवे रे।
वाँहें वाँहें आवे तारे ऊकोड़ा माँ दाज्यूँ रे।
ऊकोड़ा माँ दाज्यूँ तारे फुदक फुदक करे रे।
अइयड़ला माँ दाज्यूँ तारे टोपलूँ लँवायु रे।
टोपलुँ लँवायूँ तारे काँने वलगायुँ रे।
वार वरनी कन्याड़ी ने अड़ी वर नो वोर रे।
रोटलो करूँ तारे सूला कने आवे रे।
सूला कने आवे तारे ऊँवाडूँ धमकायु रे।
ऊँवाडूँ धमकायु तारे भदड़ भदड़ नाठूँ रे।
भदड़ भदड़ नाठूँ तारे टोडले जइने ऊवूँ रे।
टोडले जइने ऊँवूँ तारे सास्का सिस्की करे रे।
अइयड़ला माँ दाज्यूँ तारे पेली रोटी आली रे।
पेली रोटी आली तारे सेली रोटी माँगी रे।
सेली रोटी आली तारे हैका हामण जोवे रे।
हैका हामण जोवे तारे हैका वालुँ आव्युँ रे।
वार वरनी कन्याड़ी ने अड़ी वर नो वोर रे।

'बारह वर्ष की कन्या का अढाई वर्ष का वर है। कन्या कहती है— मैं जब पानी भरने जाती हूँ, तब यह साथ-साथ जाता है। जब साथ-साथ जाता है और उठकर चलने के लिये तंग करता है, तब मैंने ज़रा सा धक्का दिया। वह कुँएँ में जा पड़ा। कुँएँ में जा पड़ा, तो,

'डाबक-डूबक' करने लगा। उसकी यह दशा देखकर मेरे हृदय में बड़ी जलन पैदा हुई। ख़ैर; मैंने मटकी उसके पास तक लम्बी कर दी। उसने उसकी गर्दन पकड़ ली। मैंने उसे ऊपर खींच लिया। हाय! बारह वर्ष की कन्या का ढाई वर्ष का वर है। जब मैं गोबर साफ़ करने चली, तब वह भी पीछे पीछे चला। मैंने उसे घूर में दबा दिया। घूर में दबने से वह 'फुदक-फुदक' करने लगा। तब मेरे हृदय में दुःख पैदा हुआ। मैंने टोपला (?) लम्बा किया। तब वह उसे पकड़कर फिर मेरे साथ चला।

मैं रसोई बनाने लगी। वह चूल्हे के पास आकर बैठ गया। उसे हटाने के लिये मैंने जलता हुआ चैला फेंका। चैले से डरकर वह 'धबड़-धबड़' करता हुआ भाग गया, और दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हो गया। वहाँ खड़े-खड़े वह सिस्का-सिस्की करने लगा। उसे सिसकते देख कर मेरे हृदय में फिर व्यथा पैदा हुई। तब मैंने उसे पहली रोटी दी। जब तक मैं रसोई बनाती रही, तब तक वह पहली ही रोटी खाता रहा। अंत में उसने अख़ीरवाली रोटी माँगी। जब मैंने आख़िरी रोटी भी दे दी, तब वह बहुत दीन भाव से छीके की ओर देखने लगा। छीके की ओर देखते देखकर मैं उसका मतलब समझ गई। मैंने उसे छीके से उतारकर घी दिया। हा! बारह वर्ष की कन्या के ढाई वर्ष के पति की यह हालत है।'

वृद्ध-विवाह के विरुद्ध भी भील-स्त्रियों ने आवाज़ उठाई है—

माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने गोंदड़ी नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा सुंथा पुंथा—ले रे डोहा सुंथा पुंथा॥
माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने अमल नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा गटागट—ले रे डोहा गटागट॥

माँ, मने डोहा ने परणावी रे।
डोहा ने धाणी नो घणो भाव रे।
ले रे डोहा करुड़ करुड़—ले रे डोहा करुड़ करुड़॥
माँ, मने डोहा ने परणावी रे॥

'हा ! माँ ने मुझे बुड्ढे से ब्याह दिया ! बुड्ढे को चटाई का बड़ा शौक है। ले रे बुड्ढे सड़ी-गली चटाई ले। बुड्ढे को अमल का बड़ा शौक है। ले रे बुड्ढे, गटागट पी जा। बुड्ढे को धाणी (भुने हुये चने) का बड़ा शौक है। लेरे बुड्ढे कुरुड़-कुरुड कर। हा ! माँ ने मुझे बुड्ढे से ब्याह दिया !'

दोनों गीतों मे भील-कन्या की अपार हृदय-वेदना छिपी हुई है।

मलाबार की तुल्लू जाति का एक गीत है—

ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमाये।
ले ले ले ले ला, ,, ,,
तानुनचेल्य बालेना, ,, ,,
तानुनचेल्य बालेना, ,, ,,
नेत्तेरदा पुतियना, ,, ,,
नीरद बेलेत्तना, ,, ,,
बाले पोबल मन्ना, ,, ,,
उछला फोउन्देन, ,, ,,
बुछिटा कल्टोन्डेना, ,, ,,
उल्लय बेलेगा फोउन्देना, किन्नी मदिमायगे।
जातिपोलिकेना, किन्नी मदिमायगे।
ले ले ले ले ला, किन्नी मदिमायगे।
गछा मेसे बट्टोन्दया, किन्नी मदिमायगा।
पोन्नू सिन्टे पुद्दुन्दूया, किन्नी मदिमायगा।

पोन्नू टूवरे फोउन्देना , किश्री मदिमाये।
पोन्नू मल्ला टूउन्देना , ,,
जातिपोलिकेना , किश्री मदिमायगा।
लन्द्वन्द मल्टोन्देना , किश्री मदिमाये ।
जातिनीति मल्पोन्देना , किश्री मदिमायगे।
ले ले ले ले ला , किश्री मदिमायगे।
तूरीकोरेन्देना , किश्री मदिमायगे।
जातिनीति मल्टोन्देना , किश्री मदिमाये।
ले ले ले ले ला , किश्री मदिमाये।
ले ले ले ले ला , किश्री मदिमाये।
ले ले ले ले ला (अहा) कैसा नवयुवक वर !
ले ले ले ले ला (अहा) कैसा नवयुवक वर !

'यह युवा वर कैसा सुन्दर नन्हा सा बच्चा था। यह जन्म से ही हृष्ट-पुष्ट था। ज्यों-ज्यों यह बढता गया, इसका शरीर और पुष्ट होता गया। पर एक दिन यह निरा बच्चा था। यह वर अब जवान हो गया है, इसीसे इसका शरीर लम्बा हो गया है और शरीर के साथ ही साथ इसमें चतुराई भी बढ गई है। यह जवान वर अपने जमींदार का काम करने गया है। इसको इसके जातिवालों ने कुछ भेंट दी है। अब इसके मूछ और दाढ़ी निकल आई है। इसका चित्त किसी रमणी के अनुराग में फँस गया है। उसी का साक्षात् करने के लिये यह गया है। इसने एक सुन्दर जोड़ा खोज लिया है। इसकी जातिवालों ने यही उपहार इसके लिये युक्त समझा। यह सदा अपनी जाति की भलाई मे लगा रहता है। ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर ! इस युवक वर को ताड़ी का वर्तन दो। इसे जाति-सेवा के वदले ताड़ी का बर्तन दो।

ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर !
ले ले ले ले ला (अहा) कैसा युवक वर !'

अन्य देशों के ग्राम-गीतों में भी विवाह के सम्बन्ध में कन्या की स्वतंत्रता का प्रमाण मिलता है।

फ़्राँस का एक बहुत प्राचीन ग्राम-गीत है—

Mon per' me dit tonjours,
Marie toi, ma fille !
Non, non, mon, Pere,
Je ne veux plus aimer,
Car mon amant est a l'armee.

× × ×

Elle s'est habillec,
En brave militaire,
Ell'fit conper, friser ses blonds cheveux.
A la facon d'son amaureux

× × ×

Elle S'on ut loger,
Daus une hotellerie;
Bonjour, hotess', pourriez-vous me loger ?
J'ai er l'argent pour vous payer.

× × ×

Entrez, entrez, monsieur,
Nous en logeons bien d'autres,
Montez en haut : en voici l'escalier;
L'ou va vous servir a diner.

'पिता नित्य मुझसे कहते हैं कि बेटी ! ब्याह कर ले। नहीं, नहीं, पिता ! मैं दूसरे से प्रेम नहीं कर सकती। क्योंकि मेरे हृदय का देवता सेना में है।

× × ×

'बालिका ने पुरुषोचित वीर-वेश बनाया। प्रेमी की भाँति अपने सुन्दर, मुलायम, घुँघराले बाल कटवा लिये। इसके बाद उसने सेना की ओर यात्रा की। वह एक होटल में पहुँची। मालकिन से उसने पूछा—'क्या तुम मुझे एक कमरा दे सकती हो? मैं किराया दूना दूँगा।' मालकिन ने कहा—'आइये महाशय! यहाँ और भी बहुत से लोग ठहरे हैं। यह सीढ़ी है, इससे ऊपर चले जाइये। वहीं आपका भोजन भी पहुँचा दिया जायगा।'

'अपने कमरे में पहुँचकर बालिका गाने लगी। संयोगवश उसका प्रेमी भी उसी होटल में पासवाले कमरे में ठहरा हुआ था। उसने बोली पहचानकर मालकिन से पूछा—'यह कौन गा रहा है।' मालकिन ने कहा—'एक सैनिक।' प्रेमी ने सैनिक-वेशधारी अपनी प्रियतमा को भोजनार्थ निमन्त्रित किया। बालिका ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

Onand it la vit venir,
Met du vin daus son verre;
Ata sante'. l'object de mes amours !
Ata sante, c'est pour tonjours !

× × ×

N' auriez-vous pas, monsieur,
Un chambre secrete,
Et un beau lit soit convert de fleurs,
Pour raconter tous nos malheurs ?

× × ×

N' auriez-vous pas, monsieur
Une plume et de l'encre ?
Oni, j'ecrirai a mes premiers parents
One j'ai retron ve mon amant.

'जब उस प्रेमी ने उस सैनिक वेशधारी बालिका को आते देखा, तब उसने ग्लास में शराब उँड़ेली और 'प्रियतमे! तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये' कहकर वह उसे पी गया।

'सैनिक-वेशधारी बालिका ने पूछा—महाशय! क्या यहाँ कोई प्राइवेट कमरा और फूलों से भरी हुई सुन्दर शैया नहीं है? जहाँ एकान्त में बैठकर हम लोग अपने दुर्भाग्य की गाथा एक दूसरे को सुना सकें? फिर रुककर उसने पूछा—क्या आप के पास क़लम दावात नहीं है? मैं अपने अभिभावकों को लिखूँगी कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया।'

इसके बाद बालिका पुरुष-वेश ही में रही और अपने प्रेमी की रेजिमेंट में भरती हो गई। सात वर्ष की गुप्त सैनिक सेवा के बाद उसे वह वस्तु मिल गई, जिसे पाने की आकांक्षा ने उसे इस दुर्गम पथ पर प्रवृत्त किया था—

Une fille de dix-huit ans
Ouda servi sept ans
Surement a gagne
Le conge de son bien-airne.

'अठारह वर्ष की बालिका को सात वर्ष की सैनिक सेवा के बाद सफलता मिली। उसने अपने प्रियतम की छुट्टी सदा के लिये मंज़ूर करा ली*।

इस गीत की बालिका का प्रेम साधारण नहीं है। उसकी तुलना सावित्री के प्रेम से की जा सकती है। प्रेम और पवित्रता किसी खास देश या जाति की सम्पत्ति नहीं। फ्रांस में भी सावित्री जैसी कन्यायें जन्म ले सकती हैं और लिये होंगी। समय यद्यपि बदल गया, पर ग्राम-गीतों में विवाह का प्राचीन आदर्श अभी तक सुरक्षित है।

---

* 'सुधा' में प्रकाशित श्रीयुत अवधेशपति वर्मा के एक लेख से।

यूनान देश के एक प्राचीन ग्राम-गीत का अंग्रेज़ी-पद्यानुवाद एक अंग्रेज़ ने इस प्रकार किया है—

'Take him, my daughter,
for he wears a hat,
'I a frank husband won't
marry for that'
'Take him, my daughter,
his plenty of cash,
'I won't have a husband
without a moustache !'
(Greek folk-verse)

'पिता कहता है—हे बेटी ! इस व्यक्ति से ब्याह करलो। देखो, यह हैट पहनता है। बेटी कहती है—मुझे एक स्वतंत्र विचारोंवाला पति चाहिये। हैट के लिये मैं इससे ब्याह नहीं कर सकती।

पिता कहता है—हे बेटी ! इससे ब्याह कर लो। इसके पास बड़ा धन है। बेटी ने कहा—मूँछवाले के सिवा मैं और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।'

तात्पर्य यह कि कन्या युवा वर चाहती है, जिसकी रेख उठ रही हो। न वह हैटवाले को पसंद करती है, न धनवाले को।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट मालूम होता है कि गीतों में कन्याओं ने पति के सम्बन्ध में अपने मन की भावना स्पष्ट व्यक्त कर दी है। आश्चर्य है कि लोग रात-दिन इन्हे सुनते रहते हैं, फिर भी इनकी उपेक्षा करते हैं और अपने पुत्र या पुत्री को अपना जीवन संगी चुनने का प्राकृतिक अधिकार नहीं देते।

भवभूति के शब्दों में—

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितञ्च।

जेठानी तो ये भैया कारी बदरिया छिन बरसै छिन घाम रे।
देवरानी तो ये भैया कोने कै बिलरिया छिन निकरै छिन पैठै रे।

इसी गीत में वहू अपने अन्य दुःखों का भी वर्णन करती है—

पीठ देखौ भैया तो पीठ देखौ जैसे है धोबिया क पाट रे।
कपड़ा देखौ भैया कपड़ा देखौ जैसे सवनवा कै बादरी रे॥

कैसी यथार्थ उपमायें हैं! वहू की पीठ मार खाते-खाते धोबी के पाटे की तरह हो गई है। उसके कपड़े ऐसे मैले हैं, जैसे सावन की घटा। सावन की घटा का ऐसा उपयोग शायद ही किसी महाकवि ने किया हो।

वहू ने अपने दुःखों का वर्णन करके अंत में भाई से कहा है—मेरा दुःख और किसी से न कहना।

ई दुख बाँधौ भइया अपनी गठरिया
जहवाँ खोलेउ तहवाँ रोयउ रे।

'हे भाई! मेरे दुःखों को अपनी गठरी में बाँध लो। जहाँ इसे खोलना, वहाँ रोना।'

इस एक वाक्य में वहू के हृदय की महान अन्तर्पीड़ा छिपी हुई है। हृदय की अनंत कोठरियों मे मनुष्य सुख और दुःख के अनंत इतिहास बंद कर रखता है। अवकाश मिलने पर वह कोई न कोई कोठरी खोलकर पुराने इतिहास का स्मरण करने लगता है। वहन के दुःखों की कोठरी भाई जब खोलेगा, तब वह रोयेगा।

एक गीत मे वहू का भाई मिलने आया है। वहू को भाई से मिलने की छुट्टी नहीं दी जा रही है—

एक करैली हम बोवा अरे करैली पसरी बवैया जिउ के देस॥१॥
पसरत पसरत पसरि गई पसरी है रन वन देस॥२॥
सात अइल केर चुल्हिया सातौ माँ अकली दुआरि॥३॥
एक पर रीझै उर्दा भात अरे करैली यक पर सुहावन दूध॥४॥
उर्द भात जरि वरि जाय रे करैली दुधवा गयल उतिराय॥५॥

उर्द भात खैहैं देवर मोर दुधवा पियै सग भाय ॥६॥
रखिया बहावन हम गयनि रे करैली भैया बिरछ तरे ठाढ़ ॥७॥
सासू गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं कहौ सासू भैया भेंटन हम जाव ॥८॥
हम का जनी बौहरि हम का जनी पूँछि लेव जेठनिया हँकारि ॥९॥
जेठानी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु दीदी भैया
भेंटन हम जाव ॥१०॥
हम का जनी बौहरि हम का जनी रे करैली पूँछि लेव नन-
दिया दुलारि ॥११॥
ननदी गोसाईं पैयाँ तोरी लागौं रे करैली कहहु तो ननदी
भैया भेंटन हम जाव ॥१२॥
हम का जनी भौजी हम का जनी रे करैली
जितना बखरवा में धनवा उतना कूटे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१३॥
जितना डेहरवा में गोहुँवा उतना पीसे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१४॥
जितना पिपरवा में पतवा उतना रोटिया पोथे जाव
तब भौजी भैया भेंटन जाव ॥१५॥

'मैंने करैली की एक लता लगाई थी। वह बाबा के देश तक फैल गई है ॥१॥

फैलते-फैलते वह अरण्य में, देश में, सर्वत्र फैल गई है ॥२॥

सात मुँह का चूल्हा है, उसमें एक ही द्वार है ॥३॥

एक मुँह पर उर्द और भात रींझ रहा है। दूसरे पर सुन्दर दूध ॥४॥

उर्द और भात जल-बल गया और दूध उतरा आया ॥५॥

उर्द भात मेरा देवर खायगा और दूध मेरा सगा भाई पियेगा ॥६॥

मैं चूल्हे की राख घूर में फेंकने गई थी। वहाँ देखा तो वृक्ष के नीचे भैया खड़े हैं ॥७॥

हे सासजी ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो, तो भाई से भेंट कर आऊँ ॥८॥

हे बहू ! मैं क्या जानूँ ? जेठानी को बुलाकर पूछ लो ॥९॥

हे जेठानी ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। आज्ञा दो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१०॥

हे बहू ! मैं क्या जानूँ ? दुलारी ननद से पूछ लो ॥११॥

हे प्यारी ननद ! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१२॥

हे भौजाई ! मैं क्या जानूँ ? बखार में जितना धान है, उतना कूट कर तब भाई से भेंट करने जाओ ॥१३॥

जितना कोठिला में गेहूँ है, उतना पीसकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१४॥

पीपल में जितने पत्ते हैं, उतनी रोटियाँ पोकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१५॥'

बहुओं को ससुराल में कितनी साँसत भोगनी होती है, इस गीत में भी उसका उल्लेख है। सास जो बात नहीं करना चाहती, उसे वह दूसरों पर टाल देती है। ननद तो बहू के लिये छुरी लिये तैयार ही रहती है। धान कूटना, गेहूँ पीसना, पानी भरना, बरतन माँजना, कपड़े धोना, फटी धोतियाँ सीना, आँगन बटोरना, चूल्हा सैंतना (लीपना), राख और कूड़ा करकट ले जाकर घूर में फेंकना यह सब काम अकेली बहू को करने पड़ते हैं। इस पर भी सास और ननद की झिड़कियाँ अलग से सहनी पड़ती हैं। नैहर से आये हुये कुटुम्बियों से इच्छापूर्वक मिलने नहीं दिया जाता। बहू बेचारी कभी बीमार होती है तो उस पर यह इल्जाम लगाया जाता है कि काम न करने के लिये बहाना कर रही है। बहू का इतिहास असहनीय दुःखों और भयानक वेदनाओं से भरा हुआ है।

संस्कृत के एक श्लोक में किसी ने बहू के मुख से उसके दुःख का कारण इस प्रकार कहलाया है—

श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभङ्गवक्रेक्षणा।
मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ ब्रूते ननांदा वचः॥
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते।
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखिः॥

'सास मेरी ओर देखती नहीं। देखती भी है तो आँखें तरेर कर। ननद प्रतिक्षण हृदय को जलाने वाली बात बोलती है। औरों का तो कहना ही क्या? उनकी बातों का तो स्मरण करके हृदय काँप जाता है। हे सखी! मेरा अपराध यही है कि प्रियतम मुझे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं।'

सच है, कहीं-कहीं पति का प्रेम ही बहू के दुःख का कारण हो जाता है।

कैसी विडम्बना है! कैसी लज्जा की बात है! बहू के प्रति कुटुम्बियों का व्यवहार कैसा घृणित है!

ननद का काम बहू की चुग़ली खाना है। ननद प्रायः बहू की समवयस्का होती है। बहू बेचारी पराये घर से आती है। बहू के आते ही सास तो पाठशाला की गुरुआनी होकर बैठ जाती है। ननद मानीटर का काम करने लगती है। बहू से दासी की तरह काम लिया जाने लगता है। बहू ने यदि कभी प्रतिवाद किया तो ख़ैर नहीं। ननद चुग़ली खा-खा कर बहू के नाक में दम किये रहती है। गीतों में इन सब बातों का वर्णन मिलता है।

बारह वर्ष के बाद एक पति घर आता है। इतने वर्षों तक उसकी सतवंती स्त्री बड़े नियम-धर्म से रही थी। ननद इस बात को जानती थी। फिर भी—

गोड़वा धोवत बहिनी लागे चुगुलिया
भैया भौजी से लेहु किरियवा हो राम।

वहन के कहने से भाई ने अपनी स्त्री से उसके सत की परीक्षा ली। जलते हुये तेल में हाथ डालकर स्त्री निष्कलंकिनी साबित हुई। उसका भाई उसे पालकी में बैठाकर घर लिवा ले गया। तब उसका पति रोकर कहने लगा—

भल छल किहिउ मोरी वहिनी हो राम,
डासल सेजिया उड़ासिउ हो राम।
बारह वरिस तक मोरि वाट जोहिन,
छुटि गै मोरि सतवंती हो राम॥
चाँद सुरिज अस मोरी रानी छुटिगै,
के घर वसल उजाड़ा हो राम।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण गीतों में मिलते हैं, जिनसे वहुओं की मनोवेदनाएँ व्यक्त होती हैं। सद्गृहस्थों को वहू के कष्टों पर विचार करना चाहिये।

गीतों में सास का चित्र

गीतों में सास का चित्र वहुत ही वुरा खींचा गया है। इससे जान पड़ता है कि स्त्रियों के गीत्त मुख्यकर वहुओं के वनाये हुये हैं। यद्यपि वहुएँ आगे चलकर सास हुई होंगी, और उनको अपनी रचना के लिये लज्जित होना पड़ा होगा। पर सास वनकर वे गीतों को वहुओं के समाज से वाहर न कर सकीं। क्योंकि सास वनकर वे भी अपनी वहुओं पर वही अत्याचार करने लगी होंगी, जो उनकी सास ने उनके साथ किया था। जहाँ-जहाँ गीतों में सास ने वहू को डाटा है, वहाँ वह सदैव कर्कश स्वर में वोली है।

किसी पति ने अपनी स्त्री को चुपके से वाँस के छिलकों की वनी पंखी दी थी। किसी दिन सास ने उसे देख लिया। इस पर कुपित होकर उसने पूछा—

बेनिया डोलावत आइगै निनरिया
परिगै है सासू क नजरिया हो राम।
खाउँ न बहुवरि तोरा भैया भतिजवा
कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम॥

लाची नाम की एक बहू गंगा नहाने गई थी। रास्ते में उसे जयसिंह नाम का कोई लम्पट राजा मिला। उसने लाची के साथ छेड़-खानी की। लाची ने कटार से उसका काम तमाम कर डाला। इस झगड़े में बहू को घर पहुँचने में कुछ देर हो गई। इस पर सास ने कहा—

उहवाँ से चलली लाची घर के पहुँचली हो ना।
रामा सासु गरिआवे बाबा-मुअनी हो ना॥
जनि सासु बाबा खाहु जनि सासु भइआ खाहु हो ना।
सासु बटिआ रोकेला बटपरवा हो ना॥

गीतों की स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना जानती हैं

आज-कल कन्याओं को पढ़ाना-लिखाना एक नवीन बात सी जान पड़ती है। स्त्री-शिक्षा के विरोधी अब भी हैं। और देहात में भीतर ही भीतर एक यह अज्ञान भी घर किये हुये है कि पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं। पर गीतों की स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना जानती हैं। वे अपने परदेशी को पत्र लिखती हैं, और उसका आया हुआ पत्र पढ़ती हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

एक स्त्री चील्ह के द्वारा परदेशी पति को चिट्ठी भेजती है। चील्ह चिट्ठी लेकर उसके पति के पास जाकर कहती है—

सोअत बाटअ कि जागत वरधिया के नायक।
तोरि धन चिठिया पठायेनि उठहु किन बाँचहु॥

पति ने चिट्ठी लेकर पढ़ा—

बाँयें हाथे चिठिया लिहलेनि दहिने हाथे बाँचै।
दुरै नयनवन आँसु पटुकवन पोंछइँ॥

एक स्त्री ने एक पथिक के हाथ अपने परदेशी पति को पत्र भेजा था। पथिक ने चिट्ठी ले जाकर उसके पति को दे दिया —

चिठिया जे लिहलेनि मन मुसुकइले निरमोहिया।
बाँचै लगले बरहो बिरोगवा रे लोभिया॥

एक स्त्री का पति परदेश जा रहा है। स्त्री से वह कहता है—

जौ तोरा मूड़ पिराये अरि अम्मा को जगइहौ
अरी अम्मा को जगइहौ हो।
मोरी रानी अन्तर जिअरा क भेद पतिया लिखि भेजिउ
पतिया लिखि भेजिउ हो॥

स्त्री पढ़ी-लिखी न होती, तो पति ऐसा क्यों कहता?

गीतों में उपदेश

गीतों से बढ़कर स्त्रियों में सदाचार, प्रेम और सहृदयता की वृद्धि करने का दूसरा कोई साधन नहीं। गीतों से कन्याओं और नववधुओं को बहुत लाभ पहुँचता है। इनमे उनके भावी जीवन का चित्र रहता है। भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों में, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार रहना चाहिये, इन बातों की शिक्षा स्त्रियों को इन गीतों ही से मिलती है। कन्या-पाठशालाओं की रीडरों से इन गीतों में कहीं अधिक उपदेश रहता है। कन्या को विदा करते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती है, उनमें पत्थर को भी पिघला देने का प्रभाव होता है। साथ ही कन्या और वर के लिये उपदेश की ऐसी गूढ़ और अनुभव की बातें भरी रहती हैं, जो अच्छे से अच्छे कवि की कविता में भी नहीं मिलतीं।

कुछ उदाहरण लीजिये—

शकुन्तला को विदा करते समय कण्व के मुख से कालिदास ने यह उपदेश दिलाया है—

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रिय सखी वृत्तं सपत्नी जने।
भर्तु।वैंप्रकृता।पिरो।षणतया मास्म प्रदीपं गमः॥
भूमिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी।
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधमः॥

शकुन्तला

'बड़ों की सेवा करो। अपनी सौतों से प्रिय सखी के समान व्यवहार करो। पति यदि अपमान भी करें तो क्रोध से उनके विरुद्धाचरण मत करो। नौकर-चाकरों के साथ उदारता-पूर्वक व्यवहार करो। अपने भाग्य का गर्व मत करो। स्त्रियाँ इसी प्रकार गृहिणी पद पाती हैं। इससे विपरीताचरण वाली स्त्री कुल की कण्टक होती है।

इन्हीं बातों को गीतों में एक अन्य प्रकार से बड़ी रोचकता से कहा है—

काहे रे अमवा हरिअर ना जानों कौने गुना।
ललना ना जानों मलिया के सींचे त ना जानों खेत गुना॥ १॥
ना यह मलिया के सींचे त ना यह खेत गुना।
ललना रिमिकि झिमिकि दैवा बरिसै त उनही के बूँद गुना॥ २॥
होरिल तौ बड़ सुन्दर ना जानों कौने गुना।
है हौ ना जानों अम्मा के सँवारे त ना जानों कोखी गुना॥ ३॥
ना यह अम्मा के सँवारे तौ ना यह कोखी गुना।
ललना मोर पिया तप व्रत कीन त उनहीं के धरम गुना॥ ४॥
बारह बरिस बन सेवलें त गुरू घर से अवलें हो।
ललना तब घर बबुआ जनमलें त उनहीं के धरम गुना॥ ५॥
मचियहिं बैठी हैं सासु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन फल खायू होरिल बड़ सुन्दर हो॥ ६॥
फल तौ खायूँ नौरँगिया त आम छोहारौ हो।
सासू नरियर दाख बदाम नाहीं रे जानौं वहि गुन हो॥ ७॥

सभवहिं बैठे हैं ससुर त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन तप कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥८॥
सासु क वचन न टारेउँ न ननद तुकारेउँ हो।
ससुरु कबहुँ न लाई लूकी लायउँ नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥९॥
सुपेली खेलत कै ननदिया त भौजी से पूँछइ हो।
भौजी कवन कवन व्रत कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥१०॥
स्वामी क मानेउँ हुकुमवा देवर क दुलारेउँ हो।
ननदा! सब कर लिहेउँ असीस त ना जानीं वहि रे गुना ॥११॥

'यह आम वृक्ष हरा क्यों है? मालूम नहीं, माली के सींचने से यह हरा है? या खेत के प्रभाव से? ॥१॥

न यह माली के सींचने से हरा है, न खेत के प्रभाव से। रिमझिम करके जो बादल बरसते हैं, उन्हीं की बूँदों के प्रभाव से यह हरा है ॥२॥

यह बालक बहुत सुन्दर है। इतना सुन्दर यह क्यों है? नहीं जानता, इसकी माँ ने इसको ऐसा सुन्दर सँवार रक्खा है? या उसकी कोख का ऐसा प्रभाव ही है? ॥३॥

नहीं, नहीं; न तो यह माँ के सँवारने से इतना सुन्दर है और न कोख का ही प्रभाव है। मेरे पति ने बहुत तप-व्रत किया था। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥४॥

हे सखी! मेरे पति बारह वर्ष तक वन में, गुरु के घर में रहकर विद्या पढ़ते रहे। फिर घर आये। तब इस बालक का जन्म हुआ। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥५॥

मचिये पर बैठकर सास बहू से पूछती है—बहू! तुम ने क्या-क्या फल खाया? जो तुम्हारा पुत्र इतना सुन्दर है ॥६॥

बहू ने कहा—मैंने नारंगी, आम, छोहारा, नारियल, दाख और बादाम खाया था। शायद इन्हीं के प्रभाव से बालक सुन्दर हुआ हो ॥७॥

सभा में बैठे हुये ससुर बहू से पूछते हैं—हे बहू ! तुमने कौन सा तप किया है ? जो तुम्हारा बच्चा बड़ा सुन्दर है ॥८॥

बहू ने कहा—हे ससुरजी ! मैंने कभी सासजी की बात नहीं टाली। न ननद का तिरस्कार किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। शायद इसी के गुण से बच्चा इतना सुन्दर हुआ हो ॥९॥

सुपेली (छोटा सूप) खेलती हुई ननद ने पूछा—हे भौजी ! तुमने कौन सा व्रत किया था ? जिससे तुम्हारा बालक इतना सुन्दर है ॥१०॥

बहू ने कहा—हे ननद ! मैंने सदा स्वामी की आज्ञा का पालन किया। देवर को प्यार किया और सब का आशीर्वाद लिया। शायद इसी से मेरा बालक सुन्दर हुआ है ॥११॥'

सबसे आशीर्वाद लेनेवाली बात बहुत ही महत्त्व-पूर्ण है। इसी में गृहस्थी के सुख और शान्ति का मंत्र सुरक्षित है। इस एक गीत में बहुत सी उपदेश की बातें हैं, जो पाठकों को सहज ही में मालूम हो जायँगी।

एक गीत और सुनिये—

एक गीत में कन्या का विवाह होनेवाला है। वह माँ से कहती है—

नाहीं सिखेउँ मैया गुन अवगुनवा नाहीं सिखेउँ राम रसोइँ।
सासु ननद मोरी मैया गरिआवइँ मोरे बूते सहि नहिं जाइ ॥

माँ कहती है—

सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवा सिखि लेउ राम रसोइँ।
सासु ननद तोरी मैया गरिआवइँ लइ लिहौ अँचरा पसारि ॥

इससे अच्छा उपदेश माँ बेटी को और क्या दे सकती है ?

एक गीत में कोई लम्पट पुरुष किसी सतवन्ती स्त्री को सोने और मोती का लोभ देकर उसे धर्मच्युत करना चाहता था। स्त्री कहती है—

आगि लगो सोनवाँ बजर परो मं तिया
लत छोड़े कैसे पत रहिहैं रे की।

गीतों में पातिव्रत-धर्म की महिमा तो खूब्ही है। एक स्त्री के चरित्र पर उनके पति और अन्य कुटुम्बियों ने मिथ्या दोषारोपण किया था। जलते हुये तेल में हाथ डलवाकर स्त्री की परीक्षा ली गई। स्त्री निष्कलंकिनी प्रमाणित हुई। पर पति आदि के व्यवहार से उसे बड़ी मार्मिक वेदना हुई। वह भाई के साथ नैहर जाने लगी। मार्ग में एक वन पड़ा। वहाँ उसे वन की तपस्विनियाँ मिलीं। उन्होंने एक ही वाक्य कहा—

बेटी बिसरहा क मेटौ गुनहवा रे ना।

'हे पुत्री! पति का अपराध भूल जाओ'। इस एक छोटे से पद में पति-पत्नी के बीच की शान्ति बन्द है।

गीतों में उपदेश वैसा ही व्याप्त है, जैसे—

Like a poet hidden
In the light of thought—शेली

एक गीत में एक स्त्री की बड़ी मनोहर कथा है—

सासु जे बोलेलीं अड़पी ननद तड़पी बोलै हो।
बहुअरि काहे क भरलिउ गुमान सोपेलू सुख निद्रा॥१॥
बाबा के हैं हम निलरुई त भैया के दुलरुई हो।
ऐ अपने हरीजी के प्राणअधारी सोईले सुख-निद्रा॥२॥
एतना बचन राजा सुनलेनि सुनहू न पवलेनि हो।
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहू न बोलहिं॥३॥
किआ रउरा जेवना बिगड़ले सेजिअ भोर भइलेनि हो।
ऐ राजा किया रउरा सेवा चुकलों त मुखहू न बोलहु॥४॥
नाहीं मोर जेवना बिगड़ले सेजिअ भोर भइल न हो।
ए रानी! गंगा जमुन गोरी माता गरब बोली बोलेहु॥५॥

हम से भइलि तकसिरिया सासु पग लागब।
राजा! मइया मनाइ हम लेव राउर हँसि बोलहु ॥ ६॥

'सास डपट कर बोलती है, ननद तड़प कर कहती है—बहू! किस अभिमान में तुम भरी रहती हो जो खूब सुख से सोती हो? ॥१॥

बहू ने कहा—मैं अपने पिता की एक ही कन्या हूँ; भाई की दुलारी हूँ और अपने प्राणेश्वर की प्राणाधार हूँ। इसी से सुख की नींद सोती हूँ ॥२॥

पति ने यह बात सुन ली। सब बातें अच्छी तरह सुनी भी नहीं कि वे सारी रात एक करवट सोये रहे और स्त्री से नहीं बोले ॥३॥

स्त्री ने पूछा—हे राजा! क्या आपका भोजन मैंने खराब बनाया? या सेज बिछाने में कोई भूल हुई या देर हुई? मैं आपकी किस सेवा में चूक गई? जो आप नहीं बोलते हैं ॥४॥

पति ने कहा—हे रानी! न तुमने मेरा भोजन बिगाड़ा, न सेज में कोई भूल या देरी हुई। गंगा-जमना की तरह पवित्र और पूज्य मेरी माँ को जो तुमने अभिमान से जवाब दिया, मैं इसलिए अप्रसन्न हूँ ॥५॥

स्त्री ने कहा—मुझ से गलती हुई। मैं सासजी के पैर छूकर क्षमा माँगूँगी। हे राजा! आप प्रसन्न होकर बोलें, मैं आपकी माता को मना लूँगी ॥६॥'

इस गीत से स्त्रियों को अभिमान-रहित और नम्र होने की शिक्षा मिलती है। साथ ही पुरुष के लिये भी संकेत है कि वह माता के सम्मान का सदैव ध्यान रक्खे। सास-बहू के झगड़ों में पुरुष की असावधानी भी एक प्रधान कारण है।

सावन का एक गीत है—

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु,
मोरा पिया उतरइँगे पार ॥ धीरे बहु० ॥ १ ॥

काहेन की तोरी नइया रे,
काहे की करुवारि।
कहाँ तोरा नइया खेवइया,
के धन उतरइँ पार॥ धीरे बहु० ॥ २ ॥
धरमैं कइ मोरी नइया रे,
सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
हम धन उतरब पार॥ ,, ॥ ३ ॥

स्त्री कहती है—हे नदी! तू धीरे-धीरे बह। मेरे पति पार उतरेंगे ॥१॥

नदी ने पूछा—तेरी नाव किस चीज की है? पतवार किस चीज का है? तेरी नाव का खेनेवाला कौन है? और कौन स्त्री पार उतरेगी?॥२॥

स्त्री उत्तर देती है—धर्म की मेरी नाव है। जिसमें सत का पतवार लगा है। नाव का खेनेवाला मेरा स्वामी है। और मैं स्त्री पार उतरूँगी ॥३॥

यह गीत जिस समय मन्द-मन्द स्वर से गाया जाता है, हृदय तरंगित हो उठता है। स्त्री-कवि के रचे हुये इस भावपूर्ण गीत की तुलना हिन्दी के उच्च से उच्च कवि की कविता से की जा सकती है।

एक पति ने अपनी स्त्री से कहा—ज़रा बिछौना बिछा दो।

स्त्री ने कहा—

सोनवहि कै मोरा नैहर रुपवा केवाड़ी लागे हो।
रामा सातहु भैया कै एक बहिनी सेजरिया कैसे डासउँ हो॥ १॥

पति को स्त्री का यह अभिमान असह्य हो गया। उसने द्वार बंद कर लिया। स्त्री ने बहुत आवाज़ दी, पर न तो पति बोला, न उसने द्वार ही खोला। बहू ने सास से कहा कि मेरा क्या अपराध है, जो वे नाराज हो गये। सास ने बेटे से पूछा। बेटे ने नाराज़ी का कारण बता दिया। तब बहू कहती है—

मटियहिं कै मोरा नैहर सुपवा केवाड़ी लागे हो।
सासू साती भैया किंगरी बजावइँ बहिन मोरी नाचइ हो॥ २॥

बहू ने कैसे वाक्-चातुर्य से पति को मना लिया! विवाद को जल्दी समाप्त कर डालने में स्त्रियाँ पुरुषों से चतुर होती हैं।

गीतों में चरखा

चरखा हिन्दुओं की बहुत प्राचीन वस्तु है। आर्य लोग अपने हाथ से काते हुये सूत का यज्ञोपवीत पहनते थे। पूर्वकाल में हिन्दुओं के घर-घर में चरखे होते थे। स्त्रियाँ, मुख्यतः विधवायें और वे स्त्रियाँ जिनके पति परदेश में होते थे, चरखा कातकर समय ही नहीं काटती थीं, बल्कि इसी की आमदनी से अपनी जीविका भी चलाती थीं।

चरखे तो घर-घर में थे ही, पर यजुर्वेद के एक मंत्र से मालूम होता है कि लोग अपने कपड़े अपने ही घर में बुन भी लेते थे—

सीसेन तंत्रं मनसा मनीषिणः
ऊर्णा-सूत्रेण कवयो वयन्ति।
यजु० १९।८०

'मननशील कवि लोग मनन के साथ सीसे के यंत्र से ताना फैलाकर ऊन के सूत से कपड़ा बुनते हैं।'

(सातवलेकर कृत 'वेदों में चरखा' से।)

इससे मालूम होता है कि वैदिक काल में कपड़ा बुनने वालों की कोई अलग जाति नहीं थी। मननशील कविलोग भी अपने कपड़े बुन लिया करते थे। अथर्ववेद के एक मंत्र से मालूम होता है कि विवाह के अवसर पर वधू अपने काते हुये सूत का वस्त्र वर को समर्पित करती थी—

ये अन्ता यावतीः सिचोय ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत्पत्नी भिरुत तन्नः स्योनमुप स्पृशात्॥
अथर्व० १४-२-५१

'जो कपड़े के अंतिम भाग हैं, जो किनारियाँ हैं, जो बाने हैं, तथा जो ताने हैं, इन सब के साथ पत्नी के द्वारा जो बुना हुआ कपड़ा होता है, वह हमारे लिये सुखदायक हो।'

(सातवलेकर की टीका)

ग्रिफिथ का भाषान्तर—

May all the hems and borders, all the threads that form the web and woof, the garment woven by the bride be soft and pleasant to our touch.

इसी पर टिप्पणी—

The garment that the young husband is to wear on the first day of his wedded life, and that, apparently has been made for him by the bride.

(ग्रिफिथ, अथर्व०, पृष्ठ १७९)

संस्कृत में मोरिका नाम की एक प्रसिद्ध स्त्री-कवि हो गई है। उस ने एक श्लोक में घर में सूत की कमी की एक विचित्र शिकायत की है—

मा गच्छ प्रमदाप्रिय प्रियशतै-
भूयस्त्वमुक्तो मया,
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता
प्राप्नोति निष्ठां पराम्॥
किं चान्यत्कुचभारपीड़नसहै—
यत्नप्रबद्धैरपि,
त्रुट्यत्कंचुकजालकैरनुदिनं
निःसूत्रमस्मद्गृहम्॥

'हे प्रमदाप्रिय! न जाओ, मैंने कई बार उससे यह कहा। मैंने कहा—आप जब आँगन में आते हैं तब वह बाला प्रसन्न होती है। उसके कुरते ख़ूब मज़बूत बनाये जाते हैं, जिससे स्तनों का भार वे सह

सकें। पर वे फट-फट जाते हैं। इससे आजकल हमारे घर में सूत की कमी हो गई है।'

भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के गीतों में चरखे का वर्णन मिलता है। यद्यपि पंजाब, गुजरात और आंध्र देश के बराबर चरखे का प्रचार और किसी प्रांत में नहीं है, पर गीतों में चरखे ने सर्वत्र स्थान पाया है—

चरखा मेरा अठ-फागुड़ा माल मेरी नूँ ताड़।
पूणीं ताँ वटाँ लसलसी तन्द कड्ढाँ दर्याउ॥
आगे ताँ चरखा रँगला पिच्छे पीढ़ा लाल।
चकले दे उपर चाकला चकले दे उपर कत्थो॥
कत्तनवाली नाजो कोमली।

पंजाबी

'मेरा चरखा आठ फाँकों का बना हुआ है। मेरी माल को ताव है। मैं बहुत पोली पूनी बनाकर नदी जितना लम्बा तार निकालती हूँ।

'सामने रँगीला चरखा है, पीछे लाल पीढ़ा है। चकले के ऊपर चकला और चकले के ऊपर कथ है।

'कातनेवाली कोमल सुन्दरी है।'

सुनेयो सुनेयो नमेयो कुड़मो अर्ज वन्दी दी सुनियो वे।
जे साडी बीबी मन्दा बोले अन्दर वड़ समझायो वे।
जे साडी बीबी मोटा कत्ते रेशम करके जाणेओ वे।

पंजाबी

'हे हमारे नवीन समधियो! मुझ दीन की विनती सुनो।

'यदि हमारी लड़की कुछ भला-बुरा कहे, तो उसे एकान्त में ले जाकर समझा देना।'

यदि हमारी लड़की मोटा सूत काते तो उसे बारीक तार समझना।'

नानी सुपुत्ती ने सूत कत्तेया नाने ठोक बुनाएआ।
सरहन्द ते मजीठ आँदी चोला-चोप रँगाएआ॥

पंजाबी

'सुपुत्रोंवाली मेरी नानी ने सूत काता और नाने ने उसे बुनाया फिर सरहिन्द से मजीठ मँगाकर चोला-चोप रँगाया।'

ननद भावो दा प्यार चरखा डाहे लेआ।

पंजाबी

'ननद भौजाई का प्रेम है। दोनों चरखा कातने बैठी हैं।'

मारवाड़ की एक स्त्री पति को पत्र लिखती है—

चरखो तो ले ल्यो भँवर जी राँगलो जी
हाँ जी ढोला! पीड़ो लाल गुलाल।
तकवो तो ले ल्यूँ जी भँवरजी! बीजलसार को जी,
ओ जी म्हारी जोड़ी का भरतार!
पूणी मँगा ल्यूँ झीक बीकानेर की जी।
म्हार म्हार की कातूँ भँवरजी! कूकड़ी जी
हाँ जी ढोला! रोक रुपैये रो तार।
मैं कातूँ थे बैठा बिणाज ल्यो जी,
ओजी म्हारी लाल नणद रा ओ वीर!
ओजी म्हारे हीवड़े का जीवड़ा!
ओजी म्हारी सेजाँ रा सिणगार!
थारी प्यारी जी जोवे वाट
जल्दी पधारो देस में जी।

मारवाडी

'हे प्रियतम! एक रँगीला चरखा, लाल गुलाल रङ्ग का पीढ़ा और बिँधे हुये लोहे का तकवा ले लें। हे मेरी जोड़ के स्वामी! बीकानेर

से पूनी मँगा लूँ। हे प्रियतम ! मैं एक-एक कुकड़ी एक-एक मोहर के मूल्य की कातूँगी। मेरा एक-एक सूत रुपये-रुपये का होगा। मैं सूत कातूँ, तुम बैठकर उसे बेंच लो। हे मेरी प्यारी ननँद के भाई ! हे मेरे हृदय के जीव ! हे मेरी शय्या के श्रृंगार ! तुम्हारी प्यारी तुम्हारी राह देख रही है, जल्दी घर लौटो।'

एक स्त्री का पति परदेश गया है। स्त्री घर में बैठकर सोच रही है—

घरि गइलें चनन चरखवा सिरिजि गज ओवरि हो राम।
दिन भरि कतबइ चरखवा ओहरियाँ ओंठँघाइ देबइ हो राम॥
रामा साँझ खनी सुतबइ मइयाजी के कोरवाँ त प्रभु बिसराइ
देबइ हो राम॥

'मेरे प्राणनाथ कोठरी बनाकर उसमें एक चन्दन का चरखा रख गये हैं। दिन भर मैं चरखा कातूँगी, फिर उसे उधर खड़ा कर दूँगी। संध्या को माँ की गोद में सोऊँगी, और स्वामी के वियोग का दुःख भुला दूँगी।'

वियोगिनी के लिये चरखे से बढ़कर धीरज देनेवाला और कोई साथी नहीं।

जनेऊ का एक गीत है, जिसमें यह वर्णन मिलता है कि राम और लक्ष्मण दोनों हल चलाकर खेत जोतते हैं और कपास बोकर रुई पैदा करते हैं। फिर रानी रुक्मिणी कपास को ओटकर रुई से बिनौले अलग करती हैं, और उसे धुनकर चन्दन के चरखे पर सूत कातती हैं। उस सूत से जनेऊ बनता है।

राइयो रुक्मिन बीज लै जाँय।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी काहे की है डंडी।

चन्दन चरखी सोने की है डंडी।
राइयो रुक्मिनि ओटैं कपास॥
काहे की है धुनिया काहे की है ताँत।
सोने की धुनियाँ रेसम की है ताँत।
राइयो रुक्मिन धुनैं कपास॥
काहे की है रहटा काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातैं सूत॥
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।
तीन तागा, चार तागा, पाँचवें जनेउ।
पाँच तागा, छः तागा, सातयें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ॥
पहिलो जनेउ गनेसजी को देव।
दुसरा जनेउ ब्रह्माजी को देव॥
तीसरे जनेउ महादेवजी को देव।
चौथे जनेउ विष्णुजी को देव॥
पाँचवों जनेउ सब देवतन देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन देव॥
सातवों जनेउ बरुआ को देव।
अहिर गड़रिया बम्हन कर लेव॥

इसमें कपास बोने से लेकर सूत बनने और सूत से फिर जनेऊ बनने तक का क्रम वर्णित है। अन्त में कहा गया है कि इसी सूत के प्रभाव से अहीर गडरिये भी ब्राह्मण हो सकते हैं।

आजकल ब्राह्मण-क्षत्रिय हल चलाना पाप समझते हैं। पर इस गीत से पता चलता है कि हरएक द्विज को स्वयं हल चलाना, कपास बोना, ओटना, धुनना, चरखा चलाना, सूत कातना और सूत से जनेऊ बनाना

जानना चाहिये। घर-घर में चरखे की रक्षा के लिये ही तो कहीं यह नियम नहीं बनाया गया था!

जाँत के एक गीत में विरहिनी अपने परदेशी पति को विसूर रही है—

देइ गये चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोड़िउ हो॥

एक गीत मे एक पुरुष अपनी पत्नी को खाने-पहनने का वड़ा कष्ट देता था। एक दिन पत्नी का भाई वहन से मिलने आया। वहन ने अपना दुखड़ा रोया। भाई ने वहनोई को शिकार के समय वन में मार डाला। इस पर वहन विलाप करती है—

केन मोर छइहैं भइया राँड़ क मड़इया केन वितइहैं दिन
रतिया हो राम।

भाई कहता है—

हम तोरि छउवै वहिनी राँड़ क मड़इया भउजी वितावइ दिन
रतिया हो राम।

वहन कहती है—

दिन भर भइया भउजी चरखा कतइहइँ साँझि वेर देइहँइँ
बूँद मँड़वा हो राम।

गोपीचन्द राजा पर विपत्ति पड़ी, तब वे हल जोतकर दिन काटने लगे। रानी ने कहा—राजा! मेरे नैहर में चलो; वहाँ हम सुख से रहेंगे। गोपीचंद ससुराल गये, किसी ने कुछ पूछा ही नहीं। तव राजा रानी से कहते हैं—

चलहु न धनिया अपने के देसवा रे
चरखा लै विपति गँवउबइ हो राम।

गोपीचंद राजा की कथा कितनी पुरानी है, इसका पता नहीं। गुजरात के गीतों में भी गोपीचंद का कथानक है। पर उन दिनों भी चरखा

विपत्ति का साथी था, जैसा कि महात्मा गाँधी कह रहे हैं कि वह आज भी है।

एक गीत में एक पति अपनी पत्नी को संदेशा भेजता है—

हमरो सनेसवा रे धनी समुझाइह निरमोहिया।
चरखा कातिहि कुल राखिहि रे लोभिया॥

गुजराती गीतों में चरखे का बहुत वर्णन मिलता है—

सासु ने बहू बे रेंटियो रे कांते
कांततां बाईजीए पूँछ्यूँ रे—मारी सहीरे समाणी॥
बहू रे बहू मने पूणियो बताओ
पूणियो कांती नाखी रे— ”

(गुजराती)

'सास बहू चरखा कातने बैठीं। कातते-कातते सास ने पूछा—बहू! पूणी कहाँ है? बहू ने कहा—मैं ने तो उसे कात डाला। इत्यादि।'

× × ×

अये माए दीकरिए सुतर कांतीउँ रे,
अये आप्यूँ वणनारा ने हाथ रे—नणदल लेरीउँ रे॥
मारूँ वणी वणावी घेर आवीयुँ रे,
में आप्युँ रँगाराने हाट रे। ”

(गुजराती)

'मा-बेटी ने सूत काता। फिर उसे बुननेवाले को दे दिया। बुनकर आया तब उसे रँगनेवाले को दे दिया। इत्यादि।'

ग्राम-गीत

कविता-कौमुदी

पाँचवाँ भाग

ग्राम-गीत

सोहर

सोहर, जिसे कहीं-कहीं सोहिलो भी कहते हैं, उस गीत का नाम है, जो पुत्र-जन्म के अवसर पर गाया जाता है। गीतों में इसका यह नाम गाया भी जाता है। जैसे—

बाजे लागी अनँद बधइया गावइँ सखि सोहर।

पर इसका मुख्य नाम मङ्गल-गीत है। प्रत्येक सोहर के अंत में इसका यही नाम आता है। जैसे—

जो यह 'मङ्गल' गावइ गाइ सुनावइ।
सो बैकुण्ठ जाइ सुनइया फल पावइ॥

तुलसीदास ने रामचरित-मानस में जन्म और विवाह के अवसर पर स्त्रियों से मङ्गल या मङ्गल-गीत ही गवाया है। जैसे—

गावहिं मङ्गल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

विवाह में जो गीत गाये जाते हैं, यद्यपि वे सोहर ही छंद में होते हैं, पर उनकी लय भिन्न होती है। जन्म और विवाह दोनों प्रसंग मंगल-सूचक हैं।

इसलिये उन अवसरों के गीतों का नाम भी मंगल-गीत रक्खा गया है। तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' इसी छंद में लिखा है।

सोहर प्रायः सब स्त्रियों ही के रचे हुए हैं। स्त्रियाँ पिङ्गल के पचड़े में नहीं पड़ी हैं। इससे गीतों में न तुक मिले हैं और न पदों की मात्राएँ ही समान हैं। स्त्रियाँ गाते समय छोटे-बड़े पदों को खींच-तानकर बराबर कर लिया करती हैं। पर तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' में तुक भी मिलाया है और प्रत्येक पद की मात्राएँ भी बराबर रक्खी हैं। उन्होंने पिङ्गल के अनुसार शुद्ध करके सोहर छंद लिखा है। उदाहरण के लिये यहाँ 'रामलला नहछू' के कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं—

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोवन देखि नृपति मन भावइ हो॥
रूप सलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन उन साथहि हो॥
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥
मोचिनि बदन सकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहिँ लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो॥
बतिया कै सुघर मलिनिया सुन्दर गातहि हो।
कनक रतन मनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥
कटि कै छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चन्द्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो॥
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिँ प्रमुदित गावइ हो॥

हमारे पास सोहर गीतों का बड़ा संग्रह है। उसमें बहुत से गीतों के अंत में तुलसीदास का नाम आया हुआ है। पर हमें विश्वास नहीं कि वे गीत तुलसीदास ही के रचे हुए हैं। यदि सोहर छंद में उनका 'रामलला नहछू' मौजूद न होता, और उसे देखकर हम यह न जानते होते कि तुलसीदास किस प्रकार का सोहर लिखते थे, तो शायद हम उन गीतों को तुलसीदास का रचा हुआ मान भी लेते। पर 'रामलला नहछू' की उपस्थिति में वे बेतुके, और छोटे-बड़े पदवाले गीत तुलसीदास के रचे हुए नहीं माने जा सकते। वे गीत स्त्रियों ही के रचे हुए हैं, और केवल अधिक प्रचार के उद्देश्य से उनमें तुलसीदास का नाम जोड़ दिया गया है। हिन्दी में तुलसीदास के सिवा और किसी कवि की रचना सोहर छंद में हमारे देखने में नहीं आई। सुना है, सूरदास ने भी 'सोहिलो' लिखा था, पर वह हमारे देखने में नहीं आया। तुलसीदास ने 'रामलला नहछू' सोहर छंद में लिख तो दिया, पर 'नहछू' होते समय तुलसीदास का सोहर गाया नहीं जाता। स्त्रियों ने पिङ्गल और अलंकार से प्रमाणित तुलसीदास के सोहर को पुस्तक ही में पड़ा रहने दिया है।

जब किसी हिन्दू के यहाँ पुत्र पैदा होता है तब टोले-महल्ले की स्त्रियाँ उसके यहाँ एकत्र होकर सोहर गाती हैं। पुत्र के जन्म-दिन से लेकर कहीं-कहीं छः दिनों तक और कहीं-कहीं बारह दिनों तक सोहर गाया जाता है। कन्या पैदा होने पर सोहर नहीं गाया जाता। यद्यपि कन्या को लोग लक्ष्मी-स्वरूप मानते हैं, पर उसके विवाह के इतने झंझट लोगों ने बढ़ा लिये हैं कि अब कोई कन्या के जन्म से प्रसन्न नहीं होता और न हर्ष-सूचक उत्सव ही मनाता है।

सोहर में शृङ्गार और हास्य-रस तो प्रधान ही हैं, पर करुण-रस की मात्रा भी कम नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि करुण-रस स्त्रियों को बहुत प्रिय है। सोहर ऐसे जन्मोत्सव-सम्बंधी गीत में भी उन्होंने कहीं-कहीं

ऐसा करुणरस भर दिया है कि सुनते ही हृदय में करुणा उमड़ आती है और आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं।

युक्तप्रांत के पूर्वी ज़िलों में और बिहार में जो सोहर गाये जाते हैं, उनमें बहुत ही कम अंतर दिखता है। युक्तप्रांत के पश्चिमी ज़िलों के सोहर में हमें वह रस नहीं मिला, जो पूर्वी ज़िलों के सोहर में है।

यहाँ हम कुछ चुने हुए सोहर अर्थ-सहित देते हैं—

[१]

गंगा जमुनवाँ के बिचवाँ तेवइया एक तपु करइ हो।
गंगा! अपनी लहर हमें देतिउ मैं मँझधार डुबिट हो ॥ १ ॥
की तोहिं सासु-ससुर दुख कि नैहर दूरि बसै।
तेवइ! की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबइ हो ॥ २ ॥
गंगा! ना मोरे सासु-ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै।
गंगा! ना मोरे हरि परदेस कोखि दुख डूबब हो ॥ ३ ॥
जाहु तेवइया घर अपने हम न लहर देबइ हो।
तेवइ! आजु के नवएँ महिनवाँ होरिल तोरे होइहैं हो ॥ ४ ॥
गंगा! गहबरि पिअरी चढ़उबै होरिल जब होइहैं हो।
गंगा! देहु सगारथ पूत जगत जस गावइ हो ॥ ५ ॥

गंगा-यमुना के बीच एक स्त्री तप कर रही है। वह कहती है कि हे गंगा! तुम मुझे अपनी लहर देती तो मँझधार में डूब जाती ॥ १ ॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री! क्या तुझे सास-ससुर का दुःख है? या नैहर दूर है? या तेरा स्वामी परदेश में है? तू किस दुःख से डूबना चाहती है? ॥ २ ॥

स्त्री ने कहा—न मुझे सास-ससुर का दुःख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं निस्संतान होने के दुःख से डूबना चाहती हूँ ॥ ३ ॥

गंगा ने कहा—हे स्त्री ! तू अपने घर जा । मैं तुझे लहर न दूँगी । आज के नवें महीने तेरे पुत्र होगा ॥ ४ ॥

स्त्री ने कहा—हे गंगा ! मेरे पुत्र होगा तो मैं तुम्हें खूब चटक रंग की पीली साड़ी चढ़ाऊँगी । हे गंगा ! तुम मुझे भगीरथ जैसा पुत्र देना, संसार जिसका यश गाये ॥ ५ ॥

सन्तान की लालसा स्त्रियों में बड़ी प्रबल होती है । इस गीत में एक स्त्री संतान के लिये गंगाजी से प्रार्थना करती है । गंगाजी ने उस पर प्रसन्न होकर उसे वर दिया । स्त्री कृतज्ञता-प्रकाश करती हुई गंगाजी को पिअरी (पीला वस्त्र) चढ़ाने की मन्नत मानती है । संतान पाने का जब उसे वर मिल गया, तब वह यह चाहती है कि उसे भगीरथ जैसा प्रतापी पुत्र मिले, जिसका यश सारा संसार गाये । कैसी मनोहर अभिलाषा है ! हिन्दू-स्त्री का लक्ष्य कितना ऊँचा है ! स्त्रियों में माता होने की इच्छा तो स्वाभाविक होती है, पर वह कैसे पुत्र की माता होना चाहती है, यह बात महत्त्व की है । पुत्र का जन्म होने से पहले ही उसका आदर्श स्थिर कर रखना यह हिन्दुओं के उत्तम गृहस्थ-जीवन की एक सुन्दर छटा है । जब भगीरथ जैसा पुत्र उत्पन्न करनेवाली माताएँ इस देश में थीं, तभी भारत सुखी और स्वतन्त्र था ।

[२]

चलहु न सखिया सहेलरि जमुनहि जाइय हो ।
जमुना कै निर्मल नीर कलस भरि लाइय हो ॥ १ ॥
केऊ सखी जल भरैं केऊ मुख धोवइँ हो ।
केऊ सखी ठाढ़ी नहाइँ त्रिया एक रोवइ हो ॥ २ ॥
की तुहें सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै ।
बहिनी ! की तुमरा कन्त बिदेस कवन दुख रोवउ हो ॥ ३ ॥

ना मोंहिं सासु-ससुर दुख ना नैहर दूरि बसै।
बहिनी! ना मोरा पिया परदेस कोखि दुख रोवउँ हो॥४॥

हे सखियो! चलो जमनाजी को चलें। जमनाजी का पानी बड़ा स्वच्छ है। चलो, घड़ा भर लायें॥१॥

कोई सखी जल भर रही है, कोई मुँह धो रही है और कोई खड़ी नहा रही है। एक सखी रो रही है॥२॥

एक सखी ने उससे पूछा—हे सखी! क्या तुम्हें सास-ससुर का दुःख है? या तुम्हारा नैहर दूर है? या तुम्हारे स्वामी परदेश में हैं? तुम किस दुःख से रो रही हो?॥३॥

उस स्त्री ने कहा—हे बहन! न तो मुझे सास-ससुर का दुःख है, न नैहर ही दूर है और न मेरे स्वामी ही परदेश में हैं। मैं तो कोख के दुःख से रो रही हूँ, अर्थात् मेरे सन्तान नहीं है॥४॥

संतान की लालसा स्त्रियों में इतनी प्रबल होती है कि जिस स्त्री के बालक नहीं होते, उसका मन किसी भी मनोरंजन में नहीं लगता।

[२]

खिड़की हीं बैठली रानी त राजा पुकारइँ हो।
रानी! एक संतति बिना कुल हीन, हम होवै जोगी हो॥१॥
जो तुहूँ ए राजा जोगी होब हमहूँ जोगिन होबै हो।
राजा नगर पइठि भीख मँगबै दुनऊँ जने खाबइ हो॥२॥
एकठ पेड़ कदम कइ मोतियन फर हइ हो।
तब तेही तर ठाढ़ भगवान त बालक ठोहइँ हो॥३॥
राम ही राम पुकारीला राम नाहीं बोलइँ हो।
राम हमरी कवन तकसिरिया त मुखवउ न बोलउ हो॥४॥
कोक के दिये राम दुइ चार कोक के दस पाँच हो।
राम हमरी नगरिया काहे भूलउ त हमरी कवन गति॥५॥

रजवा तो हउएँ वहेलिया त रनियाँ व्हेलिन हो।
राजा केतनेक जियरा वझवलैं संतति नाहीं पइहइँ हो॥ ६॥
सास ससुर नाहीं मनलू त ननदा तुकरलेउ हो।
रानी जेठ क परछाहीं न वरवलू त भुललैं नरायन॥ ७॥
सास ससुर हम मानव ननदा दुलारव हो।
राम जेठ क परछहियाँ वरइवे समुझैं परमेसर॥ ८॥
मोरे पिछवरवाँ वढ़इया वेगि ही चलि आवउ हो।
वढ़ई गढ़ि देहू काठे क वलकवा मैं जियरा वुझावउँ—
मन समुझावउँ हो॥ ९॥
काठे क वलक गढ़ि दिहलैं अँगने धरी दिहलइँ हो।
वावुल मोरे अँगने रोइ न सुनावउ मैं वझिनि कहावउँ हो॥१०॥
दैव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो रोइ सुनउतेउँ हो।
रानी वढ़ई क गढ़ल होरिलवा रोवन नाहीं जानइ हो॥११॥

रानी खिड़की में वैठी हुई थीं। राजा ने पुकारकर कहा—हे रानी। हम संतति विना कुलहीन हैं। मैं जोगी होना चाहता हूँ॥१॥

रानी ने कहा—हे राजा! तुम जोगी होगे तो मैं जोगिन होउँगी। हम दोनों गाँव से भीख माँगकर लायेगे और खायेंगे॥२॥

कदम्व का एक पेड़ है। जिसमे मोती फूल रहे हैं। भगवान् उसके नीचे खड़े होकर वालक रच रहे हैं॥३॥

राजा ने राम, राम कहकर पुकारा। पर राम नहीं वोले। राजा ने कहा—हे राम! मेरा क्या अपराध है, जो तुम मुँह से नहीं वोलते?॥४॥

हे राम! तुमने किसी को तो दो-दो चार-चार वालक दिये। किसी को दस-पाँच। भला, तुम मेरे गाँव को कैसे भूल गये? मेरी क्या दशा होगी?॥५॥

राम ने कहा—राजा! तू तो पूर्व-जन्म में वधिक था। तेरी रानी

वधिकिन थी। तू ने कितने ही जीवों को फँसाया था। तुझे संतति नहीं मिलेगी ॥६॥

हे रानी ! तू ने सास-ससुर की इज़्ज़त नहीं की। ननद को तू ने 'तू' करके पुकारा। जेठ की परछाईं से परहेज नहीं रक्खा। इसी से भगवान भी तुझको भूल गये। इसी से तुझको भी संतान नहीं मिलेगी ॥७॥

रानी ने कहा—हे राम ! मैं अब सास-ससुर को मानूँगी। ननद को दुलारूँगी। जेठ की परछाईं भी बचाऊँगी। तुम मेरे हृदय की व्यथा समझो ॥८॥

रानी कहती हैं—मेरे पिछवाड़े बढ़ई रहता है। हे बढ़ई ! जल्दी आओ। मेरे लिए काठ का एक लड़का गढ़ दो। मैं उससे जी बहलाऊँगी ॥९॥

बढ़ई ने काठ का बालक गढ़ दिया और आँगन में लाकर रख दिया। रानी ने कहा—हे बेटा ! मेरे आँगन में रोकर मुझे सुनाओ। मैं बाँझ कहलाती हूँ, मेरा यह कलंक तो मिटे ॥१०॥

काठ के बालक ने कहा—मैं यदि भगवान् का बनाया होता तो रोकर सुनाता भी। हे रानी ! बढ़ई का गढ़ा हुआ बालक रोना नहीं जानता ॥११॥

इस गीत में पुत्रहीन माता-पिता का कैसा करुणाजनक मज़ाक़ है ! सारा गीत एक सुन्दर नाटक के प्लाट की तरह मनोहर है। पुत्र के लिये राजा-रानी का तप करने जाना, वन में भगवान् से मिलना, प्रश्नोत्तर करना, पुत्रहीन होने का कारण जानना, भविष्य के लिये सत्कर्म की प्रतिज्ञा करना, घर लौट आना, घर में मन बहलाने के लिये काठ का लड़का बनवाना और उस निर्जीव बालक से भी संतोष न मिलना, एक से एक बढ़कर रोचक सीन इस गीतरूपी नाटक में हैं। पुत्रहीन दम्पति की बड़ी ही विचित्र अन्तर्पीड़ा इस गीत में छिपी हुई है।

[४]

सोरहो सिँगार सीता कइलीं अटरियाँ चढ़ि गइलिनि ।
रघुनन्दन क डासल सेज सिरहाने ठाढ़ी भइलिनि ॥ १ ॥
पलक उघारि राम चितवइँ अभरन देखि भरमइँ ।
सीता कवन जरूर तोहरे लागल एतनी राति अइलिउ ॥ २ ॥
काहें लागी कइलू सिँगार काहे रे लागी अभरन ।
सीता काहें लागी चढ़लिउ अटरिया देखत डर लागइ ॥ ३ ॥
आप लागी कइलीं सिँगार आप लागल अभरन ।
राजा रौरे तीन लोक क ठाकुर भेंट करै आइउँ ॥ ४ ॥
तूहूँ तउ तीन लोक के ठाकुर तोहँ देख जग डरै ।
राजा तिरिया अलप सुकुमार सेजरिया देखि भरमइ ॥ ५ ॥
नइहरै न बाटैं बीरन भइया ससुरे न देवर ।
राजा मोरे गोदियाँ न जन्मल बलकवा अहक कैसे पुजिहइँ ॥ ६ ॥
लाल पियर न पहिरलीं चउक ना बैठलिउँ ।
सीता के ढुरला नयनवन आँसु पटुका राम पोछइँ ॥ ७ ॥
लाल पियर पहिरबइ चउकन बइठइबइ ।
रानी तोहइँ रखबइ पगड़िया के पेंच नयनवाँ के भीतर ॥ ८ ॥

सीता सोलह श्रृङ्गार करके अटा पर चढ़ गईं । वहाँ रामचन्द्रजी की सेज बिछी थी । सीता सिरहाने खड़ी हुईं ॥१॥

राम ने पलक उठाकर देखा और गहने देखकर चकित हुए । उन्होंने पूछा—हे सीता ! ऐसी क्या ज़रूरत पडी जो तुम इतनी रात में यहाँ आई हो ? ॥२॥

किसलिये तुम ने श्रृङ्गार किया और किसलिये गहने पहने हैं ? हे सीता ! तुम किसलिये अटा पर आई हो ? देख कर मुझे आशंका होती है ॥ ३ ॥

सीता ने कहा—हे नाथ ! आप के लिये मैंने शृङ्गार किया है और आप के लिये ही गहने पहने हैं। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। मैं आप से भेंट करने आई हूँ ॥४॥

आप तो तीन लोक के ठाकुर हो। आप को देखकर तो सारा संसार डरता है। मैं तो एक नादान, अल्पवयस्का, सुकुमार स्त्री हूँ। सेज देखकर मैं चकित होती हूँ ॥५॥

न तो मेरे नैहर में कोई भाई है और न ससुराल में देवर। हे राजा! मेरी गोद में कोई बालक भी नहीं। मेरी लालसा कैसे पूरी हो? ॥६॥

न मैंने कभी लाल पीली साड़ी पहनी, न वेदी पर बैठी। यह कहते-कहते सीता के नयनों से आँसू बहने लगे। राम दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥७॥

राम ने कहा—हे रानी ! मैं तुमको लाल पीला वस्त्र पहनाऊँगा। वेदी पर बैठाऊँगा। सीता ! मैं तुमको अपनी पगड़ी में सरपेंच की भाँति शीर्षस्थान दूँगा और आँखों के भीतर रक्खूँगा ॥८॥

विषय-सुख की अपेक्षा स्त्रियों में माता होने की लालसा अधिक बलवती होती है। पूर्वकाल में, जब के बने ये गीत हैं, स्त्री-पुरुष विषय-वासना की तृप्ति के लिये विवाह नहीं करते थे, बल्कि संतान और समाज की सेवा के लिये वे धर्म के अटूट बंधन में अपने को बाँधते थे। इसी से इस गीत के राम और सीता अलग अलग सोते थे यकायक शयनागार में सीता का आना राम को आनन्द-वर्द्धक नहीं, बल्कि आश्चर्य और भय-कारक जान पड़ा था।

आजकल इसके बिल्कुल विपरीत है। क्योंकि अब स्त्री-पुरुष दोनों आर्यों के प्राचीन आदर्श से अलग हो गये हैं। अब तो स्त्री का पुरुष से अलग रहना ही आश्चर्य और भय की बात समझी जाती है।

[५]

सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो।
रामा जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो ॥ १ ॥
घर से निकरि बँझिनियाँ जङ्गल बिच ठाढ़ी हो।
रामा वन से निकरी बघिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥ २ ॥
तिरिया ! कौनो विपति की मारी जङ्गल बिच ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥ ३ ॥
बाघिन ! जिनकी मैं बारी बियाहो उइ घर से निकारेनि हो।
बाघिन ! हमका जो तुम खाइ लेतिउ बिपतिया से छूटित हो ॥ ४ ॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं खइबइ हो।
बाँझिनि ! तुमका जो हम खाइ लेबइ हमहुँ बाँझिन होबइ हो ॥ ५ ॥
उहाँ से चलेलि बँझिनियाँ बिंबउरी पासे ठाढ़ी हो।
रामा बिंबउरि से निकरेलि नगिनियाँ तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥ ६ ॥
तिरिया ! कौने विपति की मारी बिंबउरी पासे ठाढ़ी हो।
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥ ७ ॥
नागिन ! जिनकी मैं बारी रे बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
नागिनि ! हमका जो तुम डसि लेतिउ विपति से हम छूटित हो ॥ ८ ॥
जहवाँ से तुम आइउ लउटि तहाँ जावो तुमहिं नाहीं डसिबइ हो।
बाँझिनि ! तुमका जो हम डसि लेबइ हमहूँ बाँझिनि होबइ हो ॥ ९ ॥
उहवाँ से चलली बँझिनिया मइया द्वारे ठाढ़ी हो।
भितरा से निकरी मयरिया तो दुखु सुखु पूँछइ हो ॥१०॥
बिटिया कउनि विपति तुमरे ऊपर उहाँ से चली आइउ हो।
सासु मोरी कहेलि बँझिनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥११॥
मइया ! जिनकी मैं बारि बियाही उइ घर से निकारेनि हो।
मइया ! हमका जो तुम राखि लेतिउ विपत्ति से हम छूटित हो ॥१२॥

जहवाँ से तुम आइउ लउटि उहाँ जाओ तुमहिं नाहीं रखिबइ हो।
बिटिया तुमका जो हम राखि लेबइ बहू बाँझिनि होइहइँ हो ॥१३॥
उहवाँ से चलेली बँझिनियाँ जँगल बिच आई हो।
धरती! तुमहीं सरन अब देहु बँझिनि नाम छूटइ हो ॥१४॥
जहवाँ से तुम आइउ लवटि उहाँ जाओ तुमहिं हम न राखब हो।
बाँझिनि! तोहँका जो हम राखि लेई हमहुँ होब ऊसर हो ॥१५॥

मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रजबासिन है। हे राम! बालावस्था में जिनसे मेरा विवाह हुआ था, उन्होंने भी मुझे घर से निकाल दिया ॥१॥

बाँझ स्त्री घर से निकलकर जङ्गल के बीच में खड़ी है। जङ्गल में से बाघिनी निकली। वह बाँझ से उसका सुख-दुख पूछने लगी ॥२॥

हे स्त्री! तुझपर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी है जो तू इस भयानक जंगल में अकेली खड़ी है? स्त्री ने कहा—हे बाघिनी! मेरी सास मुझे बाँझ कहती है, और ननद ब्रजबासिन ॥३॥

जिनकी मैं विवाहिता हूँ, उन्होंने बाँझ कहकर मुझे घर से निकाल दिया है। हे बाघिनी! यदि तुम मुझे खा लेती तो मैं इस विपत्ति से छूट जाती ॥४॥

बाघिनी ने कहा—तुम जहाँ से आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें न खाऊँगी। यदि मैं तुमको खा लूँ तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥५॥

बाँझ वहाँ से चलकर साँप की बाँबी के पास पहुँची। बाँबी में से नागिन निकली। उसने बाँझ का सुख-दुख पूछा ॥६॥

हे स्त्री! किस विपत्ति के कारण तुम बाँबी के पास आई हो? स्त्री ने कहा—मेरी सास मुझे बाँझ कहती है और ननद कहती है कि तू ब्रज-बासिन है ॥७॥

जिनके साथ मेरा विवाह हुआ है, उन्होंने बाँझ समझकर मुझे घर

से निकाल दिया है। हे नागिन ! यदि तुम मुझे डस लेती तो मैं विपत्ति से छूट जाती ॥८॥

नागिन ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हे डस लूँगी तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी ॥९॥

बाँझ वहाँ से चलकर अपनी माँ के द्वार पर आकर खड़ी हुई। माँ घर में से बाहर निकली और उसने बेटी का सुख-दुख पूछा ॥१०॥

हे बेटी ! तुझ पर ऐसी क्या विपत्ति पड़ी जो तुम वहाँ से चली आई ? बेटी ने कहा—हे माँ ! सास मुझे बाँझ कहती है। ननद ब्रजवासिन कहती है ॥११॥

हे माँ ! जिनसे मेरा विवाह हुआ था उन्होंने मुझे बाँझ कहकर घर से निकाल दिया। हे माँ ! यदि तुम मुझे अपने घर में रख लेती तो मैं विपत्ति से छुटकारा पा जाती ॥१२॥

माँ ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। मैं तुम्हें अपने यहाँ नहीं रहने दूँगी, यदि मैं तुमको रख लूँ तो मेरी बहू बाँझ हो जायगी ॥१३॥

बाँझ वहाँ से चल कर जंगल मे आई और धरती से बोली—हे धरती माता ! तुम्हीं अब मुझे शरण दो ॥१४॥

धरती ने कहा—जहाँ से तुम आई हो, वहीं लौट जाओ। हे बाँझ ! यदि मैं तुमको रख लूँगी तो मैं भी ऊसर हो जाऊँगी ॥१५॥

हा ! हिन्दू-समाज में स्त्री का बाँझ होना कितने परिताप का विषय है ! बाँझ से बाघिन और नागिन तक घृणा करती हैं। यहाँ तक कि असली माता और सबकी आश्रयदाता पृथ्वी भी बाँझ को स्थान नहीं देती। हिन्दू-समाज की रचना ही इस प्रकार की हुई है कि उसमें बाँझ के लिये आदर का स्थान नहीं है। इससे प्रत्येक स्त्री संतानवती होने ही मे अपना गौरव और कल्याण समझती है।

[६]

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ बेइली तर ठाढ़ भये।
बेइली! पतवा कंचन अस तोर तो फल कैसे निरफल हो ॥ १ ॥
भल बउरानेउ राजा दसरथ किन बउरावा हो।
राजा! तोहरे घर रनिया कौसिल्या उनहीं से पूछउ हो ॥ २ ॥
सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ वेदिया पर ठाढ़ भये।
मोरी रानी काहे तोहरा बदन मलीन कँवल नाहीं हुलसइ हो ॥ ३ ॥
भल बउराने राजा दसरथ किन बउरावा हो।
राजा बिनु रे सन्तति कुल हीन कँवल कैसे हुलसइ हो ॥ ४ ॥
सोनवा तौ हमरे गिनती नाहीं चँदिया के ढेर लागल रे।
मोरी रानी! बरहा भवन कै अजोध्या दुनौं जने भेलसब हो ॥ ५ ॥
सोनवाँ तो मोरे लेखे राखी भा चँदिया तो माटी भा है रे।
राजा! बरहा भवन कै अजोध्या तो मोरे लेखे जरिगै है हो ॥ ६ ॥
तू राजा होवउ तपसी तौ हम धना तपसिन हो।
मोरे राजा! बिन्द्राबन कै कुटियवा दूनौं जने तप करबइ हो ॥ ७ ॥
बन से निकरे एक जोगिया तो राजा से पूछइँ रे।
राजा कवन तोहरे जियरा संकट तो मधुवन तप करउ हो ॥ ८ ॥
का रे कहउँ मोरे जोगिया तौ का तुम पूछब रे।
जोगिया बिन रे सन्तति कुलहीन तो मधुवन तप करउँ हो ॥ ९ ॥
झोलिया से काढ़िनि भभुतिया तो राजा का दीहिनि रे।
राजा आठ रे महीना नौ लागत राम जनम लेइहइँ,
अजोध्या राजा खेइहइँ हो ॥१०॥
आठ महीना नौ लगतै श्रीरामजी जनम लीन्हेउ हो।
पहो बाजै लागी आनँद बधैय्या उठन लागे सोहर हो ॥११॥

सभवै वइठे हैं राजा दसरथ सुनहु कौसिल्या रानी हो।
रानी उहइ बेइलिया कटाइवइ त जिन मोका बोली बोला हो ॥१२॥
मचियै वइठी कौसिल्या रानी सुनो राजा दसरथ हो।
मोरे राजा! दुधवन वेइली सिंचइवइ त जिन मोका बुद्धि दिये हो॥१३॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ लता के नीचे खड़े हुए। राजा ने पूछा—तुम्हारा पत्ता तो सोने जैसा है, पर तुम में फल क्यों नहीं हैं ? ॥१॥

लता ने कहा—राजा दशरथ ! तुम्हारी मति मारी गई है क्या ? तुम्हारे घर में कौशल्या रानी हैं, उनसे क्यों नहीं पूछते ? ॥२॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए राजा दशरथ वेदी पर आकर खड़े हुए। उन्होंने रानी से पूछा—रानी ! तुम्हारा मुँह उदास क्यों है ? हृदय-कमल विकसित क्यों नहीं है ? ॥३॥

रानी ने कहा—राजा ! आप की मति किसने हर ली है ? बिना संतान के हृदय-कमल कैसे विकसित हो सकता है ? ॥४॥

राजा ने कहा—मेरी प्यारी रानी ! मेरे घर में सोने की गिनती नहीं। चाँदी के ढेर लगे हुए हैं। अयोध्या में हमारे बारह महल हैं। हम दोनों सुख भोगेंगे ॥५॥

रानी ने कहा—सोना मेरे लिये राख और चाँदी मिट्टी है। संतान बिना मेरे लिये बारह महलों की अयोध्या जल गई है ॥६॥

हे राजा ! तुम तपस्वी हो और मैं तपस्विनी। दोनों चल कर वृन्दा-वन में तप करें ॥७॥

दोनों तप करने लगे। वन में से एक योगी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा ! तुम्हारे प्राण पर क्या संकट पड़ा है जो तुम तप कर रहे हो ? ॥८॥

राजा ने कहा—हे योगी ! मैं तुमको क्या बताऊँ ? बिना संतान के हम कुलहीन हैं। इससे तप कर रहे हैं ॥९॥

योगी ने अपनी झोली में से विभूति निकालकर राजा को दी और कहा—हे राजा! नवाँ महीना लगते ही तुम्हारे घर में राम जन्म लेंगे और अयोध्या का राज करेंगे ॥१०॥

आठवें के बाद नवाँ महीना लगते ही राम ने जन्म लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥११॥

राजा को लता का ताना भूला नहीं था। सभा में बैठे हुए उन्होंने रानी कौशल्या से कहा—हे रानी! मैं उस लता को कटा डालूँगा, जिसने मुझे ताना मारा था ॥१२॥

मचिया पर बैठी हुई रानी कौशल्या ने कहा—हे राजा! सुनो; उस लता को दूध से सिँचाओ जिसने मुझे बुद्धि दी है। अर्थात् निस्संतान होने की याद दिलाकर मुझे संतान-प्राप्ति के लिये उत्साहित किया है ॥१३॥

संतानहीन होना बड़ी लज्जा की बात है। निस्संतान व्यक्ति का मज़ाक़ एक लता भी उड़ा सकती है। इस गीत की अंतिम पंक्तियों से पुरुष और स्त्री के स्वभाव का भी पता चलता है। पुरुष में बदला लेने की प्रवृत्ति बहुत होती है। राजा दशरथ को लता का ताना भूला नहीं था, और वे उसे कटाने जा रहे थे। पर स्त्री का हृदय क्षमाशील होता है। कौशल्या ने लता के ताने को और ही रूप दे दिया। उन्होंने उसे क्षमा ही नहीं किया बल्कि उसे दूध से सिँचाने की भी इच्छा प्रकट की। पुरुष कठोर गुणों का समूह है और स्त्रियाँ कोमल गुणों की।

[७]

भोर भये भिनुसार चिरइया एक बोलइ।
राजा अपटि कै खोलइँ केवरिया हेलिन डीठ परिगै।
परि गै हेलिनिया क डीठ राजै कै मुख ऊपर॥१॥
हेलिन धिनवैं हेलवा सँग अपने पुरुख सँग।
हेलवा जे देखेउँ निरवंसी सुरुइयाँ कैसे पुरवैं॥२॥

चुप रहु हेलिनी छिनारि तैं जतिया क पातरि।
तीन भुअन कर राजा कह्यो निरबंसी ॥ ३ ॥
चुप रहु हेलवा दहिजरा तैं जतिया क पातर।
हेलवा तीनि उन्हा करि रानी तीनौं जनि बाँझिनि ॥ ४ ॥
यतना सुन्यौ राजा दसरथ जियरा दुखित भये।
राजा गोड़वा मुड़वा तानेनि दुपट्टा सुतैं धौराहर ॥ ५ ॥
घरिय घरिय दिन दोपहर पहर नहिं बीते।
मोरा सिझले जेवनवा जुड़ाय रजै नहिं आयें ॥ ६ ॥
अरे रे राजा जी के चेरिया त हमरी लउँड़िया।
चेरिया सिझलै जेवनवा जुड़ाय रजै नहिं आये ॥ ७ ॥
चेरिया ज चढ़ि गइ अटरिया रजै क जगावइ।
राजा सिझले जेवनवाँ जुड़ाय विकल रनिवासै ॥ ८ ॥
राजा जब आये हैं महलिया बेदिया चढ़ि बइठें।
राजा कौन बिरोग तुमरे जियरा त हमसे बतावहु ॥ ९ ॥
पाँच पदारथ मोरे घर छठौं नरायन।
रानी जतिया क पातर हेलिनियाँ कहे निरबंसी ॥१०॥
बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥११॥
बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी देहु न हमरा अयनवा देखहुँ मुख आपन ॥१२॥
ऐनहु लै मुख देखिन जियरा दुखित भयें।
रानी करर बरर होइगे बार गोसइयाँ कैसे पुरवैं ॥१३॥
बाउर हो राजा बाउर किन बउरावा।
राजा जो विधि लिखा है लिलार तहैं भरि पाउब ॥१४॥

बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी देहु न मोरि बैसखिया मैं तप करइ जावइ ॥१५॥
एक बन डाकैं दुसर बन तीसरे बिन्द्राबन।
बिन्द्रैबन के बिचवाँ त राजा ध्यान लायनि ॥१६॥
बन से निकरेनि एक तपसी पुछैं राजा दसरथ।
कौन बिरोग तुमरे जियरा जो इतनी दूरि आये ॥१७॥
पाँच पदारथ मोरे घर छठैं नरायन।
तपसी जतिया क पतिरी हेलिनिया कहइ निरबंसी ॥१८॥
जाहु रजै घर अपने पूत तोरे होइहैं।
राजा सुनि लिहें तोहरो पुकार जगत कै मालिक ॥१९॥
होत बिहान लोहि फाटत होरिल जनम लिहें,
राम जनम लिहें।
बाजै लागी अनन बधइया गावैं सखि सोहर ॥२०॥
घर घर फिरैं राजा दसरथ पंडित बुलावइँ।
पंडित खोलहु न पोथिया पुरान तो सुघरी बिचारहु ॥२१॥
बहुतै सुघरी रामा जनमें तो रोहनी नखत में।
राजा बारह बरस के होइहइँ त बन के सिधरिहीं ॥२२॥
बभना के पूत जौ न होतेउ त जियरा मरवउतेंउ।
मोरि इतनी तपस्या के राम त बन के सुनायेउ ॥२३॥
मन कै दुखित राजा दसरथ सुतें घबराहट।
मन कै उछाहिल कौसिल्या रानी पटना लुटावइँ ॥२४॥
बाउर हो रानी कौसिल्या किन बउराई।
रानी धीरे धीरे पटना लुटावउ राम बन जइहीं ॥२५॥
बाउर हो राजा दसरथ किन बौराबा।
राजा छुटल बँझिनिया क नाम भले बन जइहीं ॥२६॥

सबेरा होते ही एक चिड़िया बोला करती है। उसकी बोली सुनकर राजा दशरथ ने झपट कर किवाड़ खोला तो मेहतरानी पर उनकी दृष्टि पड़ गई ॥ १ ॥

मेहतरानी की दृष्टि भी राजा के मुख पर पड़ गई। उसने मेहतर से कहा—आज सबेरे ही सबेरे निरबसिये (संतान हीन) का मुँह देख आई हूँ। देखूँ, ईश्वर क्या करते हैं ? ॥ २ ॥

मेहतर ने कहा—ऐ छिनाल मेहतरानी ! चुप रह। तू नीच जाति की स्त्री है। तू ने तीन भुवन के महाराज को निर्वंशी कैसे कहा ? ॥ ३ ॥

मेहतरानी ने कहा—दाढ़ीजार मेहतर ! तू चुप रह। तू नीच जाति का पुरुष है। उनके तो तीन-तीन रानियाँ हैं, तीनों बाँझ हैं ॥ ४ ॥

राजा दशरथ ने यह बात सुन ली और वे मन में बहुत दुःखी हुए। वे सिर से पैर तक चादर तानकर धौरहर पर जाकर सो रहे ॥ ५ ॥

कौशल्या चिन्ता करने लगीं—घड़ी-घड़ी करके दोपहर हो गया। पहले तो एक पहर भी नहीं होता था कि राजा आ जाते थे। रसोई ठंडी पड़ती जा रही है। राजा क्यों नहीं आये ? ॥ ६ ॥

ए राजा की चेरी ! ए मेरी दासी ! रसोई ठंडी हो रही है। राजा नहीं आये ॥ ७ ॥

चेरी अटा पर चढ़ गई। उसने राजा को जगाकर कहा—राजा रसोई ठंडी हो रही है। सारा रनिवास विकल है ॥ ८ ॥

राजा महल में आये। वेदी पर बैठ गये। कौशल्या ने पूछा—राजा ! तुम्हारे जी में क्या दुःख है ? मुझे बताओ ॥ ९ ॥

राजा ने कहा—पाँच पदार्थ मेरे घर में हैं। छठें नारायण हैं। हे रानी ! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी मुझे निरबसिया कहती है ॥ १० ॥

रानी ने कहा—तुम बहुत भोले हो। हे राजा ! जो भाग्य में लिखा है, वही मिलेगा ॥ ११ ॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम पागल हो। जरा मेरा दर्पण तो मुझे दो, मैं अपना मुँह तो देखूँ ॥ १२ ॥

राजा ने दर्पण लेकर मुँह देखा। वे दुःखी हुए। बोले—हे रानी ! बाल तो अधपके हो गये। देखें, ईश्वर कैसे बिताता है ? ॥१३॥

रानी ने कहा—राजा ! तुम भोले हो। किसने तुमको भरमाया है ? हे राजा ! जो ब्रह्मा ने माथे में लिख दिया है, वही मिलेगा ॥ १४ ॥

राजा ने कहा—रानी ! तुम्हारी समझ ठीक नहीं। मेरी लाठी लाओ। मैं तप करने जाऊँगा ॥ १५ ॥

एक वन से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में गये तो वृन्दावन मिला। वृन्दावन के बीच में बैठकर राजा ने भगवान् का ध्यान किया ॥ १६ ॥

वन में से एक तपस्वी निकले। उन्होंने पूछा—हे राजा ! तुमको क्या दुःख है ? जो तुम इतनी दूर आये हो ॥ १७ ॥

राजा ने कहा—मेरे घर में किसी चीज़ की कमी नहीं है। पर हे तपस्वीजी ! नीच जाति की स्त्री मेहतरानी ने मुझे निर्वंशी कहा है ॥ १८ ॥

तपस्वी ने कहा—हे राजा ! अपने घर जाओ। तुम्हारे पुत्र होगा। संसार के स्वामी ने तुम्हारी पुकार सुन ली है ॥ १९ ॥

सबेरे पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया, राम ने अवतार लिया। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥ २० ॥

राजा दशरथ घर-घर घूमकर पंडितों को बुला रहे हैं। राजा पूछते हैं—हे पंडित ! अपनी पोथी खोलो न ? बताओ, लड़का कैसी घड़ी में पैदा हुआ है ? ॥ २१ ॥

पंडित ने कहा—बहुत अच्छी घड़ी में राम का जन्म हुआ है। रोहिणी नक्षत्र में जन्म हुआ है। हे राजा ! बारह वर्ष के होंगे तो वन को चले जायँगे ॥ २२ ॥

राजा ने कहा—तुम ब्राह्मण के लड़के न होते तो मैं तुम्हें जान से मरवा डालता। इतनी तपस्या के बाद जो राम मुझे मिले हैं, तुमने कहा कि वे बन को चले जायँगे ?॥ २३ ॥

राजा मन में दुःखी होकर अटा पर जाकर सो रहे। कौशल्या रानी को पुत्र-जन्म से बड़ा उत्साह था। वे धन लुटाने लगीं ॥ २४ ॥

राजा ने कहा—हे कौशल्या रानी ! पागल मत हो। किसने तुम्हें बावली कर दिया है ? धीरे-धीरे धन लुटाओ। राम बन को जायँगे ॥ २५ ॥

रानी ने कहा—राजा ! तुम्हारी बुद्धि कहाँ है ? राम बन को जायँगे तो क्या हुआ ? मेरा बाँझ का नाम तो छूट गया ॥ २६ ॥

हिन्दू-समाज में वंश-हीन होना बड़े पाप का फल समझा जाता है। इस विचार की छाप आज भी हिन्दुओं के मस्तिष्क में मौजूद है। वंशहीन व्यक्ति, चाहे वह राजा दशरथ ही क्यों न हो, मेहतर द्वारा भी तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है। उच्च समाज में उसकी अप्रतिष्ठा का तो कहना ही क्या ?

इस गीत में भी स्त्री की बुद्धि का अच्छा चमत्कार देखने को मिलता है। पुरुष बात-बात में व्यथित हो जाता है; पर स्त्री की बुद्धि आदि से अंत तक गंभीर और निश्चित रहती है।

[८]

अरे अरे श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु।
मोरी चिरई ! अरी मोरी चिरई ! सिरकी भितर बनिजरवा
जगाइ लइ आवउ, मनाइ लइ आवउ ॥ १ ॥
कवने बरन उनकी सिरकी कवने रँग बरदी।
बहिनी ! कवने बरन बनिजरवा जगाइ लै आई मनाइ लै आई ॥ २ ॥
जरद बरन उनकी सिरकी उजले रँग बरदी।
सँवर बरन बनजरवा जगाइ लै आवउ मनाइ लै आवउ ॥ ३ ॥

सिरकी भितर बनिजरवा सोवहु की जागउ।
अरे मोरे बनिजर तोर धन चिट्ठी लिखि भेजा उठो चिट्ठी बाँचो ॥ ४ ॥
चिठिया बँचत बनिजरवा हिरदैयाँ लै लगावइ करेजवा छपटावइ।
अरे मोरे बनजर! तरर तरर चुवे अँसुवा रुमलिया लिहे पोंछइ ॥ ५ ॥
सवना भदौवाँ अँधियरिया अमवाँ नाहीं बौरइ,
अमिलिया नाहीं झपसइ।
मोरी चिरई! अरी मोरी चिरई! बाऊ बहुरिया के ठनगन
अमवाँ जे माँगइ अमिलिया जे माँगइ ॥ ६ ॥
खैरा सुपरिया घुनन लागे झिंगुर लागे कापड़।
जौ मोरि बरदी बिकइहैं तबै घर आइब ॥ ७ ॥
मचियइ बइठी ससुइया तो सुरजा मनावैं।
अरे मोरे सुरजा मेहरी क चाकर मरदवा त अमवाँ ढुँढ़न गये
कब दहुँ आवैं ॥ ८ ॥

हे श्यामा चिड़िया! खिड़की पर मत बोलो। हे मेरी प्यारी चिड़िया! सिरकी में मेरा बनजारा (व्यापारी) है, उसे जगा लाओ। उसे मना लाओ ॥१॥

श्यामा ने कहा—हे बहन! तुम्हारे बनजारे की सिरकी किस रंग की है? उसकी बरदी किस रंग की है? बनजारा स्वयं किस रंग का है? जिसे मैं जगा लाऊँ और मना लाऊँ ॥२॥

स्त्री ने कहा—पीले रङ्ग की तो सिरकी है। सफेद रंग की बरदी है और साँवले रङ्ग का बनजारा है। उसे जगा लाओ, उसे मना लाओ ॥३॥

श्यामा ने बनजारे के पास जाकर कहा—सिरकी के भीतर सोते हो या जागते? हे बनजारा! उठो। तुम्हारी प्यारी स्त्री ने चिट्ठी भेजी है, उसे बाँचो ॥४॥

बनजारे ने चिट्ठी बाँचकर उसे हृदय से लगाया, कलेजे से चिपका(

लिया। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। रूमाल से वह उसे पोंछने लगा ॥५॥

बनजारा कहने लगा—सावन-भादों का घोर अंधकार; भला, आज-कल न आम में बौर आते हैं और न इमली ही फलती है। पर हे मेरी प्यारी चिड़िया! मेरी भोली-भाली स्त्री का हठ तो देखो; वह आम और इमली माँगती है ॥६॥

मुझे इतने दिन आये हो गये कि खैर सुपारी में घुन लग गये और कपड़ों में झींगुर। अब तो मेरी बरदी बिकेगी, तभी मैं घर आऊँगा ॥७॥

मचिया पर बैठी हुई सास सूर्य से प्रार्थना कर रही है—हे मेरे सूर्य! स्त्री का दास पुरुष स्त्री के लिये आम ढूँढ़ने गया है, इमली ढूँढ़ने गया है। पता नहीं, कब आयेगा ॥८॥

इस गीत में पुराने ज़माने का चित्र है, जब व्यापारी लोग, जिन्हें बनजारा कहते थे, चीजें लादकर दूर देशों में बेंचने जाया करते थे और बहुत दिनों पर लौटते थे। यह बात खास ध्यान देने की है कि उन दिनों स्त्रियाँ भी पढ़ी-लिखी होती थीं और अपने पतियों को पत्र लिखकर भेजा करती थीं। श्यामा पक्षी के हाथ पत्र या संदेशा भेजना तो वैसा ही है, जैसा मेघदूत में मेघ-द्वारा और नल-दमयन्ती की कथा में हंस-द्वारा समाचार भेजे गये थे।

[९]

मचियहिं बैठी हैं सासु बहुआ से पूछइँ रे।
बहुआ काहें तोर मुँहा पियरान गोड़ घहरावहि रे ॥ १ ॥
लाज शरम कै बतिया मैं सासूजी से कैसे कहउँ रे।
सासु तोरा पूत छयल छबिलवा अँचरवा पिच डारइँ रे ॥ २ ॥
ये अलबेली बहुरिया लछन न लगावहु रे।
दुलहिनि आज के नवयें महिनवाँ होरिल तोहरे होइहैं रे ॥ ३ ॥

अरे सासूजी के होवै चेरिया ननद मन हरबै रे।
अपने राजा के प्रान पियारी होरिल मोरे होइहैं रे ॥ ४ ॥

मचिये पर सास बैठी है और बहू से पूछ रही है—हे बहू ! तुम्हारा मुँह पीला क्यों है ? पैर भारी क्यों है ? ॥ १ ॥

बहू सोचती है—ठीक जवाब देते हुए मुझे लाज लगती है। फिर वह बोली—हे सासजी ! तुम्हारा पुत्र बड़ा छैल-छबीला है, उसने मेरा आँचल मसल दिया है ॥ २ ॥

सास ने कहा—हे अलबेली बहू ! बात न बनाओ। हे दुलहिन ! आज के नवें महीना तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ३ ॥

बहू मन में कहती है—अरे ! मेरे पुत्र होगा। मैं सासजी की चेरी होऊँगी। ननद का मन हर लूँगी और अपने राजा की प्राण-प्यारी होऊँगी।

गर्भवती स्त्री की कैसी मनोहर अभिलाषा है !

[१०]

चकई पुछहिं सुनु चकवा भोर कब होइहइँ सुरुज कब उइहइँ रे।
चकई रुकमिनि हरि परदेस घरहिं कब अइहइँ रे ॥ १ ॥
तौ खेलत मेलत के बेटौना त भैया मोर लागउ रे।
भैया हरि के लगाई नवरङ्गिया तौ ठाढ़ि सुखाति हवैं रे ॥ २ ॥
खेलत मेलत की चिटियवा त बहिनी मोर लागउ रे।
बहिनी जा रे धनिया कुलवंतिनि सींचि जगावइँ रे ॥ ३ ॥
हाथ के रे काढ़ेन कंगनवाँ पायेन कर नूपुर रे।
ये हो सिर धरि लिहेनि वढ़लना नौरङ्ग सींचै चलि भई रे ॥ ४ ॥
पेड़ धरि सींचैं नवरङ्गिया डार धरि भेंटैं हो।
ये हो आइ गै है हरि कै सुरतिया तौ छतिया वेहाल भई हो ॥ ५ ॥

घिया केरि पुरिया पोवायउँ दुधन कइ जाउरि हो।
ये हो मोरे लेखे माहुर धतुरवा अकेले मोरे हरि बिन हो ॥ ६ ॥

चकई चकवे से पूछती है—हे चकवा ! सवेरा कब होगा ? सूर्य कब उदय होंगे ? हे चकवा ! रुक्मिणी के स्वामी परदेश से कब आयेंगे ? ॥१॥

रुक्मिणी कहती है—हे खेलने-कूदनेवाले लड़को ! तुम मेरे भाई लगते हो। मेरे प्राणेश्वर की लगाई हुई नारङ्गी खड़ी सूख रही है ॥२॥

लड़कों ने कहा—हे खेलनेवाली लड़की ! तुम मेरी बहन लगती हो। जो स्त्री कुलवंती होती है, वह स्वयं सींचकर उसे जगाती है ॥३॥

रुक्मिणी ने हाथ का कंगन काढ़कर रख दिया। पैरों से पाजेब निकालकर रख दिया, और सिर पर घड़ा रखकर वह सींचने चल खड़ी हुई ॥४॥

पेड़ का तना पकड़कर वह नारङ्गी सींचती है और डाल पकड़ कर भेंटती है। इतने में प्राणेश्वर की सुध आ जाती है तो वह विह्वल हो जाती है ॥५॥

वह कहती है—मैंने घी की पूरियाँ बनाईं और दूध की खीर। पर प्राणेश्वर के बिना मेरे लिये वह विष सा मालूम होता है ॥६॥

इस गीत में वियोगिनी का बहुत ही स्वाभाविक वर्णन है।

[११]

पहिल सपन एक देखेउँ अपने मंदिल में रे।
सासु सपने क करहु बिचार सपन सुभ पावउँ ॥ १ ॥
सपने ससुर राजा दसरथ बगिया लगावइँ हो।
सासु बगिया में फुलइ गुलाब भँवर रस बिलसइ हो ॥ २ ॥
सपने कौसल्या ऐसी सास तो हमरे महल आईं।
सासु सोने कै दहेंड़िया लिहे ठाढ़ि पुछैं बहुवा कहाँ धरउँ रे ॥ ३ ॥

सपने लखन अस देवर रुमलिया पीठि झारैं,
बिहँसि बतिया बोलइँ हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा बछेड़वा हम लेवइ रे ॥४॥
सपने सुभद्रा ऐसी ननदा तौ हमरे महल आईं,
बिहँसि बतिया बोलइँ हो।
भौजी जौ तोरे होइहैं होरिलवा कँगन हम लेवइ हो ॥५॥
सपने पुरुष राजा राम अस हमरे महल आयेँ।
सामी हँसत कमल दूनौं नैन सेजरिया पगु धारइँ हो ॥६॥

मैंने अपने महल में आज पहला स्वप्न देखा। हे सासु! स्वप्न का विचार करके बताओ कि यह स्वप्न शुभ है न? ॥१॥

स्वप्न में राजा दशरथ ऐसे मेरे ससुर बाग लगाते हैं। उस बाग में गुलाब फूला है, जिस पर भौंरे रस ले रहे हैं ॥२॥

स्वप्न में कौशल्या ऐसी सास मेरे महल में आती हैं। उनके हाथ में सोने की दहेंड़ी (दही की हाँड़ी) है। वे पूछती हैं कि बहू इसे कहाँ रक्खूँ ॥३॥

स्वप्न में लक्ष्मण ऐसे देवर रुमाल से मेरी पीठ झाड़ रहे हैं, हँसकर कह रहे हैं कि भाभी! तुम्हारे पुत्र होगा तो मैं बछेड़ा लेऊँगा ॥४॥

स्वप्न में सुभद्रा ऐसी ननद मेरे महल में आती हैं। वह हँसकर कह रही हैं कि हे भाभी! तुम्हारे पुत्र होगा तो मैं कंगन लूँगी ॥५॥

स्वप्न में राम ऐसे मेरे पति मेरे महल में आये। कमल ऐसे नेत्रों से हँसते हुए उन्होंने मेरी सेज पर चरण रक्खा ॥६॥

[१२]

छोट मोट पेड़वा ढेकुलिया त पतवा रे लहालहो हो।
रामा ताही तरे ठाढ़ि रे हरिनिया हरिन बाट जोहइ हो ॥ १ ।

बन में से निकलेला हरिना त हरिनी से पूँछले हो।
हरिनी काहें तोर बदन मलीन काहें मुँह पीअर हो ॥ २ ॥
गइलों मैं राजा के दुअरिआ त बतिया सुनि अइलों हो।
प्यारे आजु छोटे राजा क बहेलिया हरिन मरवइहइँ हो ॥ ३॥
केइ जे बगिया लगवलें केइ रे आए ढुँढ़ले हो।
हरिनी केकर धनिया गरभ से हरिनवा मरवावले हो ॥ ४ ॥
दसरथ बगिया लगवलें लखन आये ढुँढ़ले हो।
प्यारे रघुबर धनिया गरभ से हरिन मरवावले हो ॥ ५ ॥
कर जोड़ी हरिनी अरज करे सुनु कौशल्या रानी हो।
रानी सीता के होइहैं नन्दलाल हमहीं कुछ दीहव हो ॥ ६ ॥
सोनवा मढ़इबों दुइ सिँगवा भोजनवा तिल चाउर हो।
हरिनी भुगतहु अयोध्या के राज अभै बन बिचरहु ॥ ७ ॥

एक छोटा मोटा ढाक का पेड़ है जो पत्तों से लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खड़ी है और हरिन की राह देख रही है ॥१॥

बन में से हरिन निकला और उसने हरिनी से पूछा—हे हरिनी! तुम्हारा मुँह उदास और पीला क्यों है? ॥२॥

हे हरिन! मैं राजा के द्वार पर गई थी। वहाँ मैंने सुना है कि आज छोटे राजा अपने बहेलिये (व्याधा) से हरिन को मरवायेंगे ॥३॥

हे हरिनी! किसने बाग लगवाया? बन में आकर किसने खोजा? और किसकी स्त्री गर्भ से है जो हरिन मरवायेंगे? ॥४॥

हे हरिन! राजा दशरथ ने बाग लगवाया है। लक्ष्मण खोजने आये थे। राम की स्त्री सीता को गर्भ है। उन्हीं के लिये हरिन मारा जायगा ॥५॥

हरिनी कौशल्या के पास जाती है और हाथ जोड़कर विनती करती है—हे रानी! आज सीता के पुत्र होगा, मुझे कुछ दो ॥६॥

कौशल्या उसका अभिप्राय समझकर कहती हैं—हे हरिनी! मैं

हरिन के दोनों सींगों को सोने मढ़ाऊँगी और तिल चावल खाने को दूँगी। तुम जाओ, अयोध्या के राज में सुख भोगो और निर्भय होकर वन में विहार करो ॥७॥

[१३]

उठत रेख मसि भीजत राम वनै गये हो।
मोरी बरहा बरिस कै उमिरिया मैं कइसे वितइवइ हो ॥ १ ॥
काह राम तोहरे घराँ रहे काह विदेस गये हो।
रामा हँसि कै न धरेउ अँचरवा न कवहूँ कोहानेउ ॥ २ ॥
कारी चुनरि नाहीं पहिन्यों पियरी नाहीं छोन्यों हो।
रामा कोरवा न लीन्हेउँ बलकवा छठी नाहीं पूजेउँ हो ॥ ३ ॥
छोड़े जाइथ घर भर सोनवाँ महल भर रुपवा हो।
रामा छोड़े जाइथ लहुरा देवरवा पिया के सँग रहवइ हो ॥ ४ ॥

रेख भिन रही थी (ज़रा सी मोछ निकल रही थी); उस समय मेरे राम वन को गये। मेरी बारह वरस की अवस्था, मैं दिन कैसे बिताऊँगी॥१॥

हे राम! तुम्हारे घर रहने से क्या? और विदेश जाने से क्या? न तो तुमने कभी हँसकर मेरा आँचल पकड़ा और न तुम कभी रूठे ॥२॥

पीली धोती पहन कर मैं आई थी, वही पहने हूँ। काली सारी मैंने पहनी ही नहीं। न गोद में वालक लिया, न छठ की पूजा की ॥३॥

मैं सोने से भरा हुआ घर और चाँदी से भरा हुआ महल छोड़कर जा रही हूँ। छोटे देवर को भी छोड़कर जा रही हूँ। मैं अपने प्राणनाथ के साथ रहूँगी ॥४॥

कभी-कभी रूठ जाना भी प्रेम-वृद्धि के लिये आवश्यक जान पड़ता है।

[१४]

राम जे चलेनि मधुवन के माई से अरज करइँ।
माई हम तो जावइ मधुवन के सितै कइसे रखविउ ॥ १ ॥

आँगन कुइयाँ खनइवै सितैहिं नहवैवइ।
बेटा! खाँड़ चिरौंजी खवइवइ हृदय बीच रखवइ ॥ २ ॥
राम जे चलेनि मधुवन के सीता जे गोहन लागीं।
सीता! हमरे सँग मत चलहु बहुत दुख पउबिउ ॥ ३ ॥
सहबइ मैं भुखिया पियसिया जेठ दुपहरिया।
पिया देखि हम तोहरी सुरतिया सकल सुख पउबइ ॥ ४ ॥

राम वन को जा रहे हैं। माँ से वे प्रार्थना कर रहे हैं—हे माँ! मैं तो बन को जा रहा हूँ, सीता को तुम कैसे रखोगी? ॥ १ ॥

माँ ने कहा—बेटा! आँगन मे कुँवा खोदवा लूँगी। वहीं सीता को नहलाऊँगी। खाँड़ और चिरौंजी खिलाऊँगी और हृदय में रखूँगी ॥ २ ॥

राम मधुवन को चले। सीता साथ लगीं। राम ने कहा—सीता! हमारे साथ मत चलो। बहुत कष्ट पाओगी ॥ ३ ॥

सीता ने कहा—हे प्रियतम! भूख-प्यास सह लूँगी। जेठ की दुपहरी भी सह लूँगी। हे राम! तुमको देखकर मैं सब सुख पाऊँगी ॥ ४ ॥

सच है, पतिव्रता स्त्री को पति के सिवा सुख कहाँ?

[१५]

जउ मैं जनतेउँ ये लवँगरि एतनी मँहकबिउ।
लवँगरि रँगतेउँ छयलवा क पाग सहरवा में गमकत ॥ १ ॥
अरे अरे कारी बदरिया तुहइँ मोरि बादरि।
बादरि! जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ॥ २ ॥
बाउ बहइ पुरवइआ त पछुवाँ झकोरइ।
बहिनी दिहेउ केवड़िया ओठँगाइ सोवउँ सुख नीदरि ॥ ३ ॥
कि तुहूँ कुकुरा बिलरिआ सहर सब सोवइ।
कि तुहूँ ससुर पहरिआ किवरिआ भड़कावहु ॥ ४ ॥

ना हम कुकुर बिलरिया न ससुरु पहरिआ।
धन ! हम अही तोहरा नयकवा बदरिया बुलायसि ॥ ५ ॥
आधी राति बीति गई बतियाँ नियाई राति चितियाँ।
बारह बरस का सनेहिया जोरत मुर्गा बोलइ ॥ ६ ॥
तोरबेउँ मैं मुर्गा क ठोर गटइया मरोरबेउँ।
मुर्गा काहे किहेउ भिनुसार त पियहि बतायउ ॥ ७ ॥
काहे क ये रानी तोरबिउ ठोर गटइया मरोरबिउ।
रानी होइ गइ धरमवाँ क जूनि भोर होत बोलइ ॥ ८ ॥

हे लवंग ! यदि मैं जानती कि तुम इतना महकोगी तो मैं अपने शौकीन पति की पगड़ी तुम्हारे फूल से रँगती, जिससे वह सारे शहर मे महकते ॥१॥

हे काली घटा ! तुम्हीं मेरी प्यारी घटा हो। हे घटा ! वहाँ जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम हैं ॥२॥

पूर्वा हवा बह रही है। कभी-कभी पछवाँ भी झकोरता है। हे ननद ! तुम केवाड़ी बन्द कर देना, मैं सुख की नींद सोऊँगी ॥३॥

तुम कुत्ते हो या बिल्ली या मेरे ससुरजी के पहरेदार हो ? सारा शहर तो सो रहा है। तुम कौन हो जो मेरी केवाड़ी खटखटा रहे हो ? ॥४॥

न मैं कुत्ता हूँ, न बिल्ली और न तुम्हारे ससुर का पहरेदार ही हूँ। हे प्यारी ! मैं तुम्हारा पति हूँ। मुझे घटा बुला लाई है ॥५॥

आधी रात बातों ही में बीत गई। बारह वर्ष के प्रेम को एक करने में सारी रात बीत गई। इतने में मुर्गा बोलने लगा ॥६॥

स्त्री ने कहा—हे मुर्गा ! मैं तुम्हारी चोंच तोड़ डालूँगी। तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूँगी। तुमने सवेरा क्यों किया और मेरे प्रियतम को क्यों बतलाया ? ॥७॥

पति ने कहा—हे रानी ! मुर्गे बेचारे की चोंच क्यों तोड़ोगी और

क्यों उसकी गर्दन मरोड़ोगी ? हे रानी ! अब तो ईश्वरभजन की बेला हो गई, इसी से वह बोला है ॥८॥

[१६]

सासु जे बोलेलीं अड़पी ननद तड़पी बोलै हो ।
बहुअरि काहे क भरलिउ गुमान सोप्पेलू सुख निद्रा ॥ १ ॥
बाबा के हैं हम निलरुई त भैया के दुलरुई हो ।
ऐ अपने हरीजी के प्राणअधारी सोईले सुख-निद्रा ॥ २ ॥
एतना बचन राजा सुनलेनि सुनहू ना पवलेनि हो ।
राजा सारी रात सुतलें करवटिया त मुखहू ना बोलहिं ॥ ३ ॥
किआ रउरा जेवना बिगड़ले सेजिअ भोर भइलेनि हो ।
ऐ राजा किया रउरा सेवा चुकलों त मुखहू न बोलहु ॥ ४ ॥
नाहीं मोर जेवना बिगड़ले सेजिअ भोर भइल न हो ।
ए रानी ! गंगा जमुन मोरी माता गरब बोली बोलेहु ॥ ५ ॥
हम से भइलि तकसिरिया सासु पग लागब ।
राजा ! मइया मनाइ हम लेब राउर हँसि बोलहु ॥ ६ ॥

सास डपट कर बोलती हैं, ननद तड़प कर कहती है—बहू ! किस अभिमान में तुम भरी रहती हो जो खूब सुख से सोती हो ? ॥१॥

बहू ने कहा—मैं अपने पिता की एक ही कन्या हूँ; भाई की दुलारी हूँ और अपने प्राणेश्वर की प्राणाधार हूँ। इसी से सुख की नींद सोती हूँ ॥२॥

पति ने यह बात सुन ली। सब बातें अच्छी तरह सुनी भी नहीं कि वे सारी रात एक करवट सोये रहे और स्त्री से नहीं बोले ॥३॥

स्त्री ने पूछा—हे राजा ! क्या आपका भोजन मैंने ख़राब बनाया ? या सेज बिछाने में कोई भूल हुई या देर हुई ? मैं आपकी किस सेवा में चूक गई जो आप नहीं बोलते हैं ? ॥४॥

पति ने कहा—हे रानी ! न तुमने मेरा भोजन बिगाड़ा, न सेज में कोई भूल या देरी हुई। गंगा-जमना की तरह पवित्र और पूज्य मेरी माँ को जो तुमने अभिमान से जवाब दिया, मैं इसलिये अप्रसन्न हूँ ॥५॥

स्त्री ने कहा—मुझ से ग़लती हुई। मैं सासजी के पैर छूकर क्षमा माँगूँगी। हे राजा ! आप प्रसन्न होकर बोलें, मैं आपकी माता को मना लूँगी'॥६॥

इस गीत से स्त्रियों को अभिमान-रहित और नम्र होने की शिक्षा मिलती है। साथ ही पुरुष के लिये भी यह संकेत है कि वह माता के सम्मान का सदैव ध्यान रक्खे। सास-बहू के झगड़ों में पुरुष की असावधानी भी एक प्रधान कारण है।

[१७]

सावन भादौं की अँधिअरिआ बिजुलिआ चमाकइ
बिजुलिआ चमाकइ हो।
मोरी सखिआ वे हरि चले मधुबन को मैं दरसन कीन्हें
मैं दरसन कीन्हेउ हो ॥ १ ॥
का दइ कइ चले माई को काह बहिन को ये काह बहिन को।
मोरी सखिआ का दइ चले गोरी धनिऐ जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥ २ ॥
बइठक दइ चले मइये रोसइयाँ बहिनियैं रोसइयाँ बहिनियइँ।
मोरी सखिआ यह गजओवरि गोरी धनियैं जो गरुये गरब से
जो गरुये गरब सेनी हो ॥ ३ ॥
जो मोरा मूड़ पिरैहैं मैं किनको जगैहौं मैं किनको जगइहउँ।
मोरे राजा अन्तर जिअरा को भेद मैं किनको बतैहौं
मैं किनको बतइहउँ हो ॥ ४ ॥

जौ तोरा मूड़ पिराये अरि अम्मा को जगैहौ
अरि अम्मा को जगइहौ हो।
मोरी रानी अन्तर जिअरा को भेद पतिया लिखि भेजेउ
पतिया लिखि भेजेउ हो ॥ ५ ॥
काहे को फारि कगद करौं काहे की मसी करौं
काहे की मसी करउँ हो।
मोरे राजा के लइ जाये मोर पतिया जो पाती लिखि भेजौं
जो पाती लिखि भेजउँ हो ॥ ६ ॥
आँचर फारि कगद करौ कजरा की मसी करौ
कजरा की मसी करउ।
मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे जो पाती लिखि भेजेउ
जो पाती लिखि भेजेउ हो ॥ ७ ॥
देवरा हो मोरा देवरा अरे तुम मोरा देवरा
अरे तुम मोरा देवरा हो।
मोरा देवरा जो हरि होयँ अकेले तो बाँचि सुनायउ
तौ बाँचि सुनायउ हो ॥ ८ ॥
रानी ने पाती भेजी अरि राजा ने बाँची अरि राजा ने बाँची।
हाँ जैसे नैन रहे जल छाय आँकु नहिं सूझै आँकु नहिं सूझइ हो ॥ ९ ॥
यह लो अपनी चकरिया अरि वह चटसरिया
अरि वह चटसरियउ हो।
मोरे स्वामी हम घर रानी दुखित हैं तो हमरे दरस बिन
हमरे दरस बिन हो ॥१०॥

सावन-भादों की अँधेरी रात है। बिजली चमक रही है। हे सखी ! मेरे स्वामी मधुबन को चले गये। मैंने दर्शन किया है ॥१॥

माँ को क्या दे गये ? बहन को क्या दे गये ? और अपनी गोरी

स्त्री को क्या दे गये, जिसको गर्भ है ॥२॥

माँ को बैठक दिया, बहन को रसोई दी और अपनी गोरी स्त्री को यह कोठरी दे गये ॥३॥

स्त्री ने पूछा था—यदि मेरा सिर दर्द करने लगेगा तो किसको जगाऊँगी ? और हे मेरे राजा ! मैं अपने मन की बात किससे बताया करूँगी ? ॥४॥

पति ने कहा था—हे रानी ! यदि तुम्हारा सिर दुखे तो माँ को जगा लेना और अपने मन की बात मुझे पत्र में लिखकर भेजा करना ॥५॥

स्त्री ने पूछा—किस चीज को फाड़कर मैं कागज बनाऊँगी ? और किस चीज की स्याही ? और कौन मेरी चिट्ठी लेकर जायगा ? जो पत्र लिखकर भेजूँगी ॥६॥

पति ने कहा—आँचल फाड़कर कागज बनाना और काजल की स्याही बनाना। मेरी रानी ! छोटे देवर के हाथ पत्र लिखकर भेजना ॥७॥

पति के चले जाने पर स्त्री ने देवर से कहा—हे देवर ! तुम मेरे प्यारे देवर हो। मेरे हरि अकेले हों तो मेरा पत्र उनको बाँचकर सुनाना ॥८॥

रानी ने पत्र भेजा। राजा ने बाँचा। बाँचते-बाँचते उनकी आँखों में आँसू भर आये। अक्षर का सूझना बन्द हो गया ॥९॥

पति ने अपने मालिक से कहा—यह लो अपनी नौकरी और यह लो अपना घर। हे मेरे मालिक ! मेरी रानी मुझे देखने के लिये तरस रही है ॥१०॥

मालूम होता है, स्त्री का पत्र पाकर पति नौकरी छोड़कर घर चला आया। सच है, प्रेम की परीक्षा त्याग से ही होती है। इस गीत से यह भी मालूम होता है, कि गीतों की दुनियाँ में स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी भी थीं। तभी तो स्त्री ने देवर के हाथ पति को पत्र लिखकर भेजा था।

[१८]

सोने के खड़उवाँ कवन राम खुट्टुर खुट्टुर करइँ हो।
उठहु ससुर राम धेरिया सेजरिया हमरी डासहु हो ॥ १ ॥
सोनवहि कै मोरा नैहर रुपवा केवाड़ी लागे हो।
रामा सातहु भैया कै वहिनी सेजरिया कैसे डासउँ हो ॥ २ ॥
इतना बचनु सुनि रजवा तौ मनहिं दुखित भये हो।
अरे हो हनि लिहेनि बजर केवाँड़ उघारे नहीं उघरइ।
खोलाये नाहीं खोलइँ बोलाये नाहीं बोलइँ हो ॥ ३ ॥
मचियै बैठली सासू तौ बहुवरि अरज करइ हो।
सासू कवन गुनहिं हम कीन्ह केवड़ियन हनि लीन्हे हो ॥ ४ ॥
बेटा तू मेरा बेटा तुमहिं सिर साहिब हो।
बेटा कवन गुनहियाँ बहुवर कीन्ह केवाड़यन हनि लीन्हेउ हो ॥ ५ ॥
मैया तू मेरी मैया तुहहिं मेरी मैया हौ हो।
मैया सोनवहि कै चोके नैहर रुपवै केवाड़ी लागे हो।
मैया सातों भैया कै वहिनी सेजरिया कैसे डासइ हो ॥ ६ ॥
मटियहिं कै मोरा नैहर सुपवा केवाँड़ी लागे हो।
सासू सातो भैया किंगरी बजावइँ बहिन मोरी नाचइ हो ॥ ७ ॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढे हुए.......राम खुटुर खुटुर चल रहे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—हे मेरे ससुर की कन्या! उठो और मेरी सेज बिछाओ ॥ १ ॥

स्त्री ने कहा—सोने का तो मेरा नैहर है। चाँदी के उसमें किवाड़े लगे हैं। मैं सात भाइयों में एक ही बहन हूँ। मैं सेज कैसे बिछाऊँगी? ॥ २ ॥

स्त्री की यह गर्वोक्ति सुनकर पति मन ही मन बहुत दुःखी हुआ। उसने बज्र ऐसा केवाड़ा बन्द कर लिया जो खोलने से नहीं खुल सकता।

स्त्री ने खोलने के लिये बार-बार कहा, बार-बार बुलाया, पर पति ने न केवाड़ खोले और न कुछ उत्तर दिया ॥३॥

स्त्री बेचारी सास के पास पहुँची। सास मचिया पर बैठी थीं। बहू ने विनती की—हे सासजी! मैंने क्या अपराध किया जो उन्होंने केवाड़े बन्द कर लिये? ॥४॥

माँ ने बेटे से पूछा—हे बेटा। बहू ने क्या अपराध किया जो तुमने केवाड़े बन्द कर लिये? ॥५॥

बेटे ने कहा—हे माँ! सोने का तो इसका नैहर है, जिसमें चाँदी के केवाड़े लगे हैं; अपने सात भाइयों में यही एक बहन है। भला, यह सेज कैसे बिछा सकती है? ॥६॥

स्त्री ने कहा—अच्छा, मेरा नैहर मिट्टी का है। जिसमें सूप के केवाड़े लगे हैं! मेरे सातो भाई किंगरी बजाकर भीख माँगते हैं और मेरी बहन नाचती है ॥७॥

स्त्री का नैहर यदि सुखी हुआ तो उसके लिये स्त्री को अभिमान बहुत काफ़ी होता है। पर नैहर के लिये उसका अभिमान ससुराल में सहन नहीं हो सकता। इस अभिमान को लेकर भी कभी-कभी सास-बहू, ननद-भौजाई और यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी वैमनस्य फैल जाता है। स्त्रियाँ बड़ी प्रत्युत्पन्नमति होती हैं। इस गीत की स्त्री का वाक्-चातुर्य्य देखिये; उसने झटपट अपने नैहर का अभिमान त्याग दिया और पति को प्रसन्न कर लिया।

[१९]

ये रतनारे होरिलवा फागुन जिनि जनमेउ।
सब सखी खेलिहैं फगुववा खेलन कइसे जावइ ॥ १ ॥
ये रतनारे होरिलवा चैत जिनि जनमेउ।
सब सखी चुनिहैं कुसुमियाँ चुनन कइसे जावइ ॥ २ ॥

ये रतनारे होरिलवा बैसाख जिनि जनमेउ।
घर घर मङ्गलचार देखन कइसे जावइ ॥ ३ ॥
ये रतनारे होरिलवा जेठ जिनि जनमेउ।
जेठ तपै दुपहरिया तपन मोरे लगिहैं ॥ ४ ॥
ये रतनारे होरिलवा असाढ़ जिनि जनमेउ।
खोरी खोरी मेघवा गरजिहैं गोतिन नाहीं अइहैं ॥ ५ ॥
ये रतनारे होरिलवा सावन जिनि जनमेउ।
सब सखि झुलिहैं झलुववा झुलन कैसे जावइ ॥ ६ ॥
ये रतनारे होरिलवा भादों जिनि जनमेउ।
भादों बिजली चमाकै गोतिन नाहीं अइहैं ॥ ७ ॥
ये रतनारे होरिलवा कुआर जिनि जनमेउ।
घर घर अइहैं पितरै दुखित होइ जइहैं ॥ ८ ॥
ये रतनारे होरिलवा कातिक जिनि जनमेउ।
सब सखि पुजिहैं तुलसिया पुजन कैसे जावइ ॥ ९ ॥
ये रतनारे होरिलवा अगहन जिनि जनमेउ।
सब सखि जैहैं गवनवाँ देखन कैसे जावइ ॥१०॥
ये रतनारे होरिलवा पूस जिनि जनमेउ।
पूस हनै तुसार जाड़ मोरे लगिहैं ॥११॥
ये रतनारे होरिलवा माघ तू जनमेउ।
माघै मास सुमास महल बीचे रहवइ ॥१२॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! फागुन में जन्म न लेना। सब सखियाँ फाग खेलने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी ? ॥१॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! चैत में जन्म न लेना। सब सखियाँ कुसुम चुनने जायँगी। मैं कैसे जाऊँगी ? ॥२॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! बैसाख में जन्म न लेना। बैसाख में घर-घर

विवाह आदि उत्सव होते हैं, मैं देखने कैसे जाऊँगी ? ॥३॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! जेठ में जन्म न लेना। जेठ की दुपहरी की ज्वाला मुझ से कैसे सही जायगी ? ॥४॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! आषाढ़ में जन्म न लेना। गली-गली में बादल गरजेंगे, तब अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ सोहर गाने के लिये कैसे आयँगी ? ॥५॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! सावन में जन्म न लेना। सब सखियाँ सावन में झूला झूलने जायँगी। मैं कैसे जाऊँगी ? ॥६॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! भादों में जन्म न लेना। भादों में बिजली चमकेगी तो स्त्रियाँ कैसे आयँगी ? ॥७॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कुआर में जन्म न लेना। घर में पितर आयँगे और दुःख पायँगे ॥८॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! कार्तिक में जन्म न लेना। सब सखियाँ तुलसी की पूजा करने जायँगी, मैं कैसे जाऊँगी ? ॥९॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! अगहन में जन्म न लेना। सब सखियाँ गौने जायँगी, मैं उन्हें देखने और भेंट करने कैसे जाऊँगी ? ॥१०॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! पूस में जन्म मत लेना। पूस में पाला पड़ता है, मुझे बड़ी जाड़ा लगेगी ॥११॥

हे मेरे रतनारे बेटा ! माघ में जन्म लेना। माघ ही सबसे अच्छा महीना है। माघ में सुख से महल में रहूँगी ॥१२॥

इस गीत में बारहो महीनों की साधारण आलोचना की गई है।

[२०]

गरजौ हे दैवा ! गरजौ गरजि सुनावउ हो।
दैवा ! बरसौ जये के खेतवा बरसि जुड़वावउ हो ॥ १ ॥

जनमौ हे पूता ! जनमौ मोहिं दुखिया घर-हो।
पूता ! उजरा डिहवा वसावउ बबैया जुड़वावउ हो ॥ २ ॥
कैसे मैं जनमउँ ये मैया कैसे मैं जनमउँ रे।
मैया ! टुटहे झिलँगवा ओलरविउ तुकारि पुकरविउ हो ॥ ३ ॥
जनमौ हे पूता ! जनमौ मोहिं दुखिया घर हो।
आल्हर चनना कटइवों तौ पलँग सुलइवों हो ॥ ४ ॥
पीताम्बर ओढ़इविउँ तौ भैया कहि गोहरइविउँ हो ॥
तेलवा त मिलिहैं उधरवा नुनवाँ व्यवहरवाँ हो।
मैया ! कोखिया क कवन उधार जवइ विधि देइहैं
तवइ तू पउविउ ॥ ५ ॥
सुरजा उवत पह फाटत होरिला जनम लीन्हा हो।
रामा बाजै लागे अनँद बधैया उठन लागे सोहर हो ॥ ६ ॥

हे बादलो ! बरसो। गरज कर सुनाओ। जौ के खेत में बरसो। उसे शीतल करो ॥१॥

हे पुत्र ! मुझ गरीबिनी के घर जन्म लो। उजड़े हुए खँड़हर को बसाओ। पिता के हृदय को शीतल करो ॥२॥

हे माँ ! मैं कैसे तुझ गरीबिनी के घर जन्म लूँ ? तू टूटे खटोले पर मुझे सुलायेगी, और तू कहकर बुलायेगी ॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! तुम मेरे घर जन्म लो। मैं ताजा चन्दन कटाकर उसका पलङ्ग बनवाऊँगी और उस पर तुमको सुलाऊँगी। पीताम्बर ओढाऊँगी। भैया कहकर पुकारूँगी। मुझ गरीबिनी के घर जन्म लो ॥४॥

हे माँ ! तेल और नमक तो उधार-व्यवहार से भी मिल सकते हैं, पर कोख तो उधार नहीं मिल सकती। जब भगवान देंगे, तभी पाओगी ॥५॥

बड़े, तड़के पौ फटते ही पुत्र ने जन्म लिया। आनंद की बधाई बजने लगी और सोहर गाये जाने लगे ॥३॥

इस गीत में बादलों से पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा प्रकट की गई है। इसका रहस्य गीता के इस श्लोक में है—

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो पर्जन्यादन्न संभवः।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि—

अर्थात् यज्ञ से बादल होते हैं। बादल से अन्न होते हैं और अन्न से प्राणी पैदा होते हैं।

[२१]

केकर ऊँच मँदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
रामा 'कौन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ,
सिर न सँवारइ भुइयाँ प लोटइ हो ॥ १ ॥
ससुर क ऊँच मँदिलवा त पुरुब दुअरिया हो।
'कवन' राम परम सुनरिया त बार न बाँधइ,
सिर न सवाँरइ भुइयाँ प लोटइ हो ॥ २ ॥
अँगना बटोरत चेरिया औरौ लौंड़ियाउ हो।
चेरिया राजा के खबरि जनाउ बेदन मोर कहियो हो ॥ ३ ॥
पसवा जे खेलत 'कवन' राम रजवा कवन राम हो।
राजा तोरी धन बेदन बेआकुल त तोहँके बोलावइँ हो ॥ ४ ॥
पसवा जे फेंकैं राजा बेल तर औरो बबुर तर हो।
राजा झंपटि पईठैं गजओबरि कहै रे धन बेदन हो ॥ ५ ॥
मुड़ मोर बहुत धमाकै अरे कड़िहर सालइ हो।
राजा मुअलिउँ कमरिया की पीर तो दाई बोलावहु हो ॥ ६ ॥
तुम राजा बइठौ गोड़वरियाँ हम मुड़वरियाँ हो।
राजा पहर पहर पीर आवै दुनौं जन अँगइब हो ॥ ७ ॥

छानी जो होत त छवउतिउ मरद बोलवतिउ हो।
रानी वेदन का बाँधल मोटरिया कले कल छूटहिं
त छोरहिं नरायन हो ॥ ८ ॥
आवहु रान्ह परोसिनि तुहुँ मोर गोतिन हो।
गोतिन यहि बौरहिया समझावो वेदन कइसे बाँटी हो ॥ ९ ॥

यह ऊँचा घर किसका है, जिसका द्वार पूर्व ओर है ? यह किसकी परम सुन्दरी स्त्री बाल नहीं बाँधती, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है ? ॥१॥

यह घर ससुरजी का है, जिसका द्वार पूर्व ओर है।……राम की परम सुन्दरी स्त्री न बाल बाँधती है, न सिर सँवारती है और भूमि पर लोट रही है ॥२॥

दासियाँ आँगन बुहार रही हैं। हे दासी ! मेरे स्वामी को खबर करो और मेरी प्रसव-वेदना का समाचार कहो ॥३॥

मेरे राजा पाँसा खेल रहे थे। दासी ने कहा—हे राजा ! आप की प्यारी स्त्री प्रसव-वेदना से व्याकुल हैं और आप को बुला रही हैं ॥४॥

स्वामी ने पांसा खेल और बबूल के नीचे फेंक दिया। वे झपटते हुए कोठरी में चले आए और पूछने लगे—मेरी प्यारी रानी ! क्या तकलीफ है ? ॥५॥

मेरा सिर बहुत धमक रहा है और कमर कटी जा रही है। हे राजा ! कमर की पीड़ा से तो मैं मरी जा रही हूँ। जल्दी दाई को बुलाओ ॥६॥

हे राजा ! तुम पैर की तरफ बैठो और मैं सिरहाने बैठूँगी। हम दोनों मिलकर एक-एक पहर पर आनेवाली पीड़ा को सहेंगे ॥७॥

हे रानी ! छान-छप्पर छवाना होता तो मर्द उसमें मदद कर सकता था। यह पीड़ा की बाँधी हुई गाँठ धीरे ही धीरे छूटेगी और सो भी नारायण की कृपा होगी, तब ॥८॥

हे मेरी पड़ोसिनो ! तुम लोग ज़रा इस पगली को समझाओ तो, भला, पीड़ा कैसे बाँटी जा सकती है ? ॥९॥

इस गीत में प्रसव-पीड़ा के समय का जीता-जागता चित्र है।

[२२]

फुल एक फुलइ गुलाव भँवर रँग सुन्दर हो।
फुलवा परिगा श्रीकृष्णजी के हाथ ते केइ लइ जइहैं हो ॥ १ ॥
कृष्ण पिआरी रानी रुकमिनि उनही फुलवा दीहेनि हो।
सतिभामा के जियरा विरोग हमहिँ विसरायनि हो ॥ २ ॥
अरे कहतिउ सरगे क जाईं सरग डोरिया लाईं हो।
रानी उहि रे बरन कइ फूल अँगनवाँ तोहरे लउवै हो ॥ ३ ॥
काहे क सरग क जावेउ सरग डोरिया लउवेउ हो।
हमरा कुसल रहईं श्रीकृष्ण नौजि फुलवा पउवै
फुलेह विन रहवइ हो ॥ ४ ॥

गुलाव का एक फूल फूलता है जो भ्रमर की तरह सुन्दर है। वह फूल श्रीकृष्णजी के हाथ पड़ गया। उसे कौन लेगा ? ॥१॥

श्रीकृष्ण की प्यारी रानी रुक्मिणी हैं। श्रीकृष्ण ने उन्हें ही वह फूल दे दिया। सत्यभामा के जी में इससे व्यथा पहुँची कि श्रीकृष्ण ने उन्हें भुला दिया ॥२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—कहो तो मैं स्वर्ग जाकर, स्वर्ग तक रस्सी लगाकर हे रानी ! उसी रंग का फूल तुम्हारे आँगन में लाकर लगा दूँ ॥ ३ ॥

सत्यभामा ने कहा—क्यों स्वर्ग जाओगे ? क्यों स्वर्ग तक सीढ़ी लगाओगे ? मेरे श्रीकृष्ण सुख से रहें। मुझे फूल न मिला, न सही। मैं विना फूल ही के रहूँगी ॥४॥

बात यह थी कि रुक्मिणी को गर्भ था। गर्भ के समय स्त्री को सब प्रकार से प्रसन्न रखना पुरुष का कर्तव्य है। किसी पति के दो स्त्रियाँ थीं।

पति को एक सुन्दर फूल मिल गया। उसने उसे लाकर अपनी गर्भिणी स्त्री को दे दिया। दूसरी स्त्री इससे कुढ़ी कि उसे क्यों नहीं दिया। पति था व्यवहार-कुशल। कई स्त्रियों को संतुष्ट रखना जानता था। उसने वाक्चातुर्य से दूसरी स्त्री को भी सन्तुष्ट कर लिया। पर कई स्त्रियाँ होने से पुरुष को रात-दिन एक न एक के मोरचे पर खड़ा ही रहना पड़ता है। एक न एक रूठी ही रहती है। यह इस गीत से स्पष्ट हो रहा है।

[२३]

जिखै अस धन पातरि कुसुम अस सुन्दरि।
रामा चढ़ि गईं पिआ की अटारी सोईं सुख नींदा ॥ १ ॥
गेडुवा त धरिन उससवाँ चुनरी पयन तरे।
धना चढ़ि गईं पिया की अँटरिया सोईं सुख नींदा,
खबरि कुछ नाहीं ॥ २ ॥
सोइ साइ जब जागीं चौंकि उठि बइठीं।
ये मोरे राजा छोड़ो न मोर अँचरवा तौ हम भुइँ बइठीं ॥ ३ ॥
के तेरी सासु तुम्हैं टेरै की ननद बुलावइ।
येरी रानी की तेरे रोवैं बारे लाल जिन्हैं लै बइठौ ॥ ४ ॥
ना मोरी सासु बुलावइ न ननद बुलावइ।
मोरे राजा! राम भजन की है बेर मैं जिअरा लइके बइठव ॥ ५ ॥
कोठे से उतरीं जच्चारानी त आँगन ठाढ़ी भईं।
द्वारे से आये उनके देवर काहे भाभी अनमनि ॥ ६ ॥
अब देवरा हो मोरे देवरा अरे तुम मोरे देवरा।
ये मोरे देवरा तोरे भाई बोलैं विष बोल करेजे मोरे सालइ ॥ ७ ॥
भाभी हो मोरी भाभी तुम्हीं मोरी भाभी।
ये मोरी भाभी! अँचरे में लै तिल चौरी त सुरुज मनावउ ॥ ८ ॥

न्हाइ धोइ जब ठाढ़ी भईं सुरुज मनावइँ।
ये मोरे सूरुज हम पर होउ दयाल सजन बोली बोलइँ ॥ ९ ॥
सुरुज मनावइ न पायउँ होरिल भुइँ लोटइँ।
बाजै लागी अनंद बधाई गावैं सखि सोहर ॥ १० ॥
टेरो न गाँव को बढ़ई हाल चलि आवै बेगि चलि आवइ।
मोरे राजा चन्दन बिरिछ कटावइँ औ पलँग बिनावइँ ॥ ११ ॥
ईंगुर बरनि पलँगिया रेसम उरदावन।
मोरी रानी! आइ सोवउ सुख नींद मैं बेनिया डोलावउँ ॥ १२ ॥
अब तौ बेनिया डुलौबेउ बहुत निक लगवइ।
मोरे राजा! एक होरिल के कारन तुँ बोली हनि मारेउ
करेजे मोरे सालइ ॥ १३ ॥

स्त्री जीरे की तरह पतली और फूल की तरह सुन्दरी है। वह अपने प्राणप्यारे की अटारी पर चढ़ गई और सुख की नींद सो गई ॥ १ ॥

पानी से भरा हुआ लोटा सिरहाने रख दिया और ओढ़नी पैरों के पास। स्त्री सुख की नींद सो गई। उसे कुछ ख़बर न रही ॥ २ ॥

सो-सा कर जब वह उठी, तब चौंक कर उठ बैठी। पति से उसने कहा—हे मेरे राजा! मेरा आँचल छोड़ दो। मैं पलँग से नीचे उतर कर बैठूँगी ॥ ३ ॥

पति ने कहा—क्या तेरी सास तुझे बुला रही है? या ननद पुकार रही है? या तेरा कोई बालक रो रहा है? जिसे लेकर तू बैठेगी ॥ ४ ॥

स्त्री ने कहा—न सास बुला रही हैं, न ननद। हे मेरे स्वामी! भजन की बेला है। मैं अपना प्राण लेकर बैठूँगी ॥ ५ ॥

कोठे से उतरकर वह प्रसूता देवी आँगन में खड़ी हुई। बाहर से देवर ने आकर पूछा—हे भाभी! तू उदास क्यों है? ॥ ६ ॥

भाभी ने कहा—हे मेरे प्यारे देवर! तुम्हारे भाई ने विष ऐसी

एक बात कह दी है, जो मेरे कलेजे में दुख दे रही है ॥ ७ ॥

देवर ने कहा—हे मेरी प्यारी भाभी ! तुम आँचल में तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाओ ॥ ८ ॥

स्त्री नहा-धो कर खड़ी हुई और सूर्य को मनाने लगी। हे सूर्य ! मुझ पर कृपा करो। मेरे पति ने ताना मारा है ॥ ९ ॥

अभी अच्छी तरह प्रार्थना कर भी न पाई थी कि पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वी पर लोटने लगा। आनन्द की बधाई बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥ १० ॥

मेरे राजा गाँव के बढ़ई को जल्दी बुला रहे हैं। चंदन का वृक्ष कटाकर पलँग बनवा रहे हैं ॥ ११ ॥

लाल रंग की पलँग है, जिसमें रेशम की रस्सी लगी है। पति ने कहा—मेरी प्यारी रानी ! आकर इस पलँग पर सुख की नींद सोओ और मैं पंखा हाँकूँ ॥ १२ ॥

स्त्री ने हँसकर कहा—हाँ, अब तो तुम जरूर पंखा हाँकोगे। अब मैं तुमको बहुत अच्छी मालूम होऊँगी। पर एक पुत्र के कारण तुमने ऐसी बोली मुझे मारी थी, जो मेरे कलेजे में चुभ गई है ॥ १३ ॥

जहाँ आपस में बहुत प्रेम होता है, वहाँ इस तरह की छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं। यदि यह न हो, तो प्रेम की मिठास मालूम ही न हो।

[२४]

छापक पेड़ छिउल कर एतवन घनविन हो।
जिंहि तर ठाड़ी सीता देई बहुत विपत में हो ॥ १ ॥
कहाँ पाउब सोने क छुरउना कहाँ पाउब धगरिन।
को मोरी जागइ रइनिया कवन दुख बाँटइ ॥ २ ॥

वन से निकरीं वन तपसिनि सीतहिं समुझावइँ।
चुप रहु बहिनी तु चुप रहु हम देबइ सोने क छुरउना
हम तोरी जागब रइनिया हमहि होबै धगरिन।
विपत महिं बाँटब ॥ ३ ॥
होत भोर लोही लागत कुस के जनम भये।
बाजै लागी अनँद बधाई गावइँ सखि सोहर ॥ ४ ॥
जो पूता होत अजोधिया राजा दसरथ घर हो।
राजा सगरिउ अजोधिया लुटउते कौसल्या देई अभरन ॥ ५ ॥
अब तो पूता जनमेउ बन में बनफूल तोरउ हो।
बेटा! कुस रे ओढ़न कुस डासन बनफल भोजन हो ॥ ६ ॥
हँकरिन बन केर नउवा बेगहि चलि आयउ।
नउवा जल्दी अजोधिया क जाओ रोचन पहुँचाओ ॥ ७ ॥
पहिला रोचन राजा दसरथ दुसर कौसिल्या रानी।
तीसर दिन्ह्यो देवर लछिमन पियहिं न बतायउ ॥ ८ ॥
राजा दसरथ दिहेन घोड़वा कौसिल्या रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहेन पाँचौ जोड़वा त नउवा बिदा कर ॥ ९ ॥
सोनेन केर गेंड़वना तो राम दतिवन करैं।
लछिमन भहर भहर होय माथ रोचन कहँ पायउ ॥१०॥
भौजी तो हमरी सीता देई दोऊ कुल राखनि।
भइया उनके भये नन्दलाल रोचन हम पावा ॥११॥
हँथे क गेंडुवा हाथ रहा मुख की दँतिवन मुखे रहि।
ढुरै लागे मोतियन आँसु पटुकवन पोंछइँ ॥१२॥
आगे के घोड़वा वशिष्ट मुनि पाछे कै लछिमन।
बीचे के घोड़वा रामचन्दर सीता के मनावन चलें ॥१३॥

तुम्हरा कहा गुरु करबइ परग दस चलबइ।
फाटक धरती समाबइ अजोधिया न जाबइ ॥१४॥

पलाश (ढाक) का छोटा सा पेड़ है, जो हरे पत्तों से खूब घना हो रहा है। उसके नीचे सीता देवी खड़ी हैं; जो घोर विपदा में पड़ी हैं ॥१॥

सीता सोच रही हैं—यहाँ बन में सोने का छुरा कहाँ मिलेगा? यहाँ धगरिन (नाल काटनेवाली) कहाँ मिलेगी? मेरी शुश्रूषा के लिये रात भर कौन जागेगा? मेरा दुःख कौन बँटायेगा? ॥२॥

बन में से बन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता को समझाती हैं—हे सीता बहन, चुप रहो, धीरज धरो। हम सोने का छुरा देंगी और हमीं धगरिन होंगी। हमीं तुम्हारे लिये रात भर जागेंगी और हमीं दुःख बँटायेंगी ॥३॥

पौ फटते ही कुश का जन्म हुआ। आनंद की बधाइं बजने लगी और सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥४॥

सीता ने कहा—हे बेटा! यदि तुम अयोध्या में राजा दशरथ के घर पैदा हुये होते तो उनके हर्ष का ठिकाना न होता। वे आज सारी अयोध्या लुटा देते और मेरी सास कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥५॥

अब तो तुम बन में पैदा हुये हो, बन के फूल तोड़ो, कुश बिछाओ, कुश ओढ़ो और बनफल खाओ ॥६॥

बन का नाऊ बुलाया गया। वह तत्काल आ पहुँचा। हे नाऊ! जल्दी अयोध्या जाओ और रोचन पहुँचाओ ॥७॥

पहला रोचन राजा दशरथ को देना। दूसरा रानी कौशल्या को। तीसरा रोचन मेरे देवर लक्ष्मण को। पर मेरे पति को कुछ न बताना ॥८॥

राजा दशरथ ने नाऊ को घोड़ा दिया; कौशल्या ने गहने और लक्ष्मण ने पाँचों जोड़े (पगड़ी, दुपट्टा, अँगरखा, धोती और जूता) देकर नाऊ को बिदा किया ॥९॥

सोने के लोटे से राम दातुन कर रहे थे। लक्ष्मण के माथे पर रोली लगी देखकर राम ने पूछा—लक्ष्मण ! तुम्हारा माथा दमक रहा है। तुमने यह रोचन कहाँ पाया ? ॥१०॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भैया ! मेरी भाभी सीता देवी दोनों कुलों की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली हैं। उनके पुत्र हुआ है। वही रोचन मैंने पाया है ॥११॥

यह सुनते ही राम ऐसे व्यथित हुये कि हाथ का लोटा उनके हाथ ही में रह गया और दातुन मुँह ही में रह गई। आँखों से मोती ऐसे आँसू ढलक पड़े। वे दुपट्टे से उसे पोंछने लगे ॥१२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ, पीछे के घोड़े पर लक्ष्मण और बीच के घोड़े पर राम सीता को मनाने चले ॥१३॥

सीता ने कहा—हे गुरु ! आप की आज्ञा मैं नहीं टालूँगी। दस कदम चलूँगी। पर अयोध्या मे नहीं जाऊँगी और फाटक पर ही पृथ्वी मे समा जाऊँगी ॥१४॥

सीता देवी पर मिथ्या संदेह कर के राम ने लोक-मर्यादा की रक्षा के लिये उनको जो बनवास दिया था, स्त्री-समाज ने उसका अनुभव बड़े ही दर्द से किया है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों इस घटना को छोड़ गये, पर स्त्रियों ने सहस्र-सहस्र कंठ से उसे गाया है और सीता के साथ सहानुभूति प्रकट की है।

इस गीत का सुख तो "पियहिं न बतायउ" में है। मनस्विनी पतिव्रता का चित्र इस छोटी सी कड़ी मे ऐसा उतर आया है कि देखते ही बनता है।

[२५]

छापक पेड़ छिउलिया तौ पतवन गहवर।
अरे रामा तिहितर ठाढ़ी हरिनियाँ त मन अति अनमनि हो ॥ १ ॥

चरतै चरत हरिनवाँ तौ हरिनी से पूँछइ हो।
हरिनी की तोर चरहा झुरान कि पानी बिन मुरझिउ हो ॥ २ ॥
नाहीं मोर चरहा झुरान न पानी बिन मुरझिउँ हो।
हरिना आजु राजा जी के छट्ठी तुहँ मारि डरिहइँ हो ॥ ३ ॥
मचियै बैठी कौशिल्या रानी हरिनी अरज करइ हो।
रानी मसुवा तौ सिझहीं रसोंइयाँ खलरिया हमैं देतिउ ॥ ६ ॥
पेड़वा से टँगबइ खलरिया त मन समुझाउब हो।
रानी हेरि फेरि देखबइ खलरिया जनुक हरिना जीतइ हो ॥ ५ ॥
जाहु हरिनी घर अपने खलरिया नाहीं देबइ हो।
हरिनी ! खलरी क खँजड़ी मिढ़उबइ त रामा मोर खेलिहइँ हो ॥ ६ ॥
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि अनकइ हो।
हरिनी ठाढ़ि ढँकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरइ हो ॥ ७ ॥

ढाक का एक छोटा सा घने पत्तोंवाला पेड़ है जो खूब लहलहा रहा है। उसके नीचे हरिनी खडी है। उसका मन बहुत बेचैन है ॥१॥

चरते-चरते हरिन ने हरिनी से पूछा—हे हरिनी ! तू उदास क्यों है ? क्या तेरा चरागाह सूख गया ? या तेरा मन पानी की कमी से मुरझा गया है ? ॥२॥

हरिनी ने कहा—हे प्रियतम ! न मेरा चरागाह ही सूखा है और न पानी ही की कमी है। बात यह है कि—आज राजा के पुत्र की छट्ठी है। आज तुम मारे जाओगे ॥३॥

रानी कौशल्या मचिया पर बैठी हैं। हरिनी ने उनसे विनती की—हे रानी ! हरिन का मांस तो आपकी रसोई में सीझ रहा है। हरिन की खाल आप मुझे दिलवा दीजिये ॥४॥

मैं खाल को पेड़ से टाँग दूंगी, बार-बार मैं उसे देखूँगी और मन को समझाऊँगी, मानो हरिन जीता ही है ॥५॥

कौशल्या ने कहा—नहीं; हरिनी! तुम लौट जाओ, खाल नहीं मिलेगी। इस खाल की तो खँजड़ी बनेगी और मेरे राम उसे बजायेंगे ॥६॥

जब-जब खँजड़ी बजती थी, तब-तब हरिनी उसके शब्द से कान लगाकर ढाक के पेड़ के नीचे खड़ी होकर हरिन को बिसूरा करती थी ॥७॥

जिस स्त्री ने इस गीत की रचना की है, उसका हृदय प्रेम के मर्म से अच्छी तरह परिचित जान पड़ता है। पशुओं में भी वह उसी प्रेम का अनुभव करती है, जो मनुष्यों में संभव है। गीत के अन्तिम दो पद बड़े ही करुणरस-पूर्ण हैं। 'बिसूरइ' शब्द की मिठास देहातवाले ही समझ सकेंगे।

[२६]

कमर में सोहै करधनियाँ पाँव पैजनियाँ।
ललन दूरी खेलन जनि जाओ ढुँढ़न हम न अउबै ॥ १ ॥
सात बिरन की बहिनिया बाप धिया एकै।
हरिजी के परम पियारि ढूँढ़न कैसे अउबै ॥ २ ॥
भोर भये भिनसरवा कलेवना की जुनिया।
होइ गै कलेवना की बेर ललन नहिं आये ॥ ३ ॥
अँगिया तो फाटै बँदै बँद अँचरा करै कर।
छतिया उठीं हहराय ढूँढ़न हम आइन ॥ ४ ॥
सात बिरन की बहिनिया बाप कै एकै।
मैया बाबू क परम पियारि ढूँढ़न कैसे आइउ ॥ ५ ॥
छाँड़िउँ मैं सातौ बिरनवा बाप कै नैहर।
छोड़ दिन्हौं हरि की सेजरिया ढूँढ़न हम आइन ॥ ६ ॥
जैसे कुम्हार क आँवाँ त भभकि भभकि रहै।
बेटा वैसइ माई क करेजवा त धधकि धधकि रहै ॥ ७ ॥

बच्चे के कमर में करधनी और पाँव में पैंजनी शोभा दे रही है। माँ कहती है—हे बेटा ! दूर खेलने मत जाओ। मैं ढूँढने कैसे आऊँगी ? ॥१॥

सात भाइयों की तो मैं बहन, अपने बाप की एक ही कन्या, और अपने प्राणेश्वर की परम प्यारी, भला, मैं तुमको ढूँढ़ने कैसे आऊँगी ? ॥२॥

सबेरा हुआ। कलेवे का समय आया। कलेवे का वक्त हो गया। बेटा घर नहीं आया। कहीं खेल रहा है ॥३॥

माँ से रहा नहीं गया। बच्चे के लिये हृदय ऐसा उमड़ा कि चोली के बन्द-बन्द टूट गये और आँचल के तार-तार अलग हो गये। हृदय पीड़ा से व्यथित हो गया। तब वह ढूँढ़ने आई ॥४॥

बेटे ने पूछा—तुम सात भाइयों की बहन, बाप की एक ही बेटी तथा मेरे पिता की बड़ी प्यारी, मुझे ढूँढ़ने कैसे निकली ? ॥५॥

माँ ने कहा—मैंने सातों भाइयों को छोड़ दिया। नैहर भी भुला दिया। स्वामी की सेज भी छोड़ दी। मैं तुमको ढूँढ़ने आई हूँ ॥६॥

जैसा कुम्हार का आँवाँ सुलगता है, वैसे ही पुत्र के लिये माँ का हृदय धधक-धधक उठता है ॥७॥

किसी स्त्री को पहला ही पुत्र हुआ है। संसार में प्रेम के लिये उसे एक नया पदार्थ मिला है। पहले वह जानती नहीं थी कि पुत्र-प्रेम कितना प्रबल होता है। स्त्री के हृदय में पुराने और नये प्रेम-पात्रों का जब संघर्ष जारी हुआ है, तब उसने पुत्र-प्रेम के पीछे सब को छोड़ दिया। सचमुच पुत्र के लिये माँ का प्रेम अगाध होता है।

[२७]

राजा दसरथ के पिछवरवाँ अतर भल गमकइ हो।
अरे अतर क बास सुबास कौशिल्या रानी के राम भये ॥ १ ॥

घर में से निकलीं केकैया रानी सुनहु सुमित्रा रानी हो।
वहिनी आव चलि बड़े दरबार दोहँस फेरि आई ॥ २ ॥
अँगना बटोरति चेरिया त अवरी लऊँड़िआ हो।
आवेलीं केकैया सुमित्रा त राम जनि देखावहु हो ॥ ३ ॥
अँगना बटोरति चेरिआ त अवरी लऊँड़िआ हो।
चेरिआ झारि बिछाव सुखपलिआ बईठें रानी केकय ॥ ४ ॥
हम नहिं बैठब कौशिल्या रानी हम नहिं बैठब।
तनि एक राम क देखब घरे हम जाइब ॥ ५ ॥
का हम राम देखाई त का राम सुन्दर।
अरे छठिआ बरहिआ के आया त राम देखी जाया ॥ ६ ॥
ई मती जानहु कौशिल्या रानी का राम सुन्दर।
इहै राम लंका फुँकैहैं अयोध्या वसैहैं ॥ ७ ॥

राजा दशरथ के पिछवाड़े इत्र खूब महक रहा है। इत्र की सुगन्ध बड़ी मीठी है। जान पड़ता है, कौशल्या के राम हुये हैं ॥१॥

घर मे से कैकेयी रानी निकलीं और सुमित्रा से बोलीं—हे बहन! आओ चलें, बड़े दरबार की हाजिरी दे आवें ॥२॥

आँगन बटोरती हुई दासी ने कहा—कैकेयी और सुमित्रा आ रही हैं, इन्हें राम को न दिखाओ ॥३॥

आँगन बटोरती हुई दासियों से कौशल्या ने कहा—जल्दी से सुखपाल झाड़ कर बिछा दो, जिस पर रानी कैकेयी बैठेंगी ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे रानी कौशल्या! हम बैठेंगी नहीं। हम एक बार राम को देखकर घर जायँगी ॥५॥

कौशल्या ने कहा—राम को क्या दिखाऊँ? क्या राम सुन्दर हैं? छठी या बरही को आइयेगा तो राम को देख लीजियेगा ॥६॥

कैकेयी ने कहा—हे कौशल्या रानी! यह मत समझना कि राम

सुन्दर नहीं हैं। यही राम लंका फुकायेंगे और अयोध्या बसायेंगे ॥७॥

गीत की पाँचवीं छठीं पंक्तियों से मालूम होता है कि घर मे राग-द्वेष फैलाने में नौकरानियों का कितना हाथ होता है। अंतिम पंक्तियों में रूप की अपेक्षा गुण की महिमा अधिक बताई गई है। हिन्दू-समाज का सदा से यही ध्येय रहा है। तभी इस समाज में विश्वविजयी वीर पैदा होते थे।

[२८]

ससुरु दुअरवा जँम्हिरिआ तो लहर लहर करै, मँहर मँहर करै।
मोरे साहब अँगनवाँ रस चूवइ जच्चा रानी भीजैं॥ १॥
दुअरवा से आये वीरन भैया छुरिया पहाँटैं कटरिया पहाँटैं।
सारे कटवौं मैं रुखवा जम्हिरिआ बहिन मोरी भीजै॥ २॥
ओबरी से बोलीं जच्चा रानी नैना कजर दिहे, सिरहा सिंदुर दिहे,
मुँह मा ताम्बूल लिहे, कोरवा होरिल लिहे हो।
भैया ससुरे लगाई जम्हिरिया जम्हिरिआ जनि काटेउ॥ ३॥

मेरे ससुर के द्वार पर जम्हीरी नीबू का वृक्ष लहलहा रहा है; महक रहा है। उससे आँगन में रस टपका करता है, जिससे जच्चा रानी भीगती हैं ॥१॥

बाहर से भाई आया। वह छुरी तेज करने लगा, कटारी तेज करने लगा और कहने लगा—मैं इस नीबू साले को काट डालूँगा। मेरी बहन भीगती है ॥२॥

कोठरी से जच्चा रानी निकलीं, जो आँखों में काजल दिये हुये हैं, सिर पर सिंदूर लगाये हैं, मुँह में पान लिये हुये हैं और गोद में बालक लिये हुये हैं। उन्होंने कहा—हे भाई! इस नीबू को मेरे ससुरजी ने लगाया था, इसे मत काटो ॥३॥

मालूम होता है, ससुर का देहान्त हो चुका है। उनके हाथ का

लगाया हुआ जम्हीरी नीबू का दरख्त उनके स्मृति-चिन्ह-स्वरूप मौजूद है। ससुर के हाथ की चीज़ है, इस ख्याल से बहू को उस पर कितना प्यार है, कितनी ममता है, यह गीत से स्पष्ट है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ स्मृति की रक्षा कहीं अधिक करती हैं।

[२९]

काहेक चनना उतारेउ कपुरा भरायउ।
रानी केहिं देखि चढ़लिउ अँटरिया काहे देखि मुरझिउ ॥ १ ॥
होरिला कै चनना उतारेन कपुरा भरायन।
राजा तुम्हैं देखि चढ़लिउँ अँटरिया सवति देखि मुरझिउँ ॥ २ ॥
रानी तुम तो रेंड के कँड़रिया फट्ट सेती टुटबिउ।
रानी हम तो बाँस कै कइनिया नवाये नाहीं टुटबै ॥ ३ ॥

पति ने पूछा—किसका चन्दन उतार कर कपूरा भराया? किसे देख कर तुम अटा पर चढ़ी और किसे देखकर कुम्हला गईं? ॥१॥

स्त्री ने कहा—बच्चे का चंदन उतार कर कपूर भराया। हे मेरे राजा! तुमको देखकर अटा पर चढ़ी और सौत को देखकर मुरझा गईं ॥२॥

पति ने कहा—हे रानी! तुम्हारा स्वभाव तो रेंड़ के कोमल डंठल की तरह है कि ज़रा सा धक्का लगा और खट से टूट गया। पर मेरा स्वभाव बाँस की पतली टहनी की तरह है, जो झुक सकता है, पर टूटता नहीं ॥३॥

पति ने दो स्वभावों की कैसी सुन्दर तुलना की है! पति ने स्त्री को उपदेश किया है कि स्वभाव सहनशील होना चाहिये।

[३०]

चनना कटाइउँ पलँगा बिनाइउँ।
मखमल ईंगुर चराइउँ रेशम ओरदावनि ॥ १ ॥

तेहि पर सुतैं कवन रामा कोरवाँ कवन देई।
चेरिया तो बेनियाँ डोलावैं नींद भलि आवइ ॥ २ ॥
छपटि क सूतैं मोर साहब तुम सिर साहब हो।
मोरे बारे ललन की झँगुलिया पसिनवाँ बुड़त है ॥ ३ ॥
बोलेउ तौ धन बोलेउ बोलेउ न जानेउ हो।
तोरे बारे ललन की झँगुलिया मैं दोहरी सिअइहौं ॥ ४ ॥
कहवाँ के दरजी बोलइहौ तौ कहवाँ कै सुइया हो।
कैसे क बन्द लगइहौ ललन पहिरइहौं हो ॥ ५ ॥
अगरे कै दरजी मँगइहौं पटने कै सुइया हो।
रानी बत्तिस बन्द लगइहौं ललन पहिरइहौं ॥ ६ ॥
हाथन सोने क खगउड़ा पायन पैजनियाँ।
लालन खेलिहैं बरोठवा बतीसो बन्द झुलिहैं ॥ ७ ॥
बहै पुरवइया पवन भल डोलइ हो।
लालन खेलिहैं बरोठवा दुनौ जन देखब हो ॥ ८ ॥

चन्दन कटाकर पलँग बनवाया, उसके पावों में ईंगुर का रङ्ग कराया और रेशम की ओरदावन (पैताने की ओर लगी हुई रस्सी) लगवाया ॥१॥

उस पर......राम सोते हैं, जिनकी गोद में......देवी हैं। दासी पङ्खा झल रही है ॥२॥

स्त्री की गोद में शिशु है। वह कहती है—मेरे स्वामी, मेरे प्राणनाथ! मुझ से चिपक कर सो रहे हैं। मेरे छोटे बच्चे की कुरती पसीने से तर हो रही है ॥३॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी नारी! तुम ने कहा तो सही, पर कहने नहीं आया। मैं तुम्हारे नन्हे बच्चे के लिये दो-दो कुरते सिला दूँगा ॥४॥

स्त्री कहती है—कहाँ का दरजी बुलाओगे ? और कहाँ की सूई होगी ? झँगुली में कै सौ बंद लगेंगे ? जिसे तुम मेरे लाल को पहनाओगे ॥५॥

पति ने कहा—आगरे का दरजी बुलाऊँगा; पटने की सूई मँगाऊँगा। झँगुली में बत्तीस बन्द लगेंगे। जिसे मैं लाल को पहनाऊँगा ॥६॥

बच्चे के हाथ में सोने का कड़ा होगा; पैरों मे पैजनियाँ होंगी। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और बत्तीसो बन्द लटकते रहेंगे ॥७॥

पूर्वा हवा चल रही है। वायु की लहरें बड़ी सुहावनी लग रही हैं। मेरे लाल बैठक में खेलेंगे और हम दोनों देखेंगे ॥८॥

पति-पत्नी की एकान्त लालसा इस गीत में चित्रित है। साथ ही किसी समय कहाँ कहाँ की क्या चीज़ें प्रसिद्ध थीं, इसका वर्णन भी है।

[२१]

जेठ तपै दिन रात तो धरती गरम भई।
राजा बाहेर बँगला छवउता दुनौं जने सोइत ॥ १ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
लागत मास असाढ़ दखिन चले जइहैं।
रानी बाहेर बँगला छवावौं अकेले तुम सोवउ ॥ २ ॥
राजा न हो मोरे राजा तुहीं मोरे राजा।
सावन भादों की रात अकेले कैसे रहबै ॥ ३ ॥
रानी न हो मोरी रानी तुहीं मोरी रानी।
मैके से बिरन बुलाओ नइहर चलो जावो ॥ ४ ॥
काहे क बिरन बुलौबे नइहर चली जावइ।
राजा! सासु की करिके टहलिया उमिरि हम बितउब ॥ ५ ॥

जेठ रात-दिन तप रहा है। पृथ्वी गर्म हो गई है। हे मेरे राजा! बाहर बँगला छवाते, तो हम दोनों उसमें सोते ॥१॥

पति ने कहा—हे मेरी रानी! तुम मेरी प्यारी रानी हो! मैं तो

आषाढ़ लगते ही दक्खिन चला जाऊँगा। कहो तो तुम्हारे लिये बाहर बँगला छवा दूँ, जहाँ तुम अकेले सोना ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे मेरे राजा! तुम मेरे राजा हो। सावन भादों की अँधेरी रात में मैं अकेले कैसे रहूँगी? ॥३॥

पति ने कहा—हे रानी! तुम मेरी रानी हो। नैहर से अपने भाई को बुला लो और नैहर चली जाओ ॥४॥

स्त्री ने कहा—क्यों भाई को बुलाऊँ? क्यों नैहर जाऊँ? मैं सास की सेवा करके अपनी उम्र बिताऊँगी ॥५॥

[३२]

पलँग जो आये बिकाइ पलँग अति सुन्दर।
मोरी सासू को देउ बोलाइ पलँग उइ लैहैं होरिल भुइयाँ सोवैं॥१॥
गरब की माती बहुरिया गरब बोल बोलै।
माँगि पठावो अपने नइहर होरिलवा सोवावो॥२॥
हँकरौ न नगर के नौवा बेगि चलि आवो।
नौवा हमरे मइके चले जावो पलँग लै आवो होरिल भुइँ सोवैं॥३॥
सभा में बैठ "अमुक" रामा नौवा अरज करै।
साहेब धेरिया के भये नँदलाल पलँग उइ माँगैं॥४॥
अल्हर चनन कटावैं पलँग बनावैं।
चारों पावन ईंगुरु ढरावैं रेशम ओरदावन॥५॥
पलँग जो आई दुवारे पलँग अति सुन्दर।
मोरी सासू को देउ बोलाइ पलँग उइ देखैं॥६॥
बड़ेरे बापन की धेरिया बड़े बोल बोलै।
पलँग बिछावो गज ओबरी होरिलवा सोवावो॥७॥

बहुत सुन्दर पलँग बिकने आया है। मेरी सास को बुला दो। वे पलँग खरीद लें। मेरा बच्चा ज़मीन पर सोता है ॥१॥

सास ने कहा—अभिमान से मतवाली बहू गर्व की ही बात बोलती है। अपने नैहर से पलँग मँगा न लो, जिस पर अपने बच्चे को सुलाओ! ॥२॥

बहू ने गाँव के नाई को बुलवाया और कहा—हे नाई! तुम मेरे मैके जाओ और पलँग ले आओ। मेरा बच्चा ज़मीन पर सोता है ॥३॥

बहू का पिता सभा में बैठा था। नाई ने जाकर विनय किया—हे स्वामी! आप की कन्या के पुत्र हुआ है। कन्या ने पलँग मँगाया है ॥४॥

पिता ने हरा चंदन कटाकर पलँग बनवाया। चारों पावों में ईंगुर लगवाया और रेशम की ओरदावन लगवाकर भेजा ॥५॥

पलँग जब बहू के द्वार पर आया, तब बहू ने कहा—पलँग बहुत सुन्दर है। ज़रा मेरी सासजी को तो बुला दो, पलँग देख लें ॥६॥

सास पलँग देखकर लज्जित हुई और बोली—बड़े बाप की बेटी है, इससे बड़े बोल बोलती है। बहू! ले जाओ, पलँग को अपनी कोठरी में बिछाओ और इस पर बच्चे को सुलाओ ॥७॥

धनी घर की कन्या छोटी हैसियतवाले घर में ब्याही गई थी। इससे सास-बहू में पटती नहीं थी। एक ओर अभिमान, दूसरी ओर ईर्ष्या। बात-बात में युद्ध।

[३२]

ऊँचे डगरिया कै कुइयाँ सुघर एक पानी भरै हो।
घोड़वा चढ़े राजपुतवा तौ बोलिया बहुत करैं हो ॥ १ ॥
को है घरे मा अति दारुनि पनियाँ क पठइस हो।
जो जेठहिं के दुपहरिया में पनियाँ भराइस हो ॥ २ ॥
जाकर धना तुम सुन्दरि सो प्रभु कहाँ गये हो।
जो जेठहिँ के दुपहरिया में पनियाँ भराइन हो ॥ ३ ॥

ऐसन धना जौ पाइत परम सुख पाइत हो।
धन ! अँखिया में राखित छिपाय करेजवा में जोगइत हो ॥ ४ ॥
अस रजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पायँ कै पनहिया तौ तोहँसे ढोवाइत हो ॥ ५ ॥

रास्ते में ऊँचाई पर एक कुँवा है। एक सुन्दरी स्त्री पानी भर रही है। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत वहाँ आया। बोली-ठोली में वह बहुत निपुण है ॥ १ ॥

राजपूत ने कहा—हे सुन्दरी ! तुम्हारे घर में ऐसे कठिन हृदय-वाली कौन है ? जिसने तुमको इस जेठ की दुपहरी में पानी भरने भेजा है ॥ २ ॥

तुम जिसकी ऐसी सुन्दरी स्त्री हो, वह तुम्हारा स्वामी क्या कहीं परदेश गया हुआ है ? जो तुमको जेठ की दुपहरी में पानी भरना पड़ता है ? ॥ ३ ॥

आहा ! ऐसी सुन्दरी स्त्री यदि मैं पाता तो मैं बहुत ही सुख पाता ! उसे मैं आँखों में छिपा रखता और हृदय में चुरा रखता ॥ ४ ॥

पतिव्रता स्त्री राजपूत की इस बात से नाराज़ होकर कहती है—तुम्हारे जैसा राजपूत को मैं पाती तो उसे नौकर रखती और अपने प्रभु के पाँव की जूती उससे ढोवाती ॥ ५ ॥

[३४]

जौने देश हिंगिया न मँहकै न जिरिया सुबासित।
तौने देश चलेहैं कवन रामा छुरिया बेसाहै कटरिया बेसाहै ॥ १ ॥
अपना का बेसहैं त छुरिया होरिल क कटरिया।
अपने नाजौ का बेसहैं कँगनवाँ तौ बड़ेरे जुगुति सेती ॥ २ ॥
कँगना पहिरि धन बैठीं त अपने ओसरवा माँ रे।
येहो लहुरी ननद हाँकै बेनिया कँगनवा भौजी लेवै हो,
जौ तोरे भौजी होइहैं होरिलवा कँगनवाँ हम लेवै हो ॥ ३ ॥

चूमौं मैं ननदी क ओंठवा चउर अस दँतवा।
ननदी जौ मोरे होइहैं होरिलवा कँगन हम देवै,
ननदी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम देवै ॥४॥
नहाय धोय ननदी ठाढ़ि भई देवता मनावैं लागीं।
देवता देहु भौजी का पूत कँगना हम पाई ॥५॥
सुरजा मनवहीं न पाइनि होरिला जनम लीन।
लट खोले नाचै ननदिया कँगनवाँ भौजी लेवै रे ॥६॥
न तोर भैया गढ़ावा न बावा रौरे मोल लीन।
ननदी ई मोरे नैहरकै कँगला कँगन हम ना देवै रे ॥७॥
होउ उपत्तर केर धेरिया सुपत्तर कैसे होवौरी।
भौजी जौन बोल बोलिव ओसरवाँ उहै बोल राखौ ॥८॥
मारव सात गड़हरी गले दुइ थप्पड़ रे।
भौजी कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेवै ॥९॥
हाथ से काढ़ै कँगनवाँ फुफुनियाँ चुरावैं रे।
ननदी खर वारि करउ उजेर कँगनवाँ मोर हेराय गये रे ॥१०॥
दुअरवा से आये ससुर राजा गरजि घुमड़ि बोलैं।
बहुअरि दै डारौ धिया का कँगनवाँ बिटियवा परदेसिनि ॥११॥
दुअरवा से आये साहेव मोरे गरजि घुमड़ि बोलैं।
दै डारो वहिन का कँगनवाँ वहिन मोर दुखित होइहैं रे ॥१२॥
सभवा से आये देवर राजा साँसि दपटि बोलैं।
भौजी देसवा निकरि हम जावै वहिनिया के कारन,
भौजी बेचवौं मैं ढाल तरवरिया बहिनि क मनैवों ॥१३॥
फुफुनी से काढ़ै कँगनवाँ अँगनवाँ लै वहावै रे।
अरी पहिरौ सतभतरौ ननदिया सौति मोरि होवौरे ॥१४॥

पहिरि ओढ़ि ननदी ठाढ़ि भईं सुरजा मनावै लागीं।
सुरजा बाढ़ै मोरे भैया क सेजरिया मैं नित उठि आवउँ ॥१५॥

जिस देश में न हींग में सुगंध है, न जीरे में सुवास। उस देश में छूरी और कटारी खरीदने के लिये......राम गये हैं ॥१॥

अपने लिये उन्होंने छूरी ख़रीदी और अपने पुत्र के लिये कटारी। तथा अपनी प्राणेश्वरी के लिये खूब जांच बूझकर कंगन खरीदा ॥२॥

कंगन पहनकर स्त्री अपने ओसारे में बैठी। उसकी छोटी ननद बेनिया (बेणु=बांस। बांस की बनी हुई पंखी) डुला रही थी। उसने कहा—भौजी ! तुम्हारे पुत्र होगा तो यह कंगन मैं लूँगी ॥३॥

स्त्री ने कहा—मेरी प्यारी ननद ! मैं तुम्हारे ओठ चूमती हूँ। तुम्हारे चावल ऐसे नन्हे-नन्हे दाँत चूमती हूँ। यदि मेरे पुत्र होगा तो मैं तुमको यह कंगन दे दूँगी। यही नहीं, मैं कंगन का जोड़ पछेला भी दे दूँगी ॥४॥

ननद नहा-धोकर खड़ी हुई और देवता मनाने लगी—हे देवता ! मेरी भौजी को पुत्र दो, जिससे मैं कंगन पाऊँ ॥५॥

अभी सूर्य को मना भी न पाई थी कि पुत्र का जन्म हुआ। ननद लट खोलकर नाचने लगी कि हे भौजी ! मैं कंगन लूँगी ॥६॥

स्त्री ने कहा—यह कंगन न तेरे भाई ने गढ़ाया है, न तेरे बाबा ने इसे खरीदा है। इसे तो मैं अपने नैहर से ले आई हूँ। मैं कंगन नहीं दूँगी ॥७॥

ननद ने कहा—तुम कुपात्र की कन्या हो, सुपात्र कैसे हो सकती हो? भौजी ! तुमने ओसारे में जो वादा किया था, उसे पूरा करो ॥८॥

मैं तुमको सात लात लगाऊँगी और दो थप्पड़ मारकर कंगन छीन लूँगी और पछेला भी ले लूँगी ॥९॥

स्त्री ने हाथ से कंगन निकालकर नीवी में छुरा लिया और कहा—

हे ननद ! फूस जलाकर जरा उजाला कर। कंगन कहीं खो गया ॥१०॥

बाहर से ससुर राजा आये और गरजकर बोले—हे बहू ! कंगन दे डालो। बेटी परदेशिन है ॥११॥

बाहर से स्वामी आये और दपटकर बोले—मेरी बहन को कंगन दे डालो। नहीं तो वह दुःखी होगी ॥१२॥

सभा में से देवर राजा घुड़ककर बोले—भौजी ! तुम कंगन न दोगी तो मैं बहन के लिये विदेश चला जाऊँगा। अपनी ढाल-तलवार बेंचकर बहन को कंगन लाकर दूँगा और उसे मनाऊँगा ॥१३॥

स्त्री ने इतनी कहा-सुनी के बाद नीवी से कंगन निकाला और ननद के आगे आँगन में फेंककर कहा—ले सात भतारवाली ! पहनकर मेरी सौत बन ॥१४॥

ननद कंगन पहनकर खड़ी हुई और सूर्य देव से कहने लगी—हे सूर्य भगवान् ! मेरे भाई की सेज बढे, जिससे मैं हमेशा आती रहूँ ॥१५॥

यह गीत उस समय का है, जब हिन्दुओं में छुरी-कटारी बाँधने का शौक था, और लोग दूर-दूर जाकर छूरी-कटारी खरीद लाया करते थे,

इस गीत मे ननद-भौजाई के चोचले हैं। पुत्र-जन्म पर ननद को गहने आदि चीजें मिलती हैं। वह खुशामद करके, कभी-कभी रूठकर और लड़-झगड़कर भी चीजें लिया करती हैं। पर उसकी लड़ाई के मूल में प्रेम का अथाह समुद्र भी होता है। जैसा इस गीत में ननद ने कहा है—

मारब सात गड़हरी गले दुइ थप्पड़।
कँगना कै जोट पछेलवा दुनौ हम लेबइ॥

ऐसा वाक्य निधड़क होकर वही कह सकता है, जिसमें पूर्ण प्रेम हो।

ननद-भौजाई में हँसी मज़ाक करने का भी रिश्ता है। भौजाई ने कंगना देते समय मज़ाक किया भी है।

यह गीत किसी ननद का बनाया हुआ है। इसमें भौजाई को शर्मिंदा किया गया है। ननद के लालच की तो हद होती ही नहीं। भौजाई को अपना घर भी तो देखना पड़ता है। इसी से उसे कंजूस कहा गया है।

सबसे मार्मिक और करुणापूर्ण शब्द इस गीत में 'बिटियवा परदेसिनि' है।

[३५]

गहिरी जमुनवा के तिरवाँ चनन गछ रुखवा हो।
तिन डरिया परे हैं हिंडोलवा झुलहिँ रानी रुकुमिनि हो ॥ १ ॥
झुलतहिँ झुलत अबेर भा है औरौ देर भा है हो।
मोरा टुटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर हो ॥ २ ॥
धावउ बहिनि चकैया तूँ हाली बेगि आवउ हो।
चकई ! चुनि लेव मोतिन क हार जमुन जल भीतर हो ॥ ३ ॥
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी ! सँझवै से चकवा हेरान ढूँढ़त नहिँ पावउँ हो ॥ ४ ॥

गहरी नदी जमना के किनारे चन्दन का एक घना वृक्ष है। उसकी डाल पर हिंडोला पड़ा है। उस पर रानी रुक्मिणी झूल रही हैं ॥ १ ॥

झूलते-झूलते बहुत देर हो गई। यकायक उनका मोती का हार टूट गया और मोती यमुना के जल में जा गिरे ॥ २ ॥

रुक्मिणी ने चकई से कहा—हे चकई बहन ! जल्दी दौड़ कर आओ, और मेरे हार के मोती यमुना के भीतर से चुनकर निकाल दो ॥ ३ ॥

चकई स्वयं चकवा के वियोग में व्याकुल हो रही थी। उसने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर बज्र गिरे। साँझ से ही मेरा चकवा कहीं खो गया है। मैं ढूँढ़ रही हूँ और पाती नहीं हूँ ॥ ४ ॥

प्रियतम की खोज से बढ़कर संसार में और ज़रूरी काम क्या है ?

[३६]

अँगने में फिरहिं जच्चा रानी हथवाँ गोबर लिहे।
सासु कौन महल मोहिं देहौ तवल घर लीपब हो ॥ १ ॥
मैया तो बोलै न पावैं की ननद उठि बोलै।
अम्मा यहि हरजोतवा की बिटिया दिहौ घर भुसउल ॥ २ ॥
दूर से आए सिर साहेब हड़पि तड़पि बोलैं।
बहिनी वड़े रे साहेब की बिटियवा देहु घर ओबरि ॥ ३ ॥
होत भोर पह फाटत होरिला जनम भए।
बाजे लागीं अनँद बधैया उठन लागे सोहर ॥ ४ ॥
बाहेर बाजे बधैया भीतर उठैं सोहर।
लट खोले झगड़ै ननदिया कँगन भौजी लेबै ॥ ५ ॥
केतनौ ननदी तु नाचौ जियरा नहीं हुलसै।
ननदी समुझौ आपन बोल दिहेउ घर भुसउल ॥ ६ ॥

हाथ मे गोबर लिये जच्चा रानी घूम रही हैं। हे सास ! मुझे कौन सा घर दोगी ? बता दो, तो मैं उसे लीप लूँ ॥ १ ॥

सास बोलने भी न पाई थी कि ननद ने उठकर कहा—माँ ! इस किसान की बेटी को भूसे का घर दे दो ॥ २ ॥

इतने में बाहर से स्वामी आ गये। बहन की बात सुनकर उन्होंने घुड़ककर कहा—बहन ! यह बड़े घर की कन्या है, इसे ख़ास घर दो ॥ ३ ॥

पौ फटते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा ॥ ४ ॥

बाहर बधाई बज रही है, भीतर सोहर हो रहा है। ननद लट खोलकर झगड रही है कि हे भौजी ! मैं कंगन लूँगी ॥ ५ ॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! तुम कितना ही नाचो, पर मेरे मन

में उत्साह नहीं हो रहा है। तुम अपनी बोली को याद करो, जो तुम ने कहा था कि भूसे का घर दे दो ॥ ६ ॥

ननद-भौजाई में मेल बहुत कम देखने में आता है। कहीं-कहीं तो सास-बहू में वैमनस्य करा देने में ननद ही कारण होती है।

[३७]

काहे रे अमवा हरिअर ना जानों कौने गुना।
ललना ना जानों मलिया के सींचे त ना जानों खेत गुना ॥ १ ॥
ना यह मलिया के सींचे ना यह खेत गुना।
ललना रिमिकि झिमिकि देवा बरिसै त उनही के बूँद गुना ॥ २ ॥
होरिल तौ बड़ सुन्दर ना जानों कौने गुना।
है हो ना जानों अम्मा के सँवारे त ना जानों कोखी गुना ॥ ३ ॥
ना यह अम्मा के सँवारे तौ ना यह कोखी गुना।
ललना मोर पिया तप व्रत कीन त उनहीं के धरम गुना ॥ ४ ॥
बारह बरिस बन सेवलें त गुरू घर से अवलें हो।
ललना तब घर बबुआ जनमले सोहर अब सूनब हो ॥ ५ ॥
मचियहिं बैठी हैं सासु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन फल खायू होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ६ ॥
फल तौ खायूँ नौरँगिया त आम छोहारौ हो।
सासू नरियर दाख बदाम नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥ ७ ॥
सभवहिं बैठे हैं ससुरु त बहुआ से पूँछइँ हो।
बहुआ कवन कवन तप कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ ८ ॥
सासु क बचन न टारेउँ न ननद तुकारेउँ हो।
ससुरु कबहुँ न लाई लूकी लायउँ नाहीं रे जानौं वहि गुन हो ॥ ९ ॥
सुपेली खेलत कै ननदिया त भौजी से पूँछइ हो।
भौजी कवन कवन व्रत कीहिउ होरिल बड़ सुन्दर हो ॥ १० ॥

स्वामी क मानेउँ हुकुमवा देवर क दुलारेउँ हो।
ननदा ! सब कर लिहेउँ असीस त ना जानौं वहि रे गुना ॥११॥

यह आम वृक्ष हरा क्यों है ? मालूम नहीं; माली के सींचने से यह हरा है या खेत के प्रभाव से ? ॥१॥

न यह माली के सींचने से हरा है, न खेत के प्रभाव से। रिमझिम करके जो बादल बरसते हैं, उन्हीं की बूँदों के प्रभाव से यह हरा है ॥२॥

यह बालक बहुत सुन्दर है। इतना सुन्दर यह क्यों है ? नहीं जानता इसकी माँ ने इसको ऐसा सुन्दर सँवार रक्खा है ? या उसकी कोख का ऐसा प्रभाव ही है ? ॥३॥

नहीं, नहीं; न तो यह माँ के सँवारने से इतना सुन्दर है और न कोख का ही प्रभाव है। मेरे पति ने बहुत तप-व्रत किया था। उन्हीं के धर्म के प्रभाव से यह इतना सुन्दर है ॥४॥

हे सखी ! मेरे पति बारह वर्ष तक बन मे गुरु के घर में रहकर विद्या पढ़ते रहे। फिर घर आये। तब इस बालक का जन्म हुआ। अब सोहर सुनूँगी ॥५॥

मचिये पर बैठकर सास बहू से पूछती हैं—बहू ! तुम ने क्या-क्या फल खाया ? जो तुम्हारा पुत्र इतना सुन्दर है ॥६॥

बहू ने कहा—मैंने नारंगी, आम, छोहारा, नारियल, दाख और बादाम खाया था। शायद इन्हीं के प्रभाव से बालक सुन्दर हुआ हो ॥७॥

सभा में बैठे हुये ससुर बहू से पूछते हैं—हे बहू ! तुमने कौन सा तप किया है ? जो तुम्हारा बच्चा बड़ा सुन्दर है ॥८॥

बहू ने कहा—हे ससुरजी ! मैंने कभी सासजी की बात नहीं टाली। न ननद का तिरस्कार किया। न कभी इधर की बात उधर लगाई। शायद इसी के गुण से बच्चा इतना सुन्दर हुआ हो ॥९॥

सुपेली (छोटा सूप) खेलती हुई ननद ने पूछा—हे भौजी ! तुमने कौन सा व्रत किया था ? जिससे तुम्हारा बालक इतना सुन्दर है ॥१०॥

बहू ने कहा—हे ननद ! मैंने सदा स्वामी की आज्ञा का पालन किया। देवर को प्यार किया और सब का आशीर्वाद लिया। शायद इसी से मेरा बालक सुन्दर हुआ है ॥११॥

यह गीत क्या है, एक आदर्श-बहू का सुन्दर चित्र है। बालक सुन्दर क्यों हुआ है ? इसके लिये उसके पिता का तपोनिष्ठ और धर्मिष्ठ होना आवश्यक है। साथ ही उसकी माँ भी ऐसी हो, जो गृहस्थी में अपना कर्तव्य-पालन करती हुई, घर के सब छोटे-बड़ों को सुख देकर, उनसे आशीर्वाद प्राप्त करे। उत्तम चरित्र वाले माँ-बाप का पुत्र सुन्दर क्यों न होगा ?

[३८]

जेठ बैसखवा की गरमी पसिनवाँ से व्याकुल।
मोरे साहब बाहर बँगला छवउतेउ दुनौं जन सोइत ॥ १ ॥
ना हम बँगला छवैबे न हम घर रहबै हो।
मोरी रानी ! हम तो जावइ परदेस नैहर चली जावउ ॥ २ ॥
ना मोरे माई न बाबा न मोर सग भैया हो।
स्वामी ! भौजी बोलइ विष बोल करेजवा मँ सालै ॥ ३ ॥
सास क चरन पखरबै ननद क दुलरबइ।
साहब ! देवरा कै धोतिया फछरबइ यहीं हम रहबै ॥ ४ ॥
एतना बचन जब सुने घोड़े से उतर पड़े।
मोरी रानी हरियर बँसवा कटइबै त बँगला छवइबै ॥ ५ ॥
छरहर बँसवा कटायेन बँगला छवायेन हो।
मोरी रानी सीतल बहै बयरिया सोउ सुख नींदर ॥ ६ ॥

वैसाख-जेठ की गरमी में मैं पसीने से व्याकुल हो जाती हूँ। हे मेरे स्वामी ! बाहर एक बँगला छवा दो तो उसमे हम दोनों सोयें ॥१॥

स्वामी ने कहा—न हम बँगला छवायेंगे, न हम घर रहेंगे। हे मेरी रानी ! मैं तो परदेश जाऊँगा। तुम नैहर चली जाओ ॥२॥

स्त्री ने कहा—न मेरी माँ है, न मेरे बाप है, न मेरा कोई सगा भाई है। चचेरे भाई की स्त्री ऐसी कड़ी बात बोलती है जो विष की तरह मेरे कलेजे में सालती है ॥३॥

मैं यहीं रहूँगी। सास के पैर धोऊँगी। ननद को प्यार करूँगी। देवर की धोती धोऊँगी। मैं यहीं रहूँगी ॥४॥

स्त्री की यह सहृदयता से भरी हुई वाणी सुनते ही पति घोड़े से उतर पड़ा। उसने प्रेम से गद्‌गद् होकर कहा—मेरी रानी ! मैं हरे-हरे बाँस कटाकर बँगला छवा दूँगा ॥५॥

पति ने लम्बे और सीधे बाँस कटवा कर बँगला छवा दिया और स्त्री से कहा—हे रानी ! ठंडी-ठंडी हवा चल रही है। जाओ, बँगले में सुख की नींद सोओ ॥६॥

[२९]

चैतहि । कै तिथि नवमी त नौबति बाजइ हो।
बाजै दसरथ राज दुवार कौशिल्या रानी मंदिर हो ॥ १ ॥
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि जुलि आवहु हो।
जहाँ राजा के जनमें हैं राम करिय नेवछावरि हो ॥ २ ॥
केउ नावै बाजूबन्द केउ कजरावट हो।
केउ नावै दखिनवा कै चीर कराहि नेवछावरि हो ॥ ३ ॥
भितरा से निकसीं कौशिल्या अँगनवहि ठाढ़ी भई हो।
रानी धइ धइ हिरदै लगावैं करैं नेवछावरि हो ॥ ४ ॥

राम के मथवा चननवा बहुत निक लागै हो।
राम नयन रतनारे कजर भल सोहै।
दीन्हों रचि रचि फूआ सुभद्रा तउ पतरी अँगुरियन ॥ ५ ॥
राम के मथवा लुटुरिया बहुत निक लागै हो।
जैसे फूलन के बिच बिच कलियाँ बहुत निक लागै ॥ ६ ॥
राम के गोड़वाँ घुँघुरुवा बहुत निक लागै हो।
नान्हें गोड़वन चलत बकैंया देखत राजा दसरथ ॥ ७ ॥

चैत की नवमी है। राजा दशरथ के राज-द्वार पर और रानी कौशल्या के महल में नौबत बज रही है ॥१॥

हे सखियो ! मिल-जुल कर आओ। चलो, राजा दशरथ के राम जन्मे हैं, चलकर उनकी न्योछावर करें ॥२॥

कोई बाजूबन्द न्योछावर कर रही है। कोई कजरौटा और कोई दक्षिण का चीर न्योछावर कर रही है ॥३॥

कौशल्या भीतर से निकलीं और आँगन में खड़ी हुईं। रानी न्योछावर करनेवालियों को बड़े प्रेम से हृदय से लगा रही हैं ॥४॥

राम के माथे पर चन्दन बहुत अच्छा लग रहा है। राम के रतनारे नेत्रों में काजल बहुत सुन्दर लगता है। फूफी सुभद्रा ने अपनी पतली उँगलियों से खूब बना-बनाकर काजल दिया है ॥५॥

राम के माथे पर घुँघुराले बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। जैसे फूलों के बीच में कलियाँ बहुत अच्छी लगती हैं ॥६॥

राम के पैर में घुँघरू बहुत अच्छे लगते हैं। राम नन्हे पैरों से बकैयाँ चल रहे हैं। राजा दशरथ देख रहे हैं ॥७॥

कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इस गीत में आँखों में काजल लगाने की कला का ज़िक्र है। राम की फूफी यद्यपि सुभद्रा नहीं थीं, पर गीतों में राम और कृष्ण का सारा परिवार एक कर लिया गया है। सुभद्रा के

लिये गीत में कहा गया है कि उन्होंने अपनी पतली उँगली से राम की आँखों में बहुत सुन्दर काजल लगाया था। आजकल की स्त्रियों में इस कला का ह्रास होता जा रहा है। अब तो स्त्रियाँ भूत-प्रेत और नजर-टोने के डर से अपने बच्चों की आँखों में काजर लगाती हैं, बल्कि लीपती हैं पर वे स्वयं अपनी आँखों में भी अच्छी तरह रच-रचकर काजल लगावें तो उनका सौन्दर्य और अधिक मनोमोहक हो सकता है।

[४०]

कौने वन उपजइ सुपरिया कौने वन नरियर हो।
चेरिया कौने वन फुलली कुसुमियाँ मैं चुनरी रँगैवे हो ॥ १ ॥
जेठ वन उपजी सुपारिया ससुर वन नारियर हो।
सैय्याँ वन फुलली कुसुमियाँ तो चुनरी रँगावउ हो ॥ २ ॥
एक तो अँगवा कै पातरि दुसरे गरभ सेती हो।
पहिरे कुसुम रँग सारी तो वेदना बेआकुल हो ॥ ३ ॥
सासु मोरी बेनियाँ डोलावैं ननद मुख चूमैं हो
भौजी छिन एक वेदना निवारौ होरिल तुमरे होइहैं,
सोहर अबहिं सुनाविउ हो ॥ ४ ॥
तौ का बिख बोलिउ ननदिया जहर बिख लागै हो।
ननदी सरग नियर भुइयाँ दूरि होरिल कहाँ होइहैं हो ॥ ५ ॥
आपन मैया जे होतीं वेदन हरि लेतीं हो।
हरिजी कै मैया निरबेदनी त होरिल होरिल करैं
सोहर सोहर करैं हो ॥ ६ ॥

किस वन में सुपारी पैदा होती है? किस वन में नारियल? और हे दासी! किस वन में कुसुम फूलता है? मैं चूनरी रँगाऊँगी ॥ १ ॥

दासी कहती है—जेठ के वन में सुपारी पैदा होती है, और ससुर के वन में नारियल। तुम्हारे स्वामी के वन में कुसुम फूला है। तुम चूनरी रँगा लो ॥ २ ॥

स्त्री एक तो शरीर से पतली, दूसरे गर्भ। वह कुसुम्भी रंग की साड़ी पहनकर प्रसव-पीड़ा से विकल है ॥३॥

मेरी सास बेनिया डुला रही हैं। ननद मुँह चूम रही है। ननद कहती है—भौजी ! जरा धीरज धरो। तुम्हारे पुत्र होगा, अभी तुम सोहर सुनोगी ॥४॥

स्त्री कहती है—हे ननद ! क्या विष बोलती हो ? तुम्हारी बात मुझे ज़हर सी लग रही है। हे ननद ! मुझे स्वर्ग समीप और धरती दूर दिखाई पड़ रही है। बच्चा कहाँ होगा ? ॥५॥

हा ! आज जो मेरी माँ यहाँ होतीं तो पीड़ा हर लेतीं। मेरे स्वामी की माँ वेदना नहीं जानतीं। उनको तो बस पुत्र-पुत्र और सोहर-सोहर की रट लगी है ॥६॥

स्वाभाविक वर्णन।

[४१]

पिया मोर चलले नोकरिया त बड़े रे गरभ से।
हथवा चम्पे केर छड़िया त माथे पर चन्दन ॥ १ ॥
पियवा न होउ मोर पियवा तुहीं सिर साहब।
मोर पियवा जब हम गरुए गरभ से तू चललेव नोकरिया ॥ २ ॥
धनिया न होउ मोरी धनिया तुहीं ठकुराइन।
धनिया काहे तोर वदन मलीन कहें मन धूमिल ॥ ३ ॥
पियवा न होउ मोरे पियवा तुहीं सिर साहेब।
मोरे राजा छिन एक बेनिया डोलउतेउ नींद भरि सोइत ॥ ४ ॥
ओरी कै पानी बड़ेरिया कैसे धन जैहैं।
मोरी रानी हम कैसे बेनिया डोलैबै तु नींद भरि सोइहौ ॥ ५ ॥
सुरुजा उवत पह फाटत होरिलवा जनम लिहिन
बबुवा जनम लिहिन ॥

मोरे साहब बाजै लागी अनँद बधैया उठन लागे सोहर।
सतरंग बाजै सहनैया दुआरे मोरे नौबति ॥ ६ ॥
हँकरौ नगरा के सोनरा हाली वेगि आओ।
मोरे सोनरा तू सोने रूपे गढ़ौ बेनियवा त धनिया मनावौं ॥ ७ ॥
हँकरौ नगरा के बरई त हाली वेगि आओ।
अरे मोरे बरई तू सौ सठि बिरवा लगावो तौ धनिया मनावौं ॥ ८ ॥
एक हाथे लिहिनि बेनियवा दुसरे हाथे बिरवा।
मोरी रानी अब हम बेनियाँ डोलैबै नींद भरि सोवौ ॥ ९ ॥
बेनिया तो हाँको अपनी मैया त सग पितियनिया।
मोरे राजा हमरे तो भये नन्दलाल त हम तौ जुड़ानेन ॥१०॥

बड़े घमंड से मेरे स्वामी नौकरी के लिये चले। उनके हाथ में चम्पा की छड़ी थी और माथे पर चन्दन सुशोभित था ॥१॥

स्त्री कहती है—हे मेरे प्रियतम! तुम्हीं मेरे प्राणाधार हो। तुम्हीं मेरे मालिक हो। जब मुझे गर्भ का भार है, तब तुम नौकरी को जा रहे हो? ॥२॥

पति कहता है—हे मेरी प्राणेश्वरी! तुम मेरी रानी हो। हे धन! तुम्हारा मुख मलिन क्यों है? और तुम्हारा मन धूमिल क्यों है? ॥३॥

स्त्री कहती है—हे मेरे नाथ! तुम एक क्षण पंखा हाँकते, तो मैं नींद भर सो लेती ॥४॥

पति कहता है—हे धन! कहीं ओलती का पानी बड़ेरी जाता है? मेरी रानी! मैं पंखा हाँकूँ और तुम नींद भर सोओ? यह उल्टी बात कैसे हो सकती है? ॥५॥

सवेरा होते ही बच्चा पैदा हुआ। आनन्द की बधाई बजने लगी और सोहर गाया जाने लगा। द्वार पर शहनाई और नौबत बजने लगी ॥६॥

पति कहता है—गाँव के सुनार को बुलाओ, जल्दी बुलाओ। हे सुनार! तुम सोने और चाँदी की पंखी बना दो। मैं अपनी रानी को मनाने जाऊँगा ॥७॥

गाँव के तम्बोली को जल्दी बुलाओ। हे तम्बोली जल्दी आओ। एक सौ बीड़े लगाकर दो। मैं अपनी लाड़िली को मनाने जाऊँगा ॥८॥

पति ने एक हाथ में पंखी ली और दूसरे में पान के बीड़े। स्त्री के पास जाकर उसने कहा—हे रानी! मैं पंखी हाँकूँगा, तुम नींद भर सो जाओ ॥९॥

स्त्री कहती है—हे पतिदेव! तुम जाकर अपनी माँ और सगी चची को पंखी हाँको (उनकी सेवा करो)। हे राजा! मुझे पंखे की आवश्यकता नहीं रही। मेरे लाल पैदा हुये हैं, मेरा हृदय तो अब यों ही शीतल हो गया है ॥१०॥

पुत्रवती होने पर पति की दृष्टि में पत्नी का आदर अधिक हो जाता है। एक बार प्रार्थना करने पर भी पति ने पंखी नहीं हाँकी, बल्कि परिहास किया। पर जब पत्नी पुत्रवती हुई, तब वह उसे मनाने चला। बाँस की पंखी से नहीं, बल्कि सोने-चाँदी की पंखी से। पति-पत्नी का यह प्रेम-कलह हिन्दुओं में घर-घर पाया जाता है। और सच पूछा जाय, तो गृहस्थी के सुख का एक अंश इस प्रकार के प्रेम-कलह में भी है।

[४२]

दिन तौ सून सुरुज बिनु राति चंदा बिनु रे।
बहिनी नैहर सून अपनी मैया बिनु ससुरे पुरुष बिनु रे ॥ १ ॥
गरुई गठरिया केन बँधिहैं मैया बिनु रे।
पहो लपकि खबरिया केन लेइहैं तो अपने भैया बिनु रे ॥ २ ॥

जैसे सूर्य के बिना दिन सूना है और चन्द्रमा के बिना रात सूनी है। वैसे ही माँ के बिना नैहर और पुरुष बिना ससुराल सूनी है ॥१॥

माँ के बिना भारी गठरी बाँधकर कौन देगा ? भाई न हो तो झपटकर बहन के दुख-सुख की ख़बर कौन लायेगा ? ॥२॥

[४३]

कुँअवा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब !
झोंकवन भरैं पनिहारिन तबै फल होइहै ॥ १ ॥
बगिया लगाये कवन फल हे मोरे साहब !
राहे बाट अमवा जे खैहैं तबै फल होइहैं ॥ २ ॥
पोखरा खोदाये कवन फल हे मोरे साहब !
गौआ पियैं जूड़ पानी तबै फल होइहैं ॥ ३ ॥
तिरिया के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब !
पुतवा जनम जब लैहैं तबै फल होइहैं ॥ ४ ॥
पुतवा के जनमे कवन फल हे मोरे साहेब !
दुनिया अनन्द जब होइ तबै फल होइहैं ॥ ५ ॥

हे मेरे स्वामी ! कुँवा खोदाने का फल तभी है, जब झुंड की झुंड पनिहारिनें पानी भरें ॥१॥

बाग लगाने का फल तभी ह जब राह चलनेवाले आम खायँ ॥२॥

तालाब खुदाने का फल तभी है, जब गाये ठंढा पानी पीयें ॥३॥

स्त्री होने का फल तभी है, जब उसके पुत्र हो ॥४॥

पुत्र होने का फल तभी है, जब संसार आनंदित हो जाय ॥५॥

इस गीत का अंतिम पद बड़ा मार्मिक है। 'पुत्र होने का फल तभी है जब संसार आनंदित हो जाय।' संसार आनंदित तभी होगा जब किसी उत्तम गृहस्थ के घर पुत्र उत्पन्न होगा, जिससे संसार को अपने कल्याण की आशा होगी। अथवा पुत्र उत्पन्न होकर अपने पुरुषार्थ से संसार का दुःख दूर करे, उसे आनंदित करे, तभी उसका जन्म सफल है। कैसी उच्च भावना है ! कुँवाँ खुदाना, तालाब खुदाना और बाग़

लगाना, गाँवों मे ये तीन काम पुण्य के गिने जाते हैं। गीत से यह प्रमाणित होता है कि पूर्वकाल में लोग बाग़ अपने लिये नहीं, बल्कि राही-बटोही के आराम के लिये लगाते थे। आजकल बाग का फल बेंच लेना एक साधारण बात नहीं, बल्कि बुद्धिमानी का काम समझा जा रहा है। पर किसी समय फल और दूध का बेंचना इस देश में पाप समझा जाता था। फल और दूध ही नहीं; पहले शिक्षा, ओषधि और न्याय भी मुफ्त मिलता था। समय का फेर है, अब सब के दाम देने पडते हैं।

[४४]

मोरे पिछवरवाँ जम्हिरिया त लहर लहर करै।
उनकै महर महर आवै बास जम्हिरिया सुहावन ॥ १ ॥
कटवूँ मैं बिरिछ जम्हिरिया त पलँगा सलैवूँ।
सेइ पलँग हम सोइबै सलोनी धन कोरवाँ।
जेकर कमल फुलै दुनौ नैन बहुत निक लागै ॥ २ ॥
सेजिया से रुठलि तिरियवा जमुन तट ठाढ़ी भई।
केवटा हालि बेगि नइया लेइ आवहु त परवा उतारहु ॥ ३ ॥
जौ मैं नइया लैके आवउँ नेवरिया लैके आवउँ।
तिरिया का उतरौनी मोहिं देइहौ त परवा उतारौं ॥ ४ ॥
देवूँ मैं हाथ की मुदरिया औ गर कै तिलरिया।
केवटा औ गज मोतिन क हार त परवा उतारौ ॥ ५ ॥
अगिया लगावउँ तोरी मुँदरी बजर परे तिलरी।
तिरिया आजु रैन बसि लेतिउ त परवा उतारौं ॥ ६ ॥
चाँद सुरज अस पियवा मैं सोवत छोड़ेउँ।
केवटा के तोर मति हरि लीन्ह पाप मन व्यापेउ ॥ ७ ॥
लहँगा कै बाँधिन मुरायठ ओढ़नी क पिछौरा।
तिरिया उतरि गई हैं पार केवट हाथ मींजै ॥ ८ ॥

जाते की दइयाँ अकेलिन लौटत बिरन सँग।
केवटा खलवा कढ़ाय भूसा भरतेउँ जौन मुख भाखेउ॥ ९॥

मेरे पिछवाड़े जम्हीरी नीबू का वृक्ष लहलहा रहा है। उसमें से बड़ी मनोहर सुगंध आया करती है। जम्हीरी बड़ा सुन्दर लगता है ॥१॥

पति कहता है—मैं उस नीबू को कटवाकर पलँग बनाऊँगा। उस पलँग पर मैं अपनी सुन्दरी स्त्री के साथ सोऊँगा, जिसके दोनों नेत्र प्रफुल्लित कमल की तरह सुन्दर हैं और बहुत प्यारे लगते हैं ॥२॥

किसी कारण से स्त्री और पुरुष में विवाद हो गया। संभवतः नीबू के काटने में राय नहीं मिली। इसलिये रूठकर स्त्री जमना के किनारे गई और उसने मल्लाह को कहा—जल्दी आओ, और मुझे पार उतारो ॥३॥

मल्लाह ने कहा—मैं नाव लेकर आऊँ और पार उतारूँ, तो मुझे उतराई क्या दोगी? ॥४॥

स्त्री ने कहा—मैं हाथ की अँगूठी दे दूँगी। गले की तिलड़ी दे दूँगी। और यदि इतने पर भी तू संतुष्ट न होगा तो गजमुक्ताओं का हार दे दूँगी ॥५॥

मल्लाह ने कहा—तुम्हारी अँगूठी में आग लगे। तिलड़ी पर वज्र गिरे। हे स्त्री! यदि तुम आज की रात मेरे यहाँ बस जाओ, तो मैं पार उतार दूँ ॥६॥

स्त्री ने कहा—चाँद और सूर्य की तरह सुन्दर पति को तो मैं सोता छोड़ आई हूँ। केवट! तेरी अक्ल किसने हर ली? तेरे मन में पाप समा गया है क्या? ॥७॥

स्त्री ने घाँघरे को तो सिर से लपेट लिया और ओढ़नी को पहन लिया। वह नदी में कूद पड़ी और तैर कर पार हो गई। केवट हाथ मींजकर रह गया ॥८॥

जाते वक्त तो अकेली थी। पर लौटते वक्त उसका भाई साथ था।

वापसी में उसने मल्लाह को डाटा—तू ने उस दिन जो बात मुँह से निकाली थी, उसके बदले में, मेरे जी में आता है कि, तेरी खाल खिँचवाकर उसमें भूसा भरा दूँ ॥९॥

इस गीत में उस समय के हिन्दू-समाज की दशा का वर्णन है जब स्त्रियाँ ऐसी हिम्मतवाली होती थीं कि अकेली सफ़र कर सकती थीं और नाव न मिलने पर जमना ऐसी नदी तैर कर पार हो जाती थीं, तथा मल्लाह ऐसे मनचलों की मरम्मत भी कर सकती थीं। यह बेचारा एक गीत उस ज़माने की यादगार बनाये हुये है।

[४९]

अलबेली जच्चारानी खूब बनी।
अपने पिया के सोहागिन खूब बनी।
जैसे रेशम के लारछा जच्चारानी केश बनी।
जैसे चन्दन के होरसा जच्चारानी माथ बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ १ ॥

जैसे आम केर फाँकिया जच्चारानी नैन बनी।
अपने पिया के दुलारी जच्चारानी खूब बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
जैसे सुगा के ठोरवा जच्चारानी नाक बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ २ ॥

जैसे अनारे के दाना जच्चारानी दाँत बनी।
अपने पिया के सोहागिन जच्चारानी खूब बनी।
जैसे अनार के कलियाँ जच्चारानी होंठ बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ ३ ॥

जैसे केरा केर खँभिया जच्चारानी जाँघ बनी।
अपने पिया कै सुहागिन जच्चारानी खूब बनी।
जैसे केरा केर छीमिया जच्चारानी अँगुली बनी।
मतवाली जच्चारानी खूब बनी।
अलबेली जच्चा० ॥ ४॥

अलबेली जच्चारानी खूब सुन्दर लगती हैं। अपने पति की प्यारी सुहागिन जच्चारानी बहुत सुन्दर लगती हैं। जच्चारानी के केश ऐसे सुन्दर हैं, जैसे रेशम के लच्छे। जच्चारानी का माथा ऐसा सुन्दर है, जैसे चन्दन घिसने का होरसा (गोल शकल का पत्थर, जिस पर चन्दन घिसा जाता है) ॥१॥

जच्चारानी के नेत्र ऐसे सुन्दर हैं, जैसे आम की फाँकी। अपने पति की प्यारी, रूपगर्विता, जच्चारानी बड़ी ही सुन्दर लगती है। जच्चारानी की नाक ऐसी सुन्दर है, जैसे तोते की चोंच ॥२॥

जच्चारानी के दाँत ऐसे सुन्दर हैं, जैसे अनार के दाने। अपने पति की सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर हैं। जच्चारानी के होंठ ऐसे लाल हैं जैसे अनार की कली। मतवाली जच्चारानी खूब अच्छी लगती हैं ॥३॥

जच्चारानी की जाँघ ऐसी है, जैसे केले का खंभा। सुहागिन जच्चारानी बड़ी सुन्दर हैं। जच्चारानी की उङ्गलियाँ ऐसी सुन्दर हैं, जैसी केले की फलियाँ। मतवाली जच्चारानी बड़ी सुन्दर हैं।

[४६]

हँसि हँसि पूछैं राजा त रानी के राजा हो।
मोरी रानी कहाँ लगाई इतो देर बिरस मन होइ गया रे ॥ १ ॥
फूल बिनन गईं बगियै वही फुलबगियै।
ये मोरे राजा बारी को लगन भँवरवा अँचर गहि राखेउ ॥ २ ॥

लावो न ढाल तरवरिया अरि कमर कटरिया।
मोरी रानी मारौं मैं बारी को भँवरवा अरि मित्र तुम्हारो
अरि बैरी हमारो है रे ॥ ३ ॥
डारन डारन पिया फिरैं पातन भँवरा।
ये मोरे भँवरा उड़ि के न बैठो फुलवरिया। राजा तुम्हें मारें ॥ ४ ॥
डेहरी तो सूनि मेहरी बिन मेहरी मरद बिन हो।
जैसे, वैसे मोरी सूनी फुलवरिया अकेले भँवरा बिन ॥ ५ ॥

राजा ने हँसकर पूछा—हे मेरी रानी! तुमने इतनी देर कहाँ लगाई? मेरा मन विरस हो गया ॥१॥

रानी ने कहा—मैं बाग में फूल बीनने गई थी। हे मेरे राजा! वहाँ मेरे बचपन के प्रेमी भौंरे ने मेरा आँचल पकड़कर रोक लिया था ॥२॥

राजा ने कहा—मेरी ढाल तलवार लाओ। मेरे कमर की कटारी लाओ। मैं तुम्हारे बचपन के प्रेमी भौंरे को मारूँगा। तुम्हारा मित्र मेरा शत्रु है ॥३॥

मेरे प्रियतम डाल-डाल फिर रहे हैं और भौंरा पात-पात। हे भौंरा! फुलवाड़ी से उड़कर चले जाओ न? राजा तुम्हें मारेंगे ॥४॥

रानी कहती है—हाय! स्त्री बिना डेहरी (ड्योढ़ी, देहली) सूनी है। पुरुष बिना स्त्री सूनी है। वैसे ही अकेले एक भौंरे के बिना फुलवाड़ी सूनी है ॥५॥

[४७]

सुखिया दुखिया दोनों बहिनियाँ।
दोनों बधावा लै आईं हरे राजा बीरन ॥ १ ॥
सुखिया जे लाईं गुँजहरा गोड़हरा।
दुखिया दूब कै पौंड़ा हरे राजा बीरन ॥ २ ॥

सुखिया जे पूँछैं अपने वीरन से॥
विदा करो घर जाई हरे राजा वीरन॥ ३॥
लेहु न दहिनी कोंछ भरि मोतिया।
सैयाँ चढ़न का घोड़ा हरे राजा वीरन॥ ४॥
दुखिया जे पूँछैं अपने वीरन से।
विदा करौ घर जाई हरे राजा वीरन॥ ५॥
लेहु न बहिनी कोंछ भरि कोदौ।
वहै दूब का पौंड़ा हरे मोरा बहिनी॥ ६॥
गँउवाँ गोइँड़वा नँघही न पायों।
दुब्बा झरन लागीं मोती हरे राजा वीरन॥ ७॥
कोठे चढ़ी जे भौजी पुकारैं।
रूठी ननद घर लाओ हरे मोरे राजा॥ ८॥

सुखिया दुखिया दो बहनें थीं। भाई के पुत्र होने पर दोनों बधावा लेकर आईं॥१॥

सुखिया बालक के लिये हाथ और पैर के कड़े ले आई। और दुखिया बेचारी दूब के कुछ डंठल खोंट कर लाई॥२॥

सुखिया अपने भाई से पूछती है—हे भाई! विदा करो तो मैं घर जाऊँ॥३॥

भाई कहता है—हे बहन! आँचल भरकर मोती लो और अपने पति के चढ़ने के लिये घोड़ा लो॥४॥

दुखिया ने भाई से कहा—हे भाई! विदा करो तो मैं भी अपने घर जाऊँ॥५॥

भाई ने कहा—हे बहन! आँचल भर कर कोदौ (एक तरह का निकृष्ट चावल) लो और वही दूब का डंठल लो॥६॥

दुखिया बहन अभी गाँव की सीमा लाँघने भी न पाई थी कि दूब से मोती झड़ने लगे ॥७॥

उसकी भौजाई कोठे पर चढ़कर पुकारने लगी—मेरी ननद रूठ कर जा रही है। उसे मना लाओ ॥८॥

दुखिया बहन ग़रीब घर में ब्याही थी। भाई के बालक के लिये उसके पास देने को कुछ नहीं था। प्रेम-विवश वह थोड़ी-सी घास लेकर आई थी। सुखिया बहन गहने लेकर आई थी। भाई ने प्रेम का कुछ मूल्य नहीं आँका। केवल गहने और घास का मुक़ाबला किया। उसने दोनों को उनकी लाई हुई चीज़ों के अनुसार बदला देकर विदा किया। पर सुखिया स्वार्थ-वश आई थी, उसके स्वार्थ को दुखिया के विशुद्ध प्रेम से नीचा दिखाने के लिये ही यह रूपक बाँधा गया है। घास से मोती झड़ते देखकर बहू का स्वार्थ फिर प्रबल होता है। दुखिया तिरस्कृत होकर गई थी। अब इसकी ग्लानि बहू को हुई। इस प्रकार स्वार्थ का नग्न नृत्य घर-घर में हो रहा है। पर शुद्ध प्रेम और चीज़ है। वह घास में मोती होकर झड़ता है।

[४८]

देहरी के ओट धन ठुनकइँ उनुन ठुनुन करइँ रे।
राजा हमरे तिलरिआ कै साध तिलरिआ हम लेबइ ॥ १ ॥
एक तो कारी कोइलिआ औ दुसरे छछुन्दरि।
रानी तोहरेउ तिलरिआ क साध तिलरिआ काउ करबिउ ॥ २ ॥
एतनी वचन रानी सुनलिन मन में बिरोग भवा,
जियरा दुखति भवा।
रानी कोइँछा में लिहीं तिल चउरा त देव मनावइँ,
सुरजा मनावइँ ॥ ३ ॥
आठ महीना नौ लगतइ, होरिल जनम लिहीं,
बबुआ जनम लिहीं रे।
बहिनी बाजइ लागी अनँद बधइया उठन लागे सोहर ॥ ४ ॥

अँगनइ बजत बधइया भितर मोरे सोहर हो।
बहिनी सतरँग बजइ सहनइया ससुर द्वारे नौबति रे ॥ ५ ॥
हँकड़हु नगर के सोनरा हाली बेगी आवइ,
आरे जल्दी आवइ रे।
सोनरा गढ़ि लाओ सोने क तिलरिआ मैं
रानी का मनावऊँ ॥ ६ ॥
हँकड़हु नगर के बरई हालही बेगी आवइ जल्दी से आवइ।
बरई मोहर क बिरवा लगावउ मैं लछमी मनावऊँ ॥ ७ ॥
दहिने हाथे लिहिन तिलरिआ बायें हाथे बिरवाउ रे।
राजा झमकि के चढ़ि गै अटरिआ तो रनियाँ मनावइँ ॥ ८ ॥
सूतल रानिआ मनावइँ जाँघ बैठावइँ।
रानी छोड़ि देव मन के बिरोग पहिरो रानी तिलरी ॥ ९ ॥
राजा हम तौ कारी कोइलिआ तिलरी नाहीं सोहइ।
राजा हमरे पलँग मति बैठो साँवर होइ जावेउ रे ॥१०॥
राजा होरिला दिहिन भगवान त तुम्हरे धरम से हो।
राजा पाये रतन अनमोल तिलरिआ काउ करबइ हो ॥११॥

देहली की ओट में स्त्री ठुनक रही है। हे राजा! मेरे लिये एक तिलड़ी (तीन लड़ का हार) बनवा दो। मुझे तिलड़ी पहनने की बड़ी इच्छा है ॥१॥

पति ने कहा—वाह! एक तो तुम कोयल ऐसी काली-कलूटी; दूसरे छछूँदर ऐसी गंदी। तुम्हें भी तिलड़ी का शौक चर्राया है? तुम तिलड़ी क्या करोगी? ॥२॥

यह बात सुनकर स्त्री के मन में बड़ा दुःख हुआ। वह आँचल में तिल और चावल लेकर सूर्य देवता को मनाने लगी ॥३॥

आठवें महीने के बाद नवाँ लगते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनंद की

बधाई बजने लगी और सोहर होने लगा ॥४॥

आँगन में बधाई बज रही है। भीतर सोहर हो रहा है। ससुर के द्वार पर शहनाई और नौबत बज रही है ॥५॥

पति ने कहा—नगर के सोनार को बुलाओ। अरे सुनार! जल्दी आओ। सोने की तिलड़ी बना कर जल्दी लाओ। मैं अपनी रानी को मनाऊँगा ॥६॥

नगर के बरई (तम्बोली) को बुलाओ। तम्बोली! तुम जल्दी एक-एक मुहर का एक बीड़ा लगाकर लाओ। मैं अपनी लक्ष्मी को मनाऊँगा ॥७॥

दाहिने हाथ में तिलड़ी और बायें में बीड़ा लेकर पति अटारी पर झपटकर चढ़ गया और स्त्री को मनाने लगा ॥८॥

सोई हुई स्त्री को उसने जगाया; गोद में बैठाया और कहा—मेरी रानी! मन का विक्षोभ छोड़ दो और यह लो तिलड़ी पहनो ॥९॥

स्त्री ने कहा—हे राजा! मैं तो काली-कलूटी कोयल हूँ। मुझे तिलड़ी अच्छी नहीं लग सकती। हे राजा! तुम मेरी पलँग पर न बैठो, नहीं तो साँवले हो जाओगे ॥१०॥

हे राजा! भगवान् ने तुम्हारे धर्म के प्रभाव से मुझे पुत्र दिया है। ऐसा अनमोल रत्न पाकर अब मैं तिलड़ी लेकर क्या करूँगी ॥११॥

[४९]

ननद भौजाई दूनौं पानी गईं अरे पानी गईं।
भौजी जौन रवन तुहैं हरि लेइ ग उरेहि दखावहु ॥ १ ॥
जौ मैं रवना उरेहौं उरेहि देखावउँ।
सुनि पैहैं बिरन तुम्हार त देसवा निकरिहैं ॥ २ ॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
भौजी लाख दोहइया लछिमन भइया जो भइया से बतावउँ ॥ ३ ॥

मागौं न गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
ननदी समुहे के ओवरी लिपावउ मैं रवना उरेहौं ॥४॥
माँगिन गाँग गँगुलिया गंगा जल पानी।
सीता समुहें के ओवरी लिपाइन रवना उरेहैं ॥५॥
हँथवहु सिरजिन गोड़वहु नयना बनाइन।
आइ गये हैं सिरीराम अँचर छोरि मूँदेनि ॥६॥
जेवन बैठें सिरीराम वहिन लोहि लाइन।
भइया जौन रवन तोर वैरी त भौजी उरेहैं ॥७॥
अरे रे लछिमन भइया विपतिया कै साथी।
सीता के देसवा निकारहु रवना उरेहै ॥८॥
जे भौजी भूखे के भोजन नाँगे को वस्तर।
से भौजी गरुहे गरभ से मैं कैसे निकारौं ॥९॥
अरे रे लछिमन भइया विपतिया के नायक।
सीता क देसवा निकारौ इ त रवना उरेहै ॥१०॥
अरे रे भौजी सीतल रानी वड़ी ठकुराइन।
भौजी आवा है तोहका नेवतवा विहान वन चलवइ ॥११॥
ना मोरे नैहर ना मोरे सासुर।
देवरा! ना रे जनक अस वाप मैं केहि के जइहौं ॥१२॥
कोंछवा के लिहिन सरसइया छिंटत सीता निकसीं।
सरसौ यहीं के अइहीं लछिमन देवरा कँदरिया तोरि खइहीं ॥१३॥
एक वन डाँकिन दुसर वन डाँकिन तिसरे विन्द्रावन।
देवरा एक बुँद पनिया पिअउतेउ पिअसिया से व्याकुल ॥१४॥
बैठहु न भौजी चँदन तरे चँदना विरिछ तरे।
भौजी पनिया क खोज करि आई त तुमकाँ पियाई ॥१५॥

बहै लागी जुडुली बयरिया कदम जूड़ि छहियाँ।
सीता भुइयाँ परीं कुम्हिलाय पिआसिया से ब्याकुल ॥१६॥
तोरिन पतवा कदम कर दोनवा बनाइन।
टाँगिन लवँगिया के डरिया लछन चलें घरके ॥१७॥
सोये साये सीता जागीं झझकि सीता उठी हैं।
कहवाँ गये लछिमन देवरा त हमैं न बतायउ॥
हिरदइया भर देखतेउँ नजर भर रोउतेउँ ॥१८॥
को मोरे आगे पीछे बैठइ को लट छोरै॥
को मोरी जगइ रयनिया त नरवा छिनावइ ॥१९॥
बन से निकरीं बन तपसिन सितै समझावैं॥
सीता हम तोरे आगे पीछे बैठब हम लट छोरब।
हम तोरी जगबै रयनिया त नरवा छिनउबै ॥२०॥
होत बिहान लोही लागत होरिल जनम भये।
सीता लकड़ी क करहु अँजोर संतति मुख देखहु ॥२१॥
तुम पुत भयहु बिपति में बहुतै सँसति में।
पुत कुसै ओढ़न कुस डासन बन-फल भोजन ॥२२॥
जो पुत होते अजोध्या में वही पुर पाटन।
राजा दसरथ पटना लुटौतें कौसिल्या रानी अभरन ॥२३॥
अरे रे हँकरौ न बन के नउअवा बेगिहिं चलि आवहु।
नउवा हमरा रोचन लै जाउ अजोध्यइ पहुँचावउ ॥२४॥
पहिले दिहो राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तीसरे रोचन लछिमन देवरा पै पिपे न जनायउ ॥२५॥
पहिले दिहिन राजा दसरथ दुसरे कौसिल्या रानी।
तिसरे लछिमन देवरा पै पिपे न जनायउ ॥२६॥

राजा दसरथ दिहिन आपन घोड़वा कौसिल्या रानी अभरन।
लछिमन देवरा दिहिन पाँचौ जोड़वा बिंहसि नउआ
घर चल्यौ ॥२७॥
चारिउ खूँट क सगरवा त राम दतुइन करैं।
भइया भहर भहर करै माथ रोचन कहँ पायउ।
भइया केकरे भये नँदलाल त जिया जुड़वायन ॥२८॥
भौजी तो हमरे सितल रानी बसहिं बिन्द्रावन।
उनके भये हैं नंदलाल रोचन सिर धारेन ॥२९॥
हाथ क दतुइन हथ रहि मुख कै मुख रही।
ढुरै लागी मोतियन आँसु पितम्बर भीजै ॥३०॥
हँकरौ न बन के नउआ बेगि चलि आवहु।
नउआ सीता कै हलिया बतावहु सीतै लै अउबै ॥३१॥
कुस रे ओढ़न कुस डासन बनफल भोजन।
साहब लकड़ी क किहिन अँजोर संतति मुख देखिन ॥३२॥
अरे रे लछिमन भइया बिपतिया के नायक।
भइया एक बेर जातेउ मधुबन क भौजइअउ लै अउतेउ ॥३३॥
अजोध्या के चलि गयें मधुबन उतरें।
भौजी राम क फिरा है हँकार त तुम के बुलावैं ॥३४॥
जाव लछन घर अपने त हम नहिं जाबै।
जौ रे जियैं नंदलाल तो उनही क बजिहैं ॥३५॥

ननद और भौजाईं दोनों पानी के लिये गईं। रास्ते में ननद ने कहा—हे भौजी! जो रावण तुम्हें हर ले गया था, उसका चित्र बनाकर मुझे दिखाओ॥१॥

भौजाई ने कहा—मैं रावण का चित्र बनाकर तुम्हें दिखाऊँ और तुम्हारे भाई सुन पायें, तो मुझे वे देश से निकाल देंगे॥२॥

ननद ने कहा—मैं राजा दशरथ की लाख शपथ कर के, राम का माथा छूकर और लक्ष्मण भाई की लाख क़सम खाकर कहती हूँ, भाई से न कहूँगी ॥३॥

भौजाई ने कहा—अच्छा, गंगाजल लाओ। और हे ननद ! सामने की कोठरी लीप-पोतकर ठीक कर दो, तो मैं रावण का चित्र बना दूँ ॥४॥

गंगा-जल आया और सामने की कोठरी लिपाई गई। भौजाई ने रावण का चित्र बनाया ॥५॥

पहले हाथ बनाया; फिर पैर। फिर आँखें बनाईं। इतने में श्रीराम आ गये। सीता ने झटपट आँचल खोलकर उसे ढक लिया ॥६॥

श्रीराम भोजन करने बैठे। बहन ने चुगली खाई—हे भाई ! रावण, जो तुम्हारा बैरी है, उसका चित्र भौजी ने बनाया है ॥७॥

राम ने कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण ! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे देश से निकाल दो ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—जो सीता भूखों को भोजन और नंगों को वस्त्र बाँटती है; और जिसे गर्भ भी है; मैं उसे देश से कैसे निकालूँ ? ॥९॥

राम ने फिर कहा—हे विपत्ति के साथी भाई लक्ष्मण ! सीता रावण का चित्र बनाती है, इसे घर से निकाल दो ॥१०॥

लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी ! हे सीता रानी ! हे बड़ी ठकुराइन ! मुझको और तुमको न्योता आया है। कल वन को चलेंगे। ॥११॥

सीता ने कहा—हे देवर ! मेरे न नैहर है, न ससुराल। न जनक ऐसा बाप ही है। मैं किसके यहाँ जाऊँगी ? ॥१२॥

सीता आँचल में सरसों लेकर रास्ते में बखेरती हुई निकलीं। इस विचार से कि लक्ष्मण इधर से आयेंगे, तो सरसों के मुलायम डंठल तोड़कर खायेंगे ॥१३॥

एक बन को पार किया। दूसरे बन को पार किया। तीसरा वृन्दावन

था। सीता ने कहा—हे देवर ! प्यास लगी है। बहुत व्याकुल हूँ। एक बूँद पानी कहीं मिले तो ले आओ ॥१४॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भौजी ! इस चंदन के वृक्ष के नीचे बैठ जाओ। मैं खोजकर पानी ले आऊँ, तब तुमको पिलाऊँ ॥१५॥

ठंडी हवा बहने लगी। कदम्ब की छाया शीतल थी ही। सीता प्यास से व्याकुल होकर, कुम्हलाकर, धरती पर लेट गईं ॥१६॥

लक्ष्मण पानी लेकर लौटे। कदम्ब के पत्ते का दोना बनाकर, उसमें पानी भरकर लक्ष्मण ने उसे लवंग की डाल से लटका दिया और स्वयं घर का रास्ता लिया ॥१७॥

सीता सो-साकर झिझक कर उठीं। उन्होंने कहा—हे लक्ष्मण देवर ! तुम कहाँ गये ? मुझे नहीं बतलाया। तुमको मैं जी भरकर देख तो लेती और तुमको देखकर आँख भरकर रो तो लेती ॥१८॥

हाय ! यहाँ वन में मेरे आगे-पीछे कौन बैठेगा ? कौन मेरी लट खोलेगा ? कौन मेरी रात जागेगा ? और कौन बच्चे की नाल काटेगा ? ॥१९॥

सीता का विलाप सुनकर वन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता को समझाने लगीं—हे सीता ! हम तुम्हारे आगे-पीछे रहेंगी। हम तुम्हारी लट खोलेंगी। हम तुम्हारी रात जागेंगी और हम बच्चे की नाल काटेंगी ॥२०॥

सवेरा हुआ। पौ फटते ही बालक का जन्म हुआ। तपस्विनियों ने कहा—हे सीता ! लकड़ी जलाकर उसके उजाले में अपने बच्चे का मुँह तो देखो ॥२१॥

सीता बच्चे से कहने लगीं—हे बेटा ! तुम विपत्ति में पैदा हुये हो। कुश ही तुम्हारा ओढ़ना, कुश ही बिछौना और वन-फल ही तुम्हारा आहार है ॥२२॥

हे पुत्र ! यदि तुम अयोध्या में पैदा हुये होते, तो आज राजा दशरथ सारा शहर और रानी कौशल्या अपने कुल गहने लुटा देतीं ॥२३॥

अरे ! वन के नाई को बुलाओ न ? जल्दी आवे। हे नाई ! मेरा रोचन अयोध्या पहुँचाओ ॥२४॥

पहले राजा दशरथ को देना। दूसरे कौशल्या रानी को देना। तीसरे देवर लक्ष्मण को देना। पर मेरे पति को न बताना ॥२५॥

नाई ने पहले राजा दशरथ को दिया। फिर कौशल्या को और फिर लक्ष्मण को। पर राम को नहीं जनाया ॥२६॥

राजा दशरथ ने नाई को अपना घोड़ा दिया। कौशल्या ने गहना दिया। लक्ष्मण ने पाँचो जोड़े (पगड़ी, अँगरखा, दुपट्टा, धोती और जूता) दिये। नाई खुशी से हँसता हुआ घर लौटा ॥२७॥

चौकोर बड़े तालाब के किनारे राम दातुन कर रहे थे। इतने में लक्ष्मण आ गये। उनके माथे पर रोचन का तिलक देखकर राम ने पूछा—हे भाई ! तुम्हारा माथा खूब दमक रहा है। यह रोचन कहाँ से आया ? किसके पुत्र हुआ है ? पुत्र ने किसका हृदय शीतल किया है ? ॥२८॥

लक्ष्मण ने कहा—मेरी भौजी सीता रानी, जो वृन्दाबन में रहती हैं, उनके पुत्र हुआ है। उसी का रोचन मैंने माथे पर लगाया है ॥२९॥

यह सुनते ही राम के हाथ की दातुन हाथ ही में और मुँह की दातुन मुँह ही में रह गई। राम की आँखों से मोती ऐसे आँसू ढुलने लगे और उनका पीताम्बर भीगने लगा ॥३०॥

राम ने कहा—बन का नाई कहाँ गया ? बुलाओ। हे नाई ! सीता का समाचार मुझे सुनाओ। मैं सीता को ले आऊँगा ॥३१॥

नाई ने कहा—हे मालिक ! कुश का ओढना, कुश का बिछौना और वन-फल का आहार है। सीता ने लकड़ी का उजाला करके तब अपने पुत्र का मुँह देखा है ॥३२॥

राम ने कहा—हे मेरे विपत्ति के नायक भाई लक्ष्मण ! एक बार तुम मधुबन जाओ और अपनी भौजाई को ले आओ ॥२३॥

लक्ष्मण अयोध्या से चलकर मधुबन मे उतरे। लक्ष्मण ने सीता से कहा—हे भौजी ! तुम को राम ने बुलाया है ॥२४॥

सीता ने कहा—हे लक्ष्मण ! तुम लौट जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। यदि मेरे लाल जीते रहेंगे, तो ये उन्हीं के कहलायेंगे ॥२५॥

ऐसा कौन सहृदय है, जो इस गीत को पढ़कर रो न दे। इसमें ननद का, देवर का, पति का और तपस्विनियों का यथार्थ और अद्भुत चित्र खींचा गया है।

इस गीत में कई बातें ध्यान देने की हैं। पहले तो यह कि हिन्दू स्त्रियोमे चित्रकला का प्रचार इतना अधिक था कि गीतो में अबतक उसका वर्णन मिलता है।

दूसरे ननद का स्वभाव। ननद ने बार-बार शपथ खाकर भी भौजाई की बात अपने भाई से कह दी। सचमुच बहुत सी ननदें भौजाई की प्रतिष्ठा का कुछ ध्यान नहीं रखतीं।

तीसरे देवर का प्रतिवाद। देवर ने भौजाई का पक्ष लिया और बड़े भाई से एक बार कहा—भौजाई को निकालना नहीं चाहिये। पर जब बड़े भाई ने फिर अपनी आज्ञा दुहराई, तब छोटे भाई ने शिष्टाचार के सामने सिर झुकाया और बड़े भाई की आज्ञा का पालन किया।

चौथे तपस्विनियों की सहानुभूति। अपनी मान-मर्यादा का अभिमान छोड़कर दुःखी के दुःख-निवारण में तत्पर हो जाना आर्य-संस्कृति की एक ख़ास बात है।

पाँचवें माता की दीन-दशा। हाय ! वह कैसा हृदय-विदारक दृश्य था, जब माता ने लकड़ी का उजाला करके अपने पुत्र का मुख देखा। इस अवसर पर माता का विलाप पत्थर को भी पिघला देने वाला है।

छठें पति का अनुताप । छोटे भाई के मुँह से पुत्रोत्पत्ति का समाचार पाकर पत्नी की याद में पति की आँखों से जो आँसू टपके हैं, उनमें अनन्त व्यथा और अपार पश्चात्ताप भरा हुआ है।

सातवें स्त्री का आत्म-गौरव। स्त्री ने नाई से कहा—'प्रियहिँ न बतायउ' इस एक वाक्य में आत्म-सम्मान दूर से एक पर्वत-शिखर की भाँति दिखाई पड़ रहा है। स्त्री ने पति की बुलाहट का जो उत्तर देवर को दिया है, उसमें भी वेदना का एक विशाल समुद्र लहरें मार रहा है।

इस गीत में आदि से अन्त तक मनुष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभावों के यथार्थ चित्र हैं।

[५०]

जब हम रहे जनक घर राजा रे जनक घर।
सखिया सोने के सुपेलिया पछोरौं मैं मोतिया हलोरौं ॥ १ ॥
जब हम परलीं राम घर राजा दसरथ घर।
जरि बरि भइउँ है कोइलिया त जरि के भसम भइउँ ॥ २ ॥
सभवा बैठे हैं रामचन्द्र पुछाइन राजा दसरथ।
पुता कौन सितल दुख दिहेउ सखिन सँग रोवैं ॥ ३ ॥
हँसि कै धनुख उठाइन बिहँसि कै पैठिन।
सीता अब सुख सोवउ महलिया गुपुत होइ जाबै ॥ ४ ॥
अरे रे लछिमन देवरा बिपतिया के नायक।
देवरा भइया के लावउ मनाय नाहीं त विष खावै ॥ ५ ॥
अरे रे भौजी सितल रानी बड़ी ठकुराइन।
देहुना तिरिया कमनिया मैं भइया खोजै जैहौं ॥ ६ ॥
ढूँढ़ौं मैं नग्र अजोध्या और पुर पाटन।
देवरा ढूँढ़ेउ नाहीं गुपुत तलौवा जहाँ राम गुपुत भयें ॥ ७ ॥

केहि के मैं सेजिया बिछावों फूल छितरावों।
देवरा केहि के मैं लागौं टहलिया त दुख बिसरावों ॥८॥
हमरेन सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु।
भौजी हमरेन लागो टहलिया त दुख बिसरावहु ॥९॥
जौने मुख अमवा न खायौं अमिलिया कैसे चीखउँ।
जौने मुख लछिमन कहि गोहरायउँ पुरुख कैसे भाखउँ ॥१०॥
अरे रे पापिनि भौजी पाप जनि बोलौ।
भौजी जैसे कौसिल्या रानी माता वैसेन हम जानौं ॥११॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम मथवा छुवौं।
छुड़की मोरि अमिरथा होइ जो धन कहि गोहरावउँ॥१२॥

सीता ने कहा—जब मैं राजा जनक के घर में थी, तब हे सखियो! मैं सोने की सुपेली में पछोरती और मोती हलोरती थी ॥१॥

अब मैं राम के घर में—राजा दशरथ के घर में—पड़ी हूँ। दुःख से जलकर मैं कोयल हो गई, राख हो गई हूँ ॥२॥

रामचन्द्र सभा में बैठे थे। राजा दशरथ ने पुछवाया—हे पुत्र! तुमने सीता को क्या दुःख दिया? जो वह सखियों के सामने रो रही थी ॥३॥

राम ने हँसकर धनुष उठाया। मुसकुराते हुए वे घर में आये। सीता से उन्होंने कहा—सीता! अब तुम महल में सुख से सोओ। मैं गुप्त हो जाऊँगा ॥४॥

सीता ने कहा—हे मेरे देवर लक्ष्मण! हे विपत्ति के साथी! अपने भाई को मनाकर लाओ, नहीं तो मैं विष खा लूँगी ॥५॥

लक्ष्मण ने कहा—हे भौजी! हे बड़ी ठकुराइन! मेरा तीर-कमान ला दो, मैं भाई की खोज में जाऊँगा ॥६॥

लक्ष्मण ने लौटकर कहा—मैंने सारी अयोध्या नगरी ढूँढ डाली। सीता ने कहा—हा! तुमने गुप्त सरोवर तो नहीं ढूँढा, जहाँ राम गुप्त हुये हैं ॥७॥

हाय, मैं किसकी सेज बिछाऊँ ? किसके लिये फूल बखेरूँ ? किसकी सेवा करके अपना दुःख भूलूँ ? ॥८॥

लक्ष्मण ने कहा—हे सीता ! मेरी सेज बिछाओ। मेरे लिये फूल बखेरो। हे भौजी, मेरी सेवा कर के दुःख भूल जाओ ॥९॥

सीता ने कहा—जिस मुँह से मैंने आम नहीं खाया, उस मुँह से इमली कैसे चखूँ ? जिस मुँह से मैंने तुमको लक्ष्मण कहकर पुकारा, उस मुख से तुमको पति कैसे कहूँगी ? ॥१०॥

लक्ष्मण ने कहा—हे पापिन भौजी ! पाप की बात मुँह से न निकालो। मैं तुमको माता कौशल्या की तरह समझता हूँ ॥११॥

मुझे राजा दशरथ की लाख शपथ है। मैं राम का माथा छूता हूँ। गंगाजी में मेरा डुबकी लगाना व्यर्थ जाय, जो मैं तुमको अपनी स्त्री कहूँ ॥१२॥

सीता और लक्ष्मण का आदर्श ईश्वर करे, हिन्दू-जाति में चिरजीवी हो। गीत में लक्ष्मण ने सीता के प्रति जो मनोभाव प्रकट किया है, वह स्त्रियों की कल्पना-मात्र नहीं है। उसमें ऐतिहासिक तथ्य भी है। सुमित्रा ने लक्ष्मण को राम के साथ बन जाते समय जो उपदेश दिया था, वाल्मीकि के शब्दों में वह यह है—

रामं दशरथं विद्धि मांविद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम् ॥

अर्थात्—हे पुत्र ! राम को दशरथ समझना। सीता को सुमित्रा समझना। बन को अयोध्या समझना। बस, तुम सुख से जाओ।

लक्ष्मण ने सदा सीता को माता के समान समझा था। लक्ष्मण ने एक स्थान पर अपनी यह मानसिक पवित्रता प्रकट भी की थी। सुग्रीव ने जब पहली मुलाकात के अवसर पर सीता के फेंके हुये गहने लाकर राम के सम्मुख रखे थे, तब राम ने लक्ष्मण से पूछा था—लक्ष्मण !

देखो, ये गहने सीता ही के हैं न ? तब लक्ष्मण ने कहा था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

अर्थात्, मैं इन बाजुओं और कुंडलों को नहीं पहचानता । हाँ, नूपुर (बिछियों) को पहचानता हूँ । क्योंकि प्रतिदिन मैं चरण छूता था (तब इन्हें देखता था) ।

अहा, लक्ष्मण केवल नूपुर को पहचानते थे । बीसों वर्ष साथ रह कर भी लक्ष्मण ने सीता के ऊपरी अंगों पर दृष्टि नहीं डाली थी । कैसा उच्च कोटि का समाज था ! और कैसे देवर भौजाई थे !

इस गीत में, ऊपर की पंक्तियों में एक बात यह भी ध्यान देने की है कि सीता ने सखियों से एक ज़रा सी शिकायत की थी । इतने ही अपराध से राम घर छोड़कर चले गये । इस प्रकार का स्वभाव देहात के पतियों मे खूब देखने में आता है । किसी-किसी घर में तो बहुत ही छोटी-छोटी बातों को लेकर स्त्री-पुरुष महीनों मुँह फुलाये रहते हैं । बात की चोट सब को बड़ी कड़ी लगती है । पर बहुत ही कम लोग कडी बात कहने से अपने को रोकते हैं ।

[५१]

माघै के तिथि नौमी राम जग्गि रोपेन ।
रामा ! विना रे सिता जग्गि सूनि सितै लइ आवौ ॥ १ ॥
अरे रे गुरू वसिष्ट मुनि पइयाँ तोर लागौं ।
गुरु तुमरे मनाये सीता अइहीं मनाय लै आवहु ॥ २ ॥
अगवाँ के घोड़वा वसिष्ट मुनि पाछे लछिमन देवर ।
हेरैं लागैं रिषि की मेढ़ुलिया जहाँ सीता तप करैं ॥ ३ ॥
अँगनेहिं ठाढ़ी सीतल रानी रहिया निहारत ।
रामा आवत हैं गुरू हमार त पाछे लछिमन देवर ॥ ४ ॥

पतवा के दोनवा बनाइन गंगाजल पानो।
सीता धोवै लागीं गुरुजी के चरन औ मथवाँ चढ़ावैं॥ ५॥
येतनी अक्लि सीता तोहरे तु बुधि कै आगरि।
किन तुम हरा है गेयान राम बिसराये॥ ६॥
सब कै हाल गुरु जानौ अजान बनि पूछौ।
गुरु अस कै राम मोहिं डाहेनि कि कैसे चित मिलिहैं॥ ७॥
अगिया में राम मोहिं डारेनि लाइ भूँजि काढ़ेनि।
गुरु गरुहे गरभ से निकारेनि त कैसे चित मिलिहैं॥ ८॥
तुमरा कहा गुरु करबै परग दुइ चलबै।
गुरु अब न अजोध्यै जाव औ विधि न मिलावैं॥ ९॥
हँकरहु नगरा के कँहरा बेगि चलि आवउ हो।
कँहरा चनन क डँड़िया फनावउ सितहि लइ आउब॥१०॥
एक बन गइलें दुसर बन तिसरे चिन्द्राबन।
गुल्ली डंडा खेलत दुइ बलकवा देखि राम मोहेन॥११॥
केकर तू पुतवा नतियवा केकर हो भतिजवा हो।
लरिको कौनी मयरिया के कोखिया जनमि जुड़वायउ हो॥१२॥
बाप क नौवाँ न जानौं लखन के भतिजवा हो।
हम राजा जनक के हैं नतिया सीता कै दुलरुआ हो॥१३॥
इतना बचन राम सुनलेन सुनहू न पउलेनि हो।
रामा तरर तरर चुवै आँसु पटुकवन पोंछइँ हो॥१४॥
अगवैं ऋषि क मँढुलिया राम नियरानेनि।
रामा छापक पेड़ कदम कर लगत सुहावन॥१५॥
तेहि तर बैठी सितल रानी केसियन झुरवइँ।
पछवाँ उलटि जब चितवैं रामजी ठाढ़े॥१६॥

रानी छोड़ि देहु जिअरा विरोग अजोधिया बसावउ।
सीता तोरे बिन जग अँधियार त जिवन अकारथ ॥१७॥
सीता अँखिया में भरलीं विरोग एकटक देखिन।
सीता धरती में गईं समाइ कुछौ नाहीं बोलिन ॥१८॥

माघ की नवमी को राम ने यज्ञ आरंभ किया। लोगों ने कहा—हे राम! सीता के बिना यज्ञ सूनी रहेगी। सीता को ले आओ ॥१॥

राम ने कहा—हे वशिष्ठ मुनि! मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ। हे गुरु! सीता तुम्हारे मनाने से आयेंगी। जाकर मना लाओ ॥२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ और पीछे लक्ष्मण देवर। दोनों वन में ऋषि का झोंपड़ा ढूँढ़ने लगे, जहाँ सीता तप करती थीं ॥३॥

सीता आँगन में खड़ी थीं। रास्ते की ओर देख रही थीं। उन्होंने गुरु वशिष्ठ और लक्ष्मण देवर को आते देखा ॥४॥

सीता बेचारी के पास वन में बरतन कहाँ थे? सीता ने पत्ते का दोना बनाया। उसमें गंगाजल लेकर सीता ने गुरु के पैर धोये और माथे चढ़ाया ॥५॥

सीता के शिष्टाचार से गुरु बहुत प्रसन्न हुये और बोले—हे सीता! तुम्हारे इतनी अक्ल है? तुम तो बुद्धि की आगरि हो। हे सीता! किसने तुम्हारी मति हरली? जो तुमने राम को भुला दिया ॥६॥

सीता ने कहा—हे गुरु! तुम सब जानते ही हो, फिर अनजान की तरह क्यों पूछते हो? राम ने मुझे ऐसा डाहा कि अब उनसे चित्त कैसे मिलेगा? ॥७॥

राम ने मुझे आग में डाला। उसमें जलाकर भूनकर निकाला। जब मैं गर्भिणी थी, तब मुझे घर से निकाल दिया। भला, उनसे मेरा मन कैसे मिलेगा? ॥८॥

हे गुरु! मैं आपका वचन न टालूँगी और अयोध्या की ओर दो

क़दम चलूँगी। पर अयोध्या नहीं जाऊँगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे राम से मिलावें भी नहीं ॥९॥

वशिष्ठ लौट गये। राम ने कहा—नगर से कहार को बुलाओ। कहारो! चंदन की पालकी सजाकर लाओ। मैं सीता को मनाने चलूँगा ॥१०॥

एक बन में गये, दूसरे बन में गये। तीसरा वृन्दावन मिला। वहाँ गुल्ली-डंडा खेलते हुये दो बालकों को देखकर राम मुग्ध हो गये ॥११॥

राम ने पूछा—हे बालको! तुम किसके पुत्र हो? किसके पौत्र हो? और किसके भतीजे हो? किस माता की कोख से जन्म लेकर तुमने उसे शीतल किया है? ॥१२॥

लड़कों ने कहा—हम अपने पिता का नाम नहीं जानते। हम लक्ष्मण के भतीजे, राजा जनक के पौत्र और सीता देवी के प्राण-प्यारे हैं ॥१३॥

राम यह वचन पूरा-पूरा सुन भी न पाये कि उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली और वे दुपट्टे से उसे पोछने लगे ॥१४॥

सामने ही ऋषि की कुटी थी। राम उसके समीप पहुँच गये। वहाँ एक छोटा सा कदम्ब का वृक्ष था, जो बड़ा सुन्दर लगता था ॥१५॥

उसी कदंब के नीचे सीता रानी बैठकर अपने केश सुखा रही थीं। पीछे पलट कर वे देखती हैं तो रामचन्द्र खड़े हैं ॥१६॥

राम ने कहा—रानी! मन की ग्लानि छोड़ दो। चलकर अयोध्या को बसाओ। हे सीता! तुम्हारे बिना मुझे संसार अंधकारमय लगता है और मेरा जीना व्यर्थ हो रहा है ॥१७॥

सीता की आँखों में हृदय की वेदना उमड़ आई थी। वे राम की ओर एकटक देखते-देखते पृथ्वी में समा गईं, मुँह से कुछ नहीं बोलीं ॥१८॥

निर्दोष और मनस्विनी सीता के मन की दशा स्त्रियाँ जितनी अच्छी तरह समझ सकती हैं, पुरुष उतना नहीं समझ सकते। सीता को क्या

कहना चाहिये, क्या नहीं कहना चाहिये, यह आदर्शवाद स्त्रियों में नहीं चलता। वहाँ तो मन की स्पष्ट दशा का चित्र खींचा जाता है। 'सीता-राम के मुख को एकटक देखती हुईं पृथ्वी में समा गईं; मुख से कुछ नहीं बोलीं'—इस एकटक देखने और कुछ न बोलने में ही सीता ने सब कुछ कह डाला।

[५२]

राधे ललिता चन्द्रावलि आवउ जसुमति आवउ हो।
ललना मिलि जुलि चलीं वहि पार जमुन जल भरि लाईं हो ॥१॥
कमर में बाँधलें कछौटा हिरदय चन्दन हार हे।
ललना पइरि के पार उतरलीं तिरिय एक रोवइ हो ॥ २ ॥
किए तोरा दारुनि सासु ननद दुख दीअल हे।
बहिनी की तोरा कन्त बसल दुर देस कवन दुख
रोवलु हो ॥ ३ ॥
नहिं मोरा दारुनि सास न ननद दुख दीअल हे।
बहिनी नहिं मोरा कन्त बिदेस कोखिए दुख रोवलुँ हो ॥ ४ ॥
सात बलक देव देहलेन्ह कंस लइ लेहलेन हो।
बहिनी अठम रहल गरभ से इहौ हरि लेइहै हो ॥ ५ ॥
चुप रहु चुप रहु देवकी आँचर मुँह पोंछहु, हे।
बहिनी आपन बलक हम मारब तोहरा जिआउब हो ॥ ६ ॥

हे राधे, ललिता, चन्द्रावलि और यशोदा ! आओ, हिलमिलकर उस पार चलें और यमुना का जल भर लायें ॥१॥

सबने कमर में कछोटा बाँध लिया। हृदय पर लटकते हुये चन्दन के हार को कस लिया। वे तैरकर पार उतर गईं। वहाँ देखा तो एक स्त्री रो रही थी ॥२॥

उससे पूछा—क्या तुम्हारी सास कठोर हृदय की है? या ननद ने

तुम्हें दुःख दिया है? या तुम्हारा कंत दूर देश में है? हे बहन! तुम क्यों रो रही हो? ॥३॥

स्त्री ने कहा—न मेरी सास कठोर है; न ननद ने ही दुःख दिया है; और न मेरा कंत ही दूर देश मे है। हे बहन! मैं कोख के दुःख से रो रही हूँ ॥४॥

भगवान ने मुझे सात बालक दिये थे। कंस ने सातों ले लिये। अब आठवाँ बालक गर्भ में है। हाय! वह इसे भी छीन लेगा ॥५॥

यशोदा ने उसे पहचानकर कहा—हे देवकी बहन! चुप रहो, मत रोओ। आँचल से मुँह पोछ डालो। मैं अपना बालक देकर तुम्हारा यह बालक बचा लूँगी ॥६॥

दुःखी के प्रति सच्ची सहानुभूति इसे कहते हैं। अपना बालक देकर दूसरी बहन के बालक की रक्षा करना यह आर्य-जाति की नारियों में ही संभव है। यशोदा ने अपना वचन अक्षरशः पूरा किया था।

[५३]

एक सौ अमवा लगवलीं सवासौ जामुन हो।
अहो रामा तवहुँ न बगिआ सोहावन यक रे कोइलि बिनु ॥ १ ॥
नइहर में पाँच भइया त सात भतीजा बाड़े हो।
अहो रामा तबहुँ न नइहर सोहावन यक रे मयरिया बिनु ॥ २ ॥
एक कोरा लिहलों मैं भैया दूसरे कोरा भतीजा हो।
अहो रामा न तवहुँ गोदिया सोहावन अपना बालक बिनु ॥ ३ ॥
पलँग पर सेजिया डसवलों त फूल छितरइलों हो।
अहो रामा तबहूँ न सेजिया सोहावन एक बलम बिनु ॥ ४ ॥

मैंने एक सौ आम के वृक्ष लगवाये और सवा सौ जामुन के। तब भी एक कोयल के बिना बाग सुन्दर नहीं लगता ॥१॥

नैहर में पाँच तो भाई हैं और सात भतीजे। पर फिर भी एक माँ के बिना नैहर अच्छा नहीं लगता ॥२॥

गोद में एक ओर मैंने भाई को ले रक्खा है, दूसरी तरफ़ भतीजे को। पर अपने पुत्र बिना गोद सुन्दर नहीं लगती ॥३॥

मैंने पलँग पर सेज बिछाया; उस पर फूल छितराया। पर स्वामी के बिना सेज सुहावनी नहीं लगती ॥४॥

[५४]

राहइ पर एक कुँइया सँवरि एक पानी भरै।
घोड़वा चढ़ल इक रजपुत हमसे खिआल करै ॥ १ ॥
केकर अस तुहुँ बिटिया केकरी पतोहिया।
कवने नयक क वहुअवा त झुकवन पानी भरौ ॥ २ ॥
बावइ कर हम बिटिया ससुर क पतोहिया।
अपने नयक क बहुअवा त झुकवन पानी भरौं ॥ ३ ॥
सासु नँनद घरवाँ दारुनि पनियाँ भरावै।
ऐसनि धनि जउ पवतेउँ त हार अस रखतेउँ ॥ ४ ॥
जैसे मोरे हरि क पनहिआँ वइसइ तोर मलपट।
तोहैं अस मरद जो पउतेउँ त पनही ढोवउतेउँ ॥ ५ ॥
गगरी त लिहेन सिरेह पर लेजुरी हथेह पर।
सासु घोड़वा चढ़ल इक रजपुत हमसे खिआल करै ॥ ६ ॥
बहु कैसेन उनकर घोड़वा त कइसनि लगाम लागि।
बहू कवने वरन बनिजरवा कवनि पाग बाँधइ ॥ ७ ॥
लालय वोनकर घोड़वा त करिया लगाम लागि।
साँवरे बरन बनिजरवा मुरेरी पाग बाँधइ ॥ ८ ॥
मचिये वैठी हैं सासु विहँसि बतिया बोलईं।
बहुवरि के तोरा हरा है गेयान बिदेसिया न चीन्हिउ ॥ ९ ॥

रास्ते पर एक कुँवा थी। जिस पर एक सुन्दरी पानी भर रही थी। घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत उधर से निकला। वह उससे हँसी करने लगा ॥१॥

ऐसी सुन्दरी तुम किसकी कन्या हो? किसकी पतोहू हो? किस नायक की प्यारी स्त्री हो? जो पानी भर रही हो ॥२॥

स्त्री ने कहा—मैं अपने पिता की पुत्री और ससुर की पतोहू हूँ। मैं अपने स्वामी की प्यारी स्त्री हूँ और पानी भर रही हूँ ॥३॥

राजपूत ने कहा—जान पड़ता है, घर में सास और ननद बड़ी निठुर हैं जो तुम से पानी भराती हैं। मैं ऐसी स्त्री पाता तो हार की तरह गले में लटकाये रखता ॥४॥

स्त्री ने कहा—जैसे मेरे प्राणनाथ की जूती है, वैसे तो तुम्हारे गाल हैं। तुम्हारे ऐसे मर्द को पाती तो मैं जूतियाँ ढोवाती ॥५॥

घड़ा सिर पर और रस्सी हाथ में लेकर स्त्री ने सास के पास आकर कहा—हे सास! घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजपूत मुझसे मजाक करता है ॥६॥

सास ने पूछा—हे वहू! कैसा उसका घोड़ा है? और कैसी लगाम लगी है? वह स्वयं किस रंग का है? और कैसी पगड़ी बाँधे हुये है? ॥७॥

वहू ने कहा—लाल रंग का तो घोड़ा है। काले रंग की उसकी लगाम है। श्याम वर्ण का वह स्वयं है और मोड़दार पगड़ी बाँधे हुये है ॥८॥

मचिये पर बैठी हुई सास हँसकर कहने लगी—वहू! किसने तुम्हारी बुद्धि हर ली? जो तुम ने अपने परदेशी पति को नहीं पहचाना ॥९॥

पहचानती कैसे? व्याह करने के बाद ही कमाने के लिये पति परदेश

चला गया होगा। बारह वर्ष के बाद लौटा होगा। स्त्री ने विवाह के बाद फिर कभी उसे देखा होगा ही नहीं, पहचानती कैसे? उसने पति को पर पुरुष समझकर जो कुछ कहा, वह उचित ही था। अपरिचित पुरुष का किसी स्त्री से इस प्रकार मज़ाक करना सभ्यजनोचित व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

[५५]

चैते की तिथि नौमी कि नौबत बाजै।
राजा राम लिहिन औतार अयोध्या के ठाकुर॥ १॥
दसरथ पटना लुटावैं कौशिल्या रानी अभरन।
रानी कैकेइ बस्त्र लुटावैं सुमित्रा रानी सुबरन॥ २॥
राम के मथवा झलरिया बहुत निक लागै अधिक छवि लागै।
मानौं कमल कर फूल भँवर सिर लुन करैं॥ ३॥
राम के पाँय पैंजनियाँ बहुत निक लागै अधिक छवि लागै।
ये हो चलत मधुरियन चाल त रुनि-झुनि बाजै॥ ४॥
राम के कमर करधनियाँ बहुत निक लागै अधिक छवि लागै।
सँवरे बदन पर अँगुलिया दमिन चित चोरैं॥ ५॥
राम के नयन कजरवा अधिक निक लागै बहुत छवि लागै।
अब दीन्ह फूफू सहोद्रा अँगुरिया नहीं डोलै॥ ६॥
ऐसी मूरत जौ पउतिउँ हृदया बसउतिवँ।
पीत पितम्बर ओढ़उतिवँ ललन कहि बोलउतिवँ॥ ७॥

चैत्र की नवमी को नौबत बज रही है। अयोध्या के स्वामी राजा राम ने अवतार लिया है॥१॥

राजा दशरथ गाँव लुटा रहे हैं। रानी कौशल्या गहने, रानी कैकेयी वस्त्र और रानी सुमित्रा सोना लुटा रही हैं॥२॥

राम के माथे पर बाल बहुत सुन्दर लगते हैं। मानों कमल के फूल पर भौंरे मुग्ध हो रहे हैं ॥३॥

राम के पैर में पैजनी बहुत शोभा दे रही है। जब राम मंद-मंद चलते हैं, तब वह रुन-झुन बजती है ॥४॥

राम की कमर में करधनी बहुत अच्छी लगती है। साँवले शरीर पर पीली झँगुली बिजली का भी चित्त चुरा रही है ॥५॥

राम की आँखों में काजल बहुत शोभा दे रहा है। यह काजल राम की फूफू सुभद्रा का दिया हुआ है, जिनकी उँगली काजल देते समय नहीं हिलती ॥६॥

ऐसी मनोहर मूर्ति जो मैं पाती तो हृदय में बसा लेती। उसे पीताम्बर ओढ़ाती और प्यारे पुत्र कहकर बुलाती ॥७॥

[५६]

सोने के खड़उवाँ राजा दसरथ खुट्रु खुट्रु चले।
राजा गइले केदलिआ के बन में त काँट गड़ि गइलनि ॥ १ ॥
जे मोरे कँटवा निकलिहैं बेदन हरि लीहैं।
अरे जवन मगनवाँ जे मँगिहें तवन हम देइब ॥ २ ॥
घर में से निकले केकैया रानी सोरहो सिंगार कइलें।
राजा हम तुहरे कँटवा निकरबै बेदन हरि लेइब ॥ ३ ॥
अरे जवन मँगन हम मँगवै तवन रउरें देइब।
अँगुली से कँटवा निकरलीं बेदन हरि लिहलीं ॥ ४ ॥
राजा जवन मगन हम मँगली तवन रउरे देईं।
राजा राम लछन बन जायँ भरत राज बेलसैं ॥ ५ ॥
मँगही के केकई तु मँगलु माँगन नहिं जनलु।
केकई माँगै मोरे प्रान अधार कौसिल्या रानी के ओठँगन ॥ ६ ॥
जे राम चित से न उतरें पलक से न बिसरें।
से राम बने चलि जैहैं त कैसे जिउ बोधब ॥ ७ ॥

सोने के खड़ाऊँ पर राजा दशरथ खुटुर-खुटुर करते केदली के बन में गये, तो वहाँ काँटा धँस गया ॥१॥

उन्होंने कहा—जो यह काँटा निकाल लेगा और मेरी पीड़ा हर लेगा, वह जो माँगेगा, मैं वही दूँगा ॥२॥

सोलहो श्रृंगार किये हुये कैकेयी रानी घर में से निकलीं। उन्होंने कहा—हे राजा! मैं काँटा निकालकर तुम्हारी पीडा हर लूँगी ॥३॥

पर जो मैं माँगूँगी, उसे आपको देना पड़ेगा। यह कहकर उन्होंने उँगली से काँटा निकाल लिया और पीड़ा हर ली ॥४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजा! जो मैं माँगती हूँ, उसे आप दें। मैं माँगती हूँ कि राम लक्ष्मण बन जायँ और भरत राज करें ॥५॥

दशरथ ने कहा—माँगने को तो तुमने माँगा, पर माँगने नहीं जाना। कैकेयी! तुम मेरा प्राणाधार और रानी कौशल्या का जीवनाधार माँगती हो ॥६॥

जो राम चित्त से नहीं उतरते, पलक से नहीं दूर किये जा सकते, वे राम यदि बन जायँगे तो मैं धैर्य कैसे धरूँगा? जी को कैसे समझाऊँगा? ॥७॥

यद्यपि कैकेयी को यह बरदान एक युद्ध में मिला था, जिसमें राजा दशरथ राक्षसों से लड़ रहे थे। रथ पर कैकेयी भी थी। यकायक रथ का धुरा पहिये के पास टूट गया। कैकेयी झट कूद पड़ी और उसने पहिये को अपनी कलाई पर रोककर रथ को और राजा को गिरने से बचा लिया। राजा को इस घटना की ख़बर भी न होने पाई। इतने में उन्होंने राक्षसों के सरदार का सिर काट लिया। हर्षोद्वेग में भाग लेने के लिये जब उन्होंने कैकेयी की ओर देखा, उस समय वह कलाई पर रथ सँभाले खड़ी थी। राजा के लिये यह दूसरे प्रकार का हर्षोद्वेग था और-पहले वाले से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक था। क्योंकि इस से राजा के प्राण

की रक्षा ही नहीं हुई, बल्कि एक कोमलाङ्गिनी नारी की वीरता भी प्रकट हुई। इसी ख़ुशी में राजा ने कैकेयी को दो वर दिये थे। पर गीत बनाने वाली स्त्रियों ने कैकेयी के इस कार्य को शायद स्त्री-जाति के लिये अस्वाभाविक और क्रूर समझकर उसे छोड़ दिया और एक नई घटना गढ़ ली, जो पहले से अधिक सरल, अधिक स्वाभाविक और घरेलू है।

[५७]

बाबाजी बियहिन राजा घर बहुत सम्पति घर।
मोरी माइउ खबरिया न लिहीं न बिरना पठाईं॥ १॥
सासु कहैं तोरे बाबा नाहीं ससुर कहैं तोरे मावा नाहीं।
आपु प्रभु कहैं तोरे भैया नाहीं के तोहरे आवै॥ २॥
अरे ग्वारभैतिन बहुववा गरभ जिन बोलो।
तोरे भैया के होरिला जो होतें तो ओई तोरे औतें॥ ३॥
इतनी बचन सुनि बहुआरि सुरजू मनावैं।
सुरजू भैया के होते नँदलाल तो हमरे ओई औतें॥ ४॥
होत बिहान पह फाटत होरिला जनम भये।
बाजै लागी अनन बधैया उठै लागे सोहर॥ ५॥
बाबा मोर गइन बजज घर जोड़वा लै आइन।
माई मोरि पियरी रँगावैं बीरन लैके आवैं॥ ६॥
भौजी मोर चौरा कुटाईं हुँढ़िया बन्हाईं।
भौजी मोर पुतरा उरेहैं बीरन लैके आवैं॥ ७॥
आगे आगे आवै हुँढ़िया पाछे घिउ गागर।
वहि पाछे भैया असवरवा तो बहिनी के देस जाँय॥ ८॥
जैसे दौरै गैया तो अपने लेरुअवा खातिर।
वैसेन दौरै तो बहिनियाँ अपने बीरन खातिर॥ ९॥

काड लै आया मैया सासू क काड गोतिन क।
काड लै आया मैया मयन क तो काड तू हमका ॥१०॥
पियरी लै आये बहिनी सासू क हुँड़िया गोतिन क।
गूँजा गोड़हरा तो मयन का तुहँका तो कुछु नाहीं ॥११॥

कन्या कहती है—पिता ने मेरा विवाह यद्यपि राजा के घर में किया, जहाँ बहुत धन है। पर मेरी माँ ने न मेरी खबर ली और न मैया ही को भेजा ॥१॥

सासु कहती हैं—तेरे पिता नहीं हैं। ससुर कहते हैं—तेरे माँ नहीं हैं। स्वयं पतिजी कहते हैं—तेरे भाई नहीं है। कौन आवे ? ॥२॥

अरी अभिमानिनी बहू ! घमंड की बात न बोल। तेरे भाई के पुत्र होता तो वही तेरे यहाँ आता ॥३॥

बहू यह सुनकर सूर्य देवता को मनाने लगी—हे सूर्य ! मैया के पुत्र होता, तो वही हमारे यहाँ आता ॥४॥

दूसरे दिन पौ फटते ही पुत्र का जन्म हुआ। आनंद की बधाई बजने लगी। सोहर गाया जाने लगा ॥५॥

मेरे पिता बजाज के घर गये और धोती जोड़ा ले आये। मेरी माँ ने उसे पीले रँग में रँग दिया। भाई लेकर आ रहा है ॥६॥

मेरी भाभी ने चावल कुटाकर हूँढ़ी बँधाया और उसे घड़े में भरकर उस पर सुन्दर चित्र बना दिया, जिसे मेरा भाई लेकर आ रहा है ॥७॥

आगे-आगे हूँढ़ी और पीछे घी का घड़ा और उसके पीछे घोड़े पर सवार मेरा भाई, बहन के देश आ रहा है ॥८॥

जैसे गाय बछड़े को देखकर दौड़ती है; वैसे ही बहन अपने भाई के लिये दौड़ी ॥९॥

बहन पूछती है—मैया ! सास के लिये क्या लाये हो ? गोत्र वालियों

के लिये क्या लाये हो ? अपने भांजे के लिये क्या लाये हो ? और मेरे लिये क्या लाये हो ? ॥१०॥

भाई कहता है—सास के लिये पीली धोती और गोतिनों को चूँड़ी लाया हूँ । भांजे के लिये हाथ-पैर के कड़े लाया हूँ । तुम्हारे लिये कुछ नहीं ॥११॥

[५८]

कातिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु ।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिया कोड़ करैं ॥ १ ॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया ।
अरे भितराँ से हुलसै करेज समुझि घर आवैं ॥ २ ॥
बरहे बरिस पर लौटें बरही तरे उतरें ।
माया लै के उठीं चनना पिढ़ैया बहिनि जल गेंडवा ॥ ३ ॥
मोर पिया पनियउँ पीयेनि हाथ मुँह धोयनि ।
माई ! देखउँ कुल परिवार धना को न देखउँ ॥ ४ ॥
बेटा तोरी धन अँगिया कै पातरि मुख कै सुन्दरि ।
बहुवरि गोड़े मूड़े तानेनि पिछौरा सोवैं धौराहरि ॥ ५ ॥
खोलो न बहुअरि गढ़ की केवँरिया दुपहरउँ आयेन ।
बहुअरि देखौ न तोर परदेसिया दुआरे तोरे ठाढ़ रे ॥ ६ ॥
झझकि के बहुअरि जागईं केवारी खोलि देखईं ।
पिया जनत्यों मैं तोरि अवैया त पटना लुटउतेउँ
थेइया नचउतेउँ ॥ ७ ॥
जबसे तु गया मोरे पियवा सेजरिया नाहिं डास्यों ।
अपने ससुरू कै ताप्यों रसोइयाँ भुइयाँ परी लोट्यों ॥ ८ ॥
जब से गयों मोरी धनिया पनवा नहीं खायों
तिरियवा नाहीं चितयउँ ।
धनिया तोहरी दरद मोरी छतिया त जानहिं नरायन ॥ ९ ॥

हे काली पीली घटा! रिमझिम करके बरसो। हे घटा! उस देश में जाकर बरसो, जहाँ मेरे प्रियतम क्रीड़ा कर रहे हैं ॥१॥

उनका घर-द्वार, सब सामान, तम्बू और कनात भीग जाय। उनके हृदय में उमंग पैदा हो, वे मुझे याद करें और घर आवें ॥२॥

बारह वर्ष के बाद प्रियतम घर लौटे। बरगद के नीचे उतरे। उनकी माँ चन्दन का पीढ़ा लेकर दौड़ी और बहन लोटे में पानी ॥३॥

मेरे प्रियतम ने पानी पिया, हाथ-मुँह धोया। फिर पूछा—माँ! परिवार के सब लोगों को तो देखता हूँ। पर स्त्री को नहीं देखता हूँ ॥४॥

माँ ने कहा—बेटा! तुम्हारी स्त्री बहुत दुर्बल हो गई है। पर उसका मुख बड़ा सुन्दर है। वह सिर से पैर तक चादर तानकर धौरहर पर सो रही है ॥५॥

पति स्त्री के द्वार पर जाकर कहता है—बहू! गढ़ की केवाड़ी खोलो न? दोपहर होने आया। बहू! उठो। देखो, तुम्हारा परदेशी तुम्हारे द्वार पर खड़ा है ॥६॥

बहू झिझक कर उठी। केवाड़ी खोलकर उसने देखा और पति ने कहा—यदि मैं पहले से जानती कि तुम आ रहे हो, तो हे प्रियतम! मैं धन-धान्य लुटाती और नाच कराती ॥७॥

हे प्रियतम! जब से तुम गये, तब से मैंने सेज नहीं बिछाई। अपने श्वसुर को भोजन करा कर मैं ज़मीन पर पड़ी लोटा करती थी ॥८॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी स्त्री! मैं अपना हाल क्या कहूँ? जब से तुम से अलग हुआ हूँ, तब से मैंने पान नहीं खाया, और न किसी पराई स्त्री पर दृष्टि डाली। हे मेरी हृदयेश्वरी! तुम्हारी पीड़ा को मेरा हृदय ही जानता है, या ईश्वर ॥९॥

यह चरित्रवान् दम्पति का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। माँ ने पुत्र को प्रसन्न करने के लिये यह बड़ी ही सुन्दर बात कही थी कि 'हे बेटा!

तुम्हारी स्त्री बहुत दुर्बल हो गई, पर उसका मुँह बड़ा सुन्दर है। अर्थात् स्त्री विरह के कारण दुबली हो गई है, पर सतवंती होने से उसके मुख की कांति, मुख का तेज बढ़ गया है।

गीत के प्रारंभ मे बहू ने घटा से प्रार्थना की है कि हे घटा! मेरे पति के देश मे जाकर बरसो, जिससे उनका हृदय हुलसे। इस कथन में एक प्राकृतिक तथ्य छिपा हुआ है। घटा को देखकर, उसकी ध्वनि सुनकर, विरहियों में मिलने की आकांक्षा बड़ी प्रबल होती है। कालिदास ने मेघदूत में मेघ से कहलाया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणि मोक्षोत्सुकानि॥

अर्थात् मेरी गरज में यह गुण है कि वह परदेशियों को तुरन्त अपने-अपने घर जाने का चाव दिलाती है; और उनके मन में उत्सुकता पैदा करती है कि वे अपने घर पहुँचकर अपनी-अपनी स्त्री की वेणी खोलें।

जनेऊ के गीत

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। जनेऊ पहनना आर्य-जाति की बहुत पुरानी प्रथा है।

यज्ञोपवीत का यह श्लोक प्रत्येक द्विज को याद कराया जाता है—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुंच शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

भावार्थ—यज्ञोपवीत परम पवित्र है जो प्राचीनकाल में प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ था। यह आयु, बल और तेज का देने वाला है।

पारसी लोग भी जो आर्यों के सजातीय हैं और ईरान में जाकर बस गये थे, यज्ञोपवीत पहनते हैं। यज्ञोपवीत का उनका मंत्र यह है:—

फ्राते मज़दाओ बरत् पौरवनिम् आयभ्य ओंघनेम् स्तेहर पाएसंघेम् मैन्यु-तस्तेम वंघुहिम दायनम् मजदयास्निम्।

अर्थात् हे मजदा यासनिन धर्म के चिह्न! तारों से जड़े हुये यज्ञोपवीत! तुझे पूर्वकाल में मज़दा ने धारण किया है।

पूर्वकाल में, उपनयन संस्कार में यज्ञोपवीत धारण करके तब ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन के लिये जाता था। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना अनिवार्य हो जाता था, इसलिये इसे व्रत-बन्ध भी कहते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही मनुष्य की द्विज संज्ञा होती है। नहीं तो, मनु महाराज के निर्णय के अनुसार, यज्ञोपवीत होने के पहले मनुष्यमात्र शूद्र हैं।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते। मनु।

यज्ञोपवीत क्यों पहना जाता है ? इसका उत्तर कौषीतकि ब्राह्मण के इस मंत्र में मिलता है—

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे।

आचार्य कहता है—हे ब्रह्मचारी ! मैं तुझे दीर्घायु, बल और तेज के लिये यज्ञोपवीत से बाँधता हूँ।

यज्ञोपवीत में तीन तागे होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों आश्रमों के नियमों को अच्छी तरह पालन करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ जन्म से ही तीन ऋण लगे हुये हैं—ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण।

जायमानो ह वै ब्राह्मणास्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते।
ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति ॥
ब्राह्मण ग्रंथ।

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों तीन ऋणों से ऋणी ही पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करके, ऋषियों के बनाये ग्रंथों का स्वाध्याय करके, ऋषि-ऋण से, यज्ञों के द्वारा देवऋण से और संतान उत्पन्न करके पितरों के ऋण से छुटकारा मिलता है। संन्यासी इन तीनों ऋणों से मुक्त होता है। इससे उसे यज्ञोपवीत-धारण की आवश्यकता नहीं रहती। यज्ञोपवीत में तीन तागे होने का एक अभिप्राय यह भी बताया जाता है कि इसका सम्बंध ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य तीन ही वर्णों से है। शूद्र के लिये यज्ञोपवीत का विधान नहीं है।

यज्ञोपवीत ९६ अंगुल लम्बा होना चाहिये। ९६ अंगुल लम्बा होने का तात्पर्य यह है—

तिथिर्वारश्च नक्षत्रं तत्वं वेदा, गुणत्रयम्।
कालत्रयश्च मासाश्च ब्रह्मसूत्रश्च षण्नव॥

तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २८, तत्व २४, वेद ४, गुण ३, काल ३, मास १२। कुल मिलाकर ९६ हुये। इन सब के साथ नियम निबाहने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होने के प्रमाण-स्वरूप ९६ अंगुल का सूत्र पहना जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि ९६ अंगुल का यज्ञोपवीत वेद के ९६००० मंत्रों के अध्ययन का एक प्रमाण है।

यज्ञोपवीत कमर से नीचे नहीं आना चाहिये। इस सम्बंध में छन्दोग परिशिष्ट में लिखा है—

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथञ्चन।
ब्रह्मचारिण एकं स्यात् स्नातस्य द्वे बहूनि वा॥

अर्थात् यज्ञोपवीत स्तन से ऊपर और नाभि से नीचे न पहने। ब्रह्मचारी एक और गृहस्थ दो यज्ञोपवीत पहने।

मूत्र और पुरीष त्याग के समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर तीन बार लपेट लिया जाता है। यह केवल शुद्धता के लिये किया जाता है। एक लाभ यह भी है कि यज्ञोपवीत धारण करने के अवसर पर की हुई प्रतिज्ञायें—ख़ास कर ब्रह्मचर्य के सम्बंध की प्रतिज्ञायें—बार बार याद आती रहें। प्रतिज्ञायें ये हैं:—

१—दिवा मा स्वाप्सीः।
दिन में मत सोना।

२—आचार्याधीनो वेदमधीष्व।
आचार्य के अधीन रहकर वेद का अध्ययन कर।

३—क्रोधानृते वर्जय।
क्रोध और झूठ को छोड़ दे।

४—मैथुनं वर्जय।

मैथुन को छोड़ दे।

५—उपरि शय्यां वर्जय।

भूमि से ऊपर पलँग आदि पर सोना छोड दे।

६—कौशीलव गन्धाञ्जनानि वर्जय।

गाना-बजाना, नृत्य आदि तथा इत्र इत्यादिक का सूँघना और आँखों में अंजन लगाना वर्जित है।

७—मांस रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय।

मांस, रूखा-सूखा भोजन और मद्य आदि नशीली चीज़ों का सेवन मत कर।

८—अन्तर्ग्राम-निवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय।

गाँव के बीच में बसना, जूता और छाता धारण करना वर्जित है।

९—अकामतः स्वयमिन्द्रियस्पर्शेन वीर्यस्खलनं विहाय वीर्यं शरीरे संरक्ष्योर्ध्वरेता सततं भव।

लघु शंका के सिवा कभी उपस्थ इन्द्रिय का स्पर्श मत कर। न वीर्य स्खलित होने दे। ऊर्ध्वरेता बन।

१०—सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव।

सुशील, थोड़ा बोलनेवाला और सभा में बैठने योग्य गुणों वाला बन।

समाजरूपी शरीर में वैश्य का स्थान कमर कहा गया है। अतएव वैश्य तक यज्ञोपवीत पहनने के अधिकारी हैं। शूद्रों को अधिकार नहीं है। अतः कमर से नीचे यज्ञोपवीत का पहनना वर्जित है।

यज्ञोपवीत में जो गाँठ दी जाती है, उसका नाम ब्रह्म-ग्रंथि है। देहात में इसे ब्रह्म गाँठ कहते हैं। गाँठें भी तीन दी जाती हैं।

यज्ञोपवीत के सम्बंध में एक नियम और भी है। वह यह है कि यज्ञोपवीत अपने काते हुये सूत का होना चाहिये। बाज़ार से खरीदे हुये सूत का यज्ञोपवीत अपवित्र माना जाता है। इससे प्रत्येक द्विज को सूत

कातने की प्रक्रिया का जानना अनिवार्य है। आजकल तो लोग बाजार से खरीदे हुए विलायती सूत का यज्ञोपवीत बनाते और पहनते हैं। शहरों में तो जर्मनी से बने-बनाये यज्ञोपवीत आते और बिकते हैं। तीर्थस्थानों में, घाटों पर, बहुत से ब्राह्मण बैठे जनेऊ बेंचा करते हैं। वे प्रायः वहीं जनेऊ बनाया भी करते हैं। कपड़ा सीने की रीलें वे बाज़ार से खरीद लेते हैं और उसे तिहरा करके उसमें मामूली गाँठ दे लेते हैं। उनको आजकल के बहुत से अंग्रेज़ी पढ़े हुये बाबू लोग Very fine जनेऊ कहकर ख़रीदते और पहनते हैं। इस प्रकार यज्ञोपवीत पहनने का उद्देश्य सर्वथा नष्ट हो गया है। अब कुछ लोग तो समाज के भय-वश, कुछ रूढ़ि-वश और कुछ अन्धविश्वास से जनेऊ पहनते हैं। यज्ञोपवीत की यह दुर्दशा शोचनीय है।

ब्राह्मण-बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष की अवस्था मे होना चाहिये। क्षत्रिय का ११वें वर्ष में, और वैश्य का १२वें वर्ष में यज्ञोपवीत होना शास्त्र-सम्मत है। उपनयन-संस्कार के समय के विषय में शतपथ ब्राह्मण का यह वचन है:—

बसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके॥

ब्राह्मण का बसन्त में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में और वैश्य का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करना चाहिये। अथवा सब ऋतुओं में भी हो सकता है। दिन में प्रातःकाल ही नियमित है।

देहातों में अब भी यज्ञोपवीत-संस्कार धूमधाम से मनाया जाता है। संस्कार में नाते-रिश्ते के प्रायः सब लोग एकत्र होते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने के दिन से ब्रह्मचारी को केवल भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करके विद्याध्ययन करने का नियम है। समाज का अन्न खाकर जो ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करता था, वह जीवन भर समाज का ऋण अपने ऊपर समझता था और

ऋणमुक्त होने के लिये जीवन भर समाज की सेवा किया करता था। भिक्षा का वह लक्ष्य अब केवल आधे घंटे ही में प्राप्त कर लिया जाता है। साथ ही विद्याध्ययन के पंद्रह-सोलह वर्ष भी आँगन से ड्योढ़ी तक ही समाप्त हो जाते हैं। ब्रह्मचारी विद्याध्ययन के लिये काशी जाने को तैयार होता है। दो चार क़दम चलता है कि घरवाले वापस बुला लेते हैं। इस तरह हिन्दू-समाज में यज्ञोपवीत्त का यह ढकोसला चला जा रहा है।

ब्रह्मचारी को भिक्षा देना पूर्वकाल में बड़े पुण्य का काम समझा जाता था। भिक्षा देने की इस प्रथा से बड़े-बड़े गुरुकुलों का खर्च सहज ही में चल जाता था। फंड के लिये न किसी अधिवेशन की आवश्यकता होती थी, और न अन्य प्रकार के किसी आयोजन की। उस प्रथा को त्याग देने ही से आजकल शिक्षा महँगी, संकुचित और केवल स्वार्थमूलक हो गई है।

जनेऊ के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे प्रायः सोहर ही छंद के होते हैं; पर लय में कुछ अंतर होता है।

यहाँ जनेऊ के कुछ गीत दिये जाते हैं—

[१]

देहु न माता मोहिं सतुवा और गुड़ गेंडवा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ १॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंडुवा।
तोरा दादा हैं विद्वान घर हीं वेद पढ़िल्यो॥ २॥
देहु न काकी मोहिं सतुवा और गुड़ गेंडुवा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ ३॥
नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंडुवा।
तोरा काका हैं विद्वान घरहीं वेद पढ़िल्यो॥ ४॥
देहु न बूवा मोहिं सतुवा और गुड़ गेंडुवा।
जैहों मैं कासी बनारस वेद पढ़ि अइहों॥ ५॥

नाहीं मोरे सतुवा नाहीं गुड़ गेंडुवा।
तोरा फूफा हैं विद्वान घर हीं वेद पढ़िल्यो ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे माता ! मुझे सतुआ, गुड और लोटा दो। मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ ॥१॥

माता कहती है—बेटा ! मेरे सतुवा, गुड़ और लोटा नहीं है। तेरे पिता विद्वान् हैं, उनसे घर ही पर वेद पढ़ लो ॥२॥

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपनी काकी और बुआ आदि से निवेदन करता है और एक सा उत्तर पाता है कि घर पर ही वेद पढ़ानेवाले विद्वान् हैं, यहीं वेद पढ़ लो।

यह गीत प्राचीन भारत का एक अनुपम दृश्य हमारी आँखों के आगे लाकर खड़ा कर देता है, जब एक-एक घर में दो-दो, चार-चार वेदज्ञ विद्वान् रहते थे। विद्या की रुचि इतनी थी कि बालक स्वयं काशी जाकर वेद पढ़ आने के लिये आग्रह करता था। ब्रह्मचारी एक मामूली जलपात्र के साथ घर से निकल जाता था और भिक्षावृत्ति से जीवन-निर्वाह करके गुरुकुल से पूर्ण विद्वान् होकर घर लौटता था। अब उसकी स्मृति एक सुख-स्वप्न के समान जान पड़ती है।

[२]

इमली क पेड़ सुरूहुर अवरी दुरूहुर।
तेहि तर ठाढ़ी कवनी देई दैव मनावइँ ॥ १ ॥
जनि दैव अजंहु गरजहु जनि दैव बरिसहु।
आवत होइहें मोर स्वामी झिसी बुनिआँ भिजी जइहें ॥ २ ॥
केतनो तु ए दैव गरजहु केतनो तु बरिसहु।
हमरे जे सारे क जनेउ भिंजत हम जावइ ॥ ३ ॥
भिंजे मोरे माँथे क मुरायठ हिरदै कर चंदन।
भिंजे मोरे सोरहो सिंगार जनेउवा के कारन ॥ ४ ॥

इमली का वृक्ष सीधा और घनी छायावाला होता है। उसके नीचे खड़ी अमुक देवी देवता मना रही हैं ॥१॥

हे दैव! न गरजो, न तरजो, न बरसो। मेरे स्वामी आते होंगे, जो नन्हीं-नन्हीं बूँदों से भीग जायँगे ॥२॥

उस देवी का स्वामी कहता है—हे दैव! तुम कितना ही गरजो और बरसो। मेरे साले का यज्ञोपवीत है। मैं भीगता हुआ भी जाऊँगा ॥३॥

मेरे सिर की पगड़ी और हृदय का चंदन भीग रहा है। जनेऊ के लिये मेरा सोलहो शृङ्गार भीग रहा है ॥४॥

इस गीत में यह दिखलाया गया है कि मार्ग में चाहे जैसी भी बाधा उपस्थित हो, पर जनेऊ मे अवश्य पहुँचना चाहिये।

[२]

द्वारेन द्वारे बरुवा फिरैं बखरी पूछैं बबा की हो।
द्वारेन उनके हैं कुइँया भीती चित्र उरेही हो॥
आँगन तुलसी क बिरवा बेदवन झनकारी है हो।
सभवन बैठे बाबा तुम्हरे बैठे पुरवैं जनेउवा हो॥

नोट—पितामह से लेकर जितने लोग ब्रह्मचारी से बड़े दर्जे के होते हैं, हरएक का नाम लेकर इन्हीं पदों की आवृत्ति की जाती है।

ब्रह्मचारी द्वार-द्वार फिर रहा है और बाबा का घर पूछ रहा है। कोई उसको पता बता रहा है कि उनके द्वार पर कुँवा है। दीवार पर चित्र अंकित हैं। उनके आँगन में तुलसी का वृक्ष है। वेद-ध्वनि हो रही है। सभा में बैठे हुये तुम्हारे बाबा जनेऊ बना रहे हैं।

इस गीत में एक उच्च कोटि के ब्राह्मण गृहस्थ के घर की व्याख्या है। द्वार पर कुँवा, आँगन में तुलसी, दीवारों पर चित्र, घर में वेद-ध्वनि की गूँज और अपने हाथ से जनेऊ कातना यह दृश्य अब बिरले ही कहीं देखने को मिलता है।

[४]

गंगा जमुन बिच आँतर चन्दन एक रुखवा है हो।
तेहि तर ठाढ़े फूफा उनके कातें जनेउना हो॥
सात सखी मिलि पूछें किन्ह कातै जनेउना हो।
आठ बरिस के (अमुक राम) उन्हें पंडित करबै हो।
हमरे दुलरुवा (अमुक राम) उन्हें पंडित करबै हो॥

गंगा और जमुना के मध्य में चन्दन का एक वृक्ष है। उसके नीचे अमुक व्यक्ति के फूफा खड़े जनेऊ कात रहे हैं। सात सखी मिलकर पूछती हैं कि किसके लिये जनेऊ काता जा रहा है? फूफा ने कहा—आठ वर्ष के मेरे दुलारे अमुक राम हैं, उनको पंडित बनाऊँगा।

अपने हाथ से काता हुआ यज्ञोपवीत ही पहनने का माहात्म्य है।

[५]

सोने के खड़ाऊँ राजा दसरथ ठाढ़े पंडित पुकारैं हो।
अरे अरे पंडित वशिष्ठ जी मेरी अरज ओनाव॥
आठ बरिस के रमइया उन्हें देतेउ जनेउना॥ १॥
इतना सुनिन है वशिष्ठ जी मलिआ बुलावैं।
माली पानेन मड़वा छवावौ कलस धरावौ॥ २॥
आठ बरिस कै दुलरुवा मड़ये तर ठाढ़े।
सिर वाके घाम लागै पाँव भूँभुरि लागै हो॥ ३॥
अरे अरे माय कौशिल्या रानी उठि भीख सँवारौ।
आठ बरिस के रमइया चन्द्र मँड़ये तर ठाढ़े॥ ४॥

राजा दशरथ सोने के खडाऊँ पर खड़े हैं और पंडित को बुला रहे हैं। हे पंडित वशिष्ठ मुनि! मेरी प्रार्थना सुनिये। आठ बरस के राम हो गये। अब इन्हे जनेऊ (यज्ञोपवीत) देना चाहिये॥१॥

इतना सुनते ही वशिष्ठ ने माली को बुलवाया और आज्ञा दी—

पान का मड़वा छवाओ और कलश रखवाओ ॥२॥

आठ बरस के लाड़ले राम मड़वे के तले खड़े हैं। उनके सिर पर घाम लग रहा है और पैर जलती धूल से जल रहे हैं ॥३॥

हे हे रानी कौशल्या ! उठो और भीख की तैयारी करो। आठ बरस के राम माँड़ौ के तले खड़े हैं ॥४॥

आठ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत हो जाने का नियम शास्त्रानुकूल है। राम की अवस्था आठ वर्ष की होते ही दशरथ चिंतित हुये और उन्होंने वशिष्ठ से राम को यज्ञोपवीत दिला दिया।

[६]

नदिया के ईरे तीरे बरुवा से बरुवा पुकारें।
आजा पठय देव नाव नेवरिया बरुवा चला आवै ॥ १ ॥
ना हमरे नाव नेवरिया नाहीं घर खेवट।
जेकर जनेउआ के साध पउँरि नदिया आवइ ॥ २ ॥
भीजै मोर आगे की अँगिवाँ सिर कै पगिया।
भीजै मोर सोरहौ सिँगार जनेउवा के साध ॥ ३ ॥
देब्यौं मैं आगे के अगिवाँ सिर कै पगिया।
देब्यौं मैं सोरहौ सिँगार जनेउवा के कारन ॥ ४ ॥

नदी के किनारे एक ब्रह्मचारी पुकार रहा है—हे पितामह ! नाव भेज दो, तो मैं पार उतर आऊँ ॥१॥

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। यज्ञोपवीत की जिसकी लालसा हो, वह नदी तैर कर आवे ॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—मेरा अँगरखा भीग रहा है, सिर की पगड़ी भीग रही है, जनेऊ के लिये मेरा सोलहो शृङ्गार भीग रहा है ॥३॥

पितामह ने कहा—मैं अँगरखा दूँगा। मैं पगड़ी दूँगा। मैं जनेऊ के लिये सोलहो शृङ्गार दूँगा ॥४॥

जनेऊ के गीतों में नदी तैर कर आने का ज़िक्र अक्सर मिलता है। जान पड़ता है, आठ वर्ष की उम्र तक तैरना सीख लेना ब्रह्मचारी के लिये पूर्वकाल में अनिवार्य समझा जाता था।

[७]

गयाजी में बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई गयाजी क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥ १ ॥
गयाजी क ठाकुर गजाधर उहे उठि बोलले।
हम अहो नग्र क ठाकुर हमही जनेउवा देवों ॥ २ ॥
काशी में बरुआ पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई काशी क ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥ ३ ॥
काशी क ठाकुर विश्वनाथ बाबा उहे उठी बोलले।
हम अही काशी क ठाकुर हमहीं जनेउवा देवों ॥ ४ ॥
विन्ध्याचल में बरुवा पुकारेले हथवाँ जनेउवा ले ले।
है कोई विन्ध्याचल में ठाकुर हमके जनेउवा दिहे ॥ ५ ॥
विन्ध्याचल क ठाकुर भवानी त उहे उठि बोलेलीं।
हम अही विन्ध्याचल क ठाकुर हमहीं जनेउवा देवों ॥ ६ ॥

अर्थ स्पष्ट है। बहुत से ब्रह्मचारी, जिनका यज्ञोपवीत संस्कार किसी कारण से घर पर नहीं होता, गया, काशी या विंध्याचल आदि तीर्थ-स्थानों में चले जाते हैं और यज्ञोपवीत धारण कर लेते हैं। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। पर अब केवल गरीब और अनाथ ब्राह्मण ही ऐसा करते हैं। क्योंकि आजकल यज्ञोपवीत संस्कार में गृहस्थ को बहुत ख़र्च करना पड़ता है। जो खर्च नहीं कर सकते, वे ही तीर्थ में जाकर जनेऊ पहन लेते हैं।

[८]

करो न माया मेरी लडुआ और कछू सतुआ जू।
जावों मैं काशी बनारस वेद पढ़ि आवहिं जू ॥ १ ॥

काहे को जैहो पूता काशी काहे बनारस जू।
घरहीं अजुल मेरे वेदी तो वेद पढ़ाय देहैं जू॥२॥
आजुल न हो मेरे अजुला तुहीं मोर अजुला जू।
आजुल अहिर गड़रिया पढ़ाय ब्रह्मन करि लीयो जू॥३॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे माँ! लड्डू और कुछ सत्तू दो न? मैं काशी जाकर वेद पढ़ आऊँ॥१॥

माँ कहती है—बेटा! काशी क्यों जाओगे? घर में ही तुम्हारे पितामह बड़े वेदज्ञ हैं, वे वेद पढा देंगे॥२॥

ब्रह्मचारी कहता है—हे पितामह! तुम मेरे पितामह हो, तुमने अहीर गड़रियों को पढाकर ब्राह्मण बना दिया है, मुझे भी पढ़ा दो॥३॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब विद्वान् होना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण था।

[९]

राजा दसरथ अँगना मूँजि कौशिल्या रानी भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौ हाथे चीरैं॥
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन॥१॥
राजा दसरथ झारिन झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम॥२॥
राजा दसरथ अँगना मूँजि सुमित्रा रानी भल चीरैं।
लपकि झपकि चीरैं दूनौं हाथे चीरैं॥
रामचन्द्र बरुवा भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन॥३॥
राजा दशरथ झारिनि झूरिनि जाँघ बैठाइनि।
देबै बेटा सोने कै जनेउ जनेउवा बड़ा उत्तिम॥४॥

राइयो रुक्मिन बीज लै जाँय।
राम लछिमन दोनों बोवैं कपास।
एक पत्ता दो पत्ता तीसरे कपास।
काहे की है चरखी काहे की है डंडी।
चन्दन चरखी सोने की है डंडी।
राइयो रुक्मिनि ओटैं कपास॥
काहे की है धुनियाँ काहे की है ताँत।
सोने की धुनियाँ रेसम की है ताँत।
राइयो रुक्मिनि धुनैं कपास॥
काहे की है रहटा काहे की है माल।
चन्दन रहटा रेसम की है माल।
राइयो रुक्मिन कातैं सूत॥
एक तागा, दो तागा, तीसरे जनेउ।
तीन तागा, चार तागा, पाँचवें जनेउ।
पाँच तागा, छः तागा, सातयें जनेउ।
सात तागा, आठ तागा, नौवें जनेउ॥
पहिलो जनेउ गनेसजी को देव।
दुसरो जनेउ ब्रह्माजी को देव॥
तीसरो जनेउ महादेवजी को देव।
चौथो जनेउ बिष्णुजी को देव॥
पाँचवो जनेउ सब देवतन देव।
छठवों जनेउ सब पुरखन देव॥
सातवों जनेउ बरुआ को देव।
अहिर गड़रिया बम्हन कर लेव॥

यह इटावा जिले का गीत है। इसमें कपास बोने से लेकर सूत

बनने और सूत से फिर जनेऊ बनने तक का क्रम वर्णित है। अंत में कहा गया है कि इसी सूत के प्रभाव से अहीर गड़रिये भी ब्राह्मण हो सकते हैं।

इस गीत से यह भी अभिप्राय निकलता है कि हरएक द्विज को स्वयं हल चलाना, कपास बोना, ओटना, धुनना, चरखा चलाना, सूत कातना और सूत से जनेऊ बनाना जानना चाहिये। घर-घर में चरखे की रक्षा के लिये ही तो कहीं यह नियम नहीं बनाया गया था?

[११]

गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारइ हो।
पठइ दे आजा नवरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
न मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेऊ के साध पवरि दह आवइ हो॥
गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दो पिताजी नावरिया बरुवा चढ़ि आवइ हो॥
न मेरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पवरि दह आवइ हो॥
गंगा किनारे बरुआ फिरैं केऊ पार उतारहु हो।
पठई दे भइया राम नावरिया बरुआ चढ़ि आवइ हो॥
न मोरे नाव न नवरिया नाहीं घर केवट हो।
जेकरे जनेउआ के साध पवरि दह आवइ हो॥

गंगा के किनारे ब्रह्मचारी फिर रहा है कि मुझे पार उतार दो। हे पितामह! नाव भेज दो तो ब्रह्मचारी उस पर चढ़कर इस पार आ जाय।

पितामह ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। जिसको जनेऊ की लालसा हो, वह दह तैरकर इधर आ जाय।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी अपने पिता और भाई से भी प्रार्थना करता है और वही उत्तर पाता है जो पितामह ने दिया था।

पूर्वकाल में यज्ञोपवीत होने से पहले ब्रह्मचारी को तैरना जानना आवश्यक समझा जाता था। देश में नदी-नालों की अधिकता और पुलों की कमी से तैरना जानना शिक्षा का एक अङ्ग माना जाता था।

[१२]

चनन के बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि......देई आजी दैवा मनावैं।
दैवा आज बदरिया न होयव आजु मोरे नतिया कै जनेव ॥ १ ॥
चनन कै बिरछा हरेर तौ देखे ते सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि दीदी......देई दैवा मनावैं।
दैवा आजु वदरिया न होयव आजु मोरे पुतवा कै जनेव ॥ २ ॥
चनन के बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि......देई काकी दैवा मनावैं।
दैवा आजु वदरिया न होयव आजु मोरे पुतवा कै जनेव ॥ ३ ॥
चनन के बिरछा हरेर तौ देखतै सुहावन।
त्यहिं तर ठाढ़ि बहिनि......देई दैवा मनावैं।
दैवा आजु बदरिया न होयव आजु मोरे भैया कै जनेउ ॥ ४ ॥

चन्दन का हरा वृक्ष है, जो देखने में बड़ा सुन्दर लग रहा है। उसकी छाया में......देवी पितामही खड़ी होकर ईश्वर से विनय कर रही हैं—हे भगवान्! आज बदली न हो। आज मेरे पौत्र का जनेऊ है ॥१॥

यही पद दीदी, काकी और बहन के नाम से भी गाया जाता है। सब का अर्थ वही है, जो ऊपर दिया गया है।

[१३]

मलिया मौर नाहीं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तो अपने आजा बिना॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ आजा अब आये॥
मलिया मौर नहिं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने दादा बिना॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोरे लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ दादा अब आये॥
मलिया मौर नाहीं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोरे लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने काका बिना॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तो काका अब आये॥
मलिया मौर नाहीं गाँछै बेइलिया के फूल बिना।
मोर लाल जनेउवा नाहीं पहिरैं तौ अपने फूफा बिना॥
मलिया मौर अब गाँछै बेइलिया के फूल पाये।
मोर लाल जनेउवा अब पहिरैं तौ फूफा अब आये॥

माली लता के फूल बिना मौर नहीं बना रहा है। मेरा प्यारा लड़का भी पितामह की उपस्थिति बिना जनेऊ नहीं पहन रहा है।

इसी प्रकार दादा, काका और फूफा के नाम से अगले पद गाये जाते हैं। यज्ञोपवीत के अवसर पर इन सब का उपस्थित रहना आवश्यक होता है।

[१४]

ऊँच ओसरवा कवाने रामा आले बाँस छाई।
खँभिया ओठँघली दुलहिन सुनो पिया पण्डित।
बरहा बरिसवा कै लाल भये ब्राभन कै देतेउ॥

चाही तो ये धन चाही दस धोती अँगोछा।
चाही तौ ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तो ये धन चाही अमृत फल नरियल॥
ऊँच ओसरवा कवाने रामा आले बाँस छाई।
खँभिया ओठँघलि दीदी कवनि देई सुनो पिया पंडित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ॥
चाही तौ ये धन चाही दस धोती अँगौछा।
चाही तौ ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तौ ये धन चाही अमृत फल नरियल॥
ऊँच वखरिया काका राम आले बाँस छाई।
खँभिया ओठँघली चाची कवनि देई सुनौ पिया पण्डित।
बरहा बरिसवा के लाल भये ब्राभन कै देतेउ॥
चाही तौ ये धन चाही दस धोती अँगौछा।
चाही तो ये धन चाही दस ब्राभन भोजन।
चाही तो ये धन चाही अमृत फल नरियल॥

अमुक व्यक्ति का ऊँचा ओसारा है, जो हरे बाँसों से छाया हुआ है। उसकी स्त्री खंभे की आड़ में खड़ी होकर कहती है—हे प्रियतम! प्यारा लड़का बारह वर्ष का हो गया, उसे ब्राह्मण बना दो।

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री! दस धोती और दस अँगोछा चाहिये। कम से कम दस ब्राह्मणों को भोजन कराने की सामग्री चाहिये। अमृत जैसा मीठा नारियल का फल चाहिये।

इसी प्रकार दीदी और चाची ने भी अपने अपने पतियों से कहा और सब को उपर्युक्त उत्तर मिला।

यज्ञोपवीत संस्कार में साधारणतः किन-किन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, यही इस गीत में बताया गया है।

[१५]

यक तो मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
वैसहि ढुरहुर बरुवा तो माँगै बरुवा नौ गुन॥
आजी मोरि मारैं गरियावैं दादुल झझकोरैं।
आजा कवाने राम परमोधैं देबै नाती नौ गुन॥
एक तौ मोतिया ढुरहुर देखतै सुहावन।
वैसहि ढुरहुर बरुआ राम तौ माँगै नौ गुन॥
मैया मोर मारैं गरियावैं दादुल झिझकोरैं।
दादा कवाने राम परमोधैं देबै बेटा नौ गुन॥

नोट—इसमें कवाने की जगह, आजा, दादा, फुफा, चाचा, मामा इत्यादि का नाम जोड़ा जाता है।

जैसे मोती गोल और देखने में सुन्दर होता है, वैसा ही ब्रह्मचारी है। वह नौगुणों से युक्त यज्ञोपवीत माँग रहा है।

पितामही मारती है और दादा झकझोरते हैं। पर पितामह ढाढ़स देते हैं कि हे पौत्र! मैं तुमको नौगुण दूँगा।

यही अर्थ आगे के पदों का भी है। अंतर इतना ही है कि उनमें पितामह के स्थान पर क्रम से दादा, फुफा, चाचा, मामा इत्यादि के नाम जोड़े लिये जाते हैं।

यज्ञोपवीत पहनकर व्रती बनने की रुचि बालकों में बचपन ही से होती थी। इस गीत में ब्रह्मचारी ने यज्ञोपवीत माँगा। पितामही और दादा ने उसे रोका। क्योंकि वे उसे बहुत प्यार करते थे और अभी किसी व्रत में बँधने देना नहीं चाहते थे। पर प्रपितामह, जो संस्कारों की मर्यादा के रक्षक थे, उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि उसे यज्ञोपवीत दिया जायगा। इस गीत में कुटुम्बियों की मनोदशा का चित्र है।

[१६]

गलियाँ कै गलियाँ पंडित घूमैं हथवा पोथिया लिहे।
कवन-बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ १ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं बरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै, दइव अस गरजै ॥
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ २ ॥
गलिया कै गलिया नाऊ घूमैं हथवा किसबतिया लिहे।
कौन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा के जनेउ ॥ ३ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै, दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ४ ॥
गलिया के गलिया बढ़ैया घूमैं हथवा पटुलिया लिहे।
कवन बखरिया राजा दसरथ तौ रामा के जनेउ ॥ ५ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ६ ॥
गलिया के गलिया कुम्हरवा घूमैं हथवा बरौवा लिहे।
कवनि बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ७ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं बरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ८ ॥

गलिया के गलिया फूफा घूमैं हथवा जनेउवा लिहे।
कवनि बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ ९ ॥
बाँसन धोतिया सुखत होइहैं, बरुवा जेंवत होइहैं,
पंडित वेद पढ़ैं रे।
आँगन ढोल धमाकै दइव अस गरजै।
उहै बखरिया राजा दसरथ तौ रामा कै जनेउ ॥ १० ॥

पंडित हाथ में पुस्तक लिये गली-गली में घूम रहे हैं और पूछ रहे हैं—राजा दशरथ की बखरी (घर) कौन सी है ? जहाँ राम का जनेऊ होनेवाला है ॥ १ ॥

जहाँ बाँस पर धोतियाँ सूखती होंगी, ब्रह्मचारी भोजन कर रहे होंगे, पंडित वेदोच्चार कर रहे होंगे, आँगन में ढोल बज रही होगी, मानों बादल गरज रहा है, वही राजा दशरथ की बखरी है, जहाँ राम का जनेऊ है ॥ २ ॥

इसी प्रकार हाथ में किस्बत (उस्तरा आदि रखने का थैला) लिये हुये नाईं, पटुली (काठ की तख्ती, जिस पर लड़के लिखना सीखते हैं) लिये हुये बढ़ई, कुल्हड़ लिये हुये कुम्हार, और जनेऊ लिये हुये फूफा राजा दशरथ का घर पूछते हैं और वही उत्तर पाते हैं।

विवाह के गीत

हिन्दुओं में विवाह एक धार्मिक प्रथा है। यह केवल वासना की तृप्ति के लिये नहीं किया जाता; बल्कि मनुष्य-धर्म का उचित रीति से पालन करना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। हिन्दुओं में विवाह-कर्म इतना पवित्र माना गया है कि एक बार केवल पाणि-ग्रहण कर लेने ही से स्त्री-पुरुष दोनों जीवन भर धर्म के बंधन में बँध जाते हैं। हिन्दुओं के इतिहास में कितने ही उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें स्त्री ने पति को मन में वरण कर लिया था और उसने उसे पाणि-ग्रहण से अधिक महत्त्व दिया था। जैसा सावित्री, रुक्मिणी, और संयोगिता ने किया था। वैवाहिक पवित्रता की रक्षा के ऐसे उदाहरण संसार में दुर्लभ हैं।

मनुस्मृति में आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। जैसे—

चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेह हिताहितान्।
अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत॥ १॥
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ २॥
आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम्।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः॥ ३॥
यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते॥ ४॥
एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते॥ ५॥
सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः॥ ६॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ७ ॥
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ ८ ॥
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ९ ॥
सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१०॥

अर्थात्—लोक और परलोक में चारों वर्णों के हित और अहित के साधक-रूप जो आठ प्रकार के विवाह हैं। उन्हें संक्षेप से कहता हूँ ॥१॥

१—ब्राह्म, २—दैव, ३—आर्ष, ४—प्राजापत्य, ५—आसुर, ६—गान्धर्व, ७—राक्षस, ८—पैशाच। पैशाच सब में अधम है ॥२॥

अच्छे शीलवान् गुणवान् वर को स्वयं बुलाकर उसे भूषण-वस्त्र से अलंकृत और पूजित करके कन्या देना ब्राह्म विवाह है ॥३॥

यज्ञ में सम्यक् प्रकार से कर्म करते हुये ऋत्विज को अलङ्कारादि से पूजित कर कन्या देने को दैव विवाह कहा है ॥४॥

वर से एक या दो जोड़े गाय बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देने का नाम आर्ष विवाह है ॥५॥

"तुम दोनों साथ मिलकर गृह-धर्म का पालन करो" वर से यह कह कर और पूजन करके जो कन्या-दान किया जाता है, वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है ॥६॥

कन्या के बाप या चाचा आदि को और कन्या को भी यथाशक्ति धन देकर स्वच्छन्दता-पूर्वक कन्या का ग्रहण करना आसुर-विवाह कहलाता है ॥७॥

कन्या और वर की इच्छा से उनका संयोग होना गान्धर्व विवाह है।

यह काम-भोग की इच्छा से होता है और मैथुन के लिये है ॥८॥

मारकर, घायलकर, गृह आदि को तोड़कर, रोती-विलपती कन्या को जबरदस्ती हरण कर ले जाने का नाम राक्षस विवाह है ॥९॥

नींद में सोई हुई या मदमाती, या पागल कन्या के साथ एकान्त में उपभोग करना अत्यन्त पाप-पूर्ण पैशाच विवाह कहलाता है ॥१०॥

इनमें पहले के चार तो श्रेष्ठ और अन्त के चार निकृष्ट हैं। हिन्दुओं के इतिहास में निकृष्ट विवाहों के भी उदाहरण मिलते हैं। जैसे—

कन्या-विक्रय के रूप में आसुर विवाह तो आज-कल बहुत होने लगा है।

शकुन्तला और दुष्यंत का गन्धर्व-विवाह लोक-प्रसिद्ध है।

भीष्म ने काशिराज की कन्या का हरण लड़-झगड़ कर ही किया था। आल्हा-ऊदल के ज़माने में इस प्रकार के राक्षस-विवाह तो क्षत्रियों में खूब होने लगे थे।

पुराणों में पैशाच विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

आजकल जो विवाह प्रचलित है, उसे ब्राह्म और दैव का मिश्रण ही कहना चाहिये। परन्तु उसमें भी बाहरी आडंबर इतना मिल गया है कि उसकी सच्ची व्याख्या करनी कठिन है।

विवाह में सप्तपदी, जिसे भाँवर घूमना या फेरे लेना भी कहते हैं, मुख्य है। सप्तपदी का अर्थ बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ सप्तपदी के वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

१—इष एक पदी भव। सा मामनुव्रता भव।

वर कहता है—हे वधू! इच्छाशक्ति प्राप्त करने के लिये एक पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या कहती है—मैं तुम्हारे प्रत्येक सत्य संकल्प में सहायता करूँगी।

२—ऊर्जे द्विपदी भव। सा मामनुव्रता भव।
तेज प्राप्त करने के लिये दूसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

३—रायस्पोषाय त्रिपदी भव। सा मामनुव्रता भव।
कल्याण की वृद्धि के लिये तीसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

४—मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।
आनन्द मय होने के लिये चौथा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

५—प्रजाभ्यः पंचपदी भव। सा मामनुव्रता भव।
प्रजा के लिये पाँचवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

६—ऋतुभ्यः षट्पदी भव। सा मामनुव्रता भव।
नियम-पालन के लिये छठाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

७—सखा सप्तपदी भव। सा मामनुव्रता भव।
हम दोनों में परस्पर मैत्री रहे, इसके लिये सातवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या वर के प्रत्येक आदेश के उत्तर में उसके सभी सत् संकल्पों में सहायता देने की प्रतिज्ञा करती है।

यही सात पदों की प्रतिज्ञा है जो हिन्दू स्त्री-पुरुष को जीवन भर के लिये धर्म में बाँध देती है। विवाह के इतने सुन्दर नियम संसार की शायद ही किसी अन्य जाति में प्रचलित हों।

आजकल के विवाहों में बहुत से नये रस्म-रिवाजों का मिश्रण हो गया है। जैसे, वर का जामा पहनना—यह मुसल्मानों की नकल है। जामा शब्द ही विदेशी है। तरह-तरह के बाजे बजना—पूर्व काल में

वीणा आदि सुमधुर बाजे ही बजते थे। मुसलमानी काल में ताशा और दफला आया। अँगरेजी राज में अब बैंड भी विवाह का एक अंग हो गया है। इस तरह हिन्दू-विवाह की विशुद्धता जाती रही।

विवाह के गीतों में एक प्रथा का और भी वर्णन मिलता है, जो आजकल योरप में प्रचलित है। वह है, वर का कन्या के कुटुम्बियों से विवाह का प्रस्ताव करना। हमारे पास कुछ गीत ऐसे हैं, जिनमें वर कन्या के आँगन में जाकर बैठा है और आने का कारण पूछे जाने पर उसने कहा है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करना चाहता हूँ। इस प्रकार का एक गीत आगे दिया भी गया है। आजकल की प्रथा तो यह है कि कन्या का पिता वर की खोज करता है और योग्य वर मिलने पर वह कन्यादान करता है। वर के लिये कन्या के पिता की परेशानी का जैसा चित्र गीतों में खींचा गया है, वैसा शायद ही कोई महाकवि खींचने में समर्थ हो।

विवाह के गीतों में दो प्रकार के गीत हैं। एक तो कन्या के घर में गाये जानेवाले, दूसरे वर के घर में गाये जानेवाले। कन्या-पक्ष के गीत वर-पक्ष के गीतों से अधिक करुण और मधुर हैं। खास कर बेटी की बिदा के गीत तो पत्थर को भी पिघला देनेवाले हैं। वर-पक्ष के गीत ज़्यादातर शोभा-सजावट और धूमधाम के होते हैं।

विवाह के गीतों में सबसे अधिक महत्व-पूर्ण बात यह है कि उनमें ऐसे वर-कन्या के मनोभाव वर्णित हैं, जो अल्पवयस्क नहीं होते; बल्कि युवक और युवती होते हैं। कहीं-कहीं तो वर स्वयं कन्या खोजता फिरता है, और कहीं-कहीं कन्या स्वयं वर के लिये लालायित होती है। कहीं-कहीं कन्या स्वयं यह कहती हुई मिलती है कि 'हे पिता! मेरे लिये ऐसा वर खोजना।' अल्पवयस्का कन्या ऐसा नहीं कह सकती। इससे प्रकट होता है कि ये गीत हिन्दू-समाज में बाल-विवाह प्रचलित होने से पहले के हैं।

समाज बदल गया, पर गीत ज्यों के त्यों रहे। गीत स्त्री-धन हैं; इससे पुरुषों ने उसमें हाथ नहीं लगाया।

विवाह के गीतों में भाई-बहन के अकृत्रिम प्रेम-सम्बन्धी गीत भी बड़े मनोहर हैं। बहन अपने बेटे या बेटी के विवाह में अपने भाई और भौजाई को निमंत्रित करती है। भाई न्योता लेकर आता है। इससे बहन का हृदय उमड़ आता है। इस प्रसंग के हृद्गत भावों का वर्णन गीतों में बड़ी ही सरसता से किया गया है।

विवाह के गीतों में खाने-पीने की चीज़ों की एक लम्बी सूची भी रहती है। विवाह के अवसर पर चाहे सभी चीज़ें न बनती हों, पर वर के जीमते समय व्यञ्जनों के नाम तो गिना ही दिये जाते हैं।

यहाँ विवाह के कुछ गीत दिये जाते हैं—

[१]

कौन की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
किन घर कन्या कुँवारी त दुलहो चाहिए॥ १॥
बबुल की ऊँची अँटरिया सुरुज मुख छाई।
बबुल घर कन्या कुँवारि त दुलहो चाहिए॥ २॥
कौन को पूत तपसिया अँगन मेरे तपु करै।
सजना को पूत तपसिया अँगन मेरे तपु करै॥ ३॥
भीतर से निकरीं अजिया थार भर मोती लिहें।
भीतर से निकरीं मैया थार भर मोती लिहें॥ ४॥
भीतर से निकरीं भौजिया थार भर मोती लिहें।
लेहु न पूत-तपसिया अँगन मेरो छाँड़ो॥ ५॥
कहा करौं थार भर मोतिया अँगन नहिँ छाँड़ौं।
तुम घर कन्या-कुँवारी तु हमका-ब्याहि देव॥ ६॥

बाहर ते आये बिरन भइया हाथ खड्ग लिहे।
मारौं मैं पूत तपसिया बहिन मोरी माँगै॥७॥
भीतर से निकर्सी लाड़ली मोतियन माँग भरे।
जिन मारौ पूत तपसिया जनम मेरो को खेइहैं॥८॥

यह ऊँची अटारी किसकी है? जिसका द्वार पूर्व ओर है। किसके घर में कारी कन्या है? जिसे दूल्हा चाहिये॥१॥

यह ऊँची अटारी आजा (पितामह) की है, जो पूर्वाभिमुख छाई है। बाबा के घर में क्वारी कन्या है, जिसे वर चाहिये॥२॥

यह किसका तपस्वी पुत्र है? जो मेरे आँगन में तप कर रहा है। यह पुत्र सजन (समधी) का है, जो आँगन में तप कर रहा है॥३॥

पितामही थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। माता थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। भावज थाल भरकर मोती लिये भीतर से निकलीं। सब ने कहा—हे तपस्वी पुत्र! यह मोती लो और मेरा आँगन छोड़ दो॥४,५॥

मैं थाल भरकर मोती क्या करूँ? मैं आँगन नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारे घर में क्वारी कन्या है, वह मुझे ब्याह दो॥६॥

बाहर से भाई हाथ में तलवार लेकर आया। उसने कहा—मैं इस तपस्वी को मार डालूँगा, जो मेरी बहन माँग रहा है॥७॥

भीतर से लाड में पली हुई कन्या निकली, जिसकी माँग मोतियों से भरी थी। उसने कहा—हे भाई! इस तपस्वी को मत मारो। इसे मार डालोगे तो मेरे जीवन की नैया खेकर पार कौन लगायेगा?॥८॥

यह गीत उस समय का स्मरण दिला रहा है, जब वर और कन्या दोनों विवाह के लिये स्वतन्त्र थे। संसार-यात्रा सुख-पूर्वक और निर्विघ्न समाप्त करने के लिये दोनों अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल साथी चुनते थे। इस गीत में वर स्वयं कन्या की खोज में निकला है और एक ऐसे घर के

आँगन में आ बैठा है, जिसमें एक क्वारी कन्या रहती है। जान पड़ता है, कन्या की स्वीकृति वह पहले ले चुका था; जैसा कि कन्या ने उस समय, जब कन्या का भाई वर को मारने चला है, आगे बढ़कर कहा है कि तुम इसको मारोगे तो मेरा जीवन खेकर कौन पार लगायेगा? अब कन्या के माता-पिता की स्वीकृति अंतिम थी, जिसके लिये वर आया है। यह प्रथा भारत देश में नहीं है। योरप में है। वहाँ कन्या की स्वीकृति लेकर वर उसके माता पिता से विवाह का प्रस्ताव करता है। जब वे स्वीकार कर लेते हैं, तब विवाह होता है।

गीत में जिस प्रथा का चित्र है, वह हिन्दू-सभ्यता में एक नई वस्तु है। क्योंकि हिन्दुओं के इतिहास और काव्यों में जैसा वर्णन मिलता है, उसके अनुसार कन्या ही पहले वर पर आसक्त होती है। जैसे सावित्री सत्यवान् पर, सीता राम पर, रुक्मिणी श्रीकृष्ण पर और संयोगिता पृथ्वी-राज पर पहले आसक्त हुई थीं। यही यहाँ का आदर्श है, और संस्कृत के कवि सदा इसी आदर्श को महत्त्व देते रहे हैं। गीत में इसके विपरीत जिस प्रथा का वर्णन है, वह प्रथा भी कभी हिन्दुओं में रही होगी, जो अब बिल्कुल उठ गई है।

उस प्रथा का वर्णन इस गीत की प्राचीनता का सब से प्रबल प्रमाण है।

इस गीत से यह भी स्पष्ट होता है कि विवाह कम से कम उस उम्र में होता था, जब कन्या यह कह सकती थी कि "जनम मेरो को खेइहैं" मेरा जन्म कौन खेयेगा? जिस अवस्था में कन्या के हृदय में अपने भावी जीवन की चिंता उत्पन्न हो जाती है और वह अनुभव करने लगती है कि मुझे एक ऐसे योग्य साथी की आवश्यकता है जिसके साथ मैं अपना जीवन सुख-पूर्वक बिता सकूँ, उस अवस्था में यह विवाह हुआ था, जिसका वर्णन इस गीत में है।

हमें इस गीत से और भी कई बातों का पता चलता है। जैसे, घर का द्वार पूर्व ओर होना चाहिये। देहात के लोग प्रायः पूर्व ओर द्वार रखना बहुत पसन्द करते हैं और शुभ समझते हैं। दूसरे तल्वार का उपयोग। आज जिस तरह लाठी घर-घर में है, उसी तरह पूर्व काल में तल्वार प्रत्येक पुरुष के पास होती थी।

भाई तल्वार लेकर मारने क्यों दौड़ा? क्योंकि वह अभी नादान था। बहन के मनोभाव को समझ नहीं सकता था। वह तो केवल इस लिये दुखी था कि उसकी बहन को कोई उससे छीन ले जायगा। प्रकृति कन्या को उसके भाई की पहुँच से बहुत दूर निकाल लाई है। अबोध भाई का यह क्रोध कितना करुणाजनक है!

[२]

सावन सुगना मैं गुर घिउ पाल्यों चैत चना कै दालि।
अब सुगना तू भयउ सजुगवा बेटी क वर हेरइ जाव॥ १॥
उड़त उड़त तू जायो रे सुगना बैठउ डरिया ओनाय।
डरिया ओनाय बैठा पखना फुलायउ चितया नजरिया घुमाय॥ २॥
जे बर सुगना तु देखेउ सुन्दर जेकरि चाल गम्हीर।
जेहि घरा सुगना तु सम्पति देख्यो वोही घर रचेउ बिआह॥ ३॥
हेरेउँ वर मैं सजुग सुलच्छन भहर भहर मुँह जोति।
साठि वरद मैं चन्नि मैं देखेउँ वोहि घर रचहु बिआह॥ ४॥

हे सुआ! तुमको मैंने सावन में गुड़, घी और चैत्र में चने की दाल खिलाकर पाला। अब तुम समझदार हुये। जाओ बेटी के लिये वर ढूँढ़ आओ॥१॥

हे सुआ! तुम उड़ते-उड़ते जाना और पेड़ की डाल झुकाकर बैठना। डाल झुकाकर बैठना, पंख फुलाना और इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर देखना॥२॥

हे सुआ! जिस वर को तुम सुन्दर देखना, जिसकी चाल में गंभी-

रता देखना और जिस घर में धन देखना, वहीं विवाह ठीक करना ॥३॥

सुआ कहता है—मैंने अच्छे लक्षणोंवाला और चैतन्य वर ढूँढ़ लिया है। जिसके मुँह पर ब्रह्मचर्य की आभा दमक रही है। उसके घर में साठ बैल मैंने चन्नि या चरनी (बैल जहाँ पर बाँधकर खिलाये जाते हैं) में देखे। उस घर में विवाह करो ॥४॥

इस गीत से कई बातों का पता चलता है। पहले तो यह कि देहात के लोग किस ऋतु में तोते को क्या-क्या खिलाते हैं। दूसरे विवाह-योग्य वर और घर की व्याख्या। इस व्याख्या में वर की गंभीर चाल और उसके मुँह की ज्योति विशेष ध्यान देने योग्य हैं। गंभीर चाल से वर के विचारवान् होने का और मुँह की ज्योति से उसकी युवावस्था का और विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पता चलता है। वर में ये दो विशेषतायें काफ़ी हैं। और घर में ३० हल चलते हैं। इससे जान पड़ता है कि वह अच्छा किसान है।

[३]

बाबा जे चलेन मोर वर हेरन पाट पितम्बर डारि।
छोटे देखि बाबा करबै न करिहैं बड़ा नाहीं नजरि समाय ॥ १ ॥
अरे अरे बाबा सुग्घर वर हेरेव हम बेटी तोहरी दुलारि।
तीनि लोक मा हम बड़ि सुन्दरि हँसी न करायउ मोरि ॥ २ ॥
उसरा माँ गोड़ि गोड़ि ककरी बोवायों ना जानौं तीत न मीठ।
देसवा निकरि बेटी तोर वर हेरौं ना जानौं करम तोहार ॥ ३ ॥
पूरब हेरेउँ पछुवाँ मैं हेरेउँ हेरेउँ मैं दिल्ली गुजरात।
तुमहिं जोग वर कतहुँ न पावा अब बेटी रहहु कुँवारि ॥ ४ ॥
पूरब हेरेव पछुवाँ में हेरेव हेरेव दिल्ली गुजरात।
चारि दरग भुइयाँ नगर अयोध्या दुइ वर अहैं कुँवार ॥ ५ ॥
वै वर माँगैं बेटी घोड़ा औ हाथी माँगैं मोहर पचास।
वै वर माँगैं बेटी नौलख दायज मोरे बूते देइ न जाइ ॥ ६ ॥

जेकरे न होय बाबा हाथी औ घोड़ा नहिं होय मोहर पचास।
जेकरे न होय बाबा नौ लख रुपैया ते वर हेरै हरवाह ॥ ७ ॥
हर जोति आवै कुदार गोड़ि आवै दइठै मुँह लटकाय।
उनही क तिलक चढ़ाया मोरे बाबा वै वर दयजा न लेथँ ॥ ८ ॥
आसन देखि बाबा डासन दीहौ मुख देखि दीहौ बीरा पान।
अपनी संपति देखि दाइज दीहौ वर देखि दिहौ कन्या दान ॥ ९ ॥

रेशमी पीताम्बर ओढ़कर बाबा मेरे लिये वर खोजने चले हैं। छोटे वर से तो वे मेरा विवाह करेंगे ही नहीं। बड़ा उनकी आँख में समायगा ही नहीं ॥१॥

हे बाबा! सुघर वर ढूँढ़ना। मैं तुम्हारी दुलारी बेटी हूँ। मैं तीनों लोकों में सबसे अधिक सुन्दरी हूँ। देखना, मेरी हँसी न कराना ॥२॥

बाबा ने कहा—ऊसर को गोड़-गोड़कर मैंने ककड़ी बोआई है। पर मालूम नहीं, ककड़ियाँ तीती होंगी या मीठी? इसी तरह हे बेटी! मैं देश-विदेश जाकर तुम्हारे लिये वर ढूँढ़ता हूँ। पता नहीं, तुम्हारे भाग्य में क्या बदा है? वर अच्छा मिलता है या अयोग्य ॥३॥

बाबा ने कहा—मैंने पूरब ढूँढ़ा, पश्चिम ढूँढ़ा, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया। पर हे बेटी! तुम्हारे अनुरूप कहीं वर नहीं पाया। अब तुम कुमारी रहो ॥४॥

बेटी ने कहा—हे पिता! तुमने पूरब भी ढूँढ़ डाला, पश्चिम भी ढूँढ़ डाला, दिल्ली और गुजरात भी ढूँढ़ लिया। पर चार ही क़दम पर अयोध्या नगरी है, जहाँ दो वर क्वारे हैं ॥५॥

बाबा ने कहा—हे बेटी! वे वर घोड़ा-हाथी और पचास मोहरें तथा नौ लाख का दहेज माँगते हैं। मेरी हिम्मत तो इतना देने की नहीं है ॥६॥

बेटी ने हँसी किया—हे पिता! जिसके हाथी-घोड़ा न हो, पचास

मोहरें न हों और जो नौ लाख का दहेज न दे सके, वह हल जोतनेवाला वर ढूँढ़ दे ॥७॥

जो हल जोतकर आवे, कुदार से खेत गोड़कर आवे तो मुँह लटकाकर बैठे। हे बाबा! उन्हीं को तिलक चढ़ाना। वे वर दहेज नहीं लेते ॥८॥

जैसा आसन हो, वैसा डासन (बिछौना) देना। मुँह देखकर पान का बीड़ा देना। अपना धन देखकर दहेज देना। और वर देखकर कन्या-दान देना ॥९॥

इस गीत की कन्या इतनी सयानी हो चुकी है कि अपने बाबा के मन की पसंद का उसे पता है। साथ ही कन्या को यह भी पता है कि योग्य वर कहाँ-कहाँ हैं? वह अपने बाबा से कहती भी है कि तुम सब जगह तो दौड़ आये, पर वहाँ नहीं गये। वह इतनी समझदार भी हो चुकी है कि किसान के जीवन की आलोचना कर सकती है। जैसा उसने हलवाहे का मज़ाक उड़ाया है। खासकर मुँह लटकाकर बैठनेवाली बात तो बड़ी ही विनोद-पूर्ण है।

[४]

पहिले मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली जनकपुर नैहर अवधपुर सासुर हो ॥ १ ॥
दुसर मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली कौसिल्या ऐसन सासु ससुर राजा दसरथ हो ॥ २ ॥
तिसर मँगन सीता माँगैली से हो बिधि पुरवहु हो।
ललना माँगैली पुरुष रामचंद्र देवर बबुआ लछिमन हो ॥ ३ ॥
चौथा मँगन सीता माँगैली उहो बिधि पुरवैलैं हो।
ललना लव कुश ऐसन माँगै पूत जनम अहिवाती हो ॥ ४ ॥

सीता ने पहला माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि जनकपुर नैहर और अवधपुर ससुराल हो ॥१॥

सीता ने दूसरा माँगन यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि कौशल्या ऐसी सास और राजा दशरथ ऐसे ससुर मिलें ॥२॥

तीसरा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें, कि पति भगवान् रामचन्द्रजी हों और देवर लक्ष्मण ॥३॥

चौथा माँगन सीता ने यह माँगा, जिसे ब्रह्मा पूरा करें कि लव, कुश ऐसे पुत्र हों और मैं जन्म भर सौभाग्यवती रहूँ ॥४॥

प्रत्येक हिन्दू-परिवार में दशरथ, कौशल्या, राम, सीता, लक्ष्मण और भरत आदर्श-रूप होते हैं। हिन्दुओं ने अपने आदर्श को प्रत्येक घर में प्रतिबिम्बित कर रक्खा है।

[५]

कौन गरहनवाँ बाबा साँझे जे लागै कौन गरहन भिनुसार।
कौन गरहनवाँ बाबा औघट लागै कब धौं उगरह होइ॥ १॥
चन्द्र गरहनवा बेटी साँझे जे लागै सुरुज गरहनवा भिनुसार।
धेरिया गरहनवा बेटी औघट लागै कब धौं उगरह होइ॥ २॥
काँपइ हाथी रे काँपइ घोड़ा काँपइ नगरा के लोग।
हाथ में कुस लिहे काँपइँ बाबा कब धौं उगरह होइ॥ ३॥
रहँसइँ हाथी रे रहँसइँ घोड़ा रहँसइँ सकल बरात।
मड़ये मुदित मन समधी रे बिहँसइ भले घर भयहु बिआह॥ ४॥
गंगा पैठि बाबा सुरुज से बिनवइँ मोरे बूते धेरिया जिनि होइ।
धेरिया जनम तब दीहा विधाता जब घर सम्पति होइ॥ ५॥

कन्या पूछती है—हे पिता! कौन ग्रहण रात में लगता है? और कौन दिन में? और कौन ग्रहण बे वक्त लगता है? और कब छूटता है? ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी! चन्द्र-ग्रहण रात में लगता है और सूर्य-ग्रहण दिन में। कन्या-ग्रहण का कोई ठिकाना नहीं कि कब लगे और कब छूटे ॥२॥

हाथी काँप रहे हैं, घोड़े काँप रहे हैं, नगर के लोग काँप रहे हैं, हाथ में कुश लिये बाबा काँप रहे हैं। न जाने कब छुट्टी मिलेगी ॥३॥

हाथी प्रसन्न हैं, घोड़े प्रसन्न हैं, सारी बारात प्रसन्न हैं; माँड़ों के नीचे बैठा हुआ समधी (वर का बाप) प्रसन्न है कि अच्छे गृहस्थ के यहाँ मेरे पुत्र का विवाह हुआ है ॥४॥

पिता गंगाजी में खड़े होकर सूर्य से विनय करते हैं—हे सूर्य! मेरे बल पर कन्या न देना। कन्या का जन्म तभी हो, जब घर में सम्पत्ति हो ॥५॥

गीत के अन्त में कन्या के पिता ने कैसी मार्मिक बात कही है। जब वर और कन्या अपनी पसंद के अनुसार विवाह कर लेते थे, तब उनके पिताओं पर इतना भार नहीं पड़ता था। पर जब से पिताओं ने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है, तब से उनकी चिन्ता बढ़ गई है। और आजकल तो कन्या के पिता को इतना कष्ट, इतना अपमान सहना पड़ता है कि कन्या का पिता होना पूर्वजन्म के किसी अपराध का फल ही समझना चाहिये।

[६]

देउ न मोरी माई बाँसि क डेलैया फुलवा लोढ़न हम जाब।
फुलवा लोढ़त भइली खड़ी दुपहरिया हरवा गछत
भइली साँझ रे ॥ १ ॥

घुमरि घुमरि सीता फुलवा चढ़ावैं शिव बाबा देलेन असीस।
जौन माँगन तुहुँ माँगो सीतल देई उहै माँगन हम देव ॥ २ ॥

अन धन चाहे जो दिहा शिव बाबा स्वामी दिहा सिरी राम।
पार लगावैं जे मोरि नवरिया जेहि देखे हिअरा जुड़ाइ ॥ ३ ॥

हे मेरी माँ! बाँस की डलिया मुझे दो। मैं फूल लोढने (चुनने, तोड़ने) जाऊँगी। फूल लोढ़ने में दुपहरी हो गई और हार गाँछने (बनाने) में शाम हो गई ॥१॥

घूम-घूम कर सीता फूल चढ़ा रही हैं। शिव बाबा ने प्रसन्न होकर कहा—हे सीता देवी ! जो तुम माँगो, मैं वही दूँगा ॥२॥

सीता ने कहा—हे शिव बाबा ! अन्न और धन तो चाहे तुम जितना देना, पर स्वामी श्रीरामचन्द्र देना। जो मेरी नाव को लेकर पार लावें और जिन्हें देखकर हृदय शीतल हो जाय ॥३॥

सच है, स्त्री को तो केवल एक योग्य स्वामी चाहिये, जो उसकी नाव को लेकर पार लगा दे।

[७]

पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरवा पुरइनि हालर देइ।
तेहि घाटे दुलहे धोतिया पखारैं पूछैं दुलहिन देई बात ॥ १ ॥
केकर अहे तुँ नतिया रे पुतवा कौने बहिनिया क भाय।
कौने बनिजिया चले बर सुन्दर केकरे सगरे नहाउ ॥ २ ॥
अजवा कौन सिंह क नतिया रे पुतवा कौन कुँवरि कर भाइ।
सेन्दुर बनिजिया चले हम सुन्दरि ससुर के सगरे नहाउँ ॥ ३ ॥
येतनो बचन सुनि दुलही कौन कुँवरि धाय माया लगे जायँ।
जे बर मोरे माया नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ ॥ ४ ॥
राम रसोइयाँ भौजी कौन कुँवरि धाय भौज लग जाय।
जे बर भौजी नगरा ढुँढ़ाये से बर सगरे नहायँ ॥ ५ ॥
आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बैठहु कुँचहु महोबे के पान।
अपने कमिनिया क डँड़िया फँदावहु लै जाउ बैरिनि हमारि ॥ ६ ॥
की भौजी तोर नोनवा चुरायउँ की तेल दिहौं ढरकाय।
की भौजी तोर भइया गरिआयउँ कौने गुन बैरिनि तोहारि ॥ ७ ॥
ना ननदी मोर नोनवा चुरायउ न तेलवा दिह्यो ढरकाय।
ना ननदी मोर भइया गरिआयउ बोली गुन बैरिनि हमारि ॥ ८ ॥

–पूरब से पच्छिम तक खूब लम्बा-चौड़ा मेरे बाबा का तालाब है।

जिसमें पुरइन (कमल का पत्ता) लहरा रहे हैं। उसी तालाब के घाट पर दुलहा धोती पछार रहा है। उससे दुलहिन बात पूछती है ॥१॥

तुम किसके नाती और किसके पुत्र हो ? तुम किस बहन के भाई हो ? हे सुन्दर वर ! किस चीज़ का व्यापार करने के लिये तुम निकले हो ? और किसके तालाब में नहा रहे हो ? ॥२॥

वर कहता है—अमुक सिंह मेरे पितामह हैं और अमुक देवी का मैं भाई हूँ। हे सुन्दरी ! सिन्दूर का व्यापार करने के लिये हम निकले हैं और अपने ससुर के तालाब में नहा रहे हैं ॥३॥

यह बात सुनते ही कन्या अपनी माँ के पास दौड़कर गई और कहने लगी—माँ, जिस वर के लिये सारे शहर ढूँढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥४॥

कन्या की भौजाई रसोई में थी। वह उसके पास जाकर बोली—भौजी ! जिस वर के लिये सारे शहर ढूँढ़ डाले गये, वह वर तो तालाब पर नहा रहा है ॥५॥

भौजाई ने कहा—आओजी ननदोईजी ! पलँग पर बैठो और महोबे का पान कूँचो। अपनी कामिनी के लिये पालकी सजाओ और मेरी इस बैरिन को ले जाओ ॥६॥

ननद ने कहा—हे भौजी ! तुम मुझे बैरिन क्यों कहती हो ? क्या मैंने तुम्हारा नमक चुराया था ? या तेल गिरा दिया था ? या तुम्हारे भाई को गाली दी थी ? ॥७॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! न तुमने मेरा नमक चुराया, न तेल ढुलकाया और न मेरे भाई ही को गाली दी। केवल बोली के कारण से तुम मेरी बैरिन हो ॥८॥

इस गीत से यह बात मालूम होती है कि कन्या की अवस्था इतनी बड़ी हो चुकी थी कि वह अपने भावी पति के रूप और गुण की प्रशंसा

सुनकर उस पर हृदय से आसक्त हो चुकी थी। उधर वर भी कन्या की खोज में चला हुआ जान पड़ता है। पहले से उसे कन्या और उसके पिता आदि का हाल ज्ञात न होता तो वह कैसे कहता कि 'ससुर के सगरे नहाउँ'। मालूम होता है, वह कन्या को एक बार अपनी आँखों से देखने आया था।

दूसरी बात इस गीत में यह है कि भौजाई ने ननद को अपनी बैरिन बताया है। कारण पूछने पर उसने ननद को बताया है कि तुम बहुत कटुवचन बोलती हो। ननद भौजाई में प्रायः झगड़े हुआ करते हैं और इसमें प्रधान कारण कटुवचन ही होता है।

[८]

पिया अपने को प्यारी, पिया अपने को प्यारी,
सो अपने पिया पै सिँगार करो ॥ १ ॥
पहिरो धर्म की जेहरि, पहिरो धर्म की जेहरि,
से भजन की दुन्दुभि बाजि रही ॥ २ ॥
ओढ़ो चुप्प चुनरिया, ओढ़ो चुप्प चुनरिया
सो ज्ञान को घाँघरो घूम रहो ॥ ३ ॥
पहिरो अकिल की अँगिया, पहिरो अकिल की अँगयिा,
सो श्रुति स्मृति दोऊ बंद लगे ॥ ४ ॥
पहिरो हरी पीरी चुरियाँ, पहिरो हरी पीरी चुरियाँ,
सो बीच बँगलियाँ अजब बनी ॥ ५ ॥
पहिरो दसहु मुँदरिया, पहिरो दसहु मुँदरिया
सो पोरन पोरन पहिर लई ॥ ६ ॥
पहिरो शील को सूता, पहिरो शील को सूता
सो दया की हमेल गले में डरी ॥ ७ ॥

पहिरो नेह नथुनिया, पहिरो नेह नथुनिया,
सो प्रेम को लटकन झूम रहो ॥ ८ ॥
करो मान को काजर, करो मान को काजर
सो बिरहा की बेंदी लिलार दई ॥ ९ ॥
पाँचो तत्व को तेलवा, पाँचों तत्व को तेलवा
सो सुमति की डोरी से चोटी गुही ॥१०॥
इतनो धन पहिरो, इतनो धन पहिरो
तब रूठे पिया को मनावै चलो ॥११॥
साईं मो तन हेरो, साईं मो तन हेरो
सो उठ के कबीरा गुरु बाँह गही ॥१२॥

हे अपने प्रियतम की प्यारी स्त्री! अपने प्रियतम के लिये यह श्रृङ्गार करो।

पतिव्रत-धर्म की माला पहनकर, भजन का नगाड़ा बजाकर, चुप की चुनरी, ज्ञान का घाँघरा, बुद्धि की अँगिया—जिसमें श्रुति और स्मृति दो बंद लगे हैं, हरी पीली चूड़ियाँ, दसो उँगलियों में अँगूठियाँ, शील के सुत में दया की हमेल, स्नेह की नथनी, प्रेम का लटकन, मान का काजल, विरह की बेंदी पहनकर, पाँचों तत्वों का तेल लगा कर, सुमति की डोरी से चोटी गूँथकर हे स्त्री! अपने प्रियतम को मनाने चलो।

इस गीत का अभिप्राय यह है कि धातु के गहनों से शरीर की शोभा नहीं बढ़ सकती और न उसे देखकर पति ही प्रसन्न हो सकता है। बल्कि गुणों के गहनों ही से स्त्री की शोभा बढती है। गुणवती स्त्री ही पति को प्यारी हो सकती है। इस गीत का आध्यात्मिक अर्थ भी है, जो जीव को स्त्री और ब्रह्म को पति मानकर किया जाता है।

[९]

सासु तो चली हैं निहारन झीने झीने कापड़।
केकरे मैं आरती उतारौं कवन बर सुन्दर ॥ १ ॥
ओढ़े हैं पीत पितम्बर और बघम्बर।
सिर कि मउरिया लपकत आवइ, इन्हई के अरती
उतारौ, यही बर सुन्दर ॥ २ ॥
सासु तौ अरती उतारिन बिनती बहुत करैं।
अबै मोर धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै ॥ ३ ॥
तोरि धिया लरिका अजान कुछौ नाहिं जानै।
हमहूँ कमल कर फूल दुहूँ जन बिहँसब ॥ ४ ॥

बारीक कपड़े पहनकर सास देखने चली है। वह सुन्दर वर कौन है ? मैं किसकी आरती उतारूँ ? ॥१॥

जो पीताम्बर और बाघम्बर ओढ़े हैं, जिनके सिर पर मौर चमक रहा है, ये ही सुन्दर वर हैं। इनकी आरती उतारो ॥२॥

सास ने आरती उतारी और बड़ी विनती की कि अभी मेरी कन्या बहुत नादान है, कुछ नहीं जानती ॥३॥

पति ने कहा—तुम्हारी कन्या नादान है और कुछ नहीं जानती तो क्या हुआ ? मैं भी तो कमल के फूल सा हूँ। दोनों जन प्रसन्न होंगे ॥४॥

[१०]

राजा जनक अइलें नहाइ के मनहिं उदासल।
कवन चरित्र आज भइलें धनुष तर लीपल ॥ १ ॥
हम नहिं जानीला ए हरि पुछि ल सीताजी से।
सीता के सखिआ बहुती जनकजी के आँगन ॥ २ ॥
जनक सीता बलावेलें जान्ह बैठावेलें।
बेटी कवने हाथ धनुष उठाव कवन हाथे लीपेलु ॥ ३ ॥

बाँयें हाथे धनुषा उठाइ दहिने हाथ लिपीला।
इहे चरित्र आज भइले धनुष तर लीपल ॥ ४ ॥
जनक मन पछितालनी मन में दुखित भयें।
अब सीता रहेले कुँवारी जनम कैसे बीती ॥ ५ ॥
काहे के बाबा पछिताला त मन में दुखित होला।
अब हम पुजबों भवानी त राम बर पाइब ॥ ६ ॥
कंचन थाली गढ़ावेलीं आरती साजेलीं।
चलौ न सखि फुलवारी त पूजें भवानी ॥ ७ ॥
घुमरि घुमरि सीता पूजेलीं पूजेलीं भवानी।
परसन होई न भवानी त पुरव मनोरथ ॥ ८ ॥
देबि जे हँसलीं ठठाई के बड़े परसन से।
पुजिहें मने क मनोरथ राम बर पावेलु ॥ ९ ॥

जनक स्नान करके उदास मन से घर आये। पूछने लगे कि आज यह क्या अद्भुत काम हुआ कि धनुष के नीचे लीपा हुआ है ॥१॥

जनक की रानी ने कहा—हे नाथ! मैं नहीं जानती। देखिये, सीता से पूछती हूँ। जनकजी के घर में सीता की बहुत सी सखियाँ हैं ॥२॥

जनक ने सीता को बुलाया, प्यार से जाँघ पर बैठाकर पूछा—बेटी! किस हाथ से धनुष उठाया और किस हाथ से लीपा? ॥३॥

सीता ने कहा—बाये हाथ से धनुष उठाकर दाहिने से लीपा करती हूँ। आज धनुष के नीचे लीपा है। यही बात है ॥४॥

जनक मन ही मन पछताने लगे कि अब सीता कुँवारी रहेगी तो इसका जनम कैसे बीतेगा? ॥५॥

सीता ने कहा—पिता! पछताते क्यों हो? दुःखित क्यों होते हो? अब मैं देवी की पूजा करूँगी और राम को वरूँगी ॥६॥

सीता ने सोने की थाली बनवाई, आरती सजाया और सखियों से

कहा—सखियो ! फुलवारी में चलो, देवी की पूजा करें ॥७॥

सीता घूम-घूम कर, बार-बार देवी की पूजा करती हैं और प्रार्थना करती हैं—हे देवी ! प्रसन्न हो, मनोरथ पूर्ण करो ॥८॥

देवी बहुत प्रसन्न होकर, ठठाकर हँसी और बोलीं—बेटी ! तुम्हारे मन का मनोरथ पूर्ण होगा और तुम को राम वर मिलेंगे ॥९॥

हिन्दू-स्त्रियों में सीता के विवाह के लिये जनक के चिन्तित होने की कथा इसी तरह प्रचलित है। इससे प्रकट होता है कि सीता जब इस अवस्था को पहुँचीं कि बाँयें हाथ से धनुष उठा सकीं, तब जनक को उनके विवाह की चिन्ता हुई। आश्चर्य है कि ऐसे गीत गा-गाकर भी स्त्रियाँ नन्हीं-नन्हीं बच्चियों का विवाह पसंद करती हैं।

[११]

सात सखी सीता चढ़ि गईं अटरिया इन्द्र झरोखे लाग।
कौन दुल्हा कौन दुल्हे क बाबा कौन दुलहे जेठ भाय ॥ १ ॥
माती हथिनिया रे घुमरत आवै घुमरि-घुमरि डारै पाँव।
सोने कै मटुकवा बिराजत आवै वै दुलहे कर बाप ॥ २ ॥
नदिया के ईरे तीरे घोड़ा दौड़ावैं मोछिया भँवर मननाय।
हाथे सुबरना गरे मोती माला वै दुलहे जेठ भाय ॥ ३ ॥
चनना कै डँड़िया चमाकत आवै जूमत चारिउ कहाँर।
पीत पितम्बर झलाकत आवैं ओई अहैं दुलरू दमाद ॥ ४ ॥

सात सखियों के साथ सीता अटारी पर चढ़ गईं। अटारी इतनी ऊँची थी कि उसके झरोखे से इन्द्र झाँक सकता था। सीता पूछती हैं—कौन वर हैं ? कौन वर का पिता है ? और कौन वर का जेठा भाई है ? ॥१॥

सखियाँ कहती हैं—मतवाली हथिनी झूमती आती है, और घूम-घूम कर पाँव रखती है। उस हथिनी पर वर का बाप है, जिसके सिर पर सोने का मुकुट शोभायमान है ॥२॥

जो नदी के किनारे-किनारे घोड़ा दौड़ा रहा है, जिसकी मोंछ भौंरे के समान काली है, और जिसके हाथ में सोने का कड़ा और गले में मोती की माला है, वह वर का जेठा भाई है ॥३॥

चन्दन की पालकी चमकती हुई आ रही है। उसको उठाये हुए चार कहार झूमते हुये आ रहे हैं। जिसका पीला रेशमी वस्त्र झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं ॥४॥

[१२]

नीले नीले घोड़वा छैल असवरवा कुरखेते हनइ निसान।
खिरकी उघेरि के अम्माँ जो देखैं धिया दस आउरि होइँ ॥ १ ॥
होइगा बियाह परा सिर सेंदुर नौ लख दाइज थोर।
भितराँ कइ भाँड़ बाहर दइ मारीं सतरू के धिया जिनि होइ ॥ २ ॥

नीले घोड़े पर जो छैल सवार है, वह ऐसा वीर है कि कुरुक्षेत्र (रण-भूमि) में विजय का झंडा खड़ा करता है, या रणभूमि में शत्रु का झंडा तोड़ डालता है। उसे जब खिड़की खोलकर माँ देखती है, तब उसका जी हुलसता है और वह चाहती है कि दश कन्यायें और होतीं तो ठीक था ॥१॥

पर जब ब्याह हो गया, माँग में सिंदूर पड़ गया और नौ लाख का दहेज भी थोड़ा समझा गया, तब माँ ने भीतर का बरतन-भाँड़ा बाहर पटक दिया और कहा—शत्रु को भी कन्या न हो ॥२॥

इन चार पंक्तियों में कन्या के विवाह का वर्तमान चित्र बहुत अच्छी तरह खींचा गया है। तरुण और रणबाँकुरा दामाद देखकर कन्या की माँ का हृदय आनंद से उमड़ आता है, यह स्वाभाविक ही है। पर दहेज की कुप्रथा से जो कष्ट कन्या के माँ-बाप को उठाना पड़ता है, और उससे जो विक्षोभ पैदा होता है, उसका बहुत ही तथ्य वर्णन गीत की चौथी पंक्ति में आ गया है।

गीत से यह भी मालूम होता है कि जिस समय का यह गीत है, उस समय बाल-विवाह नहीं होता था। ७, ८ वर्ष का बालक न छैल ही हो सकता है, न घोड़े की सवारी ही कर सकता है, और न कुरुक्षेत्र में झंडा ही गाड़ सकता है।

[१२]

घोड़े चढ़ु दुलहा तू घोड़े चढ़ु यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु ढाल तरुवारि त यहि रन बन में ॥ १ ॥
पहिनौ पियरी पीताम्बर यहि रन बन में।
दुलहा बाँधि लेहु लटपट पाग त यहि रन बन में ॥ २ ॥
कैसे के बाँधौ पाग त यहि रन बन में।
दुलहिनि मरम न जान्यौं तोहार त यहि रन बन में ॥ ३ ॥
जतिया तो हमरी पंडित कै यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में ॥ ४ ॥
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन बन में।
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में ॥ ५ ॥
यतनी बचनिया के सुनतइ यहि रन बन में।
दुलहा घोड़े पीठि लिहेनि बैठाय त यहि रन बन में ॥ ६ ॥
यक बन गैलें दुसर बन यहि रन बन में।
दुलहा तिसरे में लागी पियास त यहि रन बन में ॥ ७ ॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुँद यक पनिया पियाव त यहि रन बन में ॥ ८ ॥
ताल औ कुँइयाँ सुखानी त यहि रन बन में।
पनिया रकत के भाव बिकाय त यहि रन बन में ॥ ९ ॥
ऊँचवै चढ़ि के निहारेनि यहि रन बन में।
दुलहिनि झरना बहे जुड़ पानि त यहि रन बन में ॥१०॥

दुलहिनि झरना बहै जुड़ पानि त यहि रन बन में।
दुलहिनि ठाढ़े हैं मुग़ुल पचास त यहि रन बन में ॥११॥
अरे अरे जनम सँघाती त यहि रन बन में।
दुलहा बुँद एक पनिया पिआउ त यहि रन बन में।
दुलहा मोरी तोरी छूटै सनेहिया त यहि रन बन में ॥१२॥
यतना बचन सुनि पायेन त यहि रन बन में।
दुलहा खींचि लिहेनि तरवरिया त यहि रन बन में ॥१३॥
ठाढ़े एक ओर मुग़ुल पचास त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन बन में ॥१४॥
रामा जूझे हैं मुग़ुल पचास त यहि रन बन में।
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन बन में ॥१५॥
पतवा के दोनवा लगायनि यहि रन बन में।
दुलहिनि पनिया पियहु डभकोरि त यहि रन बन में ॥१६॥
पनिया पियै दुलहिन बैठीं त यहि रन बन में।
दुलहा पटुकन करैं बयारि त यहि रन बन में ॥१७॥
दुलहा मोर धरम लिहेउ राखि त यहि रन बन में।
दुलहा हम तोहरे हाथ बिकानि त यहि रन बन में ॥१८॥
यतनी बचनिया के साथ त यहि रन बन में।
दुलहिन मलवा दिहिन गर डारि त यहि रन बन में ॥१९॥

हे दुलहा! घोड़े पर चढ़ लो, घोड़े पर चढ़लो। इस निर्जन और भयानक बन में ढाल-तलवार बाँध लो ॥१॥

पीला पीताम्बर पहन लो और जल्दी-जल्दी पगड़ी बाँध लो ॥२॥

पुरुष ने कहा—मैं कैसे पगड़ी बाँधू? मैं तो जानता ही नहीं कि तुम कौन हो? ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं तो ब्राह्मण-कन्या हूँ। मुग़लों के डर से इस जंगल

में छिपी हूँ ॥४॥

मुग़लों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला। मैं मुग़लों के डर से इस जंगल में लुकी हूँ ॥५॥

इतना सुनते ही पुरुष ने स्त्री को घोड़े पर बैठा लिया ॥६॥

वे एक बन से दूसरे में गये। तीसरे बन में स्त्री को प्यास लगी ॥७॥

स्त्री ने कहा—हे जीवन के संगी! बड़ी प्यास लगी है। एक बूँद पानी पिलाओ ॥८॥

पुरुष ने कहा—इस बन में सभी ताल और कुएँ सूख गये हैं। पानी तो लोहू के भाव का हो गया है ॥९॥

पुरुष ने ऊँचे चढ़कर देखा तो बन में ठंडे पानी का एक झरना बहता दिखाई दिया। उसने कहा—हे दुलहिन! ठंडे पानी का एक झरना बह तो रहा है ॥१०॥

पर वहाँ पचास मुग़ल खड़े हैं ॥११॥

स्त्री ने कहा—हे दुलहा! हे जीवन के संगी! इस घोर बन में तुम मुझे एक बूँद पानी पिलाओ। हे दुलहा! नहीं तो हमारी तुम्हारी प्रीति अब छूट रही है ॥१२॥

इतना सुनते ही पुरुष ने हाथ में तलवार खींच ली ॥१३॥

उस बन में एक ओर तो पचास मुग़ल खड़े हैं और एक ओर अकेला दुलहा ॥१४॥

पचासों मुग़लों को मारकर दुलहा राजा युद्ध जीतकर अकेला खड़ा है ॥१५॥

पत्ते के दोने में दुलहे ने दुलहिन को पानी दिया और कहा—दुलहिन! खूब तृप्त होकर पानी पिओ ॥१६॥

दुलहिन बैठकर पानी पीती है और दुलहा दुपट्टे के छोर से हवा कर रहा है ॥१७॥

दुलहिन ने कहा—हे दुलहा! तुमने मेरा धर्म रख लिया। मैं तुम्हारे हाथ बिक गई हूँ ॥१८॥

इतना कहकर दुलहिन ने दुलहे के गले में अपनी माला डाल दी। अर्थात् उसको वरण कर लिया ॥१९॥

यह गीत मुग़लों के जमाने का जान पड़ता है। मुग़लों ने किसी ब्राह्मण की रूपवती कन्या को ज़बरदस्ती छीन लेने की नीयत से उसका घर घेर लिया, और कन्या देना अस्वीकार करने पर कन्या के बाप और भाई को मार डाला था। कन्या भागकर एक वन में छिप गई थी। मुग़ल उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक झरने के पास पहुँचे थे। उसी समय कन्या के पास से कोई हिन्दू वीर निकलता है, जो कन्या का कष्ट सुनकर उसे घोड़े पर बैठाकर ले चलता है। रास्ते में कन्या को प्यास लगती है। पानी के लिये युवक झरने के पास पहुँचता है और पचासों मुग़लों को मारकर कन्या को पानी पिलाता है। युवक उसकी थकान मिटाने का प्रयत्न भी करता है। युवक ने कन्या का धर्म और प्राण दोनों बचाये। उसके बाप और भाई की मृत्यु का बदला भी लिया तथा अकेले पचास मुग़लों से लड़कर और उन्हें मारकर अपनी शूरता का भी परिचय दिया। इससे हिन्दू-कन्या का हृदय स्वाभाविक कृतज्ञता से उमड आया। उसने वहीं उस वीर और सहृदय युवक को सब उपकारों के बदले में अपना हृदय समर्पण कर दिया और उसके गले में जयमाला डालकर उसे वरण कर लिया।

एक समय वह था, जब हमारे घरों में ऐसे युवक पैदा होते थे, जो पचास-पचास से अकेले लड़कर विजयी होते थे। इस गीत में उस समय की एक क्षीण आभा वर्तमान है।

[१४]

ऊँच ऊँच बखरी उठाओ मोरे बाबा ऊँच ऊँच राखो मोहार।
चाँद सुरज दोनों किरनी बसत हैं निहुरै न कन्त हमार ॥ १ ॥

अम्मर सेनुरा मँगावो मोरे बाबा पिया से भरावो मोरी माँग।
सूघर बँभना से गँठिया जोरावहु जनम जनम अहिवात ॥ २ ॥
अम्मर डँड़िया फनाओ मोरे बाबा बिदवा करावो हमार।
सात परग सँग चलि के हो बाबा अब मैं भइउँ पराइ ॥ ३ ॥

हे बाबा ! ऊँची ऊँची बखरी (घर) बनवाओ और उसमें ऊँचे-ऊँचे मोहार (दरवाज़े) रक्खो। जिससे मेरे स्वामी को निहुरना (झुकना) न पड़े ॥१॥

हे बाबा ! अमर करनेवाला सिन्दूर मँगाओ और प्रियतम से मेरी माँग भराओ। सुघर ब्राह्मण से मेरी गाँठ जोड़ाओ, जिससे जन्म जन्मान्तर तक मेरा सुहाग बना रहे ॥२॥

हे बाबा ! अमर करनेवाली पालकी सजाओ और मुझे विदा करो। सात पग साथ चलकर अब मैं पराई हो गई हूँ ॥३॥

सात पग साथ चलकर पराई हो जानेवाली कन्या धर्म के महत्त्व को समझती है। इसी से कहा है—

सतां सप्तपदी मैत्री।

सात क़दम साथ चल लेने ही से सज्जनों में मैत्री हो जाती है।

[१५]

उँच उँच कोठवाँ उठइहा मोर बाबा हो बिचबिच झँझरी लगाइ।
बियहन अइहैं बाबा तिन लोक राजा हो रहिहैं झँझरिया लोभाइ हे ॥ १ ॥
सब कोइ देखेल बाग बगइचा देखेल फूल फुलवारि हो।
रामचन्द्र देखेलें बाबा के झँझरी के अइसन झँझरी उरेह हे ॥ २ ॥
दान दहेज सासु कुछ नाहीं लेबों हो ना लेबों चढ़ने के घोड़ हे।
जउन तिवइया यहि झँझरी उरेहले तिन्हकाँ मैं सँग लइ जाब हो ॥ ३ ॥

दान दहेज बाबू सब कुछ देबों हो देबों मैं चढ़ने के घोड़ हे।
बेटी सीता देई झँझरी उरेहलीं तिन्हहूँ क सँग लइ जाहु हो ॥ ४ ॥

हे बाबा! ऊँचे-ऊँचे कोठे बनवाना, और बीच-बीच में खिड़की लगवाना। तीन लोक के मालिक विवाह करने आवेंगे। वे खिड़की देखकर लुभा जायँगे ॥१॥

बारात के लोग बाग़-बग़ीचा और फूल-फुलवाड़ी देख रहे हैं। पर रामचंद्र बाबा की खिड़की देख रहे हैं और मोहित हो रहे हैं कि ऐसी खिड़की पर चित्र किसने बनाये हैं? ॥२॥

रामचन्द्र ने कहा—हे सास! मैं न दान लूँगा, न दहेज। न चढ़ने के लिये घोड़ा ही लूँगा। जिसने इस खिड़की पर चित्र बनाये हैं, उसे मैं साथ ले जाऊँगा ॥३॥

सास ने कहा—हे बेटा! दान-दहेज भी मैं दूँगी और चढ़ने को घोड़ा भी दूँगी। सीता बेटी ने ये चित्र बनाये हैं, उसे भी दूँगी। उसे अपने साथ ले जाओ ॥४॥

प्राचीन भारत में चित्रकला का घर-घर प्रचार था। चित्रकला का जानना कन्या की शिक्षा का एक अंग समझा जाता था। कन्यायें ऐसा चित्र बना सकती थीं, जो देखनेवालों का चित्त हरण कर लेते थे और वर भी उत्तम चित्र की पहचान ही नहीं करते थे, बल्कि उस पर मुग्ध होनेवाला हृदय भी रखते थे।

[१६]

उत्तर हेर्‌यों दक्खिन ढूँढ्यों ढूँढ्यों मैं कोसवा पचास रे।
बेटी के वर नहिं पायों मालिनि मरि गयों भुखिया पियास ॥ १ ॥
बैठो न बाबूजी चनन चौकिया पियौ न गेडुअवा जुड़ पानि रे।
कइसन घर रौरा चाही ये बाबू कइसन चाही दमाद ॥ २ ॥

सभवा बैठ हम समधी जे चाहिल जैसे तरैया में चाँद रे।
मचिया बैठलि हम समधिन चाहिल खोलि खोलि बिरवा
चबाति ॥ ३ ॥
सातहिं पाँच हम देवर चाहिल ननद जे चाही अकेल।
दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय रे ॥ ४ ॥

मैंने उत्तर ढूँढा, दक्खिन ढूँढ़ा, पचास कोस तक मैं ढूँढ़ता फिरा। पर हे मालिन! अपनी बेटी के उपयुक्त वर मैंने नहीं पाया। भूख-प्यास से मैं मर गया ॥ १ ॥

मालिन ने कहा—हे बाबूजी! इस चन्दन की चौकी पर बैठिये, ठंडा जल पीजिये। आपको कैसा घर और कैसा वर चाहिये? ॥ २ ॥

बाबूजी ने कहा—हे मालिन! मैं ऐसा समधी चाहता हूँ जो सभा के बीच इस तरह बैठता हो, जैसे तारों के बीच में चन्द्रमा। और मचिया पर बैठी हुई ऐसी समधिन चाहता हूँ, जो खोल खोलकर पान के बीड़े खाती हो ॥ ३ ॥

मैं अधिक नहीं, पाँच ही सात देवर चाहता हूँ। और एक ही ननद। दामाद ऐसा चाहता हूँ, जो सब का नायक हो और सभा के बीच में विद्वान् हो ॥ ४ ॥

सभा के बीच में विद्वान् कहलाना योग्यता की एक बहुत बड़ी पहचान है।

[१७]

काहे बिन सून अँगनवा ये बाबा काहे बिन सून लखराउँ।
काहे बिनु सून दुअरवा ये बाबा काहे बिनु पोखरा तोहार ॥ १ ॥
धिया बिनु सून अँगनवा ये बेटी कोइलरि बिनु लखराउँ।
पूत बिनु सून दुअरवा ये बेटी हंस बिनु पोखरा हमार ॥ २ ॥

कैसे के सोहै अँगनवा ये बाबा कैसे सोहै लखराउँ।
कैसे के सोहै दुअरवा ये बाबा कैसे सोहै पोखरा तोहार ॥ ३ ॥
धरम से बेटी उपजिहैं ये बेटी सेवा से आम तैयार रे।
तप सेती पुतवा जनमिहैं ये बेटी दान से हंसा मँझधार ॥ ४ ॥
का देई बोधब्यो बेटी ये बाबा का देइ अमवा के गाछ।
का देइ पुतवा समोधब्या ये बाबा का देइ हंसा मझधार ॥ ५ ॥
धन देइ बिटिया समोधबै ये बेटी जल देइ समोधौं लखराउँ रे।
भुइँ देइ पुतवा समोधबै ये बेटी अन देइ हंसा मझधार ॥ ६ ॥
का देखि मोहै जनवास ये बाबा का देखि रसना तोहार।
का देखि हियरा जुड़ैहै ये बाबा का देखि नैना जुड़ाय ॥ ७ ॥
धिया देखि मोहै जनवसवा ये बेटी अमवा से रसना हमार।
पुतवा से हियरा जुड़ैहैं ये बेटी हंसा देखि नैना जुड़ाय ॥ ८ ॥

कन्या ने पूछा—हे पिता! किसके बिना आँगन सूना है? और किसके बिना लखराँव (लाख आम के पेड़ों का बाग) सूना है? किसके बिना द्वार सूना है? और किसके बिना तुम्हारा तालाब सूना है? ॥ १ ॥

पिता ने कहा—हे बेटी! कन्या के बिना आँगन, कोयल बिना लखराँव, पुत्र बिना द्वार और हंस बिना तालाब सूना है ॥ २ ॥

कन्या ने पूछा—आँगन कैसे शोभित हो सकता है? लखराँव कैसे शोभित हो सकता है? तुम्हारा द्वार कैसे शोभित हो सकता है? और तुम्हारा तालाब कैसे शोभित हो सकता है? ॥ ३ ॥

पिता ने कहा—हे बेटी! धर्म से कन्या पैदा होती है। सेवा से आम पैदा होता है। तप से पुत्र पैदा होता है। और दान से हंस मँझधार में जीते हैं ॥ ४ ॥

कन्या ने पूछा—हे पिता! क्या देकर तुम कन्या को संतुष्ट करोगे? क्या देकर आम के वृक्ष को? और क्या देकर पुत्र को? तथा क्या देकर

मँझधार में हंस को संतुष्ट करोगे ? ॥ ५ ॥

पिता ने कहा—धन देकर कन्या को, जल देकर लखराँव को, भूमि देकर पुत्र को और अन्न देकर हंस को संतुष्ट करूँगा ॥ ६ ॥

कन्या फिर पूछती है—हे पिता ! जनवास्ये के लोग क्या देखकर मोहित होंगे ? किस चीज़ मे तुम्हारी जीभ लुभायेगी ? क्या देखकर हृदय शीतल होगा ? और क्या देखकर नेत्र तृप्त होंगे ? ॥ ७ ॥

पिता ने कहा—कन्या को देखकर जनवास मोहित होगा। आम से जीभ प्रसन्न होगी। पुत्र से हृदय शीतल होगा और हंस को देखकर नेत्र तृप्त होंगे ॥ ८ ॥

पूर्वकाल में परदा नहीं था। कन्या को सब लोग देख सकते थे और उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो सकते थे।

[१८]

कहँवहिं के गढ़ थवई जिन्ह महल उठाये।
कहँवहिं के पतिसहवा गढ़ देखन आये ॥ १ ॥
बाहर होइ गढ़ देखलों जैसे चित्र उरेहल।
भीतर होइ गढ़ देखलों जैसे कुन्दन कुँदावल ॥ २ ॥
ताही पैठि सुतले कवन बाबा रानी बेनियाँ डोलावें।
केवरहीं बोलतीं कवन बेटी बाबा नींद भल आवे ॥ ३ ॥
कुछ रे सुतिला कुछ जागिला बेटी नींदो न आवे।
जाही घरे कन्या कुवाँरि बेटी नींद कैसे आवे ॥ ४ ॥
लेहुना कवन बाबा धोतिया हाथे पान क बीड़ा।
करु ना समधिया से मिलनी सिर माथ नवाय ॥ ५ ॥
गिरि नवे पर्वत नवे हम तौ ना नइयो।
बेटी ! तोहरे कारन हम जग में माथ नवाये ॥ ६ ॥

वह थवई (राज, स्थपति) कहाँ का था ? जिसने यह महल उठाया

है। वह बादशाह कहाँ के हैं? जो गढ़ देखने आये हैं ॥१॥

बाहर से गढ़ देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानो चित्र खींचा हुआ है। भीतर से देखा, तो ऐसा जान पड़ा, मानों कुन्दन किया हुआ है ॥२॥

उसी गढ़ में प्रवेश करके......राम सो रहे हैं। रानी पंखी हाँक रही हैं। किवाड़े की आड़ से बेटी ने कहा—पिताजी! आपको नींद खूब आ रही है ॥३॥

पिता ने कहा—बेटी! कुछ-कुछ सो रहा हूँ, कुछ-कुछ जग रहा हूँ। जिसके घर में क्वारी कन्या हो, भला, उसे नींद कैसे आ सकती है? ॥४॥

कन्या ने कहा—हे पिता! हाथ में धोती और पान का बीड़ा लेकर और सिर नवाकर समधी से भेंट करो न? ॥५॥

पिता ने कहा—गिरि नै गया; पहाड़ नै गया; अस्तक में नहीं नया था। पर हे बेटी! तुम्हारे कारण मुझे सिर नवाना पड़ा है ॥६॥

बेटी के विवाह के लिये पिता को कितनी चिन्ता होती है, 'जाहि घरे कन्या कुँवारि बेटी नींद कैसे आवे' में वह बड़ी ही मार्मिकता से कहा गया है। इस गीत की कन्या के पिता बड़े मनस्वी जान पड़ते हैं। उन्होंने कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया था, पर कन्या के पिता को सिर झुकाना ही पड़ता है।

[१९]

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नाहीं जागैं।
देत सुनर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥ १ ॥
भैया भैया गोहरावौं भैया नाहीं बोलैं।
देत सुघर एक सेंदुर भइउँ पराई ॥ २ ॥
बन माँ फूली बेइलिया अतिहि रूप आगरि।
मलियै हाथ पसारा तौ होवौ हमारि ॥ ३ ॥

जनि छुवो ये माली जनि छुवो अवहीं कुँ वारि।
आधी राति फुलबै बेइलिया तौ होब तुम्हारि ॥ ४ ॥
जनि छुवो ये दुलहा जनि छुवो अबहीं कुँ वारि।
जब मोर बाबा संकलपैं तौ होब तुम्हारि ॥ ५ ॥

बाबा, बाबा कहकर पुकार रही हूँ। बाबा जागते ही नहीं। कोई एक सुन्दर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥१॥

भैया, भैया कहकर पुकार रही हूँ। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक चतुर पुरुष सेंदुर दे रहा है। मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥२॥

बन में अत्यंत रूपवती लता फूली है। माली ने उस पर हाथ पसारा और कहा—तुम मेरी हो ॥३॥

हे माली अभी मत छुओ, अभी मत छुओ। मैं अभी बालिका हूँ, कुमारी हूँ। आधीरात को जब लता फूलेगी, तब वह तुम्हारी होगी ॥४॥

हे दूल्हा ! मत छुओ, मत छुओ। अभी मैं बालिका हूँ, कुमारी हूँ। जब मेरे बाबा समर्पण करेंगे, तब मैं तुम्हारी होऊँगी ॥५॥

कैसा भाव-पूर्ण यह गीत है। कन्या ने वर को 'सुन्दर और सुघर' दो विशेषणों से व्यक्त किया है। हमने ऊपर सुघर शब्द का अर्थ चतुर दे दिया है। पर सुघर शब्द अपना अलग अर्थ रखता है, जो बहुत व्यापक है। चतुर शब्द उसका पर्यायवाची नहीं हो सकता। और उसका पर्यायवाची दूसरा शब्द है भी नहीं। वर के रूप और गुण का बखान कर के फिर कन्या अपनी तुलना लता से और वर की माली से करती है। स्त्री लता की तरह फूले-फले और पुरुष माली की तरह उसे सींचे, सँभाले, सँवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थयुक्त तुलना है !

अंत में कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता, तब तक वह दूसरे की नहीं हो सकती। इस गीत के समय में कन्या स्वतंत्र

नहीं रह गई कि वह अपनी इच्छा से योग्य वर से विवाह कर सके। गीत में आदि से लेकर अंत तक करुण रस लहरा रहा है।

[२०]

की हो दुलहे रामा अमवा लुभाने की गये बटिया भुलाइ।
कब से रसोइया लिहे हम बैठी जोवउँ मैं एकटक राह ॥१॥
दुलहिन रानी न अमवा लुभाने ना गये बटिया भुलाइ।
बाबा के बगिया कोइलि एक बोलै कोइलि सबद सुनों ठाढ़ ॥२॥
चिठिया एक लिखि पठइन दुलहिन दिहौ कोइलरि देइ के हाथ।
रानि एक बोलिया नेवरतिउ कोइलरि परभु मोर जेवने क ठाढ़ ॥३॥
चिठिया एक लिख पठइन कोइलरि दिहौ दुलहिन देइ के हाथ।
ऐसइ बोलिया तुँ बोलि क दुलहिन दुलहे न लेतिउ बिलमाय॥४॥

हे प्रियतम! तुम क्या आम पर लुभा गये थे? या रास्ता ही भूल गये? मैं कब से भोजन बनाकर बैठी हूँ और एकटक तुम्हारी राह देख रही हूँ ॥१॥

पति ने कहा—हे मेरी प्यारी रानी! न मैं आम पर लुभाया हूँ, और न रास्ता ही भूल गया हूँ। मेरे बाबा के बाग में एक कोयल बोल रही है। मैं उसी की बोली सुन रहा हूँ ॥२॥

स्त्री ने कोयल को एक पत्र लिखकर भेजा—हे कोयल रानी! तुम ज़रा देर के लिये अपनी बोली बन्द करो; मेरे प्राणनाथ भोजन के लिये खड़े हैं ॥३॥

कोयल ने उत्तर लिखकर दुलहिन के पास भेजा—हे दुलहिन रानी! ऐसी ही बोली बोलकर तुम दुलहे को मुग्ध क्यों नहीं कर लेतीं? ॥४॥

आशा है, कोयल के इस उपदेश से कटुवचन बोलनेवाली दुलहिनें लाभ उठायेंगी।

[२१]

घर में से निसरेली बेटी हो कवनि देई भइली देवढ़िया धइले
ठाढ़ रे।
सुरुज के उगले किरिनिआ छिटिकले हो गोरी बदन
कुम्हिलाइ रे ॥ १ ॥
कहतु त मोरी बेटी छत्र छवउतेउँ नाहीं तनवतेवँ ओहार रे।
कहतु त मोरी बेटी सुरुज अलोपतेउँ हो गोरी बदन रही
जाइ रे ॥ २ ॥
काहे के मोरे बाबा छत्र छवइबा हो काहे के तनइबा ओहार रे।
काहे के मोरे बाबा सुरुज अलोपवा हो एक दिना की है बात।
आजु के दिन बाबा तोहरे मड़उआ हो बिहने सुनर बर साथ रे ॥ ३ ॥
खोरवन खोरवन बेटी दुधवा पिअवलीं हो दहिआ खिअवलीं
साढ़ीवाल रे।
दुधवा क नीरव नाही दीहेलु ये बेटी चललु सुनर बर
साथ रे ॥ ४ ॥
काहे क मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो दहिआ खिअवला
साढ़ीवाल रे।
जानत रहला बेटी पर घर जइहें हो नाहक कइला मोर दुलार रे ॥ ५ ॥

घर से अमुक देवी निकली और ड्योढ़ी पकड़कर खड़ी हुई। सूर्य उदय हो चुका था। किरनें छिटक आई थीं। कोमल कन्या का मुँह कुम्हला गया था ॥१॥

पिता ने पूछा—बेटी! कहो तो छत्र छवा दूँ, या परदा डलवा दूँ, या कहो तो किसी तरह सूर्य की धूप को रोक दूँ, जिससे तुम्हारा कोमल मुँह न कुम्हलाय ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! क्यों तुम छत्र छवावोगे? क्यों परदा

डालोगे ? क्यों धूप को रोकोगे ? एक दिन की बात और है। आज तुम्हारे माढ़ौ में हूँ। कल अपने सुन्दर वर के साथ चली जाऊँगी ॥३॥

बाबा ने कहा—हे बेटी ! मैंने कटोरे भर-भर कर तुमको दूध पिलाया और साढ़ीदार दही खिलाया। दूध में कभी पानी भी तो नहीं मिलाया। फिर भी हे बेटी ! तुम सुन्दर वर के साथ चली जाओगी ॥४॥

बेटी ने कहा—हे बाबा ! क्यों तुम ने दूध पिलाया ? क्यों साढ़ी वाला दही खिलाया ? तुम तो जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी। फिर मेरा दुलार क्यों किया ? ॥५॥

[२२]

मचियहि बैठीं पुरखिनि रानी पूछैं बिटिया पतोह,
तौ इहै नवा कोहबर।
कहँवाँ लिखौं सासू पुरइनि रे कहँवाँ लिखौ बँसवार,
तौ इहै नवा कोहबर ॥१॥
यक ओरी लिखौ बहुअरि पुरइनि रे, यक ओरी लिखौ बँसवार,
तौ इहै०।
कहँवाँ लिखौं सासू हंसा हंसिनि रे, कहँवाँ लिखौं बन मोर,
तौ इहै० ॥
कहँवाँ लिखौं सासू सुग्गा मैना रे टूरत सुग्गा मैना लिखु,
तौ इहै०।
दनवाँ चुनत गवरैया लिखो रे गैया लिखो बछवा लगाय,
तौ इहै०।
कलसा लिहे चेरिया लौंड़ी लिखो रे बाम्हन पोथी लिहे हाथ,
तौ इहै० ॥
गैया दुहत अहिरा छौंड़ा लिखो रे दहिया बेंचत अहिरिनि धेरि,
तौ इहै०।

आरी आरी बेली के फूल लिखो रे और लिखो पनवारि,
तौ इहै० ॥
झुपसन अमली फरत लिखो रे अमवा घवधवन लाग,
तौ इहै० ।

पुरखिन रानी (घर की मालकिन) मचिये पर बैठी हैं। बेटी और पतोहू पूछ रही हैं—यही नया कोहबर है। हे सासजी! कहाँ कमल के पत्ते का चित्र बनाऊँ? कहाँ बँसवारी (बाँस की बाड़ी) बनाऊँ? ॥१॥

सास ने कहा—हे बहू! एक ओर कमल के पत्ते बनाओ। एक ओर बँसवारी लिखो ॥२॥

बहू ने पूछा—हे सास! कहाँ हंस-हंसिनी लिखूँ? कहाँ वन के मोर लिखूँ? कहाँ तोता मैना लिखूँ? कहाँ उड़ती हुई क्षेमकरी लिखूँ?

सास ने कहा—झुरते हुये (केलि करते हुये) तोता और मैना, दाने चुगती हुई गौरैया, बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, कलश लिये हुये दासी, पुस्तक लिये हुये ब्राह्मण, गाय दुहता हुआ अहीर का लड़का, दही बेंचती हुई अहीरनी की कन्या का चित्र बनाओ। आसपास फूली हुई लता का चित्र बनाओ और पान की लता का चित्र बनाओ। गुच्छे की गुच्छे फली हुई इमली का चित्र बनाओ और पल्लवों में लगे हुये आम का चित्र बनाओ। यही नया कोहबर है।

कन्याओं को चित्रकारी की शिक्षा कैसे दी जाती थी, इसका कुछ आभास इस गीत में है।

[२३]

मैया दिया है गगरी घैलना बाबा ने आँख तरेरि।
वहि रे ताल बेटी माती हथिनियाँ जनि जाव ताल नहाइ ॥ १ ॥
बाप कहा नहिं माना है बेटी गई है ताल नहाइ।
अपनी हथिनियाँ सँभारो बनजारे चीर पहिरि घर जाउँ ॥ २ ॥

किनके हौ तुम नाती रे पुतवा कौनि बहिन के भाइ।
कौन बनिजिया चले बर सुन्दर कौन के ताल नहाव ॥ ३ ॥
अपने बाप के नाती रे पुतवा अपनी बहिन के भाइ।
यही हथिनियाँ मैं तुम्हैं चढ़ाओं लै जाओं आपने देस ॥ ४ ॥
धोबी धोवै अपड़े रे कपड़े अहिर चरावै सुरा गाइ।
और बोलैहौं मैं बाबा की नगरिया हमको लेइँ छुटाइ ॥ ५ ॥
लूटौं मैं धोबिया के अपड़े रे कपड़े अहिर की लेवौं सुरा गाइ।
मारौं मैं बाबा की नगरिया वाले तुमको ब्याहि लै जाउँ ॥ ६ ॥
अरे अरे अहिर के बेटवा रे भैया माता से कहेउ सँदेस।
राम रसोईं में गुड़िया रे भूली धरैं पेटरिया के बीच ॥ ७ ॥

माँ ने पानी भरकर लाने के लिये गगरी (मिट्टी का घड़ा) दिया। बाबा ने आँख तरेरकर कहा—हे बेटी! उस तालाब पर मतवाली हथिनी रहती है, वहाँ नहाने न जाना ॥१॥

बेटी ने बाप का कहा नहीं माना और वह तालाब में नहाने चली गई। तालाब पर किसी बनजारे की हथिनी मिली। कन्या ने कहा—बनजारे! अपनी हथिनी को रोको तो मैं चीर पहनकर घर जाऊँ ॥२॥

कन्या ने बनजारे से पूछा—हे सुन्दर वर! तुम किसके पौत्र और पुत्र हो? किस बहन के भाई हो? किस चीज़ का व्यापार करने निकले हो? और किसके तालाब पर नहा रहे हो? ॥३॥

वर ने कहा—मैं अपने पिता-पितामह का पुत्र और पौत्र हूँ, और अपनी बहन का भाई हूँ। इसी हथिनी पर चढ़ाकर मैं तुमको अपने देश ले जाऊँगा ॥४॥

कन्या ने कहा—यहाँ धोबी कपड़े धो रहे हैं; अहीर सुरा गाय चरा रहे हैं; इनके सिवा मैं अपने बाबा के नगर से और भी बहुत से लोगों को बुला लूँगी; वे सब मुझे छुड़ा लेंगे ॥५॥

वर ने कहा—मैं धोबी के कपड़े-सपड़े लूट लूँगा। अहीर की सुरा गाय भी छीन लूँगा और तुम्हारे बाबा के नगरवालों को पीटूँगा भी; तथा तुमको ब्याह करके ले जाऊँगा ॥६॥

वर कन्या को ले चला। कन्या कहने लगी—हे अहीर के लड़के! हे मेरे भाई! मेरी माँ से यह संदेश कह देना कि मैं रसोई-घर में गुड़िया भूल आई हूँ, उसे पिटारी में सँभालकर रख दें ॥७॥

अंतिम पंक्तियों में कन्या के भोलेपन का ख़ासा निदर्शन है। वह बेचारी नहीं जानती कि गुड़िया खेलते-खेलते अब वह खुद गुड़िया बन गई है और वह अब फिर गुड़िया खेलने के लिये इस घर में नहीं आयेगी।

[२४]

जुगुति से परसौ जी ज्योनार—करि करि के सतकार।
पेड़ा बरफी और अमिरती, खाजे खुरमा घेवर परसो, गुपचुप सोहन हलुआ परसौ, कलाकन्द की बरफ़ी परसौ, मक्खन बरा जलेबी परसौ, पेठा और इन्दरसे परसौ, बूँदी और बतासे परसौ, खुर्चन और मलाई परसौ, खोया बालूसाही परसौ, खुरमा लडुआ सब के परसौ, दालमौठ अरु मठरी परसौ, तरे तिकोना सब के परसौ, बूरा मिश्री जल्दी परसौ, रबड़ी दही सबी के परसौ, सिखरिन दूध लाय के परसौ, पुड़ी कचौड़ी लुचुई परसौ, खरी कचौड़ी सब के परसौ, बेसन बरा पकोड़ी परसौ, हापड़ के तुम पापड़ परसौ, मालपुआ अरु पूआ परसौ, दाल भात सन्नाटो परसौ, मूँग समूची सब के परसौ, कढ़ी करायल रौतो परसौ, खट्टे मिट्ठे बरा परोसौ, सुरभी को घिउ गडुअन परसौ, रसगुल्ला रसदार।
जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥१॥

सोया मेथी मरसो परसो, सरसौं अरु चौरय्या परसौ, पालक पोय भसूँड़े परसौ, मूरी मिरचै सब के परसौ, हरी हरी तुम

धनियाँ परसौ, कटहर बड़हर लौकी परसौ, कद्दू और करेला परसौ, रायलभेरा भाटा परसौ, भिंडी घिआ तुरैया परसौ, पेठा की तरकारी परसौ, आलू और रतालू परसौ, पृथ्वीकन्द चचेंड़ा परसौ, अदरख की तरकारी परसौ, केला की तरकारी परसौ, धनियाँ की तुम चटनी परसौ, वथुआ की तरकारी परसौ, पोदीना की चटनी परसौ, छिरिका गलका अमरस परसौ, आम अचारी सूखा परसौ, दाख मुरब्बा सब के परसौ, अदरख कमरख सब के परसौ, सबी खटाई सब के परसौ, हा हा करि करि जल्दी परसौ, सत्य भाव से सब के परसौ, करि करि के सतकार।

जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥२॥

सिलहट की नारंगी परसौ, फरुखाबादी मिठवा परसौ, सेव तूत सहतूत चिरौंजी चिलगोजा अखरोटन परसौ, प्रागराज की सफड़ी परसौ, गरी छुहारे पिस्ता परसौ, नरम मखाने सब के परसौ, ि.श्री और लुकाठन परसौ, अनन्नास अंगूरन परसौ, जल्द चिरौंजी सब के परसौ, मूँगफली भरि दोना परसौ, किसमिस आम टिकारी परसौ, नौधा अरु तरबुजवा परसौ, चपटा और मालदहा परसौ, मोहन भोग बम्बई परसौ, गोला आमुनि जामुनि परसौ, खरबुजवा तुम सब के परसौ, सोया हिंगहा जुगिया परसौ, देसी आम सबी के परसौ, कंचन भरि भरि थार। पुरोहित करि करि के सतकार। परोसौ सब तर बारंबार।

जुगति से परसौ जी जेंवनार ॥३॥

गंगा जल जमुना जल परसौ, नदी नरवदा को जलु परसौ, सरजू को जलु सब के परसौ, सिंध सरसुती को जलु परसौ, कावेरी कृस्ना ज लु परसौ, मानसरोवर को जलु परसौ, नदी गंभीरी को जलु परसौ, फलगू महानदी को परसौ, ठंडे जल सब ही के

परसौ, हा हा करि करि सब के परसौ, विनती करि करि भोजन परसौ, हाथ जोरि के सब के परसौ, प्रेम प्यार करि सब के परसौ, छोटे बड़े सबी के परसौ, आदर करि करि सब के परसौ, समधी लमधी के ढिग परसौ, चारों भाइन के ढिग परसौ, गुरु वशिष्ठ तर जल्दी परसौ, ऋषि मुनियों तर जल्दी परसौ, सबै देवतन के ढिग परसौ, हाथ धुलावौ पान खवावौ, आभूषण वस्तर पहिरावौ, जनवासे सब को पहुँचावौ, करि करि बाहन त्यार। गावै तुलसीदास गँवार, जुगति से परसौ जी ज्योंनार ॥४॥

इस गीत में भोजन के चोष्य, चर्व्य, लेह्य, पेय सब प्रकार के पदार्थों के नाम गिनाये हैं। पता नहीं, इसके रचयिता "तुलसीदास गँवार" वही सुप्रसिद्ध तुलसीदास हैं, या गीत को प्रचलित करने के लिये किसी चतुर ने यह 'गँवारपन' किया है। गीत में जिन पदार्थों के नाम आये हैं, वे ये हैं—

पेड़ा, बरफ़ी, अमिरती, खाजा, खुरमा, घेवर, गुपचुप, सोहनहलुवा, कलाकन्द, मक्खन, बरा, जलेबी, पेठा, इन्दरसा, बुन्दी, बतासा, खुर्चन, मलाई, खोवा, बालूशाही, लड्डू, दालमोठ, मठरी, तिकोना (समोसा), बूरा, मिश्री, रबड़ी, दही, सिखरन, दूध, पूरी, कचौड़ी, लुचुई, ख़स्ता कचौड़ी, बेसन का बरा, पकौड़ी, हापड़ के पापड़, मालपुआ, पूआ, दाल, भात, मूँग, कढ़ी, रायता, खट्टे मीठे बरे, गाय का घी, रसगुल्ला, सोआ-मेथी-सरसे का साग, सरसों, चौराई का साग, पालक-पोई का साग, भसींड़, मूरी, मिर्च, हरी धनियाँ, कटहर, बड़हर, लौकी, कद्दू, करेला, भाँटा भिंडी, घिया-तुरोई, कोहँड़ा, आलू, रतालू, जमींकंद, चचेंड़ा, अदरक, केला, बथुवा, पोदीना, अमरस, आम का अचार, दाख का मुरब्बा, कमरख सिलहट की नारंगी, फरुखाबाद की मिठाई, सेब, शहतूत, चिरौंजी, चिलगोज़ा, अखरोट, प्रयाग की सकड़ी, गरी, छुहारा, पिस्ता, मखाना,

खिन्नी, लुकाट, अनन्नास, अंगूर, मूँगफली, किसमिस, आम, तरबूज, गोल-चपटा-मालदह-मोहनभोग और बम्बई आम, जामुन, खरबूजा, हिँगहा, ? जुगिया, ? गंगा, जमना, नर्मदा, सरयू, सिंध, सरस्वती, कावेरी, कृष्णा, मानसरोवर, गंभीरी, फल्गू, महानदी आदि नदियों का ठंडा जल।

इस गीत में खाने-पीने की प्रायः सभी ख़ास-ख़ास चीज़ों के नाम आ गये हैं। साथ ही हिन्दुस्थान भर की सुप्रसिद्ध नदियों के नाम भी आ गये हैं। गानेवालियों को खाने-पीने की चीजों के नाम ही नहीं, बल्कि भूगोल की यह शिक्षा भी गीतों द्वारा मिलती रहती है।

[२५]

अपने पिया की पियारी, अपने पिया की पियारी।
अपने पिया पे सिंगार करी॥
अति प्रेम के लहँगा, अति प्रेम के लहँगा।
नेह की चुनरी ओढ़े चली॥
अति लाज की अँगिया, अति लाज की अँगिया।
मोहन मंत्र कसे रे कसे॥
अति भाग की बेंदी, अति भाग की बेंदी।
मोहन टीका लिलार दिहे॥
सौभाग के बीरा, सौभाग के बीरा।
मोहन कज्जल आँख दिहे॥
करपूर चंदन से, करपूर चँदन से।
बास सुगंध बढ़ाय चली॥
ननदोई कुसल से, ननदोई कुसल से।
बहनोई क सुजस बढ़ै रे बढ़ै॥
बाढ़ै देवरा तुम्हारा, बाढ़ै देवरा तुम्हारा।
भाइन बृद्धि बढ़ै रे बढ़ै॥

समधी अति ही रँगीला, समधी छैल छबीला।
समधिन रूप उजागरी॥
तिया नइया बनी है, तिया नइया बनी है।
ए पति खेवनहार अरी॥

अर्थ स्पष्ट है।

विवाह के अवसर पर, वर को जिमाते समय, यह गारी गाई जाती है।

[२६]

विमल किरतिया तोहरी कृश्न जी
फिराथी उघारी उघारी कि वाह वा॥ १॥
चन्दिनि होइ गगन में पहुँची
सुरपति कीन बड़ाई कि वाह वा॥ २॥
भक्ति होइ संतन में पहुँची
सन्तों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ३॥
बुद्धि होइ पँडितन में पहुँची
पँडितों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ४॥
कविता होइ कविन में पहुँची
कवियों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ५॥
दया होइ परजन में पहुँची
परजों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ६॥
यकमति होइ भाइन में पहुँची
भाइयों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ७॥
क्षमा होइ ब्राह्मण में पहुँची
ब्राह्मणों ने कीन बड़ाई कि वाह वा॥ ८॥
सत्य सुगन्ध समीर लै पहुँची
सब जग होइ बड़ाई कि वाह वा॥ ९॥

हे कृष्ण ! तुम्हारी विमल कीर्त्ति खुली-खुली घूम रही है ॥१॥
चाँदनी होकर वह आकाश में पहुँची, तो इन्द्र ने उसकी बड़ाई की ॥२॥
भक्ति होकर भक्तों में पहुँची, तो संतों ने बड़ी बड़ाई की ॥३॥
बुद्धि होकर पंडितों में पहुँची, तो पंडितो ने बड़ी बड़ाई की ॥४॥
कविता होकर कवियों में पहुँची, तो कवियों ने बड़ी बड़ाई की ॥५॥
दया होकर प्रजा में पहुँची, तो प्रजाओं ने बड़ी बड़ाई की ॥६॥
एक मति होकर भाइयों में पहुँची, तो भाइयो ने बड़ी बड़ाई की ॥७॥
क्षमा होकर ब्राह्मण में पहुँची, तो ब्राह्मणों ने बड़ी बड़ाई की ॥८॥
सत्य की सुगन्ध होकर हवा में पहुँची, तो सारे संसार ने बड़ाई की ॥९॥

यह गारी विवाह में, वर को भोजन कराने के अवसर पर, गाने के लिये दिअरा राज (सुलतानपुर) की राजमाता रानी रघुवंशकुमारी जी ने बनाई है। उधर इसका प्रचार भी है। इस संग्रह में, जिसमें प्रायः सब प्राचीन गीत ही हैं, यह दिखाने के लिये कि गीत-रचना में स्त्रियों का प्रयत्न बराबर जारी है, और वे समय के अनुकूल गीत रचा करती हैं, यह गीत दे दिया गया है।

[२७]

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहिया से रे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बड़े भिनु रे सार ॥ १ ॥
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हँसी खुशी रे द।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ रीसीयाइ ॥ २ ॥
हम अउ बिरना ऐ अम्मा जन्मे एक रे संग।
सँग सँग खेलेऊँ रे अम्मा खायँउ एक रे संग ॥ ३ ॥
भइआ के लिखला ऐ अम्मा बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ऐ अम्मा अति बड़ी दूरि ॥ ४ ॥
अँगना घूमि आ रे घूमि बाबा जे रोवैं।
कतहूँ न देखउँ ऐ बेटी नेपुरवा झनकार ॥ ५ ॥

कन्या का विवाह हो चुका है। दूसरे दिन वह बिदा होनेवाली है।

माँ कहती है—हे बेटी! दही से भात खा लो। कल बड़े सवेरे तुम्हारी बिदा है ॥१॥

बेटी कहती है—माँ! भाई को तो तुम बड़ी हँसी-खुशी से कलेवा देती थी; पर मेरा कलेवा तुम नाराज़ी से दिया करती थी ॥२॥

भाई और मैं, दोनों एक साथ जन्मे थे। साथ-साथ खेले और साथ-साथ खाये थे ॥३॥

भाई को तो पिता का राज लिखा है, और मुझे, हे माँ! बड़ी दूर जाना है ॥४॥

कन्या के बिदा होने पर पिता आँगन में घूम-घूमकर रो रहा है—हाय! बेटी के पाज़ेब की आवाज़ कहीं से सुनाई नहीं पड़ती ॥५॥

बेटी की बिदा का दृश्य बहुत ही करुण-रस-पूर्ण होता है। इस गीत में माँ को बेटी का प्रेमपूर्ण उलहना कि "तुम भाई को और मुझे कलेवा देने में पक्षपात करती थी," बड़ा ही हृदयवेधक है। बेटी के बड़ी दूर जाने की बात भी हृदय को हिला देनेवाली है। प्यारी बेटी के चले जाने पर बाबा का आँगन में पागल की तरह घूमना और विलाप करना स्वाभाविक ही है।

[२८]

अरे अरे बेटी पियारी रानी! तोरी बोल भली।
तोरी बचन भली ॥
ऐसन बपैया घर छोड़ि के बेटी! कहवाँ चली,
बेटी! कहँवाँ चली ॥ १ ॥
जैसे बना की कोइलिया, उड़ि बाग़ाँ गईं, फुलवरियाँ गईं।
तैसे बाबा घरा छोड़ि के, अब मैं ससुरे चली,
ससुररिया चली ॥ २ ॥

घोड़वा चढ़ा भैया आगे खड़े हाथे तीर कमाँ, हाथे तीर कमाँ।
रोकहिं बहिन कै डगरिया बहिन मोरी कहवाँ चली,
बहिनी कहँवाँ चली ॥ ३ ॥

जाने दे भैया जाने दे बाबा लगन धरी, अम्मा साज करी।
ऐहौं मैं काजे परोजन बिरन तोरे बेटा भये,
तोरे बेटा भये ॥ ४ ॥

हे मेरी प्यारी बेटी! तेरी बात बड़ी मीठी है। तू ऐसे पिता का घर छोड़कर कहाँ चली? ॥१॥

बेटी ने कहा—जैसे वन की कोयल, कभी उड़कर बाग में गई, कभी फुलवारी में। वैसे ही मैं अपने पिता का घर छोड़कर ससुराल चली ॥२॥

घोड़े पर चढ़ा, हाथ में तीर धनुष लिये भाई आगे खड़ा है। उसने रास्ता रोककर कहा—हे मेरी बहन! तू कहाँ जा रही है? ॥३॥

बहन ने कहा—हे भैया! जाने दो। पिता ने विवाह ठीक किया और माँ ने तैयारी कर दी। मैं अब जा रही हूँ। कभी कोई काम-काज पड़ेगा या तुम्हारे बेटा होगा, तब आऊँगी ॥४॥

हिन्दुओं में बेटी की विदा का अवसर बड़ा ही करुणा-जनक होता है। यह गीत उसी अवसर का है। यह गीत जब स्त्रियाँ करुणस्वर में गाती हैं, तब सुननेवालों का धैर्य थामे नहीं थमता।

गीतों में जहाँ कहीं छोटे भाई का वर्णन आया है, वहाँ वह तीर धनुष या तलवार लिये हुये दिखाया गया है। कभी इस देश में छोटे बच्चे तीर, धनुष और तलवार ही से खेला करते थे।

[२९]

मोरे मन बसि गयें चतुरगुन हृदय नारायन।
सखिया सब बिसरैं तो बिसरैं मोर राम नाहीं बिसरैं ॥ १ ॥

सब सखिया मिल पूछलीं अपनी सीतल देइ से ।
सीता कइसन तोहार राम बाटेन तोहैं नाहिं बिसरैं ॥ २ ॥
रेखिआ भिनत अति सुन्दर चलत धरती दलकै
बिजुली चमाकै ।
सखिया हँसत देव गराजैं राम नहिं बिसरैं ॥ ३ ॥
सब सखिया मिल पूछन लागीं अपनी सीतल देइ से ।
मोरी सीता चलतिउ अजोध्या मैं राम देखि आइत ॥ ४ ॥
छोटै मोट पेड़वा छिउलिया क मोतियन गहदल ।
तेहिं तर राम आसन डाले ओढ़ले पीताम्बर ॥ ५ ॥
सब सखिया मिलि गइलिन चरन धोई पिअलिन ।
सीता कौन तपेस्या तुँ कइलिउ रामवर पउलिउ ॥ ६ ॥
भूखल रहलिउँ एकादसिया दुवादसिया क पारन ।
विधि से रहिउँ अइतवार राम वर पायों ॥ ७ ॥
तीनि नहायों कतिकवा तेरह बैसखवा ।
माघै मास नहायों अगिन नहिं ताप्यों,
करेउँ तिलौवा क दान, राम वर पायों ॥ ८ ॥

सीता कहती हैं—मेरे मन में गुणवान् राम बस गये हैं। हे सखियो ! सब भूलें तो भूलें, राम नहीं भूलते ॥१॥

सब सखियाँ अपनी सीता देवी से पूछती हैं—हे सीता ! तुम्हारे राम कैसे हैं ? जो तुम्हे नहीं भूलते ॥२॥

सीता कहती हैं—राम अभी युवक हैं। रेख भिन रही है। बहुत सुन्दर हैं। ऐसे वीर हैं कि उनके चलने से धरती हिलती है, बिजली चमकती है। हे सखियो ! जब वे गंभीर हँसी हँसते हैं, तब बादल गरज उठता है। वह राम मुझे नहीं भूलते ॥३॥

१२

सब सखियाँ अपनी सीता से पूछने लगीं—हे सीता ! अयोध्या चलो तो एक बार राम को देख आवें ॥४॥

छिउल का छोटा सा पेड़ है, जो मोती ऐसे फूलों से खूब घना हो रहा है। उसी के नीचे पीताम्बर ओढ़े राम आसन पर बैठे हैं ॥५॥

सब सखियाँ मिलकर गईं, चरण धोकर पिया और सीता से पूछा—हे सीता ! कौन सी तपस्या से तुमने राम ऐसा वर पाया ? ॥६॥

सीता ने कहा—एकादशी भूखी रहकर द्वादशी को पारण किया। विधिपूर्वक रविवार का व्रत किया। तब मैंने राम ऐसा वर पाया ॥७॥

तीन कार्तिक और तेरह बैसाख नहाया। माघ महीने भर स्नान किया, अग्नि नहीं तापा और तिल से बने मिष्टान्न का दान किया। तब राम ऐसा वर पाया ॥८॥

व्रत रहने और किसी ख़ास महीने में स्नान से अच्छा वर मिल सकता है, इस बात पर इस समय के शिक्षित लोग विश्वास करें या न करें; पर यह तो निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि गीत बनानेवाले के मस्तिष्क में राम और सीता का विवाह जिस अवस्था में हुआ, उस अवस्था में राम के रेख भिन रही थी अर्थात् मूछों के स्थान पर नन्हें-नन्हें बाल निकल रहे थे। सीता ने सखियों से राम के बलवान् शरीर और प्रभाव का जो वर्णन किया है, वह भी कम महत्व का नहीं है। कोई स्त्री जब किसी दूसरी स्त्री से उसके पति की प्रशंसा करती है, तब वह हर्ष से बहुत ही गद्गद हो जाती है। यही दशा सीता की भी हुई होगी।

[३०]

सासु गोसाईं बड़ी ठकुराइन लागौं मैं चेरिया तुम्हारि रे।
जौनी बनिज सासु तोरे पुत गे सो बाटा देउ बताइ ॥ १ ॥
हाथ कै लेउ बहुआ तेलवा फुलेलवा अउर गंगाजल नीर रे।
पूँछत पूँछत तुम जायउ बहुरिया जहाँ बसे कंथ तुम्हार रे ॥ २ ॥

घोड़वा तो बाँधे वहि घोड़सरिया हथिनी लौंग की डार रे।
अपना तो सूतैं मलिनिया के कोरवा मालिन बेनिया डोलाइ रे ॥ ३ ॥
कहउ तो स्वामी मोरे लाउँ तेलवा फुलेलवा कहउ तो दाबउँ पाँउ रे।
कहउ तो एक छिन बेनियाँ डोलावउँ कहउ लवटि घर जाउँ ॥ ४ ॥
काहे का लइहो धना तेलवा फुलेलवा काहे का दबिहउ पाउँ रे।
काहे का छिनु यक बेनिया डोलइहो तुम रे उलटि घर जाउ ॥ ५ ॥
उँचवे उँचवे जायउ री रनिया खलवैं पैग जनि दीन्हेउ रे।
पराये पुरुष जनि चितयउ री रनियाँ आखिर ह्वाब तुम्हार ॥ ६ ॥
उँचवे उँचवे जाबे रे स्वामी खलवैं पैगु नहि धाव रे।
परारि पुरुष स्वामी भय्या रे भतिजवा कउने जुग होइहो हमार ॥ ७ ॥

बहू कहती है—हे सास ! हे स्वामिनी ! मैं तुम्हारी दासी लगती हूँ। जिस व्यापार के लिये तुम्हारे पुत्र जिस मार्ग से गये हैं, वह मुझे बता दो ॥१॥

सास कहती है—हे बहू ! हाथ में तेल फुलेल और गंगा-जल ले लो। पूछते-पूछते तुम वहाँ चली जाना, जहाँ तुम्हारा स्वामी बसता है ॥२॥

बहू ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पति के पास पहुँचती है। क्या देखती है कि घोड़ा तो घोड़सार में बँधा है और हथिनी लौंग की डार से बँधी है। पति मालिन की गोद में सो रहा है। मालिन पंखा झल रही है ॥३॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी ! कहो तो तेल फुलेल लगा दूँ। कहो, पैर दाब दूँ। कहो तो थोड़ी देर पंखी हाँक दूँ या कहो तो घर लौट जाऊँ ॥४॥

पति कहता है—हे स्त्री ! क्यों तेल-फुलेल लगाओगी ? क्यों पाँव दाबोगी ? और क्यों पंखा हाँकोगी ? तुम घर लौट जाओ ॥५॥

हे मेरी रानी ! ऊँचे ऊँचे जाना, नीचे पैर न देना। पराये पुरुष की

ओर दृष्टि न डालना। अंत में मैं तुम्हारा ही होऊँगा ॥६॥

स्त्री कहती है—हे स्वामी! मैं ऊँचे ही ऊँचे जाऊँगी। नीचे पैर न रक्खूँगी। पराये पुरुष को भाई-भतीजे के समान देखती ही हूँ। पर तुम किस युग में मेरे होगे? ॥७॥

इस गीत में स्त्री के हृदय की महिमा चित्रित की गई है। पुरुष व्यापार करने परदेश गया। वहाँ वह एक मालिन के प्रेम में फँस गया, अपनी स्त्री को भूल गया। स्त्री बेचारी उसकी खोज में घर से निकली। खोजते-खोजते वह उस मालिन के घर पहुँची, जिसने उसके प्राणेश्वर को फँसा रक्खा था। पतिव्रता ने पति के अपराध की ओर ध्यान ही न दिया; बल्कि सेवा करनी चाही। पति ने उसे विदा करते समय जो उपदेश दिया, वह प्रत्येक सती साध्वी का कर्त्तव्य ही है। पर स्त्री ने जो क्षमा दिखलाई है, वह अद्भुत है। वह स्त्री के उच्च मनोबल का द्योतक है। कोई पुरुष अपनी स्त्री को पर पुरुष के साथ सम्बन्ध रक्खे हुये देखकर क्षमा नहीं कर सकता। यद्यपि ऐसी दशा में क्षमा करना हम उचित नहीं समझते। पर पुरुष को भी एक स्त्रीव्रत होना चाहिये।

[२१]

पनवा कतरि कतरि भाजी बनावउ लौंगा दिहौ बघार।
अच्छे अच्छे जेवना बनावो मोरी कामिनि हमहूँ जावै
गंगा नहाय ॥ १ ॥

केके तू सौंपे अनधन सोनवा केके तू नौरँग बाग।
केके तू सौंपे हमें अस धनिया तूँ चले गंगा नहाय ॥ २ ॥
बाबा के सौंपेउँ अनधन सोनवा भइया के नौरँग बाग।
माया के सौंपेउ तोहैं अस धनिया हम चले गंगा नहाय ॥ ३ ॥
घरही में कुँइयाँ खोदावो मोरे सइयाँ घर ही में गंगा नहाउ।
माता पिता कै धोतिया पखारउ उनहीं हैं गंगा तोहारि ॥ ४ ॥

हे मेरी प्यारी स्त्री ! पान कतर-कतर कर उसकी तरकारी बनाओ और उसको लौंग से बघार दो। आज अच्छा-अच्छा भोजन बनाओ। हे कामिनी ! मैं गंगा नहाने जाऊँगा ॥१॥

हे मेरे प्राणेश्वर ! अन्न, धन और सोना तुमने किस को सौंपा ? नौरंग बाग किसे सौंपा है ? और मेरी जैसी अपनी प्यारी स्त्री किसको सौंपी है ? जो तुम गंगा नहाने चले हो ॥२॥

पति ने कहा—पिता को अन्न, धन और सोना सौंप दिया है; भाई को नौरंगबाग; और तुमको माँ के सुपुर्द करके मैं गंगा नहाने जा रहा हूँ ॥३॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! घर ही में कुआँ खुदवा लो और घर ही में गङ्गा स्नान करो। माता-पिता की धोती धोओ; वे ही तुम्हारी गंगा हैं ॥४॥

बहू ने सच कहा है। वास्तव में माता-पिता की सेवा से बढ़कर पुत्र के लिये कोई तीर्थ नहीं। अधिक हर्ष की बात तो यह है कि स्त्री अपने पति को ऐसी शिक्षा दे रही है।

[३२]

तुम पिया की पियारी रूठे पिया को मनावै चली।
तहँ ज्ञान का लहँगा प्रेम की सारी सँवारी चली॥
तहँ सत्य की चोली दृढ़ता बंधन गाँधि चली।
तहँ नाम का अभरन अंगन अंगन बाँधि चली॥
तहँ हर्ष का हरवा स्याम रूप दृग आँजि चली।

तुम अपने प्रियतम की प्यारी ! अपने रूठे हुये पति को मनाने चली हो। ज्ञान का लहँगा और प्रेम की साड़ी सँवारकर, सत्य की चोली दृढ़ता के बन्दों से बाँधकर, नाम के गहने अंग-अंग में पहनकर, हर्ष का हार, और प्रियतम के रूप का अंजन आँखों में आँजकर तुम अपने रूठे हुये पति को मनाने चली।

[३२]

मोरे पिछवरवाँ लवँगिया के बगिया लवँग फूलै आधी राति रे।
वहि लवँगा कै शीतल बयरिया महँकै बड़े भिनुसार ॥ १ ॥
तेहि तर उतरा है सोनरा बेटौना गहना गढ़ै अनमोल रे।
सभवा बैठ बावा गहना गढ़ावें बिछुवा में घुँघुरू लगाय ॥ २ ॥
गढु सोनरा कंगन गढु तुहु बेसर तिलरी में हीरा जड़ाय रे।
मानिक मोती से बेंदिया सँवारहु चमकै बेटी के माँग ॥ ३ ॥
यतना पहिरि बेटी चौके जे बैठैं बेटी के मन दलगीर रे।
गोर बदन बेटी साँवर होयगा मुँहवा गयल कुम्हिलाय ॥ ४ ॥
की तोरा बेटी रे दायज थोरा की रे भैया बोलैं रिसियाय रे।
की तोरे बेटी रे सेवा से चुकल्यू कहे तोरा मुँहवा उदास ॥ ५ ॥
ना मोरे बाबा रे दायज थोरा नाहीं भैया बोलैं रिसियाय रे।
ना मोरे बाबा हो सेवा में चुकलीं यहि गुन मुँहवा उदास ॥ ६ ॥
तब तौ कह्यो बाबा नियरे बिअहबै बिअह्यो देसवा के ओर रे।
नैहर लोग दुलभ ह्वैहैं बाबा रहबे बिसूरि बिसूरि ॥ ७ ॥
बोलिया तौ यस तुहूँ बोल्यू बेटी मरल्यू करेजवा में बान।
अगिले के घोड़वा बीरन तोर जैहैं पीछे लागे चारि कहार ॥ ८ ॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग़ है। लौंग आधीरात मे फूलती है। उस लौंग से बड़ी शीतल हवा आती है और बड़े सबेरे वह खूब महकती है ॥१॥

उस लौंग के नीचे सोनार का लड़का उतरा है, जो बड़े अनमोल गहने गढ़ता है। सभा में बैठे हुये पिताजी गहना गढ़ा रहे हैं और बिछुवे में घुँघुरू लगवा रहे हैं ॥२॥

हे सोनार! कंगन गढ दो। बेसर बना दो। तिलरी में हीरा जड़ दो। बेंदी को मानिक और मोती से सँवार दो। जिससे मेरी बेटी की माँग चमक उठे ॥३॥

इतने गहनें पहनकर बेटी बेदी पर बैठी। पर उसका मन बहुत उदास था। बेटी का गोरा शरीर साँवला हो गया और मुँह कुम्हला गया ॥४॥

बाप ने पूछा—हे बेटी! तू उदास क्यों है? क्या दहेज थोड़ा है? या भाई क्रोध से बोलता है? या मैं किसी सेवा में चूक गया? तेरा मुँह उदास क्यों है? ॥५॥

बेटी ने कहा—हे पिता! न तो दहेज थोड़ा है; न भाई ही क्रोध से बोलते हैं; न तुम्हीं सेवा में चूके। मैं तो इस कारण से उदास हूँ ॥६॥

पहले तो तुम कहते थे कि कहीं निकट ही विवाह करेंगे। पर तुमने तो देश के ओर विवाह दिया। मेरे लिये अब तो नैहर के लोग दुर्लभ हो जायँगे। मैं बिसूर बिसूर कर रह जाऊँगी ॥७॥

बाप ने कहा—बेटी! तुमने ऐसी बात कहकर मेरे कलेजे में तीर मार दिया। बेटी! घबड़ाओ नहीं। आगे-आगे तुम्हारा भाई घोड़े पर चढ़ कर जायगा। उसके पीछे तुमको लाने के लिये चार कहार भी जायँगे ॥८॥

[३४]

मोरे पिछुवरवाँ लवँगिया की बगिया लवँगा फूलै आधीराति रे।
तेहि तर उतरैं दुलहा दुलरुवा तुरहीं लवँगिया के फूल ॥ १ ॥
भितरा से निसरैं बेटी के भैया हाथे धनुख मुख पान रे।
कस तुहू आये मोरे दरवजवा तुरहु लवँगिया के फूल ॥ २ ॥
भितराँ से बोली बेटी छुलाछनि हथवा गजरा मुख पान रे।
जिनि भैया डाटौ आपन बहनोइया फुलवा मैं देब्यौं बटोरि ॥ ३ ॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का बाग़ है। जिसमें आधीरात में लौंग फूलती है। उस बाग़ में लौंग के नीचे प्यारे दुलहा उतरे हैं और लौंग का फूल तोड़ रहे हैं ॥१॥

भीतर से कन्या का भाई हाथ में धनुष और मुँह में पान लिये

निकला। उसने पूछा—तुम कौन हो? मेरे द्वार पर क्यों आये हो? और लौंग का फूल क्यों तोड़ रहे हो? ॥२॥

भीतर से सुलक्षणा कन्या ने, जिसके हाथ में फूलों का गजरा और मुँह में पान है, कहा—हे भाई! अपने बहनोई को मत डाटो। मैं फूल बटोर दूँगी ॥३॥

स्त्री अपने पति के मान-अपमान और सुख-दुख सब में संगिनी है। भाई के मुँह से पति का अपमान होता देखकर पति का पक्ष लेना अब स्त्री के लिये स्वाभाविक हो गया है।

[३५]

सौना भदौंना की रतिया रे बाबा भइँसि छँदानेन छुटान।
सोवत सामी मैं कैसे जगावउँ नींद अकारथ जाय॥ १ ॥
कहत कहत मैं हारेउँ रे राजा बात न मोरि उनाउ।
भइँस बेंचि सामी गहना गढ़उतेउ सोतेउ गोड़ पसारि ॥ २ ॥
एक बचन तोसे कहौं मोरि धनियाँ जौरे सुनौ मन लाय।
तुहऊँ बेंचि के भइँसी बेसहतेउँ पसरा चरउतेउँ आधीराति ॥ ३ ॥

स्त्री कहती है—सावन भादौं की घोर अँधेरी रात, छानी (पैर में रस्सी लगाकर खूँटे से बँधी) हुई भैंस छूट गई। हाय! मैं सोते हुये स्वामी को कैसे जगाऊँ? उनकी नींद व्यर्थ जायगी न? ॥१॥

हे मेरे राजा! मैं कहते-कहते थक गई। तुम मेरी बात सुनते ही नहीं। भैंस बेंचकर तुम मेरे लिये यदि गहना गढ़ा देते, तो टाँग फैलाकर आराम से सोते ॥२॥

पति सोते-सोते सुन रहा था। उसने कहा—हे मेरी प्राणेश्वरी! तुम मेरी एक बात सुनो तो कहूँ। मेरी बड़ी लालसा है कि तुमको बेंचकर एक भैंस और खरीद लूँ और आधीरात को पसर* चराया करूँ ॥३॥

* रात में भैंस चराने को पसर कहते हैं।

इस गीत में किसान स्त्री-पुरुष का विनोद बड़ा ही रोचक है। स्त्री को गहने का बड़ा चाव है और पुरुष को भैंस पालने का।

[३६]

बेरिया क बेर मैं बरजेउँ रे बाबा झँझरा मड़उना जिन छाये।
झँझरे मड़उना सुरज दह लगिहैं गोरा बदन कुम्हिलाय ॥ १ ॥
कहहु त मोरी बेटी छत्र तनाऊँ कहहु त अंचल ओढ़ाय।
कहहु त मोरी बेटी मंडिल छवाऊँ काहे के लागै घाम ॥ २ ॥
काहे के मोरे बाबा छत्र तनउबे काहे के अंचल ओढ़ाय।
काहे के बाबा मंडिल छवौबे आजु के रतिया बसेर ॥ ३ ॥
होत बिहान पह फाटत बाबा जावै परदेसिया के साथ।
काहे के मोरे बाबा छत्र तनौबा काहे क मंडिल छवाव ॥ ४ ॥
टाटक नयनूँ खवायउँ रे बेटी दुधवा पियायउँ सढ़ियार।
एकहू न गुन मानेउ मोरी बेटी चलिउ परदेसिया के साथ ॥ ५ ॥

पुत्री कहती है—हे पिता! मैंने तुमको बारम्बार रोका कि झाँझर माड़ौ मत छवाना। झाँझर माड़ौ में सूर्य की धूप लगेगी और गोरा शरीर कुम्हला जायगा ॥१॥

पिता कहता है—हे बेटी! कहो तो छत्र तनवा दूँ। कहो तो अंचल ओढ़ा दूँ। कहो तो छत बनवा दूँ। घाम क्यों लगे? ॥२॥

पुत्री कहती है—हे पिता! क्यों छत्र तनाओगे? क्यों आँचल ओढ़ाओगे? और क्यों छत्र बनवाओगे? आज ही की रात तो इस घर में मेरा बसेरा है ॥३॥

कल पौ फटते ही मैं तो परदेशी के साथ चली जाऊँगी। क्यों तुम छत्र तनाओगे और क्यों छत बनवाओगे? ॥४॥

पिता कहता है—हे बेटी! मैंने तुमको ताजा मक्खन खिलाया।

साढ़ीदार दूध पिलाया। तुमने एक भी एहसान नहीं माना और तुम परदेशी के साथ चली जा रही हो ॥५॥

इस गीत में विवाहिता पुत्री के लिये पिता के हृदय की एक गहरी कलक छिपी हुई है।

[३७]

हटियै सेंदुरा महँग भये वावा चुँदरी भये अनमोल।
यहि सेंदुरा के कारन रे वावा छोड़ेउँ मैं देश तुम्हार ॥ १ ॥
वावा कहैं वेटी दस कोस वेहौं भैया कहैं कोस पाँच।
माया कहैं वेटी नगर अजोध्या नित उठि प्रात नहाँउँ ॥ २ ॥
वावा दीहिनि अनधन सोनवाँ माया दिहिनि लहर पटोर।
भैया दिहिनि चढ़न कै हाँ घोड़वा भौजी ने अपना सोहाग ॥ ३ ॥
वावा कै सोनवाँ नवै दिन खावै फटि जैहैं लहर पटोर।
भैया कै घोड़वा नगर खोंदेवौं भौजी कै वाढ़ै अहिवात ॥ ४ ॥
वावा कहैं वेटी नित उठि आयेव माया कहैं छठे मास।
भैया कहैं वहिनी काज वियाहे भौजी कहैं कस वात ॥ ५ ॥

हे वावा! वाज़ार में सिन्दूर महँग हो गया। चुँदरी अनमोल हो गई। इसी सिन्दूर के कारण मैंने तुम्हारा देश छोड़ दिया ॥१॥

वावा ने कहा—वेटी! तुझे दश कोस की दूरी पर व्याहूँगा। भाई ने कहा—पाँच कोस पर। माँ ने कहा—वेटी! अयोध्या में तेरा व्याह करूँगी, जहाँ रोज प्रातःकाल उठकर स्नान करने आऊँगी ॥२॥

वावा ने अन्न, धन और सोना दिया। माँ ने लहरदार रेशमी धोती दी। भाई ने चढ़ने के लिये घोड़ा दिया। भौजी ने अपना सुहाग दिया अर्थात् सिन्दूर दिया ॥३॥

वावा का सोना नौ ही दिन खाऊँगी। रेशमी धोती फट जायगी। भैया के घोड़े को नगर में दौड़ाऊँगी और भौजी का सुहाग बढ़ता रहेगा ॥४॥

बाबा ने कहा—बेटी ! रोज आती जाती रहना । माँ ने कहा—छठे छमासे । भैया ने कहा—कभी कोई काम-काज पड़े तो आना । भौजी ने कहा—आने की ज़रूरत ही क्या है ? ॥५॥

[३८]

सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवाँ मैया के कोरवाँ हो ।
मोरी भौजी जे तेल लगावैं तौ मुड़वा गुँधन करैं हो ॥ १ ॥
आई हैं नाउनि ठकुराइनि तौ बेदिया चढ़ि बैठी हो ।
वे तौ ललित मेहावरि देय तौ चलन चलन करै हो ॥ २ ॥
एक कोस गई दुसर कोस तिसरे मा विन्द्रावन हो ।
धना झालरि उघारि जब चितवै मोरे बाबा के कोई नाहीं हो ॥ ३ ॥
लिल्ले घोड़े चितकावर दुलहा जे बोले हो ।
उनके हथवा सबज कमान अपान हम होई हो ॥ ४ ॥
भूँख मा भोजन खियैहौं मैं पियासे मा पानी देहौं हो ।
धनियाँ रखबों मैं हियरा लगाय बवैया बिसरि जैहैं हो ॥ ५ ॥

मैं माँ की गोद में सोया करती थी । मेरी भौजी तेल लगाकर मेरे बाल गूँथ दिया करती थी ॥१॥

यह नाइन ठकुराइन आई है । वेदी चढ़कर बैठी है । बहुत सुन्दर महावरि लगाती है और बार-बार चलने को कहती है ॥२॥

एक कोस गई, दूसरे कोस गई, तीसरे में वृन्दाबन मिला । कन्या ने जब झालर उठाकर देखा तो बाबा की तरफ़ का कोई दिखाई न पड़ा ॥३॥

नीले चितकबरे घोड़े पर दुलहा चढ़े थे । उनके हाथ में हरे रंग का धनुष था । उन्होंने कहा—तुम्हारा मैं हूँ ॥४॥

भूख लगेगी, मैं खिलाऊँगा । प्यास लगेगी, पानी पिलाऊँगा । हे

प्यारी स्त्री ! तुमको हृदय मे लगाकर रक्खूँगा । तुम अपने बाबा को भूल जाओगी ॥४॥

[३९]

मोरे पिछवारे लौंग का बिरवा लौंग चुअै आधी रात ।
लौंग बीनि बिनि ढेर लगावों लादत है बनिजार ॥ १ ॥
लादि चले बनिजार के बेटा की लादि चले पिया मोर ।
हमहूँ को पलकी सजावो रे पिआरे मोरा तोरा जुरा है सनेह ॥ २ ॥
भूखेन मरिहौ पिआसेन मरिहौ पान बिना होट कुम्हिलाय ।
कुसकी साथरी डासन पैहौ अंग छुलिय छुलि जायँ ॥ ३ ॥
भूख मैं सहिहौं पिआस मैं सहिहौं पान डारौं बिसराय ।
तुम्हरे साथ पिआ जोगिनि होइहौं ना सँग माई न बाप ॥ ४ ॥

मेरे पिछवाड़े लौंग का पेड़ है । जिसमें आधीरात को लौंग चूती है । मैं लौंग बीन-बीन कर ढेर लगाती हूँ, और मेरा पति, जो बनजारा (वाणिज्य करनेवाला) है, उसे लादता है ॥१॥

मेरा पति, जो व्यापारी का बेटा है, लौंग लादकर चला । हे मेरे प्राणप्यारे ! मेरे लिये भी पालकी सजाओ । मुझे भी साथ ले चलो । हम और तुम तो स्नेह से बँधे हैं न ? ॥२॥

पति ने कहा—हे प्यारी ! भूख से मरोगी । प्यास से मरोगी । पान बिना ओंठ कुम्हला जायगा । कुश की चटाई सोने को पाओगी । जिससे सारा शरीर छिल जायगा ॥३॥

स्त्री ने कहा—मैं भूख सहूँगी । प्यास सहूँगी । पान को भूल जाऊँगी । हे प्यारे ! तुम्हारे साथ मैं जोगनी होकर रहूँगी । न मैं माँ के साथ रहूँगी, न बाप के ॥४॥

सच है, पतिव्रता को पति के सिवा गति कहाँ ? जैसे छाया काया से अलग नहीं हो सकती, वैसे ही सती अपने पति से अलग नहीं रह सकती ।

[४०]

माहे सुगहा जे भोखैं कोइलरि देई, चलौ कोइलरि हमरे देश ।
अनन्दा बन छाँड़ि देव ॥१॥
माहे जो मैं चलौं सुगहा तोरे देश, कवन कवन सुख देवौ ।
अनन्दा वन छाँड़ि देव ॥२॥
माहे आम जे पाके महुआ जे टपकैं, डरिया वैठि सुख लेव ।
अनन्दा वन छाँड़ि देव ॥३॥
माहे दुलहा जे भोखैं दुलहिनि का, चलौ दुलहिनि हमरे देश ।
बवैया घर छाँड़ि देव ॥४॥
माहे जो मैं चलौं दुलहा तोरे देश, कवन कवन सुख देवौ ।
ववैया घर छाँड़ि देव ॥५॥
जोगउव जस घिउ गागरि, हिये बिच राखव ।
बवैया घर छाँड़ि देव ॥६॥

सुआ कहता है—हे कोयल ! हमारे देश को चलो । आनन्द-वन को छोड़ दो ॥१॥

कोयल कहती है—हे सुआ ! मैं तुम्हारे देश को चलूँ, तो मुझे तुम क्या क्या सुख दोगे ? मैं आनन्द-बन छोड दूँगी ॥२॥

सुआ कहता है—हमारे देश में आम पके हैं । महुआ टपक रहा है । डाल पर बैठकर सुख भोगो । आनन्द-वन छोड़ दो ॥३॥

इसी प्रकार दूल्हा दुलहिन को फुसला रहा है—हे दुलहिन ! हमारे देश को चलो । अपने पिता का घर छोड़ दो ॥४॥

दुलहिन पूछती है—अच्छा, यदि मैं तुम्हारे देश चलूँ, तो हे दुलहा ! तुम मुझे क्या-क्या सुख दोगे ? ॥५॥

दूल्हा कहता—तुम को इस तरह सँभाल कर रक्खूँगा जैसे घी का घड़ा । और तुम को मैं हृदय में रक्खूँगा । पिता का घर छोड़कर मेरे देश को चलो ॥६॥

घी के घड़े की उपमा देहात के लोगों को बड़ी प्यारी जान पड़ेगी। किसान घी के घड़े को बडी सँभाल से रखता है।

[४१]

कहमाँ ते सोना आये कहमाँ ते रूपा आये हो।
एहो कहमाँ ते लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥ १ ॥
कासी ते सोना आये गयाजी ते रूपा आये हो।
एहो सैयाँ सँग लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहन हो ॥ २ ॥
भितरे ते माया जो रोवइँ अँचलेमाँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोरी बिटिया चली परदेस कोखिय मोरी सूनी भई ना॥ ३ ॥
बैठक से बावू जी रोवइँ पटुके माँ आँसू पोंछैं हो।
मोरी धेरिया चली परदेस भवन मोरा सून भये ना ॥ ४ ॥
भितरे ते भैया जो रोवइँ पगड़िया माँ आँसू पोंछइँ हो।
मोरी बहिन चलीं परदेस पिठिया मोरी सून भई ना ॥ ५ ॥
ओबरी ते भौजी जो रोवइँ चुनरिया माँ आँसू पोंछइँ हो।
एहो मोर ननदी चली परदेस रसोइयाँ मोरी सूनि भई ना ॥ ६ ॥

सोना कहाँ से आया? रूपा कहाँ से आया? यह लाल पलँग कहाँ से आई? यह तो ऐसी सुन्दर है कि संसार का मन मोह लेती है ॥१॥

काशी से सोना आया। गयाजी से रूपा आया है। स्वामी के साथ लाल पलँग आई है, जो संसार का मन मोह लेती है ॥२॥

भीतर माँ रो रही हैं और आँचल से आँसू पोंछ रही हैं। हाय! मेरी बेटी परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गई है ॥३॥

बैठक में बाबू जी रो रहे हैं। दुपट्टे में आँसू पोंछ रहे हैं। हा! मेरी कन्या परदेश जा रही है। मेरा घर सूना हो गया ॥४॥

भीतर भैया रो रहे हैं। पगड़ी से आँसू पोंछ रहे हैं। हा! मेरी बहन परदेश चली। मेरी पीठ सूनी हो गई ॥५॥

भीतर कोठरी में भौजी रो रही हैं। चूँदरी में आँसू पोछ रही हैं। हा! मेरी ननद परदेश चली। मेरी रसोई सूनी हो गई ॥६॥

[४२]

सोवत रहिउँ मैया के कोरवाँ निंदिया उचटि गई मोरि।
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै केकर रचा है बियाह ॥ १ ॥
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयालि।
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै तुमरइ रचा है बियाह ॥ २ ॥
नाहीं सिखेन मैया गुन अवगुनवाँ नाहीं सिखेन राम रसोइँ।
सासु ननदि मोर मैया गरियावैं मोरे बूते सहि नहिं जाइ ॥ ३ ॥
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवाँ सिखि लेउ राम रसोइँ।
सासु ननदि तोर मैया गरियावैं लै लिहौ अँचरा पसारि ॥ ४ ॥

मैं माँ की गोद में सो रही थी। मेरी नींद उचट गई। हे माँ! किसके दरवाजे पर बाजा बज रहा है? किसका विवाह होगा? ॥१॥

माँ ने कहा—बेटी! तुम्हीं बावली हो, तुम्हीं सयानी हो। हे बेटी! तुम्हारे ही दरवाजे पर बाजा बज रहा। तुम्हारा ही ब्याह होगा ॥२॥

बेटी ने कहा—हे माँ! न मैंने कोई गुण सीखा, न अवगुण। और न रसोई बनाना सीखा। ससुराल में सास और ननद जब मेरी माँ को गालियाँ देंगी, तब मुझ से तो नहीं सहा जायगा ॥३॥

माँ ने कहा—बेटी! गुण अवगुण सब सीख लो। रसोई बनाना भी सीख लो। हे बेटी! यदि सास और ननद गाली दें, तो आँचल पसार कर ले लेना ॥४॥

क्षमा-शीलता की कैसी मनोहर शिक्षा माता ने पुत्री को दी है! क्षमा ही गृहस्थी की शान्ति का मूल है।

[४३]

कोठा उठाओ बरोठा उठाओ चौमुख रचहु दुआर।
बड़े बड़े पण्डित रे बेहन ऐहैं निहुरैं न कंत हमार ॥ १ ॥
रोजै तो बेटी रे मोरी चौपरिया आजु काहे मन है उदास।
की तोर बेटी रे अनधन थोर हैं की पायेउ दायेज थोर।
की तोर बेटी रे सुन्दर बर नाहीं काहेन मन है उदास ॥ २ ॥
नाहीं मोर बाबा अनधन थोर भे नाहीं पायउँ दायेज थोर।
नाहीं मोर बाबा सुन्दर बर नाहीं सुनि परैं दारुनि सासु ॥ ३ ॥
राजा कै राज रोज रे बेटी परिजा के छठि मास।
सासु कै राज दसै दिन बेटी आखिर राज तुम्हार ॥ ४ ॥

कोठा उठाओ। बरामदा तैयार करो। चारों ओर द्वार लगाओ। बड़े-बड़े पण्डित विवाह मे आयेंगे। देखो, मेरे स्वामी को झुकना न पड़े ॥१॥

हे बेटी! रोज तो तू मेरी चौपाल में खुश रहती थी। आज तेरा मन उदास क्यों है? क्या तेरे अन्नधन की कमी है? या दहेज कम मिला? या तेरा वर सुन्दर नहीं? तू उदास क्यों है? ॥२॥

बेटी ने कहा—हे बाबा! न मेरे अन्नधन की कमी है, न दहेज ही कम मिला और न वर ही कुरूप है। सुनती हूँ, मेरी सास बड़े कठोर स्वभाव की है। इसी से मैं उदास हूँ ॥३॥

बाप ने कहा—राजा का राज कभी खाली नहीं रहता। प्रजा का राज छः महीने का होता है। पर हे बेटी! सास का राज तो दस दिन का है। अंत में तो तेरा ही राज होगा। अर्थात् दस दिन का दुःख सह लेना। पीछे तो तुम्हीं मालकिन होगी ॥४॥

[४४]

अरे अरे कारी कोइलिया तुहैं किन भोरवा।
ऐसा अनन्द वन छोड़ि विन्द्रावन तू जे चलिउ ॥ १ ॥

काह कहौं मोरी मैया वही सुगवा भोरवा।
ऐसा अनन्द बन छोड़ि बिन्द्रावन हम जे चलेन ॥ २ ॥
अरे अरे बेटी दुलहिन देईं तुहैं किन भोरवा।
ऐसन बवैया घर छोड़ि सजन घर तूँ जे चलिउ ॥ ३ ॥
काह कहौं मोरी माई वही दुलहा भोरवा।
ऐसन बवैया घर छोड़ि सजन घर हम जे चलेन ॥ ४ ॥
गलियाँ खेलत मोर भैया झपटि घर आयेन।
छेंका है बहिनि कै राह बहिनि मोर कहँवा चलिउ ॥ ५ ॥
जाने दे ये भैया जाने दे हम तौ फन्दे परी।
काज परे हम ऐबै ये भैया पाँव उठाय ॥ ६ ॥

हे काली कोयल ! तुम्हें किसने फुसलाया ? जो तुम ऐसा आनन्द बन छोड़कर वृन्दावन को चली ॥१॥

हे माँ ! क्या कहूँ ? उसी तोते ने फुसला लिया है। इसी से ऐसा आनन्द-वन छोड़कर मैं वृन्दावन को जा रही हूँ ॥२॥

हे बेटी ! तुम्हें किसने फुसलाया ? जो तुम अपने बाबा का ऐसा घर छोड़कर सजन के घर जा रही हो ॥३॥

हे माँ ! क्या कहूँ ? उसी दूल्हे ने मुझे फुसलाया है, जो पिता का ऐसा सुखदायक घर छोड़कर मैं सजन के घर जा रही हूँ ॥४॥

गली में खेलता हुआ मेरा छोटा भाई झपटकर घर आया और बहन का रास्ता छेंककर पूछने लगा—मेरी बहन ! कहाँ जा रही हो ? ॥५॥

बहन ने कहा—हे भाई ! मुझे जाने दो। मैं तो अब फंदे में पड़ गई हूँ। जब कोई काम-काज तुम्हारे यहाँ पड़ेगा, तब मैं आऊँगी। यह लो, मैं चली ॥६॥

[४५]

ऊँच नगर पुर पाटन बावा हो
बसि गइलैं कोइरी कोंहार हो।
महला के आरी पासे बसि गइले हेलवा
डलवा बीने अनमोल हो।
हमें जोगे डलवा बीनहु भइया हेलवा
साग बेंचन हम जाव हो ॥ १ ॥
एक बने गइलों दुसरे बने गइलों
तीसर बने लागेले बजार हो।
अपना महल मँइले रजवा पुकारेल
काह बेंचन तुहूँ जाहु रे ॥ २ ॥
केथुआ के तोरी डाल डलइया
केथुआ क परेला ओहार हो।
केथुआ के तोरे सिर कै गेंडुरिया
काह बेंचन तुहुँ जाउ रे ॥ ३ ॥
बाँसन के मोरे डाल डलइया रे
पाटन परेला ओहार रे।
रेसम के मोरे सिर के गेंडरिआ
साग बेंचन हम जाव हो ॥ ४ ॥
आवहु कोइरिनि हमरी महलिया रे
पियहु सुरही गाइ के दूध रे।
सोवहु कोइरिनि हमरी सेजरिया
कचरहु मगही ढोली पान रे ॥ ५ ॥
अइसन बोली राजा फेरि जनि बोलेउ
भइली धरम कइ बेर रे।

जोहत होइहैं मोरी सासु ननदिया
दुधवा दुहन कइ जूनि रे ॥ ६ ॥
पोहता पोहत कइ हटिया बिनइबै हो
मुरई के बेवँड़ा देब रे।
अपनो कोइरी लेइ सुतबौं सेजरिया
हँसि खेलि करिबौं विहान हो ॥ ७ ॥

हे बाबा ! पाटन नगर उँचाई पर बसा हुआ है। उसमें कोइरी और कुम्हार बस गये हैं। महल के आसपास हेला (मेहतरों की एक शाखा, जो देहात में सूप और डलिया वनाया करते हैं) वस गये हैं, जो अनमोल डलिया बिनते हैं। हे हेला भाई ! मेरे लिये एक डलिया बना दो। मैं उसमें साग रखकर बेंचने जाऊँगी ॥१॥

साग बेंचने के लिये वह एक बन में गई। दूसरे वन में गई। तीसरे बन मे बाजार लगता था। बाज़ार के राजा ने अपने महल में से पुकारा—तुम क्या बेंचने जा रही हो ? ॥२॥

किस चीज़ की तुम्हारी डलिया है ? उस पर किस कपड़े का ओहार (परदा) पड़ा है ? तुम्हारे सिर पर गेंडुली (घड़े के नीचे रखने के लिये गोल बटी हुई घास) किस चीज़ की है ? तुम क्या बेंचने जा रही हो ॥३॥

कोइरिन ने कहा—मेरी डलिया तो बाँस की है। उस पर रेशम का ओहार पड़ा है। मेरे सिर पर रेशम की गेंडुली है। मैं साग बेंचने जा रही हूँ ॥४॥

राजा ने कहा—हे कोइरिन ! मेरे महल में आओ न ? मज़े से सुरा गाय का दूध पिओ। मेरी सेज पर सुख से सोओ और मघई (मगध का) पान कचरो (खाओ) ॥५॥

कोइरिन ने कहा—हे राजा ! एक बार बोल लिया तो बोल लिया,

फिर ऐसी बात न बोलना। धर्म की बेला (संध्या) हुई है। मेरी सास और ननद मेरी राह देखती होंगी। अब दूध दुहने की बेला आ गई है ॥६॥

मुझे तुम्हारा महल नहीं चाहिये। पोस्ते (अफ़ीम के पौधे) की टट्टी बनवाऊँगी। उसमें मूली का बँवड़ा लगवाऊँगी। अपने कोइरी को लेकर सेज पर सोऊँगी और हँस-खेलकर सबेरा कर दूँगी ॥७॥

ग़रीबिनी अपने झोंपड़े में, अपनी मामूली आमदनी ही में संतुष्ट, है। चरित्र बेंचकर वह न सुरा गाय का दूध चाहती है, और न महल, और न सुख की सेज। पोस्ते की टट्टी में मूली का बंवडा उसे राजमहल से कहीं अधिक मनोहर लगता है। सच है—

टूट खाट घर टपकत टटिऔ टूटि।
पिय के बाँह सिर्हनवाँ सुख कै लूटि॥

महल में राजा हैं, पर 'पिय' तो नहीं है। जहाँ 'पिय' हैं, वहीं सुख है।

[४६]

अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भवँरा आजु मोरे काज बियाह नेवत दै आवो ॥ १ ॥
नेवत्यों मैं अरगन परगन औ ननिआउर।
एक नहिं नेवत्यों बिरन भैया जिनसे मैं रूठिउँ ॥ २ ॥
सासु भेंटैं आपन भइया ननद आपन बीरन।
कोइलरि छतिया उठी घहराय मैं केहि उठि भेंटौं ॥ ३ ॥
अरे अरे काला भवँरवा आँगन मोरे आवो।
भवँरा फिरि से नेवत दै आवो बीरन मोर आवैं ॥ ४ ॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि जनि कोई गावो।
आजु मोरा जियरा दिरोग बीरन नहिं आये ॥ ५ ॥

अरे अरे चेरिया लौंड़िया दुवारा झाँकि आवो।
केहकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भये ॥ ६ ॥
अरे अरे रानी कौसिल्या बीरन तुमरे आये।
उनहीं के घोड़ा ठहनाय दुवारे अति भीर भये ॥ ७ ॥
आगे आगे चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
लिल्ले घोड़े भैया असवार तो डँड़िया भावुज मोरी ॥ ८ ॥
अरे अरे जागिनि भाँटिनि सभै कोई गावो।
मोरे जिअरा भये हैं हुलास विरन मोर आये ॥ ९ ॥
अरे अरे सासु गोसाईं करहिया चढ़ावो।
आजु मोरा जियरा हिलोरै बीरन मोर आये ॥१०॥
अस जिन जानौ बहिनी त भैया दुखित अहैं।
बहिनी बेंचवौं मैं फाँड़े क कटरिया चौक लइ अइवेउँ ॥११॥
अस जिन जानौ ननदी की भौजी दुखित अहैं।
ननदी बेचवौं मैं नाके क बेसरिया पिअरिया लइ के
अइबै ॥१२॥
कहवाँ उतारौं चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
कहवाँ भेंटौं बीरन भैया तौ कहवाँ भावुज मोर ॥१३॥
ओबरी उतारौ चौरा चँगेरवा पियरी गहागह।
डेवढ़ी भेंटौं बीरन भैया तौ अँगना भावुज मोर ॥१४॥
लहँगा लै आये वीरन भैया पिअरी कुसुम कै।
अँगिया लै आईं मोरि भौजी चौक पर कै चूँदरि ॥१५॥
हँसि हँसि पहिरिन ओढ़िन सुरुज मनाइन।
बढ़इ ववैया तोर बेल मान मोर राखेउ ॥१६॥

हे काले भौंरा ! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा ! आज मेरे यहाँ विवाह का कार्य है। तुम जाकर निमन्त्रण दे आओ ॥१॥

स्त्री मन में अनुभव करती है—मैंने गाँव और परगने भर को न्योता दिया। पर भाई को नहीं न्योता दिया, जिनसे मैं रूठी हूँ ॥२॥

सास और ननद अपने-अपने भाइयों से भेंट कर रही हैं। मेरी छाती घहरा उठती है। हाय ! मेरे भाई नहीं आये। मैं किसको भेंटूँ ? ॥३॥

वह पछताती है और कहती है—हे काले भौंरा ! मेरे आँगन में आओ। हे भौंरा ! भाई को फिर से न्योता दे आओ कि वह आवे ॥४॥

अरी जागिनो ! अरी भाँटिनो ! कोई गाओ मत। आज मेरे मन में बड़ा दुःख है। मेरा भाई नहीं आया ॥५॥

अरी दासियो ! जाओ, द्वार पर झाँककर देख आओ। किसका घोड़ा हिनहिना रहा है ? मेरे द्वार पर किसलिये भीड़ हुई है ? ॥६॥

दासियों ने कहा—हे रानी कौशल्या ! तुम्हारे भाई आ गये। उन्हीं का घोड़ा हिनहिना रहा है और उन्हीं के लिये द्वार पर भीड़ लगी है ॥७॥

आगे-आगे चावल से भरा हुआ चँगेरा (बाँस या मूँज का बना हुआ बड़ा टोकरा) और गहरे रंग की पीली धोती है। उसके पीछे नीले घोड़े पर सवार मेरा भाई है और पालकी में मेरी भौजाई है ॥८॥

अरी जागिनो ! अरी भाँटिनो ! सभी गाओ। आज मेरे हृदय में हर्ष उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥९॥

अरी मालकिन सासजी ! कड़ाई चढ़ाओ। आज मेरे हृदय में आनन्द उमड़ रहा है। मेरा भाई आया है ॥१०॥

भाई ने कहा—हे बहन ! ऐसा मत समझना कि भाई ग़रीब है। मैं अपने कमर की कटारी बेंचकर चौक ले आता ॥११॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! ऐसा मत समझना कि भौजाई ग़रीब है। मैं अपने नाक की बेसर बेंचकर पिअरी (पीली साड़ी) ले आती ॥१२॥

यह चावल से भरा हुआ चँगेरा कहाँ उतारूँ ? और यह पियरी कहाँ

रक्खूँ ? मैं अपने प्यारे भाई से कहाँ भेंट करूँ ? और अपनी भौजाई से कहाँ मिलूँ ? ॥१३॥

चावल का चँगेरा कोठरी में रख दो। पियरी भी वहीं रख दो। बैठक में भाई से और आँगन में भौजाई से भेंट करो ॥१४॥

भाई लहँगा और कुसुमी रङ्ग की पिअरी ले आये हैं। भौजाई चोली और चौक पर पहनने की चूनरी ले आई हैं ॥१५॥

स्त्री ने हँस-हँसकर कपड़े पहने। फिर वह सूर्य को मनाने लगी—हे सूर्य ! मेरे बाबा की लता ख़ूब फैले। जिन्होंने आज मेरा मान रख लिया ॥१६॥

इस गीत में भाई से रूठी हुई बहन के मन का उतार-चढ़ाव ऐसा चित्रित किया गया है कि क्या कोई महाकवि वैसा कर सकेगा ? ससुराल में बहू को अपने मायके के मान-अपमान का बड़ा ख्याल रहता है। सास और ननद को अपने भाइयों से मिलते देखकर बहू का रूठा हुआ हृदय अपने भाई के लिये छटपटाने लगा। अंत में भाई आया तो बहन ने उसके लिये कितना हर्ष प्रकट किया है, यह एक-एक पंक्ति से छलक रहा है।

भाई का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि—'मैं गरीब हूँ तो क्या हुआ ? मैं अपने कमर की कटारी बेंच कर न्योता लेकर आता ?' अहा ! कभी कटारी भी हमारा धन था। और वह शरीर और धन की ही नहीं, सामाजिक अभिमान की भी रक्षा करता था।

[४७]

आधे तलवा माँ हंस चूनैं आधे माँ हंसिनि।
तबहूँ न तलवा सोहावन एक रे कमल बिन रे ॥ १ ॥
आधे बगिया माँ आम बौरे आधे माँ इमिली बौरे हों।
तबहूँ न बगिया सोहावनि एक रे कोइलि बिन रे ॥ २ ॥

आधी फुलवरिया गुलबवा आधी म केवड़ा गमकइ।
तबहूँ न फुलवा सोहावन एक रे भँवर बिन ॥ ३ ॥
सोने क सुपवा पछोरैं मोतिया हलोरैं।
तबहूँ न पुरुष सोहावन एक रे सुनरि बिन ॥ ४ ॥
आधे माड़ौ माँ गोत बैठैं आधे माँ गोतिन बैठैं हो।
तबहूँ न माड़ौ सोहावन एक रे ननद बिन रे ॥ ५ ॥
बेदिया ठाढ़ पण्डितवा कलस कलस करै हो।
बेदिया ठाढ़ कन्हैया बहिनि गोहरावैं हो ॥ ६ ॥
कहाँ गइउ बहिनी हमार कलस मोर गोंठौ हो।
निचवा से डोलिया उँचवा गये पात खहराने हो ॥ ७ ॥
अँगना से भैया भीतर गये भौजी से मत करैं हो।
धनिया आवति हैं बहिनि हमार गरब जिनि बोलेउ
निहुरि पैयाँ लागेउ हो ॥ ८ ॥
आवौ ननदी गोसाँइनि पैयाँ तोरे लागी हो।
बैठौ माँझ मड़ौवा कलस मोर गोंठौ हो ॥ ९ ॥
भौजी तीनिउ बरन मोर नेग तीनिउ हम लेबै हो।
लेबै भौजी सोरहौ सिंगार रहँसि घर जाबै हो ॥ १० ॥
देबिउँ मैं तीनिउ नेग औ सोरहो सिँगारउ।
हमरे हरी जी क परम पियारि तोहार मन राखब ॥ ११ ॥

आधे ताल में हंस चुन रहे हैं। आधे में हंसिनी चुन रही हैं। फिर भी कमल बिना ताल सुन्दर नहीं लगता है ॥ १ ॥

आधे बाग में आम बौरे हैं। आधे में इमली फूल रही है। पर कोयल बिना बाग़ सुन्दर नहीं लगता है ॥ २ ॥

आधी फुलवारी में गुलाब खिल रहा है। आधी में केवड़ा महक रहा है। पर बिना भौंरे के फुलवाड़ी सुहावनी नहीं लगती है ॥ ३ ॥

घर में इतना धन है कि सोने के सूप में मोती पछोरे और हलोरे जाते हैं। पर एक सुन्दरी स्त्री बिना पुरुष शोभायमान नहीं लगता ॥४॥

आधे माँड़ौ में गोत्रवाले बैठे हैं, आधे में गोतिनियाँ हैं। फिर भी एक ननद बिना माँड़ौ सूना-सा लगता है ॥५॥

वेदी पर खड़े-खड़े पण्डित 'कलश लाओ' 'कलश लाओ' की पुकार मचाये हुये हैं। वेदी पर खड़ा हुआ भाई बहन को पुकार रहा है ॥६॥

मेरी बहन कहाँ है? बहन! आओ और कलश गोंठो (चित्रित करो)। इतने में नीचे से डोली ऊपर आई और पत्ते खड़खड़ाये ॥७॥

भाई आँगन से अपनी स्त्री की कोठरी में गया और स्त्री को समझाने लगा—हे मेरी प्यारी स्त्री! मेरी बहन आ रही है। देखना, उसके सामने अभिमान की कोई बात न बोलना। झुककर, उसका पैर छूकर, उसे प्रणाम करना ॥८॥

ननद के आने पर स्त्री ने कहा—हे ननद! आओ। मैं तुमको पैर छूकर प्रणाम करती हूँ। माँड़ौ के मध्य में बैठो और कलश गोंठो ॥९॥

ननद कहती है—हे भौजी! मेरे तीन नेग हैं। मैं तीनों लूँगी। हे भौजी! मैं सोलहो श्रृङ्गार की चीजें लूँगी, और प्रसन्न होती हुई घर जाऊँगी ॥१०॥

भौजाई ने कहा—हे ननद! मैं तुमको तीनों नेग दूँगी और सोलहो श्रृङ्गार की चीजें भी दूँगी। तुम मेरे प्राणनाथ की परम प्यारी बहन हो। मैं तुम्हारा मन अवश्य रक्खूँगी ॥११॥

जान पड़ता है, बहन बेचारी गरीब थी। इसी से भाई ने लपककर अपनी स्त्री को पहले ही से सावधान कर दिया कि बहन के सामने गर्व की कोई बात न बोलना। बल्कि नम्रतापूर्वक झुककर प्रणाम करना। धन में हीन, किन्तु पद में मान्य व्यक्ति को धनी कुटुम्बी का अभिमान असह्य हो जाता है। धनी होने पर जो जितना ही नम्र होता है, समाज में उसकी उतनी ही इज्ज़त बढ़ती है।

अन्त में, बहू ने जो यह भाव प्रकट किया है कि "मेरे प्रियतम का जो प्रिय है, मैं उसका मन अवश्य रक्खूँगी।" इसमें प्रियतम के लिये बहू के हृदय में अकृत्रिम और अगाध प्रेम प्रकट होता है। जो अपने को प्रिय है, उसकी प्रत्येक वस्तु प्रिय होने ही से सच्चे प्रेम का आनन्द मिल सकता है।

[४८]

हाथ लेले लोटिया काँधे लेले धोतिया पोथिया लिहले ओरमायजी।
चलले चलल विप्र गइले अयोध्या ठाढ़ भइले दसरथ द्वार जी।
तोहरा घरे राजा राम दुलरुआ मोरा घरे सीता कुँआरि जी ॥१॥
नौ लाख घोड़ा नौ लाख हाथी नौ लाख तिलक दहेज जी।
सीता ऐसन बारे दुलहिन देबों जासे होइहैं अवध अँजोर जी ॥२॥
अइसन बोली जनि बोला ये विप्र मोरा बूते सहलो न जाय जी।
समुचे अजोध्या के राम दुलरुआ मोरा बूते कहलो न जाय जी ॥३॥

हाथ में लोटिया ले लिया। कंधे पर धोती और बगल में पुस्तक लटका ली। चलते-चलते ब्राह्मण अयोध्या पहुँचा और दशरथ महाराज के द्वार पर खड़ा हुआ। ब्राह्मण ने कहा—हे राजा! तुम्हारे घर में प्यारे राम हैं और हमारे घर में कुँवारी सीता हैं ॥१॥

नौ लाख घोड़ा, नौ लाख हाथी, और नौ लाख रुपये तिलक में दिये जायँगे। सीता ऐसी दुलहिन दूँगा, जिससे सारे अयोध्या में प्रकाश छा जायगा ॥२॥

महाराज दशरथ ने कहा—हे ब्राह्मण! ऐसा वचन मत बोलो। मुझ से सहा नहीं जाता। राम सारी अयोध्या के प्यारे हैं। अकेला मैं कुछ कह नहीं सकता ॥३॥

गीत की अंतिम पंक्ति से मालूम होता है कि गीत रचनेवाले की राय में राजा अपने पुत्र का विवाह भी प्रजा की सम्मति बिना नहीं कर

सकता। तुलसीदास ने भी दशरथ के मुँह से ऐसा ही कहलाया है—

जो पाँचहिं मत लागै नीका।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका॥

राजाओं को इस गीत पर ध्यान देना चाहिये।

[४९]

अरी अरी कारी कोइलि तोर जतिया भिहावन रे।
कोइलरि बोलिया बोलउ अनमोल त सब जग मोहै रे॥ १॥
अरी अरी कारी कोयलिया आँगन मोरे आवहु रे।
आजु मोरे पहिला बियाहु नेवत दै आवहु रे॥ २॥
नेउतेउँ मैं अरगन परगन अरे ननिआउर रे।
कोइलरि एकु न नेउतेउँ बीरन भइया जिनसे मैं रूठिउँ रे॥ ३॥
अरी अरी सखिया सहेलरि मंगल जनि गावहु रे।
सखिया आजु मोरा जियरा उदास बीरन नाहीं आए रे॥ ४॥
आगे के घोड़वा भइया मोरे डोलिया भउज रानी रे।
एहो बीच में सोहैं भतिजवा तौ भरिगा है माड़उ रे॥ ५॥
कहवाँ उतारौं बीरन भइया कहवाँ भउज रानी रे।
रामा कहवाँ उतारौं भतिजवा तौ भरिगा है आँगनु रे॥ ६॥
द्वारे उतारौं बीरन भइया महले भउज रानी रे।
रामा अँगने माँ खेलैं भतिजवा तौ भरिगा है माड़उ रे॥ ७॥
अरी अरी सखिया सहेलरी मंगलु अब गावहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास बीरन भइया आये हैं रे॥ ८॥
अरी अरी नाउनि बारिनि नेगु अब माँगहु रे।
आजु मोरा जियरा हुलास बीरन भइया आये हैं रे॥ ९॥

हे काली कोयल! तुम्हारी जाति देखने में तो बड़ी भयानक लगती

है। पर तुम ऐसी मीठी बोली बोलती हो कि उस पर सारा संसार मुग्ध हो जाता है ॥१॥

हे काली कोयल! मेरे आँगन में आओ। आज मेरे घर में पहला विवाह है। तुम न्योता दे आओ ॥२॥

मैंने परगने भर को, सब सम्बंधियों को न्योता दिया। हे कोयल! पर मैं अपने भाई से रूठी हूँ। उसको न्योता मत देना ॥३॥

हे सखी सहेलियो! मंगल-गीत न गाओ। हे सखियो! आज मेरा मन उदास है। मेरा भाई नहीं आया है ॥४॥

अहा! आगे के घोड़े पर मेरा भाई और पीछे की डोली में मेरी भावज रानी आ रही हैं। अहो! बीच में मेरा भतीजा है। इनसे सारा माड़ौ (मंडप) भर गया है ॥५॥

भाई को कहाँ उतारा जाय? भावज रानी को कहाँ उतारा जाय? भतीजे को कहाँ उतारा जाय? जिनसे आँगन भर गया है ॥६॥

भाई को द्वार पर उतारो। भावज रानी को महल में डेरा दो। भतीजा तो आँगन में खेलता रहेगा, जिनसे माँड़ौ भर गया है ॥७॥

हे सखी सहेलियो! मंगल गाओ। आज मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥८॥

हे नाइनो! हे बारिनो! अब मुँह-माँगा नेग लो। आज मेरा मन बहुत प्रसन्न है। मेरा भाई आया है ॥९॥

[५०]

हे पाँच पान नौ नरियल!
सरगै जे बाटे आजा परपाजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता॥

भुइयाँ भवानी पाटन के देवी,
बिजलेश्वरी माता काली माई,
डिवहार बाबा तुमरौ नेवता ॥
बिंध्याचल के देवी तुमरौ नेवता ॥
घर के देवी शायर भवानी तुमरौ नेवता ॥
साँप गोजर बीछी कूछी तुमरौ नेवता।
आँधी पानी लड़ाई झगड़ा,
डीमी धींगा तुमरौ नेवता ॥
ओंठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि,
तुमरौ नेवता ॥
इसरा बिसरा कन्या कुमारी,
तुमरौ नेवता ॥
हे ओऊ जे अम्मा लाये जे अम्मा
बौरे हैं आजु ॥
पाँच पान नौ नरियल !

यह गीत स्त्रियों का निमंत्रण-गीत है। ब्याह आदि शुभ-अवसरों पर कहीं-कहीं यह गाया जाता है।

इसमें 'ओंठ बिचकावनि' और 'भौंह सिकोरनि' ये दो शब्द ख़ास ध्यान देने योग्य हैं। कुछ स्त्रियों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरे की बढ़ती नहीं सह सकतीं। जब उनसे कोई किसी के यहाँ उत्सव आदि होने का जिक्र करता है, तब वे बड़ी उपेक्षा से मुँह बिचका देती हैं या भौं मटका देती हैं। ऐसी स्त्रियों को भी इसलिये निमंत्रण दिया गया है कि ये भी संतुष्ट रहें और विघ्न न डालें।

[५१]

आँखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढ़ली कमान रे।
यतनी सुरति तुहूँ पायो दुलरुआ के हि गुन रह्यो कुँआर रे ॥ १ ॥
बाबा मोरे गयनि कमरू के देसवा रे पितिया गयनि
मेवाड़ रे।
जेठ भैया गयनि जीरा की लदनिया यहि गुन
रह्यों कुँआर रे ॥ २ ॥
दखिन के देसवा से लिखि पढ़ि आयूँ चिठिया
लिख्यों समुझाय रे।
आवहु बाबा रे आवहु काका आवहु सग जेठ भाइ रे ॥ ३ ॥
बाबा मोरे लेइ आये मोहरा पचास रे पितिया लेइ
आये हाथी घोड़ रे।
जेठ भैया लायनि झारि पितम्बर अब मोरा रचा है बिआह रे ॥ ४ ॥

हे दूल्हा! आँखें तो तुम्हारी आम की फाँकों की तरह हैं, और भौंहे चढ़ी हुई कमान की तरह। हे प्यारे! तुमने इतनी सुन्दरता पाई है। पर तुम क्वारे क्यों रह गये? ॥१॥

वर कहता है—मेरे बाबा कामरूप देश को गये थे। मेरे चचा मेवाड़ गये थे। जेठे भाई जीरा लादने गये थे। इस कारण से मैं क्वाँरा रह गया ॥२॥

मैं दक्षिण देश से पढ़-लिखकर लौटा, तब मैंने सब को चिट्ठियाँ लिखीं कि बाबा आओ, काका आओ, जेठे सगे भाई आओ ॥३॥

मेरे बाबा पचास मोहर लेकर आये। काका हाथी-घोड़ा ले आये। और जेठे भाई पीताम्बर ही पीताम्बर ले आये। अब मेरा विवाह हो रहा है ॥४॥

इस गीत से तो यह स्पष्ट ही मालूम होता है कि वर का विवाह

तब हुआ था, जब वह दक्षिण से अच्छी तरह पढ-लिखकर घर आया था और उसने स्वयं पत्र लिखकर अपने बाबा, काका और भाई को बुलाया और अपने विवाह के लिये उनसे कहा। वह आजकल की तरह विवाह का खिलौना नहीं था।

[५२]

लाली तोरी अँखिया ए बाबू काली तोरी केस।
कौने लोभे ऐल्या ए बाबू देसवा के ओर ॥ १ ॥
मोरे देसे बाटीं हो सासू अगुनी वहूत।
गुनिया लोभे ऐलीं ए सासू देसवा के ओर ॥ २ ॥
मैं तोसे पूछों ए बाबू हिरदै केरी बात।
कैसे कैसे रखब्या ए बाबू गुनिया केरे मोल ॥ ३ ॥
गुनिया के रखबै सासू हिरदैया लगाय।
मीठी मीठी बोलिया सासू मन हरि लेब ॥ ४ ॥

हे बाबू! तुम्हारी आँखें लाल-लाल हैं, केश काले हैं। तुम किस लोभ से इतनी दूर आये हो? ॥१॥

हे सास! मेरे देश में गुणहीन बहुत हैं। मैं गुणवन्ती की खोज में इतनी दूर आया हूँ ॥२॥

हे बाबू! मैं तुमसे हृदय की बात पूछती हूँ—तुम गुणवन्ती को कैसे रक्खोगे? ॥३॥

हे सास! मैं गुणवन्ती को हृदय से लगाकर रक्खूँगा और मीठी-मीठी बातों से उसका मन हर लूँगा ॥४॥

वर गुणवन्ती की खोज में दूर-दूर तक फिरा था। वर को समाज में अधिकार था कि वह अपनी पसंद के अनुसार अपनी जीवन-सहचरी को चुन ले। यह अधिकार न्याययुक्त था और आजकल भी वर और कन्या को ऐसा ही अधिकार मिलना चाहिये।

[५३]

मोरे के अँगना तुलसिया रे अरे पतवन झालरि रे।
तेहिं तर ठाढ़ दुलह रामा देवा मनावइँ रे ॥ १ ॥
अरे का तू देवा गरजौ अरे बिजुली तड़ापड रे।
देवा भिजतै बिआहन जाब पराई धेरिया वेहि लैबे रे ॥ २ ॥
नदिया के ईरे तीरे दुलहा अरे दुलहा पुकारइँ रे।
ससुरा पठै देउ नैया नेवरिया मैं तेहि चढ़ि आवउँ रे ॥ ३ ॥
नाहीं मोरे नैया नेवरिया नाहीं मोरे केवट रे।
जो मोरी धेरिया क चाहै पइरि गंगा आवइ रे ॥ ४ ॥
भीजै मोरा अँग कै अँगरखा औ सिर कै पगड़िया हो।
ससुरा भीजै मोरा सोरहौ सिंगार तोहरे धेरिया के कारन हो ॥५॥
देवै मैं अँग कै अँगरखा औ सिर कै पगड़िया रे।
दुलरू देवै मैं सोरहौ सिँगार पइरि गंगा आवहु रे ॥ ६ ॥

मेरे आँगन में तुलसी का वृक्ष है, जो पत्तों से खूब हराभरा हो रहा है। उसके तले वर खड़ा है और देव से कह रहा है ॥१॥

हे देव! चाहे कितना ही गरजो और कितना ही चमको; मैं भीगते ही विवाह करने जाऊँगा और दूसरे की कन्या ब्याह लाऊँगा ॥२॥

नदी के किनारे वर पुकार रहा है—हे ससुरजी! नाव भेज दीजिये। मैं उस पर चढ़कर उस पार आ जाऊँ ॥३॥

ससुर ने कहा—न मेरे नाव है, न केवट। जो मेरी कन्या चाहता है, उसे नदी तैर कर आना चाहिये ॥४॥

वर कहता है—मेरा अँगरखा भीग जायगा। मेरी पगडी भीग जायगी। हे ससुर! तुम्हारी कन्या के लिये मेरा सोलहो शृङ्गार भीग जायगा ॥५॥

ससुर कहता है—भीगने दो। मैं अँगरखा दूँगा। पगडी दूँगा। हे

प्यारे ! मैं श्रृङ्गार की सब सामग्री दूँगा यदि तुम गंगा तैरकर आओगे ॥६॥

पूर्वकाल में विवाह होने के पहले वर की योग्यता की जाँच की जाती थी। जैसे, रामायण में धनुर्भंग और महाभारत में लक्ष्य-वेध द्वारा जाँच की गई थी। गीतों के काल में वह प्रथा उठ-सी गई जान पडती है। उस समय सडके बहुत कम थीं और नदी पार करने के लिये हरएक व्यक्ति को तैरना जानना बहुत ज़रूरी समझा जाता रहा होगा। इसी लिये जनेऊ और विवाह के गीतों मे तैरने की कला मे निपुण होने की ओर संकेत किया गया है। इस गीत में भी वही है।

[५४]

बाजत आवै ककरहिली के बाजन घुमरत आवै निसान।
राम लखन दूनौ पूछत आवैं कौन जनक दरवाज ॥ १ ॥
जनक दुवारे चनन वड़ रुखवा हथिनी बाँधी सब साठ।
भितिया तौ उनके रे चित्र उरेहे उहै जनक दरवाज ॥ २ ॥
भितराँ से निकरी हैं जनक कहारिन हाथे घइला मुख पान रे।
पनिया भरउँ मैं सब के रे रजवा बतिया न कहहुँ तुम्हारि ॥ ३ ॥
मैं तुमसे पूँछौं जनक कहारिन किन यह चित्र उरेहु।
जवनी सीतल देई क ब्याहन आयो तिन यह चित्र उरेहु ॥ ४ ॥
उठहु न दादुलि उठहु न राजा उठहु न कुँवर कँधाइ।
ऐसी सितल देई क हमना सो ब्याहउ करहिं बरइली क कारु ॥ ५ ॥

ककरहिली (?) का बाजा बजता आ रहा है। झूमता हुआ झण्डा आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों पूछते आ रहे हैं कि जनक का द्वार कौन सा है ? ॥१॥

जनक के दरवाज़े पर चन्दन का बड़ा वृक्ष है। साठ हथिनियाँ बँधी हैं। दीवारों पर चित्र अंकित हैं। वही जनक का द्वार है ॥२॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली, जिसके हाथ में घड़ा और

मुँह में पान है। वह कहती है—मैं इस राज मे कई पीढ़ी से पानी भरती आ रही हूँ। पर मैं इस घर की बात कभी किसी से कहती नहीं ॥३॥

राम ने पूछा—हे जनक की कहारिन ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि यह चित्र किसने लिखा है ? कहारिन ने कहा—जिस सीता देवी को तुम ब्याहने आये हो, उसी ने यह चित्र लिखा है ॥४॥

राम कहते हैं—हे पिता ! उठो। हे राजा ! उठो। हे कुँवर कन्हैया ! उठो। ऐसी सीता का विवाह मुझसे करो ॥५॥

इस गीत में दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो कहारिन की दृढ़ता—वह कई पीढ़ियों से पानी भरती आ रही है। घर का सब भेद जानती है, पर किसी से कहती नहीं। इस गीत में अच्छे नौकरों का यह एक बड़ा सुन्दर लक्षण वर्णित है। दूसरे चित्रकला का आदर—पूर्वकाल में चित्रकला का ऐसा महत्त्व था कि जो कन्या अच्छा चित्र खींचना जानती थी, उसके अन्य गुणों के देखने की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। चित्राङ्कन देखकर ही लोग उस पर मुग्ध हो जाते थे।

[५५]

बाजत आवै कफरैला कै बाजन घुमड़त आवैं निसान।
राम लखन दूनौं पूछत आवैं कवन जनक दरबार ॥ १ ॥
गौवाँ के आसे पासे घन बँसवरिया आँगन नेबुला अनार।
भितिया तौ उनके रे पुतरी उरेही उहै होय जनक दुवार ॥ २ ॥
भितराँ से निकरी हैं जनका कहाँरिन राम लिहिनि बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा कहाँरिन हमसे कहउ अरथाय ॥ ३ ॥
घर घर जनकजी पनियाँ भरावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै बारिनि उनसे पूँछेव अरथाय ॥ ४ ॥
भितराँ से निकसी हैं जनक कै बारिन राम लिहिन बुलवाय।
को यह पुतरी उरेहा है बारिन हमसे कहौ अरथाय ॥ ५ ॥

घर घर जनकजी पतरी देवावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
आवति हैं राजा जनका कै नाउनि उनसे पूँछेव अरथाय ॥ ६ ॥
भितरा से निकसी हैं जनक कै नाउनि राम लिहिन बुलवाय।
के यह पुतरी उरेहा है नाउनि हमसे कहौ अरथाय ॥ ७ ॥
घर घर जनकजी विजय करावैं हमसे दुतैया नाहीं होय।
जौने रानीयवाँ का ब्याहन आयौ ते यह पुतरी उरेह ॥ ८ ॥

ककरैला (?) का बाजा बजता आ रहा है और झंडा लहराता आ रहा है। राम-लक्ष्मण दोनों भाई पूछते आ रहे हैं कि जनक का द्वार कौन सा है ? ॥१॥

गाँव के आसपास घनी बँसवारी (बाँसों का कुञ्ज) है। आँगन में नीबू और अनार लगे हैं। दीवारों पर चित्र बने हुये हैं। वही जनक का घर है ॥२॥

भीतर से जनक की कहारिन निकली। राम ने उसे बुलवा लिया और पूछा—हे कहारिन ! यह चित्र किसने बनाया है ? मुझे समझाकर कहो ॥३॥

कहारिन ने कहा—हे कुँवरजी ! मैं तो राजा जनक के घर में पानी भरती हूँ। मुझे इधर की बात उधर लगानी नहीं आती। राजा जनक की बारिन आती है। उससे अच्छी तरह पूछ लीजिये ॥४॥

भीतर से जनक की बारिन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—हे बारिन ! यह चित्र किसने बनाया है ? ॥५॥

बारिन ने कहा—मैं तो राजा जनक के घर में पत्तल देने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप राजा जनक की नाइन से पूछ लीजिये। वह आ रही है ॥६॥

भीतर से राजा जनक की नाइन निकली। राम ने उसे बुलवाकर पूछा—हे नाइन ! यह चित्र किसने बनाया है ? ॥७॥

नाइन ने कहा—मैं राजा जनक के घर मे रसोई जिमाने का काम करती हूँ। मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। आप जिस रानी को व्याहने आये हैं, उसी ने यह चित्र बनाया है ॥८॥

कहारिन ने नहीं बताया, बारिन ने नहीं बताया, पर नाइन ने बता दिया। नाइन के पेट में बात नहीं पचती। नाई-नाइन के इस स्वभाव से घबराकर चाणक्य को लिखना पड़ा था—

नराणां नापितो धूर्तः

अर्थात् मनुष्यों में नाई धूर्त होता है।

इस गीत में एक ओर तो नाइन कहे जाती है कि मुझसे दूती का काम नहीं हो सकता। दूसरी ओर धीरे से बताती भी जाती है कि किसने चित्र बनाया है।

मुख्य बात जो इस गीत से हमें मिलती है, वह है स्त्रियों मे चित्र-कला का प्रचार। पूर्वकाल मे चित्रकला हिन्दुओं के घर-घर में थी। विवाह होने के पूर्व ही कन्या को इस कला मे दक्ष हो जाना पड़ता था।

[५६]

नदिया के ईरे तीरे दुलहे पुकारेल केवट नइया लेइ आउ रे।
केवट हो तू त यार हमारा रे हाली नेवरिआ लेइ आउ रे ॥ १॥
अपटि झपटि केवटा नइआ ले आवेला झटपट पार उतारु रे।
तुहु त मोरे बाबू पार उतरी गइल के हमरे दाम चुकाइ रे ॥ २॥
मतली हथिनिआ हमरे बाबा जे आवेले उहे तोहरे दाम चुकाइ रे।
अल्हरे व्छेड़वा हमरे भइआ जे आवेलें उहे तोहरे दाम चुकाइ रे ॥ ३॥
कब हम देखब बाग बगइचा रे कब हम देखब ससुरारि रे।
कब हम देखब रानी दुलहिनिआ हो नयना जइहैं जुड़ाइ रे ॥ ४॥
गोंइड़े देखब बाबू बाग बगइचा हो दुअरे देखब ससुरार रे।
मड़वे देखब बाबू रानी दुलहिनिआ हो जेहि देखी हृदया जुड़ाइ रे ॥ ५॥

मँड़ये में धीरे धीरे पुछेला कवन दुलहे सुन धन वचन हमारि रे।
कवनी है साली रे कवनी है सरहज कवनी हइ सासु हमारि रे ॥ ६ ॥
लाल ओढ़न लाल डासन लाल परेला ओहार रे।
जेकरे लिलारे प्रभू सोने क टिकुलिआ हो उहे हइ भउजी हमारि रे ॥ ७ ॥
हरिअर ओढ़न हरिअर डासन हरिअर परल ओहार रे।
जेकरे ही दाँतें प्रभु सोने क वतिसिआ हो उहैं हैं वहिनी हमारि रे ॥ ८ ॥
पीअर ओढ़न पीअर डासन पीअर परेला ओहार रे।
जेकरे ही नैना प्रभु नीर ढुरतु हैं उहे है अम्माँ हमारि रे ॥ ९ ॥

नदी के किनारे दूल्हा पुकार रहा है—हे केवट! नाव ले आओ। जल्दी तैयार होकर नाव ले आओ ॥१॥

हे केवट! झपटकर नाव ले आओ और मुझे पार उतार दो। केवट ने दूल्हे को पार उतारकर कहा—हे बाबू! आप तो पार उतर गये। अब मेरी उतराई कौन देगा? ॥२॥

दूल्हे ने कहा—मदमाती हथिनी पर मेरे पिता आ रहे हैं। वे उतराई देंगे। अलहड़ बछेड़े पर मेरे भाई आ रहे हैं। वे उतराई देंगे ॥३॥

दूल्हा सोच रहा है—मैं बाग-बगीचे कब देखूँगा? अपनी ससुराल कब देखूँगा? दुलहिन रानी को कब देखूँगा? जिसे देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे ॥४॥

किसी ने कहा—हे बाबू! गाँव के पास पहुँचकर तुम बाग बगीचा देखोगे। घर के द्वार पर पहुँचकर ससुराल देखोगे। मंडप के नीचे दुलहिन रानी को देखोगे। जिसे देखकर तुम्हारा हृदय शीतल होगा ॥५॥

मंडप में दूल्हा धीरे-धीरे दुलहिन से पूछने लगा—हे प्यारी स्त्री! मेरी बात सुन। मेरी साली कौन है? सरहज कौन है? और मेरी सास कौन है? ॥६॥

दुलहिन कहती है—जो लाल रंग की ओढ़नी ओढ़े है, लाल ही

जिसका बिछौना है, जिसके आगे लाल रंग का परदा पड़ा है और जिसके माथे पर लाल रंग की टिकुली (टीकी, बिन्दी) है, वह मेरी भौजी है ॥७॥

जो हरे रंग की ओढ़नी ओढ़े है, हरे रंग का जिसका बिछौना है, जिसके आगे हरे रंग का परदा पड़ा है, और जिसके बत्तीसों दाँत सोने से मढ़े हैं, वह मेरी बहन है ॥८॥

और जो पीला ओढ़े है, पीला बिछाये है, जिसके आगे पीला परदा पड़ा है और जिसकी आँखों से आँसू बह रहे हैं, वही मेरी माँ है ॥९॥

गीतों की दुनिया में विवाह इतनी बड़ी अवस्था में होता था कि वर-कन्या मंडप के नीचे निस्संकोच होकर बातें कर सकते थे। इस गीत में माँ का जो वर्णन कन्या ने किया है, वह बहुत ही स्वाभाविक है। बेटी के लिए माँ का प्रेम अद्भुत होता है।

[५७]

उवहु सुरुज मन उवहु सुरुज मन तुमहिं बिन जग अँधियार।
तुमहिं बिन गौवाँ खरिकवा न लेहैं अहिरा दुहन नाहीं जाय ॥ १ ॥
उठौ भैया साहेब उठौ भैया साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ २ ॥
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ौ सून।
उठौ बप्पा साहेब उठौ बप्पा साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ ३ ॥
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन हथिया हौदवा न लेहैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ ४ ॥
उठौ फूफा साहेब उठौ फूफा साहेब तुमहिं बिन माड़ौ सून।
तुमहिं बिन दुलहा चौक नाहीं बैठैं तुमहिं बिन माड़ौ सून ॥ ५ ॥

हे सूर्यमणि! उदय हो, उदय हो। तुम्हारे बिना सारा संसार

अंधकारमय है। तुम्हारे बिना गायें खरके (गोष्ठी) में न आयेंगी, और न अहीर उन्हे दुहने जायगा ॥१॥

हे भाई साहब ! उठो, उठो। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है। तुम्हारे बिना दुलहा चौक में नहीं बैठेगा और न हाथी पर हौद रक्खा जायगा। तुम्हारे बिना माड़ौ सूना है ॥२॥

यही पिता और फूफा के नाम से बार-बार दुहराया जाता है।

[५८]

दुअरे हें आवत दुलहा पुकारें सुनहु नउनी मोरी बात।
अरे के हईं सासु रे के सगि सरहजि कवनी हईं कामिन हमारि ॥ १ ॥
हाथी जे रँगल गोड़ जे रँगल रँगल वतिसवो दाँत।
अरे सारी रात्ती सोहागे क मातलि उहे हईं कामिन तुहारि ॥ २ ॥
सोने के थार में आरति साजें उहे हईं सासु तुहारि।
अरे पनवाँ हिं फुलवा क सेजिआ बिछावें उहे हईं सरहज तुहारि॥ ३ ॥
कोहबर आवत दुलहा पुकारें सुन सरहज मोरी बात।
अरे बारी ननदिआ क यह गति देखहु ठाढ़ी रहेले मुरुझाय ॥ ४ ॥
तब जाइ भउजी रे ननदी सिखवलीं सुनहु ननद मोरी बात।
अरे पुरुषु भँवरवा के बेनिआ डोलावौ अँचरन करहु बआरि ॥ ५ ॥
तूँ भौजी भैया क जाइ सिखावहु भउजि न करहु दुताइ।
अरे जैसे हैं फूल फुले फुलवरिआँ भँवरा रहँसि रस लेइ।
वैसहीं भउजि रे तोर ननदोइआ बिहँसत बिरओ न लेइ ॥ ६ ॥

द्वार पर आकर दूल्हे ने कहा—हे नाइन ! मेरी बात सुन। ससुराल मे मेरी सगी सरहज कौन है ? और मेरी कामिनी कौन हैं ॥१॥

नाइन ने कहा—जिसके हाथ मेंहँदी से रँगे हैं, जिसके पैर महावर से रँगे हैं, और जिसके बत्तीसो दाँत रँगे हैं, जो सारी रात सोहाग के मद से मतवाली थी, वही तुम्हारी कामिनी है ॥२॥

और पूछती हैं—दूल्हा कौन है ? दूल्हे का जेठा भाई कौन है ? और दूल्हे का बाप कौन है ? ॥१॥

छोटी सी मतवाली हथिनी है। उसके दोनों दाँत सोने से मढे हुये हैं। उस पर जो सवार हैं और जिनके ऊपर सोने का छत्र सुशोभित है, वही दूल्हाजी के पिता हैं ॥२॥

पतले घोड़े पर जो पतला सवार है और जो सतरंगी पाग बाँधे हैं, जिसके दाँतों मे बतीसी लगी है, जिसके गले में मोहन माला लटक रही है, वही दूल्हाजी के जेठे भाई हैं ॥३॥

छोटी सी पालकी को चार छोटे-छोटे कहार उठाये हुए हैं। उसमें जो सवार हैं, और जिनके माथे पर मौर झलक रहा है, वही प्यारे दामाद हैं। प्यारे दामाद को देख लो ॥४॥

इसमें दूल्हा, उसके बाप और जेठे भाई की शोभा का वर्णन है।

[६०]

हाथी मैं साजों घोड़ा मैं साजों साजिले मुलुक पचास हे।
एक मैं साजिले राजा दुलह बाबू जैसे दुजी के चाँद हे॥ १ ॥
बाट मिलिये गैली मालिनि बिटिया कहु मालिन साँची बात हे।
कौन हईं सासु कवन हईं सरहज कौन हईं कामिनी हमार हे॥ २ ॥
सोने के मुसरा जिनहीं घुमावेली उहे हईं सासु तोहार हे।
पान के बीड़ा जिन हीं खियावेली सेहि हईं सरहज तोहार हे॥ ३ ॥
हाथ मेहँदी पाँव मेहँदी दाँत बतीसो लाल हे।
सिर पर ओढ़े कुसुम रँग चादर सेहि हईं कामिनि तोहार हे॥ ४ ॥

मैंने हाथी सजाया, घोडा सजाया, पचासों देशों के लोगों से बारात सजाई, तथा अपने एक दूल्हे राजा को सजाया जो द्वितीया के चन्द्रमा की तरह सुन्दर है ॥१॥

रास्ते मे मालिन की कन्या मिली। दूल्हे ने पूछा—हे मालिन !

सच बता, कौन मेरी सास है? कौन मेरी सरहज (साले की स्त्री)? और कौन मेरी कामिनी है? ॥२॥

मालिन की कन्या ने कहा—सोने का मुसल हाथ में लेकर जो घुमा रही हैं, वही आपकी सास हैं। जो पान का बीड़ा खिला रही हैं, वह आपकी सरहज हैं ॥३॥

जिनके हाथ-पाँव मेंहदी से लाल हैं, जिनके बत्तीसों दाँत लाल हैं, और जो सिर पर कुसुम्भी रंग की चादर ओढ़े हैं, वही आपकी कामिनी हैं ॥४॥

द्वार-पूजा के समय सास मुसल लेकर वर के ऊपर से घुमाती है, इसे परछन करना कहते हैं।

दाँत रँगने की प्रथा स्त्रियों में बहुत पुरानी जान पड़ती है। युक्त-प्रांत में ही यह रिवाज ज़्यादा है।

[६१]

सोने के पिढ़वाँ रे राम नहइलेनी झटकीला लम्बी हीं केस रे।
निकली न आवहु माई कवसिल्या देई राम क अरती उतारु रे ॥ १ ॥
का मैं राम क अरती उतारउँ मन मोर बहुत उदास रे।
आजु क रतियाँ मैं कैसे बितइबइ राम चलेंन ससुरार रे ॥ २ ॥
जिन माई कमिल जिन माई धूमिल जिन मन करहु उदास रे।
आजु की रतियाँ जनक के दुअरवाँ काल होवै दास तोहार रे ॥ ३ ॥
जब राजा राम बिआहन चललेन माता सूरज माथ नाव रे।
राम बिअही जब घर के लवटिहैं तोहँ देवै दुधवा क धार रे ॥ ४ ॥
भइल बिआह परल सिर सेन्दुर हाथ जोड़ी सीता ठाढ़ रे।
अइसन आसीष दीहेउ मोरे बाबा बलसौं अजोध्या क राज रे ॥ ५ ॥
दुधवा नहायो बेटी पुतवन फलेऊ कोखियन झालर लागु रे।
बरह बरिस राम बन के सिधरिहैं तोहके रवन हर लेइ रे ॥ ६ ॥

वाउर भइल तू बाबा जनक रिखि केन तोर हरला गेयान रे।
इहई वचन बाबा अगुमन बोलतेउ मरतिउँ जहर विष खाइ रे ॥ ७ ॥
वाउर भइलू तू बेटी रे सीता देई केन तोर हरला गेयान रे।
जो कुछ लिखल बेटी तोहरे लिलरवाँ से कैसे मेटल जाइ रे ॥ ८ ॥
जब बरिअतिया अवधपुर मे आइली माता सूरुज माथ नाव रे।
पुतवा पतोहिया नयन भर देखेउँ धन धन भाग हमार रे ॥ ९ ॥
मिलहु न सखिया रे मिलहु सहेलरि मिलहु सकल रनवास रे।
जस जस मोरे माता अरती उतारईं राम नयन ढूरै आँसु रे ॥१०॥
किया तोहैं राम जनक गरियवलें किया तोर दायज थोर रे।
किया तोर राम सीता नाहीं सुन्दर काहे नयन ढूरै आँसु रे ॥११॥
नाहीं मोरी माता जनक गरियवलें नाहीं मोर दायज थोर रे।
नाहीं मोर माता सीता नाहीं सुन्दर समुझि नयन ढूरै आँसु रे ॥१२॥
सोने के सिंधोरवाँ माई सीता बिअहलीं दायज मिलल तीन लोक रे।
लछमी सीता रानी मोरे घर आइनि हमके लिखल वनवास रे ॥१३॥

सोने के पीढ़े (पाटे, छोटी चौकी) पर राम ने स्नान किया है। वह अपने लंबे बालो को झटक रहे हैं। हे कौशल्या माता ! तुम निकल क्यों नहीं आती ? आकर राम की आरती उतारो ॥१॥

कौशल्या कहती हैं—मैं राम की आरती क्या उतारूँ ? आज मेरा मन बहुत ही उदास है। हाय ! मैं आज की रात कैसे बिताऊँगी ? आज राम ससुराल जायँगे ॥२॥

राम कहते हैं—हे माँ ! मन को धूमिल न करो। उदास मत हो। आज की रात तो मैं जनक के द्वार पर बिताऊँगा और कल तुम्हारी सेवा में हाज़िर रहूँगा ॥३॥

राम जब ब्याह करने चले, तब माता ने सूर्य देवता को माथ नवाया और कहा—हे सूर्य ! राम विवाह करके सकुशल घर लौट आयेंगे तो

मैं तुमको दूध की धार चढ़ाऊँगी ॥४॥

ब्याह हो गया। सिर में सिन्दूर पड़ गया। सीता हाथ जोड़कर खड़ी हुई और अपने पिता जनक से प्रार्थना करने लगीं—हे पिता! ऐसा आशीर्वाद देना, जिससे मैं अयोध्या का राज सुख से भोगूँ ॥५॥

जनक ने कहा—हे बेटी! दूध से नहाओ; पुत्रों से फलो; बहुत संतानवाली होओ। पर बारह वर्ष के बाद राम बन को जायँगे और तुमको रावण हर ले जायगा ॥६॥

सीता ने कहा—हे पिता जनक राजर्षि! तुम भोले हुये हो क्या? किसने तुम्हारा ज्ञान हर लिया है? तुम यही बात पहले बोलते तो मैं विष खाकर मर जाती न? ॥७॥

जनक ने कहा—बेटी! तू बावली हुई है क्या? तेरी बुद्धि किसने हर ली है? अरी बेटी! जो कुछ तेरे ललाट पर लिखा है, वह कैसे मेटा जा सकता है? ॥८॥

जब बारात अयोध्या में आई, तब माता ने सूर्य को सिर नवाया और कहा—मैंने आँख भरकर अपने पुत्र और पतोहू को देखा, मेरा भाग्य धन्य है ॥९॥

हे सखियो! आओ न? सब रनिवास मिलकर आओ न? देखो! माता जैसे-जैसे आरती उतार रही हैं, वैसे-वैसे राम के आँसू ढुर रहे हैं ॥१०॥

कौशल्या ने पूछा—बेटा! क्या तुमको जनक ने गाली दी है? या दहेज कम मिला है? या तुम्हारी सीता सुन्दरी नहीं है? आँसू क्यों ढुर रहे हैं? ॥११॥

राम ने कहा—हे माता! न तो जनक ने गाली दी; न दहेज ही कम मिला और न सीता ही कुरूपा है। एक बात याद करके आँखों से आँसू गिर रहे हैं ॥१२॥

सीता का विवाह सोने के सिँधोरे (सिन्दूर रखने का पात्र) से

हुआ। तीनों लोक मुझे दहेज मे मिले। और लक्ष्मी के समान रानी सीता मेरे घर आई। पर मुझे वनवास लिखा है ॥१२॥

[६२]

कोइली जे बोले अमवा केरा बगिया भौंरा बोलले कचनार जी।
दुलरइता दुलहा ससुर जी के बगिया,
हाथे धनुष मुख पान जी ॥ १ ॥
काहे लोभ गैलो बबुआ अमवा की बगिया,
काहे लोभ गैलो ससुरार जी।
अमवा लोभे गइलूँ अम्मा अमवा की बगिया
धनी लोभे गैलूँ ससुरार जी ॥ २ ॥
क्या क्या खैलो बाबू अमवा की बगिया
क्या क्या खैलो ससुरारि जी।
अमवा फलल खैलूँ अमवा की बगिया
खाँड़ दूध खैलूँ ससुरार जी ॥ ३ ॥
नवईं महीना तोहिं बाबू कोखिया रखलूँ
अवरु दस दुधवा पिलाय जी।
दूध पानी बाबू एकौ न दिहले कइसे चिन्हल ससुरार जी ॥ ४ ॥
दूध पानी अम्मा जवे हम दीहब जवै धनी लैवों लिआय जी।
हमहूँ जे होइवों अम्मा बाबू जी सेवकिया
धनी होइवों दासी तोहार जी ॥ ५ ॥

कोयल आम के बाग में बोल रही है और भौंरा कचनार के वृक्ष पर बोल रहा है। प्यारे दुलहा ससुरजी के बाग में बोल रहे हैं, जिनके हाथ में धनुष है और मुँह में पान है ॥१॥

हे बेटा! तुम किस लोभ से आम के बाग़ में गये थे? और किस लोभ से ससुराल गये थे? पुत्र ने कहा—हे माँ! आम के लिये मैं बाग़ में गया

था और स्त्री के लिये ससुराल गया था ॥२॥

माँ ने पूछा—हे बेटा ! आम की बाग में क्या खाया ? और ससुराल में क्या खाया ? बेटे ने कहा—आम के बाग में आम फले थे। वहाँ आम खाया और ससुराल मे दूध और खाँड़ खाया ॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! नौ महीने मैं ने तुमको पेट में रक्खा और दस महीने दूध पिलाया। तुमने बदले में न हमको दूध ही दिया, न पानी ही। तुमने ससुराल को कैसे पहचाना ? ॥४॥

पुत्र ने कहा— हे माँ ! मैं तुमको दूध और पानी देने के लिये ही स्त्री को लिवा लाना चाहता हूँ। मैं पिताजी की सेवा करूँगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी होकर रहेगी ॥५॥

पुत्र का लक्ष्य कितना सुन्दर है !

[६३]

केथुवन छाइला अरइल खरइल केथुवन छाइला प्रयाग हो।
केथुन छाइला इहे गज ओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥ १ ॥
पनवन छाइला अरइल खरइल फुलवन छाइला प्रयाग हो।
बेतवन छाइला इहे गज ओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥ २ ॥
तहुँ पइठी सुतेल दुलरू कवन रामा पयते कवनि देइ रानि हो।
मोही तोसे पुछेलों ससुरजी के धेरिया हो काहें तोर
वदन मलीन हो ॥ ३ ॥
माई तोहारि प्रभु मारे गरियावे बहिनी बोलैली बिरही
बोल हो।
लहुरा देवर मारेला लाली छरियवा वोही गुन
वदन मलीन हो ॥ ४ ॥
माई के बेंचवों धनी हाटी बजरिया बहिनी विदेसिआ
के हाथ हो।

भइया के मारौं धनी रतुली कमनियाँ हम तुहुँ वेल-
सब राज हो ॥ ५ ॥

माई तोहार प्रभु जी सिर कै पछेवड़ा हो वहिनी तोहारि
सिर पाग हो ।

भइया तोहार साहेब दाहिनि वँहियाँ हम तरवा कइ धूरि हो ॥ ६ ॥

अरैल (प्रयाग के निकट एक स्थान) किससे छाया है ? प्रयाग किससे छाया है ? और यह कोठरी किससे छाई है ? जिसमें भौंरा प्रवेश कर के गुंजार करता है ॥१॥

अरैल पान से छाया है । प्रयाग फूल से छाया है । और यह कोठरी वेंतों से छाई है, जिसमें भौंरा प्रवेश करके गुंजार करता है ॥२॥

उस कोठरी मे प्रवेश करके दुलारे अमुकराम सोते हैं । जिनके पैरों के पास अमुकदेवी बैठकर सेवा कर रही हैं । पति पूछता है—हे मेरे ससुरजी की कन्या ! मैं तुझसे पूछता हूँ—तेरा मुँह उदास क्यों है ? ॥३॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! तुम्हारी माँ मारती हैं और गाली देती है । तुम्हारी वहन ताने मारती है । तुम्हारा छोटा भाई लाल छड़ी से मारता है । इसी कारण से मैं उदास रहती हूँ ॥४॥

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री ! मैं माँ को वाजार में वेंच दूँगा । वहन को किसी परदेशी को दे डालूँगा । भाई को लाल कमान से मार डालूँगा और हम तुम सुख से राज भोगेंगे ॥५॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! माँ तो तुम्हारे सिर की पछेवड़ा (?) हैं । वहन तुम्हारे सिर की पगड़ी हैं । और भाई तो हे मेरे मालिक ! तुम्हारी दाहिनी भुजा हैं । मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूँ ॥६॥

उत्तेजित पति को वहू ने कैसी नम्रता से शांत किया है । ऐसी ही वहुओं से गृहस्थी की शोभा है ।

[६४]

बना मेरो कुञ्जन से बनि आये—बना मेरो।
सिरे सोहै मलमल की पगिया मौरा में छवि आई—बना मेरो ॥ १ ॥
माथे सोहै मलयागिरि चन्दन सुरमा में छवि आई—बना मेरो ॥ २ ॥
काने सोहै सूरत को मोती चुन्नी में छवि आई—बना मेरो ॥ ३ ॥
अंगे सोहै खासे का जोड़ा नीमा में छवि आई—बना मेरो ॥ ४ ॥
फाँड़े सोहै गुजराती फेटा लरिया में छवि आई—बना मेरो ॥ ५ ॥
पायँ सोहै सकलाती जूता मोजे में छवि आई—बना मेरो ॥ ६ ॥

आज मेरा दूल्हा कुञ्ज में से श्रृङ्गार करके आया है।

दूल्हे के सिर पर मलमल की पगडी सुशोभित है। मौर में छवि आ गई है ॥१॥

माथे पर मलयगिरि का चंदन सुशोभित है। सुर्मे में शोभा आई हुई है ॥२॥

कान में सूरत का मोती सुशोभित है। चुन्नी में रूपा खिल पड़ा है ॥३॥

कमर में गुजराती फेटा सुशोभित है। दुपट्टे में सौन्दर्य उमड पड़ा है ॥४॥

बदन में खासे का जोड़ा सुशोभित है। नीमा में मनोहरता है ॥५॥

पैर में मखमल का जूता सुशोभित है। मोजे में लावण्य आ गया है ॥६॥

इस गीत में दो तीन बातें विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो उन स्थानों के नाम, जहाँ की ख़ास-ख़ास चीजें मशहूर थीं। जैसे गुजरात का फेंटा और सूरत का मोती। गीतों के ज़माने में युक्तप्रांत में गुजरात से फेंटे बनकर आते होंगे और गाँव-गाँव में प्रसिद्धि पाये होंगे। सूरत के जौहरी तो अब भी प्रसिद्ध हैं। वहाँ से मोती इधर आते रहे होंगे। दूसरे

सकलाती शब्द । यह शब्द बहुत पुराना है । पृथीराजरासो में इस शब्द का प्रयोग मिलता है । जैसे—

तिनं पक्खरं पीठ हय जीन सालं ।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥

अर्थात् उनके घोड़ों की काठियों के जीन ऊनी शाल के थे । कितने ही फिरंगियों के पास लाल मख़मल के जीन थे ।

सकलात अंग्रेज़ी के Scarlet Cloth का अपभ्रंश जान पड़ता है । विलायती लाल रंग का मख़मल, जान पड़ता है, भारत में रासो की रचना के समय ही से आने लगा था और गाँव-गाँव में अपने अपभ्रंश-रूप 'सकलात' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था । ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कागज़ों में Scarlet Cloth का ज़िक्र बारंबार आया है । कम्पनी का राज गया, पर गीतों में उसका यह शब्द अभी तक पाया जाता है ।

[६५]

जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी ।
मैं तेरे दिल में वसौंगी ॥
हाँ हाँ रे बने तेरे सिर के पगिया होंगी ।
पेंचा होइके रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी ॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी ॥ १ ॥
हाँ हाँ रे बने तेरे माथे के चन्दन होंगी ।
सुर्मा होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी ॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी ॥ २ ॥
हाँ हाँ रे बने तेरे काने के मोती होंगी ।
चुन्नी होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी ॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी ॥ ३ ॥

हाँ हाँ बने तेरे फाँड़े कै फेंटा होंगी।
पटुका होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥४॥
हाँ हाँ रे बने तेरे पायँ कै मोजा होंगी।
मेंहँदी होइ कै रहँसि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥५॥
हाँ हाँ रे बने तेरे सेज कै चन्दा होंगी।
चन्दा होइ कै छिटकि रहौंगी—मैं तेरे दिल में बसौंगी॥
जाने न देवँ बर पकड़ि रखौंगी॥६॥

मैं वर को जाने न दूँगी; पकड़कर रक्खूँगी। हे वर! मैं तेरे दिल में बसूँगी।

हे वर! मैं तेरे सिर की पगडी होऊँगी और पगड़ी की पेंच होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी॥१॥

हे वर! मैं तेरे माथे का चन्दन होकर रहूँगी। मैं तेरी आँखों में सुर्मा होकर रहूँगी। तेरे दिल में बसूँगी॥२॥

हे वर! मैं तेरे कान का मोती होऊँगी। मैं खुशी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी॥३॥

हे वर! मैं तेरे फाँड़ का फेंटा होऊँगी। दुपट्टा होकर मैं मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी॥४॥

हे वर! मैं तेरे पैर का मोज़ा होऊँगी। मैं मेंहँदी होकर मगन रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी॥५॥

हे वर! मैं तेरे सेज की चाँद होऊँगी। चाँद होकर मैं छिटक रहूँगी। मैं तेरे दिल में बसूँगी॥६॥

दुलहिन की कैसी सुन्दर भावना है!

[६६]

आजु सोहाग कै रात चंदा तुम उइहौ।
चंदा तुम उइहो सुरुज मति उइहौ॥ १॥
मोर हिरदा बिरस जनि किहेउ मुरुग मति बोलेउ।
मोर छतिया बिहरि जनि जाइ तु पह जिनि फाटेउ॥ २॥
आजु करहु बड़ी राति चंदा तुम उइहौ।
धिरे धिरे चलि मोरा सुरुज बिलम करि अइहौ॥ ३॥

आज सोहाग की रात है। हे चन्द्र ! तुम उदय होना। पर हे सूर्य ! तुम उदय मत होना ॥१॥

हे मुर्गे ! तुम आज न बोलना। बोलकर मेरे हृदय को विरस मत करना। हे पौ ! तुम आज न फटना। कहीं मेरी छाती न फट जाय ॥२॥

हे चाँद ! तुम आज बड़ी रात करना और उदय होना। हे मेरे सूर्य ! तुम आज धीरे-धीरे चलकर देर से आना ॥३॥

इसे लिखते समय मुझे 'प्रवीण राय' का यह कवित्त याद आया था—

क्रूर कुक्कुट कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चुनि दै चिरैयन को मूँदि राखौं जलियों।
सारँग में सारँग सुनाइ के 'प्रवीन' बीना
सारँग दै सारँग की जोति करौं थलियों॥
बैठि परयंक पै निसंक ह्वै कै अंक भरौं
करौंगी अधर पान मैन मत्त मिलि यों।
मोंहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राय
एहो चंद आज नेकु मंदगति चलियो॥

[६७]

नाहक गौन दिहे मोर बाबा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइ देवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे॥ १॥

तेलवा लगायउँ बुकउवा लगायउँ खटिया प दिहेउँ ओलारि रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवतिया लै गई बलमा हमार रे॥ २॥
सासु मोरी रोवैं ननद मोरि रोवैं रोवइ हमारि बलाइ रे।
कोठवा मैं ढूँढ़ेउँ अटरिया मैं ढूँढ़ेउँ खटिया तरे रिरिआइ रे॥ ३॥

मेरे बाबा ने मेरा गौना नाहक ही किया। मेरा पति तो अभी बिल्कुल बालक है। मेरे दो देवर हैं, जो चीलर (कपड़े की सफेद जूँ) जैसे हैं, और मेरा पति चूहे की तरह है॥१॥

मैंने पति को उबटन लगाया, तेल लगाया और खाट पर सुला दिया। हाय! बिल्ली सौत की तरह चुपके-चुपके आई और मेरे पति को उठा ले गई॥२॥

मेरी सास रो रही हैं। मेरी ननद रो रही हैं। मैं क्यों रोऊँ? मेरी बला रोवे। अंत में मैंने भी कोठे पर ढूँढा, अटा पर खोजा तो देखा कि पति खाट के नीचे पड़ा रिरिआ रहा है॥३॥

राम! राम! पति का इससे अधिक वीभत्स चित्र कोई क्या खींचेगा? इस गीत की स्त्री युवती है, पति बालक। ऐसे अनमेल विवाह का जो परिणाम होना चाहिये, वह 'रोवइ हमारि बलाय' में साफ़-साफ़ उतर आया है। पति के लिये स्त्री के हृदय में कोई सहानुभूति नहीं है। ऐसे बेमेल विवाहों में धर्म की रक्षा धर्म-शास्त्र कहाँ तक कर सकेगा? यह विचारणीय है।

[६८]

पाँच बरिसवा कै मोरि रँगरैली असिया बरिस क दमाद।
निकरि न आवै तू मोरि रँगरैली अजगर ठाढ़ दुवार॥ १॥
आँगन किचकिच भीतर किचकिच बुढ़ऊ गिरे मुँह बाय।
सात सखी मिलि बुढ़ऊ उचावैं बुढ़ऊ सेंदुर पहिराव॥ २॥

पाँच बरस की प्यार में पली हुई मेरी कन्या है और अस्सी वर्ष

का दमाद है। ऐ प्यार में पली हुई मेरी बेटी ! तुम निकल आओ न ! देखो, द्वार पर अजगर खड़ा है ॥१॥

आँगन में कीचड़, भीतर भी कीचड। बुड्ढा दमाद मुँह बाकर गिर पड़ा। सात सखियाँ मिलकर उस बुड्ढे को ऊँचा कर रही हैं, और कहती हैं—बुड्ढे ! कन्या के सिर में सिन्दूर लगा दो ॥२॥

इस गीत में वृद्ध-विवाह का वीभत्स दृश्य है। वृद्ध को अजगर बताना बहुत सरस और अर्थपूर्ण है। जैसे अजगर चल फिर नहीं सकता, वैसे ही वृद्ध भी। जैसे अजगर अपने शिकार को निगल जाता है, वैसे ही वृद्ध पति बेचारी अबोध कन्या को निगल जायगा।

जाँत के गीत

आटा पीसने की चक्की का नाम जाँत है। चक्की, चूल्हा और चरखा देहात में घर-घर होते थे। चक्की में आटा पीस लिया, चूल्हे पर रोटियाँ पका लीं, इन कामों से अवकाश मिला तो चरखे पर कपड़ों के लिये सूत तैयार कर लिया; वस इन तीनों चकारों की वदौलत देहात के लोग वहुत ही सुखी और स्वतंत्र थे। स्त्रियाँ चक्की पीसती थीं। इससे उनकी तंदुरुस्ती ठीक रहती थी और उनके वच्चे हृष्ट-पुष्ट होते थे। चक्की पीसते समय वे जो गीत गाती थीं, उनसे जीवन की धारा शुद्ध होती रहती थी, समय का सदुपयोग होता था, परिश्रम करने की आदत वनी रहती थी और पैसे की वचत होती थी।

हाथ की चक्की का काम अव देहातों में भी मशीन की चक्की ले रही है। स्त्रियों के हाथ कोमल होते जा रहे हैं; परिश्रम करने की आदत छूटती जा रही है; स्त्रियों का स्वास्थ्य शिथिल पड़ता जा रहा है; पिसाई के पैसे ही अव नहीं देने पड़ते, वल्कि मशीन की चक्की की वदौलत अव गृहस्थों के घरों में डाक्टर भी घुसे चले आ रहे हैं और गृहस्थी पर उनकी फ़ीस और दवा के दाम का भार भी वढ़ता जा रहा है।

मशीनें हमारे जाँतों को तो फोड़ ही रही हैं; वे जाँत के गीतों को भी पीस रही हैं। इसे तो व्यक्तिगत हानि नहीं, वल्कि राष्ट्रीय हानि कहना चाहिये। क्योंकि गीत हमारे घरों में सच्चरित्रता के रक्षक,

स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्रोत थे। उनका नाश होना वैसा ही शोकजनक है, जैसा घोर वन में पगडंडी का छूट जाना या घोर अंधकार में हाथ से दीपक का छिन जाना। वह दिन निकट ही है, जब चरखे के लिये आज जैसा देश-व्यापी आन्दोलन चल रहा है, वैसा ही, बल्कि उससे भी अधिक प्रबल, आन्दोलन चक्की की रक्षा के लिये करना पड़ेगा।

चक्की के बाद चूल्हे का नम्बर है। चूल्हा छुआछूत का कवच पहन कर हमारे घरों के मध्य भाग में बैठा है। पर यह कवच बहुत पुराना हो गया है। जगह-जगह से फट रहा है। बढ़ती हुई पश्चिमी सभ्यता का जंग हमारे गरीब चूल्हे को एक दिन चूर-चूर कर देगा। और लोग होटलों में या बाजार से रोटियाँ ख़रीद कर खाने लगेंगे।

तीसरा नम्बर चरखे का है। इस देश में अंगरेजी राज से पहले चरखा हमारे प्रत्येक घर में वैसा ही आवश्यक पदार्थ था, जैसा चूल्हा। चरखा क्या गया, हमारे घरों से लक्ष्मी का निवास उठ गया।

जाँत पीसने का समय रात का तीसरा पहर है। स्त्रियाँ शाम को ही पीसने के लिये नाज अलग रख लेती हैं, और पहर छः घड़ी रात रहे उठकर वे जाँत लेकर बैठ जाती हैं। जाँत के दो ओर आमने-सामने बैठकर जब दो स्त्रियाँ पीसती हैं, तब पीसने मे अधिक आसानी होती है। महल्लों में जाँत पीसने का सहयोग भी चलता रहता है। एक स्त्री दूसरी स्त्री का आटा पिसा आती है तो बदले में वह भी आकर पिसा जाती है। ग़रीब और कर्कशा स्त्रियों को प्रायः सहयोग नहीं मिलता। क्योंकि ग़रीब स्त्रियों को ग़रीबी के कारण इतना अवकाश नहीं मिलता कि वे ठीक समय पर बदला चुका आवें। और कर्कशा से किसी की पटती नहीं।

जाँत के गीत जाँत पीसने की थकावट को सोखते रहते हैं। साथ

बन से निकसीं बन तपसिन सीतहिं समुझावहिं हो राम।
सीता हम तोरे आगे पीछे होबै हमहिं होब्यों धगरिन हो राम ॥ २ ॥
रोवहिं सीता अछन करि अउ बिलखाहिं हो राम।
अरे रामा के लइहैं बेले कै लकड़िया त रतिया बिपति कै हो राम ॥ ४ ॥
हथवा गेडुवा लिहे ऋषि मुनि सीतहिं समुझावहिं हो राम।
सीता हम लउबै बेले कै लकड़िया त रतिया सोहावनि हो राम ॥ ५ ॥
चैतै कइ तिथि नौमी रामा जग्गि रोपैं हो राम।
रामा बिना रे सीतहि जग्गि सूनि सीतहि लइ आवउ हो राम ॥ ६ ॥
अगवाँ के घोड़वाँ बसिठ मुनि पछवाँ भरत लाल हो राम।
रामा अल्हड़े बछेड़वाँ लखनलाल सीता क मनावे चले हो राम ॥ ७ ॥
पतवा क दोनवाँ लगाइनि गंगाजल पानी हो राम।
अरे रामा सीता धोवैं गुरुजी के पाँव त मथवाँ चढ़ावहिं हो राम ॥८ ॥
एतनी अकिलि सीता तोहरे त बुद्धि क आगरि हो राम।
सीता रामहिं कस बिसराइउ अजुध्या तजि दीह्यू हो राम ॥ ९ ॥
सोनवाँ की नइयाँ राम तायनि लाइ भूँजि काढ़ेनि हो राम।
गुरु अस कै रामा मोहिं डाहेनि सपने ना चित मिले हो राम ॥१०॥
तोहरा कहल गुरु मानब अजोधिया क जावै हो राम।
गुरु ऐसनै पुरुष की सनेहिया त बिधि न मिलावैं हो राम ॥११॥

जेठ की दुपहरी है। धूल जल रही है। राम ने सीता को ऐसे समय में घर से निकाला, जब वे गर्भ के भार से शिथिल थीं ॥१॥

बन मे सीता बिसूर-बिसूर कर रोती और कलपती हैं—हाय राम! (बच्चा होने पर) कौन मेरे आगे-पीछे होगा, अर्थात् कौन देख-भाल करेगा? कौन धगरिन (चमारिन, जो बच्चे का नाल काटती है) होगी? ॥२॥

सीता का विलाप सुनकर वन की तपस्विनियाँ निकलीं। वे सीता

को समझाने लगीं—हे सीता ! चिन्ता मत करो। हम तुम्हारी देख-भाल करेंगी और हमीं धगरिन होंगी ॥३॥

सीता विलाप करती हैं—हे राम ! बेल की लकड़ी कौन लायेगा ? रात बड़ी विपत्ति की होगी ॥४॥

हाथ में कलश लिये हुए ऋषि मुनि सीता को समझाते हैं—हे सीता ! हम बेल की लकड़ी ला देंगे। रात सुहावनी हो जायगी ॥५॥

चैत महीने की नवमी तिथि को राम ने यज्ञ आरंभ किया। हे राम ! सीता को ले आओ। सीता के बिना यज्ञ सूनी रहेगी ॥६॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ठ मुनि, उनके पीछे भरत और अल्हड़ बछेड़े पर लक्ष्मणजी सीता को मनाने चले ॥७॥

पत्ते का दोना लगाकर, उसमें गंगाजल लेकर सीता गुरुजी के चरण धोती हैं और माथे चढ़ाती हैं ॥८॥

गुरुजी कहते हैं—सीता ! तुम्हें इतनी समझ है ! तुम तो बुद्धि की आगर हो ! भला, तुमने राम को कैसे भुला दिया ? अयोध्या को तुमने छोड़ ही दिया ? ॥९॥

सीता कहती हैं—हे गुरु ! राम ने मुझे सोने की तरह आग में डाला, तपाया, जलाया और भूना। मुझे ऐसा डाहा कि सपने में भी अब उनसे मन न मिलेगा ॥१०॥

पर हे गुरु ! आपका कहना मानूँगी। अयोध्या चलूँगी। पर जब पुरुष का ऐसा ही प्रेम है, तो ब्रह्मा उससे न मिलावें, तभी ठीक है ॥११॥

इस गीत के पद-पद में करुणा भरी है। सीताजी का अंतिम जीवन बहुत ही कष्टमय रहा। गर्भावस्था में वे वन में अकेली छोड़ दी गईं। उस समय की उनकी व्याकुलता का वर्णन और तपस्विनियों और ऋषि-मुनियों का आश्वासन इस गीत में वर्णित है। कैसा मनोहर दृश्य है ! इधर एक दुखिया ने पुकारा, उधर सहायता के लिये उत्तम से उत्तम

श्रेणी के स्त्री-पुरुष सामने खड़े। सहानुभूति का यह भाव एक उच्चकोटि के समाज का आदर्श है।

राम ने यज्ञ ठाना। यज्ञ में पुरुष के साथ स्त्री का रहना आवश्यक है। वशिष्ठ, भरत और लक्ष्मण सीता को मनाने चले। लक्ष्मण के अल्हड़ स्वभाव को गाँव की स्त्री-कवि ने भी खूब ताड़ लिया है। वशिष्ठ और भरत को तो उसने घोड़े पर बैठाया, पर लक्ष्मण को अल्हड़ बछेड़े पर।

अब आगे एक हिन्दू-स्त्री के हृदय की महत्ता देखिये। सीताजी ने गुरु का स्वागत किया। बन में बर्तन कहाँ? सीताजी ने पत्ते का दोना बनाया और उसमें गंगाजल लेकर उन्होंने गुरुजी का पैर धोया और माथे चढ़ाया। निरपराधिनी होने पर भी घर से निकाली जाने की ग्लानि से उन्होंने क्रोध-वश शिष्टाचार की उपेक्षा नहीं की। सीता ने पूज्य पुरुष का सत्कार करने में विमनता और असमर्थता नहीं प्रकट की।

गुरुजी ने सीताजी की बुद्धि की प्रशंसा की। सीताजी ने भी अपने मन का दुःख साफ़-साफ़ कह दिया। जिस स्त्री-कवि ने यह गीत बनाया, वह आदर्श-वादिनी नहीं थी। इसीसे उसने ठीक-ठीक वही मनोभाव प्रकट किये हैं, जो पति से परित्यक्ता स्त्री के लिए स्वाभाविक है।

[२]

मोरँग मोरँग मैं सुन्यों मोरँग ना जानौं हो राम।
अरे रामा! मोरा पिया चले मोरँग देसवा त हम कैसे जीयब राम॥ १॥
के काँ तुँ सौंपेउ अन धन के काँ तुँ लछिमी हो राम।
अरे पिया! के काँ तुँ सौंपेउ नौरँग बगिया त तुम चले मोरँग
हो राम॥ २॥
बाबा के सौंपेउँ अन धन माईहिं सौंपेउँ लछिमी हो राम।
अपने भैया क सौंपेउँ नौरँग बगिया त हम जाबे मोरँग हो राम॥ ३॥

देइ गये चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया! देइ गये अपनी दोहइया धरम जिनि छोड़िउ हो राम ॥ ४ ॥
घुनै लागे चनन चरखवा ओठँगने क मचिया हो राम।
अरे पिया! छूटै चाहै तोहरी दोहइया धरम चाहै डोलइ हो राम ॥ ५ ॥
मन के विरोगी तिरियवा त सासूजी से पूँछइ हो राम।
सासू! बिना रे पुरुष कै तेवइया उमिरि कैसे बितिहैं हो राम ॥ ६ ॥
तुलवा क अँगिया सिआवहु छतीसा बंद लावहु हो राम।
बहुअरि! जिअरा में राखहु बिरोग बैस बिति जैहैं हो राम ॥ ७ ॥
उपरौं जे लाइउँ बेइलिया त निचवाँ सदाफल हो राम।
हमरे हरीजी कै लाई बेइलिया बेइलि कुम्हिलानी हो राम ॥ ८ ॥
आवहु सखिया सहेलरि मिलिजुलि आवउ हो राम।
हमरे हरीजी कै लाई बेइलिया बेइलि हम सींचब हो राम ॥ ९ ॥
बेइलि सींचि सिंचाईं बेइलि तर ठाढ़ी भईं हो राम।
अरे रामा! आइ गईं हरि कै सुरतिया त ठाढ़ी मुरझाइ गिरी
हो राम ॥१०॥

बरहें बरिस पर लौटेन त दुआरे खटिया बैठेनि हो राम।
आपनि मैया बुलाइ भेद पूँछहिं त धना मोरी कौने रँग हो राम ॥११॥
तोरी धन अँगवा कै पातरि त मुँहवाँ कै सुन्दरि हो राम।
बेटा! बड़े रे घरे कै बिटियवा दुनौं कुल राखहिं हो राम ॥१२॥
कबहूँ न हँसि कै पैठी बिहँसि नाहीं निकसी हो राम।
बेटा! महले दिआ नाहीं बारीं त निदरिया नाहीं सोई हो राम ॥१३॥
अब धन! हँसि कै पैठौ त बिहँसि कै निकसौ हो राम।
मोरि धन! महले दिआ अब लेसहु सोवहु सुख-निदिया हो राम॥१४॥

मोरँग, मोरँग तो सुना है, पर यह नहीं जानती कि मोरँग कहाँ है? मेरे प्रियतम मोरँग देश जा रहे हैं। अब मैं कैसे जीऊँगी? ॥१॥

स्त्री पति से पूछती है—तुमने अन्न-धन किसे सौंपा ? लक्ष्मी अर्थात् मुझको किसे सौंपा ? हे प्रियतम ! तुमने अपना नौरंग बाग़ किसे सौंपा ? जो तुम मोरँग जा रहे हो ॥२॥

पति ने कहा—बाबा को अन्न-धन, माँ को लक्ष्मी और छोटे भाई को नौरंग बाग सौंपकर मैं मोरँग जा रहा हूँ ॥३॥

पति के चले जाने पर स्त्री उसे याद कर रही है—प्रियतम मुझे चन्दन का चरखा दे गये। पीठ टेकने के लिए मचिया दे गये और अपनी शपथ दिला गये कि धर्म मत छोड़ना ॥४॥

पति को परदेश गये बहुत दिन हो गये। तब स्त्री कहती है—चन्दन का चरखा घुनने लगा। मचिया भी घुनने लगी। हे प्रियतम ! तुम्हारी शपथ भी अब छूटना चाहती है। धर्म डिगना चाहता है ॥५॥

स्त्री का चित्त चञ्चल हुआ। विरह की मारी वह सास के पास पहुँची और पूछने लगी—हे सास ! पुरुष के बिना स्त्री की उम्र कैसे बीतेगी ? ॥६॥

सास ने कहा—तूल (लाल रंग के कपड़े) की चोली सिलाओ और बन्द लगाओ। हे बहू ! मन में अपने पति का विरह बनाये रक्खो, इससे उम्र कट जायगी ॥७॥

स्त्री का चित्त स्थिर हुआ और वह फिर मन बहलाने का प्रयत्न करने लगी। ऊपर यह लता लगी है। नीचे सदाफल है। मेरे प्राणेश्वर की लगाई यह लता कुम्हला गई है ॥८॥

हे सखियो ! हे सहेलियो ! मिल-जुलकर आओ। मेरे प्राणेश्वर की लगाई हुई लता को मैं सींचूँगी ॥९॥

स्त्री ने लता को सींचा। फिर वह उसके नीचे खड़ी हुई। उसे अपने प्राणनाथ की याद आई। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ॥१०॥

बारह वर्ष के बाद पति घर आया। वह बाहर खटिया बिछाकर

बैठा। अपनी माँ को बुलाकर वह पूछने लगा—मेरी स्त्री का रंग-ढंग कैसा है? ॥११॥

माँ ने कहा—बेटा! तेरी स्त्री बड़े घर की कन्या है। उसने दोनों कुलों की मर्यादा रक्खी है। उसका शरीर दुर्बल है, पर मुँह सुन्दर है ॥१२॥

न तो वह कभी हँसकर भीतर आई, न विहँसकर बाहर निकली। बेटा! न तो उसने कभी महल में दीपक जलाया और न वह नींद भर सोई ॥१३॥

सास अब बहू से कहती है—बहू! अब हँसकर घर के भीतर जाओ। विहँसकर बाहर निकलो। महल में दीपक जलाओ और सुख की नींद सोओ ॥१४॥

इस गीत में एक विरहिणी का वर्णन है। पहले रेल नहीं थी। आज-कल की तरह साफ़ और सुरक्षित सड़कें भी नहीं थीं। रास्ते में चोर डाकुओं का भय बना ही रहता था। परदेश जाकर लौट आना पुनर्जन्म समझा जाता था। लोग एक बार परदेश जाकर, दस-बारह वर्ष रहकर, अच्छी तरह धन कमाकर लौटते थे, जिससे दुबारा न जाना पड़े। इससे एक लम्बे समय का वियोग स्त्री-पुरुष को सहना पड़ता था। आज-कल तो उस समय के विरह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। पुरुष अपनी स्त्री को भरण-पोषण के लिये दस बारह वर्षों का प्रबन्ध करके तब परदेश जाता था। स्त्री रात-दिन पति को विसूरती रहती और उसके लौटने के दिन गिना करती थी। उन दिनों के रास्ते ख़तरे से ख़ाली नहीं थे। इसलिये कुशल-मंगल के पत्रों का इन्तज़ार आज-कल की अपेक्षा कहीं अधिक रहता था। ग्राम्य गीतों मे उन्हीं दिनों की छाया वर्तमान है।

इस गीत में कई बातें बड़े महत्त्व की हैं। एक तो यह कि पुरुष को बाग़ का भी शौक़ था, जिसका देहात में आज-कल अभाव सा है। दूसरे चरखा गृहस्थ-जीवन का एक आवश्यक अंग था। चरखे की चर्चा बहुत

ने ग्राम्य गीतों में आई है। यह हिन्दुस्तान में वियोगिनियों और विधवाओं का बहुत पुराना साथी है। तीसरे स्त्री-धर्म की रक्षा के लिये सास की बताई हुई औषधि। सास का यह कहना कि विरह को सदा मन में जाग्रत रक्खो, इससे तुम्हारा धर्म बच जायगा, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। चौथे सास का यह कहना कि बहू बड़े घर की कन्या है, इसने दोनों कुलों की मर्यादा रक्खी है। इस एक वाक्य में ही बहू का सम्पूर्ण गौरव गुँथा हुआ है, जो प्रत्येक हिन्दू-नारी के लिये गर्व की बात है। सास ने बहू की जो दिनचर्या बयान की है, वह भी कम महत्त्व की नहीं। पति के वियोग में हिन्दू-नारी का हास-परिहास और शृङ्गार सचमुच बन्द हो जाते हैं। भला, विरहिणी को नींद कहाँ?

इस गीत से पति-परायणा स्त्रियाँ बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। कन्याओं को इस प्रकार के गीतों-द्वारा लड़कपन से ही यह बात मालूम होती रहती है कि पति के परदेश जाने पर अपने सतीत्व को बनाये रखने के लिये उनमें कितनी दृढ़ता होनी चाहिये।

मोरँग—गीतों में मोरँग का नाम बहुत आता है। मोरँग शब्द भूषण की कविता में भी आया है। जैसे—मोरँग जाहु कि जाहु कुमाऊँ सिरी नगरै कि कबित्त बनाये।

मोरँग बिहार में सारन और चम्पारन जिलों का वह भाग था, जो हिमालय की तराई तक चला गया है। मुग़लों ने सन् १६६४ और १६७६ में इसे जीता था। किसी ज़माने में युक्तप्रान्त के लोग नौकरी-चाकरी की तलाश में मोरँग जाया करते रहे होंगे। वही वर्णन गीतों में है। आजकल तो इस स्थान की कोई गिनती ही नहीं।

[२]

सोने के खरउवाँ राजा राम कउसिला से अरज करइँ हो राम।
हुकुम न देउ मोरी मैया मैं बन क सिधारउँ हो राम॥ १॥

जौने राम दुधवा पिआयउँ घिऊ सेनि अवटेउँ हो राम।
अरे मोरा भितराँ से विहरै करेजवा मैं कैसे वन भाखउँ हो राम ॥ २॥
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिव हो राम।
अरे रामा, सीता रानी हाथे कर चुरिया मैं कैसे वन भाखउँ
हो राम ॥ ३॥
राम गए दुपहरिया लखन तिजहरियउँ हो राम।
सीता मोरी गईं सँझलौके मैं कैसे जियरा वोधउँ हो राम ॥ ४॥
पोयउँ मैं घिये क सोहरिया दुधे कर जाउरि हो राम।
अरे रामा, यतना जेंवन मोर विख भा राम मोर वन गये हो राम ॥ ५॥
चारि मँदिल चारि दीप दरै हमरा अकेल वरइ हो राम।
रामा, मोरे लेखे जग अँधियार राम मोर वन गए हो राम ॥ ६॥
भितराँ से निकसीं कउसिला नैनन नीर वहइ हो राम।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने वन होइहैं हो राम ॥ ७॥
घर घर फिरहिं कउसिला त लरिका वटोरहिं हो राम।
लरिकौ छन एक रचहु धमारि राम विसरावहुँ हो राम ॥ ८॥
राम विना सूनि अजोध्या लखन विन मन्दिल हो राम।
मोरी सीता विन सूनी रसोइयाँ कइसे जिअरा वोधव हो राम ॥ ९॥
मंदिल दीप जरइवे औ सेजिया लगइवै हो राम।
रामा, आधी रात होरिला दुलरवै जनुक राम वरहिन हो राम ॥१०॥
सवना भदवना क दिनवा घुमरि घन वरसइँ हो राम।
रामा राम लखन दुनों भइया कतहुँ होइहैं भीजत हो राम ॥११॥
रिमिकि झिमिक द्यू वरसइ मोरे नाहीं भावइ हो राम।
दैवा वोहि वन जाइ जनि वरिसहु जहाँ मोर लरिकन हो राम ॥१२॥
राम क भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका हो राम।
मोरी सीता क भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ हो राम ॥१३॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुए रामचंद्र अपनी माता कौशल्या से निवेदन कर रहे हैं—हे माँ ! आज्ञा दो न ? मैं बन को जाऊँ ॥१॥

कौशल्या कहती हैं—जिस राम को मैंने दूध में घी औटाकर पिलाया, उसे बन जाने की आज्ञा कैसे दूँ ? मेरा भीतर ही भीतर कलेजा फटा जा रहा है ॥२॥

राम तो मेरे प्राण हैं; लक्ष्मण आँख की पुतली और सीता मेरे हाथ की चूड़ी। मैं इन्हें बन जाने को कैसे कहूँ ? ॥३॥

राम दोपहर को, लक्ष्मण तीसरे पहर को और मेरी सीता रानी गोधूलि-वेला में बन को गईं। मैं कैसे धीरज धरूँ ? ॥४॥

मैंने घी की पूरी पोई थी और दूध की खीर पकाई थी। हाय ! मेरे राम बन को चले गए। मुझे सारा भोजन विष-सा लगता है ॥५॥

चारों मंदिरों में 'चार दीपक जल रहे हैं। मेरे मंदिर में एक ही जल रहा है। पर मेरे लेखे सारा संसार अंधकारमय लगता है। क्योंकि मेरे राम बन को चले गए ॥६॥

कौशल्या भीतर से निकलीं। उनकी आँखों से आँसू बह रहे हैं। वह बिसूर रही हैं—हाय ! राम, लक्ष्मण और सीता किस बन मे होंगे ? ॥७॥

कौशल्या घर-घर फिरकर लड़के जमा करती और कहती हैं—हे लडको ! तुम हिल-मिलकर कुछ देर खेलो-कूदो। जिससे मैं थोड़ी देर के लिये राम को भूल जाऊँ ॥८॥

राम के बिना मेरी अयोध्या सूनी है, लक्ष्मण के बिना महल और सीता के बिना रसोई। मैं कैसे धीरज धरूँ ? ॥९॥

रात को मैं दीपक जलाऊँगी; सेज बिछाऊँगी; और आधी रात को अपने पुत्र को प्यार करूँगी। मानो मेरे राम घर ही में हैं ॥१०॥

सावन भादों के दिन हैं। बादल घूम-घूमकर बरस रहे हैं। हाय !

राम, लक्ष्मण दोनों भाई कहीं भीगते होंगे ॥११॥

यह बादल रिम-झिम बरस रहा है। मुझे अच्छा नहीं लगता। हे बादल! तुम उस बन में जाकर न बरसना, जहाँ मेरे लड़के हैं ॥१२॥

राम का मुकुट भीग रहा है, लक्ष्मण का दुपट्टा। और मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा है। तुम तीनों घर लौट आओ ॥१३॥

यह गीत करुण-रस से ओतप्रोत है। ऐसा हृदय-द्रावक वर्णन न तो वाल्मीकि ने किया है, न कालिदास और भवभूति ने, और न तुलसी और सूरदास ही ने। कौशल्या के दुःख का स्त्रियों ने बड़ी गहराई से अनुभव किया है। यही कारण है कि इस कविता मे स्वाभाविकता यथेष्ट मात्रा में है; कोरी कवि की कल्पना नहीं है। राम के बन जाने पर कौशल्या की मनोदशा का वर्णन हिन्दी के किसी कवि ने इतना सुन्दर नहीं किया है।

[४]

उतरत चइत चढ़त बैसखवा रे,
गरमी महिनवाँ चूनर भीजै हो राम ॥ १ ॥
बाट के बटोहिया तुहीं मोर भइया रे,
हमरा सनेसवा लिहे जायो हो राम ॥ २ ॥
जाइ कह्यो मोरे हरीजी के अगवाँ रे,
बारे क बेनिया हमैं भेजैं हो राम ॥ ३ ॥
जाइ कह्यो मोरी धना जी के अगवाँ रे,
बाँसे क बेनियवा लइके हाँकैं हो राम ॥ ४ ॥
जाइ कह्यो मोरे हरीजी के अगवाँ रे,
बेनिया बिनावत लागे छ महिनवाँ हो राम ॥ ५ ॥
जाइ कह्यो मोरी धना जी के अगवाँ रे,
रतिया हँकिहैं दिना चोरैहैं हो राम ॥ ६ ॥

बेनिया डोलावत आइ गै निनरिया रे,
परि गै है सासू कै नजरिया हो राम ॥ ७ ॥
खाउँ न बहुआरि तोरा भैया भतिजवा रे,
कवन छयल बेनिया दीहेसि हो राम ॥ ८ ॥
काहे का खाबू सासू भैया भतिजवा रे,
हमरै बिदेसिया बेनिया भेजें हो राम ॥ ९ ॥
ना हम मनबै ना पतियइबै,
हम लेब तोहँसे किरियवा हो राम ॥१०॥
मोरे पिछवरवाँ बढ़ैआ भैया मितवा रे,
भैया चनना लकड़िया चीर देवो हो राम ॥११॥
मोरे पिछवरवाँ लोहरा भैया मितवा रे,
भैया धरम करहिया गढ़ि देवो हो राम ॥१२॥
मोरे पिछवरवाँ तेलिया भैया मितवा रे,
भैया करुअहि तेल पेर देवहु हो राम ॥१३॥
बाट के बटोहिया तुहीं मोर भइया रे,
हमरो सनेसवा लीहे जायो हो राम ॥१४॥
जाइ कह्यो मोरे सइयाँ के अगवाँ रे,
तोरी धन चढ़लीं किरियवा हो राम ॥१५॥
जब सासू डारी हैं करहिया में तेलवा रे,
आइ परिन परदेसिया हो राम ॥१६॥
केकरि अही मैया धेरिया पतोहिया रे,
केकरी तिरियवा किरिया लेबू हो राम ॥१७॥
हमरी अहीं पूता धेरिया पतोहिया रे,
तोहरी तिरियवा किरिया लेवै हो राम ॥१८॥

काहे का लेवू मैया धना से किरियवा रे ,
मैया हमहीं वेनियवा पठावा हो राम ॥१९॥

चैत्र उतरते बैसाख चढ़ा। गरमी का महीना आ गया। चूनरी भीग जाती है ॥१॥

हे राह चलनेवाले भाई ! मेरा संदेशा लिये जाना ॥२॥

जाकर मेरे स्वामी से कह देना—वे मेरे लिये बालों की एक पंखी भेज दें ॥३॥

पति ने कहा—मेरी स्त्री को जाकर कह देना कि बाँस की पंखी लेकर हाँके ॥४॥

स्त्री ने कहलाया—मेरे प्राणनाथ से कह देना—बाँस की पंखी बनवाते-बनवाते तो छः महीने लग जायँगे ॥५॥

पति ने बाल की पंखी खरीद कर भेज दी और कहलाया—रात में हाँकना और दिन में छिपाकर रख देना ॥६॥

एक दिन पंखी हाँकते-हाँकते उसे नींद आ गई, और उस पर सास की दृष्टि पड़ गई ॥७॥

सास ने कहा—ऐ बहू ! मैं तेरा भाई भतीजा खा जाऊँ। सच बता, तुझे यह पंखी किस छैले ने दी ? ॥८॥

बहू ने कहा—सासजी ! मेरा भाई भतीजा क्यों खाओगी ? यह पंखी परदेशी ने भेजी है ॥९॥

सास ने कहा—मैं विश्वास नहीं करूँगी। मैं तुमसे शपथ लूँगी ॥१०॥

बहू ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये बढ़ई भाई ! चन्दन की लकड़ी चीर दो ॥११॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए लोहार भाई ! धर्म की एक कढ़ाई गढ़ दो ॥१२॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुये तेली भाई ! सरसों का तेल पेर दो ॥१३॥

हे राह चलनेवाले भाई ! मेरा संदेशा लिये जाओ ॥१४॥

मेरे स्वामी से कहना—तुम्हारी स्त्री शपथ पर चढ़ी है ॥१५॥

जैसे ही सास ने कड़ाई में तेल डाला, वैसे ही स्त्री का पति विदेश से आ गया ॥१६॥

उसने पूछा—माँ ! किसकी कन्या और किसकी पतोहू और किसकी बहू है ? जिससे तुम शपथ लेने जा रही हो ॥१७॥

माँ ने कहा—मेरी कन्या, मेरी पतोहू और तुम्हारी बहू है, जिससे मैं शपथ लूँगी ॥१८॥

शपथ का कारण जानकर पति ने कहा—माँ ! मेरी स्त्री से शपथ क्यों लोगी ? यह पंखी तो मैंने ही भेजी थी ॥१९॥

यकायक पति के आ जाने से स्त्री बेचारी का संकट टल गया। पति की अनुपस्थिति में बहू पर सास कैसी निगरानी रखती है, इस गीत में उसका एक अच्छा उदाहरण दिया गया है। इसी नियंत्रण का फल है कि हिन्दुओं की बहू-बेटियों का चरित्र अन्य जातियों से कहीं अधिक ऊँचा और सुरक्षित है।

[५]

मोरे पिछवरवाँ रे घनी बँसवरिया रे,
जुड़ि जुड़ि आवा थीं बयरिया हो राम ॥ १ ॥
जेहि तरा मोर हरी सेजिया बिछावैं रे,
आइ न जातू हमरी सुनरिया हो राम ॥ २ ॥
कैसे के आवों हरी तोहरी सेजरिया रे,
सासू घरा वार्टीं बड़ी दारुनि हो राम ॥ ३ ॥

इतनी बचन सुनि पियवा बढ़ैता रे,
घोड़े पीठि भइन असवरवा हो राम ॥ ४ ॥
जाइ कै उतरेन वहि मधुबनवाँ रे,
कैसे पावौं हरी कै दरसवा हो राम ॥ ५ ॥
मचिऐ बैठीं मोरी सासू बढ़ैतिन रे,
कौने ओढ़रे बन जाओं हो राम ॥ ६ ॥
छोरहु न बहुअरि चटकी चुनरिया रे,
पहिरो फटही लुगरिया हो राम ॥ ७ ॥
हथवा के लेहो बहुअरि कुचरी डेलरिया रे,
धै लेव हेलिनी कै भेसवा हो राम ॥ ८ ॥
खोरिया बहारेहु अब घोड़सरिया रे,
हरि कै बैठना बहारेहु हो राम ॥ ९ ॥
मोढ़वा बैठि हरि देखिन हेलिनिया रे,
मन ही मना रे मुसकायँ हो राम ॥१०॥
कहँवे कै तू अहिउ हेलिनिया रे,
कौनी नगरिया क जाबिउ हो राम ॥११॥
मथुरहि कै अही हम हेलिनिया रे,
गोकुला नगरिया हम जाबै हो राम ॥१२॥
तब तो मोरी बहुअरि पनवा न कूँचिउ रे,
हमरो सेजरिया नाहीं सोवौ हो राम ॥१३॥
अब कस बहुअरि बदल्यू रुपवा रे,
हेलिनी बनी बन आवहु हो राम ॥१४॥
तब तौ रहेउँ सैयाँ बारी लरिकवा रे,
अब भयेउँ बारी बयसवा हो राम ॥१५॥

मोरे पिछवरवाँ सोनरा भैया मितवा रे,
सोरहो सिंगार गढ़ौ गहना हो राम ॥१६॥
मोरे पिछवरवाँ रँगरेजा भैया मितवा रे,
धना जोगे रँगहु चुनरिया हो राम ॥१७॥
मोरे पिछवरवाँ कहँरा भैया मितवा रे,
डँड़िया फनाय महल पहुँचावो हो राम ॥१८॥

मेरे पिछवाड़े घनी बँसवारी है। जिसमें से ठंडी-ठंडी हवा आया करती है ॥१॥

उसी के नीचे मेरे स्वामी अपनी सेज बिछाये हैं और बुलाते हैं कि हे मेरी सुन्दरी! आ क्यों नहीं जाती? ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे स्वामी! कैसे आऊँ? घर में बड़ी कर्कशा सास हैं ॥३॥

इतना सुनते ही पति घोड़े पर सवार होकर चला गया ॥४॥

स्त्री सोचती है—हाय! मेरे स्वामी मधुबन में जाकर उतरे हैं। मैं उनका दर्शन कैसे पाऊँगी? ॥५॥

मेरी सास मचिए पर बैठी हैं। मैं किस बहाने बन में जाऊँ? ॥६॥

हे बहू! तुम गहरे रंग की चुनरी उतार कर अलग रख दो और फटी हुई धोती पहन लो ॥७॥

हाथ मे झाड़ू और टोकरी लेकर भंगिन का भेस बना लो ॥८॥

गली में झाड़ू लगाकर फिर घोड़साल बहारना। फिर अपने स्वामी की बैठक साफ़ कर देना। ॥९॥

मोढ़े पर बैठे हुये स्वामी ने भंगिन को देखा और वे मन ही मन मुसकुराये ॥१०॥

पति ने पूछा—तुम कहाँ की भंगिन हो? और कहाँ जाओगी? ॥११॥

स्त्री ने कहा—मैं मथुरा की भंगिन हूँ। गोकुल जाऊँगी ॥१२॥

पति ने कहा—मेरी प्यारी स्त्री! तब तो तुमने मेरा दिया हुआ पान भी नहीं खाया और न मेरी सेज पर पैर ही रक्खा ॥१३॥

हे बहू! अब तुमने यह रूप कैसे बदला? भंगिन बनकर तुम वन में कैसे आई? ॥१४॥

स्त्री ने कहा—हे प्रियतम! तब मैं छोटी उम्र की नादान थी। अब मैं सयानी हो गई हूँ ॥१५॥

पति प्रसन्न हुआ। उसने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये सोनार भाई! मेरी स्त्री के लिये सोलहो श्रृङ्गार के गहने तो गढ़ दो ॥१६॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुए रंगरेज भाई! मेरी स्त्री के लिये चूनरी तो रँग दो ॥१७॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुये कहार भाई! मेरी प्राणप्यारी को पालकी में ले चलकर महल में पहुँचा तो दो ॥१८॥

[६]

बयार बहेला पुरवइया त सींकियो ना डोलेला हो राम।
अहो रामा, मोरा परभू गइलें विदेसवा कइसे जियरा बोधव
हो राम ॥ १ ॥

अँगुरिन मँगिया निफरिवूँ नयन भरी काजर हो राम।
अहो रामा, अस कहि जियरा बुझइबों कि जस हरि घरे
बाड़ें हो राम ॥ २ ॥

होइतों मैं जल कै मछरिया जलहीं बीचे रही जइतों हो राम।
अहो रामा, मोरा हरि अइतें असननवाँ चरन चूमि लेइतीं
हो राम ॥ ३ ॥

सठिया कुटीय भात रन्हितों मुँगीय दरी दलिया हो राम।
अहो रामा, मोरा प्रभू अइतें जेंवनवाँ नजर भरी देखि लेतों
हो राम ॥ ४ ॥

होतों मैं घर के लउँड़िया घर ही बीचे रहि जइतों हो राम।
अहो रामा, मोरा प्रभू अइतें सुतनरवाँ त सेजिया बिछाइ
देतीं हो राम ॥ ५ ॥

पूर्वा हवा इतनी मन्द-मन्द वह रही है कि सींक भी नहीं हिल्ती है। हाय! मेरे स्वामी परदेश जा रहे हैं। मैं जी को ढाढ़स कैसे दूँगी? ॥१॥

उँगलियों से माँग काढ़ लूँगी और आँखों में काजल दे लूँगी। मन को ऐसा समझाऊँगी कि जैसे मेरे भगवान् घर ही में हैं ॥२॥

हे राम! मैं जल की मछली क्यों न हुई? मैं जल में रहती और जब मेरे प्राणनाथ स्नान करने आते, तब मैं उनके चरण चूम लेती ॥३॥

साठी चावल कूटकर भात रीन्हती और मूँग दलकर दाल बनाती। मेरे प्रभु भोजन करने आते, तो मैं आँख भरकर उन्हें देखती ॥४॥

हा! मैं घर की दासी क्यों न हुई? मैं घर ही में रहती और जब स्वामी शयनागार में आते, तो मैं उनकी सेज बिछा देती ॥५॥

प्रेम-विह्वला स्त्री की सुन्दर तरंगें हैं।

[७]

सभको के पकइले पुड़िया त कुअर के जउरिया ये राम।
उहो रे रसोइया विख भइले त कुँअर मोरे बिदेसे गइले ये राम ॥ १ ॥
सासु मोरे बोलेलीं बिरहिया त केकर कमइया खइबू ये राम।
ससुर के जनमल बाड़े लछन देवर उनहीं के कमइया खइबों
ये राम ॥ २ ॥
उहो देवर दिहले जब बिया जे हमरो त बिअहिया बाड़ी ये राम।
काँख तर लेइलीं लुगरिया त बावा देशे चली गइलीं ये राम ॥ ३ ॥
सभवा बइठल तुहूँ बावा त विपतल धिय हउवे ये राम।
टूटली मड़इया हम के देत्यो त विपती गँवाइत ये राम ॥ ४ ॥

टुटही मड़इया बेटी टूटी गइलें जाहु बेटी अपना माई आगे
ये राम।
अम्मा फटही लुगरिया हमके देतिउ त बिपती गँवाइत ये राम ॥ ५ ॥
फटही लुगरिया बेटी फाटि गइले जाहु अपना भाई आगे ये राम।
भइया बीता यक जगहिया हमके देतेउ त बिपती गँवाइलीतो
ये राम ॥ ६ ॥
बीता एक जगहिया जोताइले जाहु अपना भउजी आगे ये राम।
भउजी पिछली टिकरिया हमके देतिउ त बिपती गँवाइलीतो
ये राम ॥ ७ ॥
जवन टिकरिया नन्द तुहें देबो से हो मोर लड़िका खइहें ये राम।
जवने डगरिया तुहूँ अइलू तवने चली जाहु ये राम ॥ ८ ॥
एक बने गइलीं दुसरे बने गइलीं तिसर बनवा भइले ठाढ़ ये राम।
वन में निकसी बघिनिया त मोरा जियरा भछि लीये ये राम ॥ ९ ॥
जवने डगरिया तु अइलू तवने चली जाहु ये राम।
तोरा बिरहा कै मारलि देहिया मैं भछि काउ पाउब ये राम ॥१०॥
बरहे बरिस पर मोर हरि लौटे लइ आये गहना चुनरिया हो राम ॥११॥
पहिर ओढ़ि धन रोवन लागीं पिया बोले चलु नैहरवा हो राम ॥१२॥
आगि लगै पिया वोहि नैहरवा बिपति में केउ न सँघाती हो राम ॥१३॥

सब के लिये पूरियाँ पकीं और कुँवर के लिये खीर बनी। हाय! कुँवर विदेश चले गये। मुझे तो यह रसोई विष ऐसी लगती है ॥१॥

सास ताना मारती हैं कि किसकी कमाई खाओगी? मैंने कहा—मेरे स्वसुर के दूसरे पुत्र लक्ष्मण, जो मेरे देवर लगते हैं, मैं उन्हीं की कमाई खाऊँगी ॥२॥

हाय! उस देवर ने भी जवाब दे दिया। उसने कहा—मेरे भी तो स्त्री है। यह सुनकर बहू ने काँख में धोती दबा ली और वह अपने पिता

के देश को चली गई ॥३॥

पिता सभा में बैठे थे। कन्या ने कहा—पिता! तुम्हारी कन्या विपत्ति में है। तुम अपनी टूटी हुई झोपड़ी मुझे दे देते तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥४॥

पिता ने कहा—बेटी! वह झोपड़ी तो टूट गई। अपनी माँ के पास जाओ।

बेटी माँ के पास पहुँचकर बोली—माँ! अपनी फटी हुई धोती मुझे दे देती तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥५॥

माँ ने कहा—बेटी! वह धोती तो चिथड़े-चिथड़े हो गई। अपने भाई के पास जाओ। बहन भाई के पास जाकर बोली—भैया! एक बीता जगह मुझे दे देते तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥६॥

भाई ने कहा—एक-एक बीता जमीन तो मैं जोतवाता हूँ। तुम को कहाँ से दूँ? अपनी भावज के पास जाओ। ननद भावज के पास जाकर बोली—भौजी! पिछली टिकरी (रोटी) मुझे दिया करती तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट देती ॥७॥

भावज ने कहा—ननद! जो टिकरी मैं तुम्हें दूँगी, उसे तो मेरे लड़के खायँगे। तुम जिस राह से आई हो, उसी राह से वापस जाओ ॥८॥

वह एक बन में गई। दूसरे में गई। तीसरा बन सामने आया। बन में से बाघिनी निकली। स्त्री ने कहा—हे बाघिन! तू मुझे खा ले ॥९॥

बाघिनी ने कहा—जिस राह से तू आई है, उसी से वापस जा। विरह की मारी हुई तेरी देह खाकर मैं क्या पाऊँगी? ॥१०॥

बारह वर्ष पर स्वामी लौटे। स्त्री के लिये गहना और चूनरी ले आये ॥११॥

स्त्री गहना पहनकर और चूनरी ओढ़कर खड़ी हुई। उसी वक्त उसे अपने दुःख के दिन याद आये और वह रोने लगी। पति ने समझा—नैहर की याद आई है। उसने कहा—मेरी प्यारी स्त्री! चलो, नैहर चलो ॥१२॥

स्त्री ने कहा—हे प्राणनाथ! नैहर में आग लगे। विपत्ति में कोई किसी का साथी नहीं ॥१३॥

[८]

बारह बरिस के मैना रानीआ हु रे जी।
सोलह बरिस के गोपी आसिक रे जी ॥१॥
होत भिनुसार मैना अँगना बहोरली।
बढ़नी भेजावा गोपी आसिक रे जी ॥२॥
अपनी खिड़किया मैना झारै लागी केसिया।
कँगही भेजावँ गोपी आसिक रे जी ॥३॥
अपने ओसरवाँ मैना मुड़वा नन्हावेली।
अयना भेजावँ गोपी आसिक रे जी ॥४॥
कवन करन गोपी भेजेला कँगहिआ।
कवन करन के दरपनवा रे जी ॥५॥
केसिआ झरन के मैना भेजली कँगहिआ।
मुँहवा देखन के दरपनवा रे जी ॥६॥
जब रे मैना चलेली ससुररिआ।
गोपी धरले डोली क बँसवा हु रे जी ॥७॥
छोड़ू छोड़ू गोपी रे मोर डोली बँसवा।
देखिहै ससुरवा सब लोगवा हु रे जी ॥८॥
तुहू तो जालू मैना अपना ससुरवा।
हमरा के का कही जालू रे जी ॥९॥

हाथे के लीहे गोपी लोटिया कान्हे के धोतिया ।
जोगिया के भेष धर के आइत रे जी ॥१०॥
गवना के चुनरी धुमिल नाहीं भइली ।
गोपी आसिक बँसीआ बजावले रे जी ॥११॥
अँगना वहारइ त चेरिआ लउँड़िया ।
जोगिया के भीख डाली आवहु रे जी ॥१२॥
चेरिआ के हथवा के भीख नाहीं लेबो ।
जिन्हीं रे बोलेली तिन्हीं दिहलू रे जी ॥१३॥
तरे कइली सोनवा उपर तिल चाउर ।
जोगिआ भीख डावै चली मैना हु रे जी ॥ १४ ॥
तोहरे करमवाँ के कहों गोपी आसिक ।
चुल्लू भर पनिआँ में डूबहु रे जी ॥ १५ ॥
आसिक के आस छोड़ी देहू गोपी भैया ।
तुहूँ तो धरम केरा भइआहु रे जी ॥ १६ ॥

मैना रानी बारह वर्ष की है। और सोलह वर्ष का गोपी है जो उस पर प्रेम रखता है ॥१॥

सबेरा होते ही मैना जब आँगन बुहारने लगती थी, तब गोपी उसके लिये अच्छा सा झाड़ू भेजता था ॥२॥

जब मैना अपनी खिड़की में बैठकर अपने लम्बे केशों को साफ़ करने लगती थी, तब गोपी उसके लिये एक सुन्दर कंघी भेज देता था ॥३॥

जब मैना अपने ओसारे में जूड़ा बँधाने लगती थी, तब प्रेमी गोपी उसके लिये एक बढ़िया दर्पण भेज देता था ॥४॥

गोपी कंघी और दर्पण क्यों भेजता था ? ॥५॥

गोपी बाल झाड़ने के लिये कंघी और मुँह देखने के लिये दर्पण भेजता था ॥६॥

जब मैना ससुराल जाने लगी, तब गोपी पालकी का बाँस पकड़कर खड़ा हुआ ॥७॥

मैना ने कहा—हे गोपी ! मेरी पालकी के बाँस छोड़ दो। ससुराल के लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे ? ॥८॥

गोपी ने कहा—हे मैना ! तुम तो अपनी ससुराल जा रही हो, मुझे क्या कहे जा रही हो ? ॥९॥

मैना ने कहा—हे गोपी ! हाथ में लोटा लेकर और कंधे पर धोती रखकर साधू का भेस धरकर आना ॥१०॥

अभी गौने की साड़ी मैली भी न होने पाई थी कि प्रेमी गोपी ने आकर बाँसुरी बजाही तो दी ॥११॥

मैना की ससुराल की दासियाँ आँगन में झाड़ू लगा रही थीं। मैना ने उनसे कहा—साधू को भीख दे आओ ॥१२॥

गोपी ने कहा—मैं तो दासी के हाथ से भीख न लूँगा। जिसने भीख भेजी है, उसी के हाथ से लूँगा ॥१३॥

मैना नीचे सोना, उसके ऊपर तिल और चावल रखकर साधू को भीख देने चली ॥१४॥

मैना ने कहा—गोपी ! मैं तुम्हारे भाग्य को क्या कहूँ ? चिल्लू भर पानी में तुमको डूब मरना चाहिये ॥१५॥

हे गोपी ! अब तुम इश्क की आशा छोड़ दो। तुम तो मेरे धर्म के भाई हो ॥१६॥

हताश प्रेमिक गोपी का अनुभव संसार के लिये नया नहीं है। बहुत से युवक गोपी की तरह धोखे में रहते हैं।

[९]

पानी के पियासल जिरवा गइली पनीघटवा रे
घर के भसुर वटिआ रोकेले हु रे जी ॥ १ ॥

छोड़ु छोड़ु भसुरारे मोर पानीघटवा रे
बरसले पनीआँ भीजले मोर चुनरी हु रे जी ॥ २ ॥
जउँ तोरा आहो रे जिरवा भीजीहे चुनरिया रे
हमरो दुपटवा ओढ़ि लेव हु रे जी ॥ ३ ॥
तोहरे दुपटवा भसुर अगिया धधाके हु रे
हमरे चुनरिया सीतल बयारिया हु रे जी ॥ ४ ॥
झीन झीन गोहुँआ जिरवा बाँस के चँगेलिया
जिरवा पीसले जँतसरिया हु रे जी ॥ ५ ॥
एक झींक हथवा दुसर झींक जँतवा
देवरा हमरा सनेसवा लेइ जाव हु रे जी ॥ ६ ॥
पँसवा खेलत तुहुँ जैसिंह रजवा रे
तोरी धनी रोवे जँतसरिया हु रे जी ॥ ७ ॥
पसवा लड़वलन राजा बेल रे बबूर तर
झपटि क अइले जँतसरिया हु रे जी ॥ ८ ॥
ओटाले उठवलनी जाँघ बइठवलनी
अपनी रूमलिया आँसु पोंछे हु रे जी ॥ ९ ॥
किया हो जिरवा माई गरिअवलिन
किया हो बहिनिया बिरहा बोले हु रे जी ॥१०॥
नाहीं मोको अहो रे राजा सासू गरिअवलीं
नाहीं हो बहिनिआँ बिरहा बोले हु रे जी ॥११॥
जौन भसूरा मोरा अँगुठा न देखलन
तौन भसूरवा बटिआ रोके हु रे जी ॥१२॥
लेखे दे बिहान जिरवा लागे दे बजरिआ
रैनी चढ़ाइ भइआ मारब रे जी ॥१३॥

भइआ मरले जयसिंह अकसर होइबा
धनिया मरले दूसर धनिया मिलिहे रे जी ॥१४॥
मुँहमाँ रूमलिआ देके हँसले जयसिंह रजवा रे
अइसन छुलाछनि जिरवा धनियाँ हु रे जी ॥१५॥

जीरा प्यासी थी। पानी लाने के लिये वह पनघट पर गई। उसके जेठ ने रास्ता रोक लिया ॥१॥

जीरा ने कहा—हे जेठ! मेरा पनघट छोड़ दो। पानी बरस रहा है। मेरी चूनरी भीग रही है ॥२॥

जेठ ने कहा—हे जीरा! तुम्हारी चूनरी भीग रही है, तो तुम मेरा दुपट्टा ओढ़ लो ॥३॥

जीरा ने कहा—हे जेठ! तुम्हारे दुपट्टे में आग धधक रही है। मेरी चूनरी से शीतल वायु आ रही है ॥४॥

बाँस की चँगेली में गेहूँ लेकर जीरा जाँत के घर में बहुत बारीक आटा पीस रही है ॥५॥

एक झींक हाथ में ले रक्खा है। दूसरा जाँत में डाल दिया है। इतने में उसका देवर आया। जीरा ने कहा—हे देवर! मेरा संदेशा लेकर जाओ ॥६॥

देवर संदेशा लेकर जीरा के पति के पास गया—हे जयसिंह! तुम तो यहाँ बैठकर पाँसा खेल रहे हो। तुम्हारी स्त्री जाँत के घर में रो रही है ॥७॥

यह सुनते ही जयसिंह ने पाँसा तो बेल और बबूल के वृक्ष के नीचे फेंक दिया। और वे झपटकर जाँत-घर में जा पहुँचे ॥८॥

जयसिंह ने स्त्री को ओटा (Seat) से उठाकर जाँघ पर बैठा लिया और रूमाल से स्त्री के आँसू पोंछकर पूछा—॥९॥

जीरा! क्या मेरी माँ ने तुमको गाली दी है? या मेरी बहन ने ताना मारा है? ॥१०॥

जीरा ने कहा—हे राजा! न तो मेरी सास ने गाली दी है, न मेरी ननद ने ही ताना मारा है ॥११॥

जेठजी, जो कभी मेरा अँगूठा भी न देखते थे, मेरा रास्ता रोके हुये थे ॥१२॥

जयसिंह ने कहा—हे जीरा! सबेरा होने दो और बाज़ार लगने दो। मैं तुम्हारे जेठ को मार डालूँगा ॥१३॥

जीरा ने कहा—हे राजा! जेठजी को मारकर तुम अकेले हो जाओगे। और मुझे मार डालोगे, तो फिर तुम दूसरा विवाह कर लोगे ॥१४॥

स्त्री की बात सुनकर जयसिंह मुँह पर रुमाल रखकर हँसने लगे और बोले—मेरी प्यारी स्त्री जीरा ऐसी ही सुलक्षणा है ॥१५॥

[१०]

ननदी भउजिया खेलली सुपेलिया न रे।
अरे भउजी बोलेली बिरहिया रे जी।
अरे इहे चलनिया डोम घर जइबू न रे ॥ १ ॥
यतना वचन ननदी सुनही न पवली न रे।
ननदी चलि भैली गिरही धवरोहर न रे ॥ २ ॥
अरे कोई होत परभूजी के मितवा न रे।
बेगे खबरिया पहुँचाइत न रे ॥ ३ ॥
गलिया के गलिया फिरेला डोमवा न रे।
हम हैं परभूजी के मितवा न रे ॥ ४ ॥
बेगे खबरिया पहुँचइबो न रे।
तोहरे त वाड़े रानी माटी धवरोहर न रे।
हमरे तो वाड़े ईंट धवरोहर न रे ॥ ५ ॥
आपन गहनवा काढ़ बान्ह लेहु न रे।
रानी पोखरा के पिँड़िया चली आवहु न रे ॥ ६ ॥

एक बने गइली दूसरे बने गइली न रे।
अरे भेंट भइली गौवा चरवहवा न रे॥७॥
सुनहु न मोर भइया गोरू चरवहवा न रे।
भैया कहाँ बाटे डोम धवरोहर न रे॥८॥
मैं तोसे कहिल रनियाँ ये रनियाँ न रे।
रनियाँ इहे हौए डोम धवरोहर न रे॥९॥
गइली रनियाँ अँगना बीच ठाढ़ भइली न रे।
अरे बइठे के बाँस के छिलकवा न रे॥१०॥
मैं तोसे पूछलों डोमवा न रे।
डोमवा कहाँ पवले अइसन रनियाँ न रे॥११॥
पहिरू न रनिया रे दूनों कान तरिवन न रे।
बेंचि आउ सुपवा सुपेलिया न रे॥१२॥
पूरुब बेचिहे रनियाँ पच्छिम बेचिहे न रे।
हरदी नगरिया मत बेचिहे न रे॥१३॥
पूरुब छोड़ली रानी पच्छिम न रे।
रानी चलि भइली हरदी नगरिया न रे॥१४॥
गलिया के गलिया फिरेली डोमिनियाँ न रे।
केहू लिही सुपवा मउनियाँ न रे॥१५॥
अपने महलिया चढ़ि रजवा निरेखे न रे।
हम लेबों सुपवा मउनियाँ न रे॥१६॥
ठीकहि ठीक मोल बतलैहे डोमिनियाँ न रे।
ठीक ठीक मोलवा बताइब रजवा न रे॥१७॥
मउनी के मोल ननदीजी के झुलवा न रे।
सुपली के मोल राजा हाथ रुमलिया न रे॥१८॥

यतना बचन राजा सुनहि न पवले न रे।
अरे डोमवा के धई लै आवहु न रे ॥१९॥
आइल डोमवा देहरिया चढ़ि बइठल न रे।
अरे नै नै करेला सलमवा न रे ॥२०॥
ठीकहि ठीक बतलैहे डोमवाँ न रे।
हमरे ही जोग रानी बाड़ी न रे ॥२१॥
ठीक ठीक बतलैबो, राजा हो न रे।
रौरे जोग रानी नाहीं बाड़ी न रे ॥२२॥
जूठ मोर खइली पीठ लागि सुतली न रे।
राजा रौरे जोग नाहीं बाड़ी न रे ॥२३॥
यतना बचन राजा सुनहि न पवले न रे।
अरे डोमिनि धै के लै आवौ न रे ॥२४॥
अइली हो डोमिनि अँगन बिच बइठली न रे।
ठीक ठीक बतलैहे डोमिनिया न रे ॥२५॥
हमरे लायक रानी बाड़ी न रे।
ठीक ठीक बतलैबों राजा हो न रे।
राजा रौरे जोग रानी बाड़ी हो न रे ॥२६॥
जूठ नाहीं खैलीं हो पीठि लगल नाहीं सुतलीं न रे।
राजा रौरे जोग रानी बाड़ी न रे ॥२७॥
जहुँ तुहुँ रनियाँ रे जूँठ नाहीं खैलू न रे।
रनियाँ हमें आगे देहु परिच्छा न रे ॥२८॥
जहुँ तुहुँ अगिया सत के होइबू न रे।
आग तिल नाहीं जरे मोर देहियाँ न रे ॥२९॥
लहकल अगिया जुड़ाइली हो न रे।
अरे ताही बीच खड़ी सत्ती रनियाँ न रे ॥३०॥

गावँ के बाहेर रजवा पोखरा खनवले न रे।
अरे ताही विच डोम भठीअवलेनि न रे ॥३१॥

ननद भौजाई सुपेली खेल रही थीं। भौजी ने व्यंग से कहा—ननद! तुम्हारी ऐसी ही चाल रहेगी तो तुम डोम (भंगी) के घर जाओगी ॥१॥

ननद को यह बात बहुत बुरी लगी। वह धौराहर पर से गिरकर प्राण देने के लिये चल खड़ी हुई ॥२॥

उसने कहा—अरे! क्या कोई मेरे प्रभु (स्वामी) का मित्र है? जो मेरा समाचार उन तक जल्दी पहुँचा दे? ॥३॥

डोम गली-गली में फिरकर सफ़ाई कर रहा था। उसने कहा—मैं तुम्हारे स्वामी का मित्र हूँ ॥४॥

स्त्री ने कहा—तो जल्दी खबर पहुँचाओ न? डोम ने कहा—तुम्हारा धौरहर तो मिट्टी का है। मेरा धौरहर ईंट और चूने का है ॥५॥

तुम अपना गहना-गट्ठी बाँध लो और तालाब के किनारे-किनारे चली आओ ॥६॥

वह एक बन में गई। दूसरे बन में गई। वहाँ उसे गोरू चरानेवाले मिले ॥७॥

उनसे उसने पूछा—हे गोरू चरानेवाले भाई! डोम का धौरहर कहाँ है? ॥८॥

डोम, जो साथही था, उसने कहा—हे रानी! मैंने तुमसे कहा था न! यही तो डोम का धौरहर है ॥९॥

रानी आँगन में जाकर खडी हुई। बैठने के लिए उसे बाँस का छिलका मिला ॥१०॥

लोगों ने डोम से पूछा—डोम! तुमने ऐसी सुन्दर रानी कहाँ पाई? ॥११॥

डोम ने रानी से कहा—रानी! दोनों कानों में बाँस के छिलकों का

बना हुआ कुण्डल पहन लो और सूप-सुपेली वेंच आओ ॥१२॥

हे रानी ! पूरब और पश्चिम बेंचने जाना। पर हलदी नगर में बेचने के लिये मत जाना ॥१३॥

रानी न पूरब गई, न पश्चिम। वह हलदी नगर ही की ओर चल निकली ॥१४॥

रानी गली-गली घूमकर बेंचने लगी—कोई सूप और मौनी (छोटी डलिया) लेगा ? ॥१५॥

राजा अपने महल से देख रहा था। उसने कहा—सूप और मौनी मैं लूँगा ॥१६॥

ठीक-ठीक दाम बताना। रानी ने कहा—हाँ, हे राजा ! ठीक ही ठीक बताऊँगी ॥१७॥

मौनी का दाम ननद का झुलवा (जाकट) है, और सूप का दाम राजा के हाथ की रूमाल है ॥१८॥

राजा इतना वचन सुनने भी न पाया था कि बोला—डोम को पकड़ लाओ ॥१९॥

डोम आया और ड्योढ़ी के चबूतेर पर बैठा। उसने झुक-झुककर सलाम किया ॥२०॥

राजा ने पूछा—डोम ! ठीक ही ठीक बताना—रानी ! मेरे पास रहने योग्य है, कि नहीं ? ॥२१॥

डोम ने कहा—हे राजा ! मैं ठीक ही ठीक बताऊँगा। रानी आप के योग्य नहीं रह गई ॥२२॥

रानी ने मेरा जूठा खाया। पीठ से लग कर सोई। रानी अब आप के योग्य नहीं रही ॥२३॥

राजा ने यह सुनकर कहा—डोमिन को पकड़ लाओ ॥२४॥

डोमिन आकर आँगन में बैठी। राजा ने कहा—हे डोमिन! ठीक-ठीक बतलाना ॥२५॥

रानी मेरे योग्य है, कि नहीं? डोमिन ने कहा—हे राजा! मैं सच-सच बताऊँगी। रानी आपके योग्य अवश्य हैं ॥२६॥

न तो रानी ने जूठा खाया और न वे पीठ लगाकर सोईं। रानी आप के योग्य अवश्य हैं ॥२७॥

राजा ने रानी से पूछा—यदि तुमने सचमुच जूठा नहीं खाया तो अग्नि-परीक्षा दो ॥२८॥

रानी ने आग से कहा—हे अग्नि! यदि तुम में सत हो, तो मेरा शरीर तिल भर भी न जले ॥२९॥

दहकती हुई आग ठंडी पड़ गई। रानी उसी के बीच में खड़ी है ॥३०॥

राजा ने गाँव के बाहर तालाब खुदवाया और उसी में डोम को गड़वा दिया ॥३१॥

[११]

यक सुधि आइ गइली जेंवत क रे
मोरा धईल जेंवन बसिया गइले हो।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥ १ ॥
यक सुधि आइ गइली पनिया भरत क रे।
अरे फुटतै घरिल डुबि जातो रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥ २ ॥
यक सुधि आइ गइली बिरवा जोरत क रे।
अरे खैर सोपारी मैं भूलि गई रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥ ३ ॥
यक सुधि आइ गइली सेजिया सोवत क रे।

अरे डसती नगिन मरि जातो रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क ॥ ४ ॥

मैं जैसे ही भोजन करने बैठी, मुझे अपने साँवले सिपाही की याद आ गई। मेरा भोजन रक्खा ही रक्खा बासी हो गया ॥१॥

पानी भरते समय यकायक उसकी याद आगई। मेरी ऐसी दशा हो गई कि घड़ा फूट जाता और कुँएँ में जा पड़ता ॥२॥

पान का बीड़ा जोड़ते समय उसकी याद आ गई तो, मैं उसमें खैर और सुपारी रखना ही भूल गई ॥३॥

सेज पर सोते समय उसकी याद आगई तो मुझे ऐसा जान पड़ने लगा कि काली नागिन ने डस लिया है और मैं मरी जा रही हूँ ॥४॥

[१२]

बदरिया झिमकत आवै मोरे राजा।
साँझ भई दिया बाती की बेरिया,
राजा दुहावै लागें गइया, मैं जेवना बनावउँ
मोरे राजा ॥ १ ॥
आधी रात चपरासिया क फेरा,
राजा बिछावयँ सुख-सेजा, मैं जँतवा बहारौं
मोरे राजा ॥ २ ॥
भोर भये चुहचुहिया जो बोलै, राजा सँवारैं
सिर पागा, मैं जाँते पर जूझन लागउँ
मोरे राजा ॥ ३ ॥

बदली चमकती आ रही है। शाम हुई। दीपक जलाने की बेला आई। राजा गाय दुहाने लगे और मैं भोजन बनाने लगी ॥१॥

आधी रात को पहरेदार का फेरा हुआ। मेरे राजा सुख-शय्या बिछाने लगे। मैं जाँत का घर बहारने लगी ॥२॥

सबेरा हुआ। छुहछुहिया (एक पक्षी) बोलने लगी। राजा अपनी पगड़ी सँवारने लगे और मैं उठकर जाँत पर जूझने लगी ॥३॥

इस गीत में शाम से लेकर सबेरे तक स्त्री की दिन-चर्या वर्णित है। हिन्दू गृहस्थों की रहन-सहन देहात में इतनी ख़राब हो गई है कि सचमुच जब घर के और पड़ोस के लोग सो जाते हैं, और रात को पहरेदार आकर जगाता है तब पति चोर की तरह धीरे-धीरे उठकर स्त्री के घर में जाता है। वह तो सुख की सेज बिछाने लगता है। स्त्री बेचारी को अवकाश कहाँ! वह सबेरे आटा पीसने की तैयारी में लग जाती है। पति सबेरे उठकर चला जाता है। स्त्री बेचारी सचमुच जाँत पर जूझने लगती है।

[१३]

झीने झीने गोहुवाँ बाँसे कै डेलरिया
ननदी भौजैया गोहुवाँ पीसैं मोरे राम ॥ १ ॥
रोजै तो आओ देवरा दुइ रे सिपहिया
आज कइसे आयउ अकेलवा मोरे राम ॥ २ ॥
कैसेन भीजी देवरा तोरी रे पनहिया
कैसेन तेगवा तोरी भीजी मोरे राम ॥ ३ ॥
सितियन भीजी भौजी मोरी रे पनहिया
हरिनी सिकरवा तेगवा भीजा मोरे राम ॥ ४ ॥
देहु न बताई देवरा रे गोसइयाँ
तुहैं छोड़ि कहूँ न जावै मोरे राम ॥ ५ ॥
कहवैं मान्यो कहवैं बहायउ
कहाँ कै चिल्हरिया मड़राय मोरे राम ॥ ६ ॥
ऊँचवैं मारेउँ खलवैं बहायउँ
सरगे चिल्हरिया मड़रानी मोरे राम ॥ ७ ॥

बन में चनन कै लकड़ी बटोर्‍यों
चितवै किहौं तैयार मोरे राम ॥८॥
जाहु जाहु देवरा अगिया लै आओ
स्वामी क आगि हम देवै मोरे राम ॥९॥
जौ तुम होउ स्वामी सच क बिअहुता
अँचरा अगिनिया लइ उठौ मोरे राम ॥१०॥
अँचरा भभकि उठा सतिना भसम भई
देवरा मींजै दूनौ हाथ मोरे राम ॥११॥
जौ हम जनतेउँ भौजी दगवा कमाविउ
काहे क मरतेउँ सग भैया मोरे राम ॥१२॥

वाँस की डलिया में छोटे-छोटे गेहूँ हैं। ननद भौजाई गेहूँ पीस रही हैं ॥१॥

देवर को घर आया देखकर भौजाई ने पूछा—देवर! रोज तो तुम दोनों भाई साथ आते थे, आज अकेले कैसे आये? ॥२॥

हे देवर! तुम्हारी जूती कैसे भीगी? और तुम्हारी तलवार में रक्त कहाँ से लगा है? ॥३॥

देवर ने कहा—हे भौजी! ओस से मेरी जूती भीगी है और हरिनी के शिकार मे मेरी तलवार खून से भीग गई है ॥४॥

स्त्री सारा रहस्य समझ गई। उसने पूछा—हे देवर! सच-सच बता क्यों नहीं देते? मैं तुम्हें छोड़कर दूसरे के पास नहीं जाऊँगी ॥५॥

अपने बड़े भाई को तुमने कहाँ मारा? कहाँ फेंका? कहाँ की चील उनके ऊपर मँडला रही है? ॥६॥

देवर ने सच-सच बता दिया। उसने कहा—मैंने उन्हें ऊँचे पर मारा। नीचे ढकेल दिया और वहाँ आकाश में चील्ह मँडला रही थी ॥७॥

बन में चन्दन की लकड़ी बटोरकर मैंने चिता तैयार की है ॥८॥

भौजाई ने कहा—हे देवर! जाओ, जाकर आग ले आओ। मैं अपने हाथ से स्वामी को आग दूँगी ॥९॥

देवर आग लेने चला गया। इधर स्त्री अपने पति की लाश के पास खड़ी होकर विनय करने लगी—हे स्वामी! हे प्राणनाथ! जो तुम मेरे सचमुच विवाहित पति हो और मैं पतिव्रता होऊँ तो तुम मेरे आँचल से आग लेकर उठो ॥१०॥

आँचल से आग भभक उठी। सती नारी भस्म हो गई। देवर दोनों हाथ मींजने लगा ॥११॥

देवर ने कहा—हे भौजी! जो मैं जानता कि तुम इस तरह छल करोगी तो मैं अपना सगा भाई क्यों मारता ॥१२॥

मालूम होता है, बड़े भाई की स्त्री पर छोटा भाई मुग्ध था। उसने उस स्त्री के लिये अपने बड़े भाई को मार डाला। पर सती स्त्री हाथ न आई। उसने अपने धर्म-बल से आग उत्पन्न की और पति के शव के साथ सती होकर अपना धर्म बचाया। इस देश में ऐसी सती स्त्रियाँ हो चुकी हैं, जो अपने आँचल से अग्नि उत्पन्न कर सकती थीं।

यह गीत अंग्रेजी राज से पहले का मालूम होता है। क्योंकि उन दिनों तलवार बाँधकर चलने मे कोई कानून बाधक नहीं था।

[१४]

लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँअरसिंह,
ए सुन अमरसिंह भाय हो राम।
चमड़ा के टोड़वा दाँत से हो काटे कि,
छतरी के धरम नसाय हो राम ॥ १ ॥
बाबू कुँअरसिंह औ भाई अमरसिंह,
दोनों अपने हैं भाय हो राम।

बतिया के कारण से बाबू कुँअरसिंह,
फिरंगी से हो रेढ़ बढ़ाय हो राम ॥ २ ॥
दानापुर से जब सजलक हो कम्पू,
कोइलवर में रहे छाय हो राम।
लाख गोला तुहुँ कै गनि के मरिहौं,
छोड़ बरहरवा के राज हो राम ॥ ३ ॥
रोवत बाड़े बाबू तो कुँअरसिंह,
मुखवा पर धर के रुमाल हो राम।
लेली लड़इआ हम तो बूढ़ा हो समय में।
अब कउन होइहें हवाल हो राम ॥ ४ ॥

कुँवरसिंह ने पत्र लिखकर अमरसिंह के पास भेजा—हे भाई! सुनो! चमड़े का कारतूस दाँत से काटने से क्षत्रिय-धर्म चला जायगा ॥१॥

कुँवरसिंह और अमरसिंह दोनों भाई थे। बात के कारण कुँवरसिंह ने अंग्रेज़ों से लड़ाई ली थी ॥२॥

दानापुर से जब अंग्रेज़ों का कैम्प उठा तो कोइलवर में डेरा पड़ गया। अंग्रेज़ों ने कहा—मैं तुम को गिनकर लाख गोले मारूँगा। नहीं तो बड़हरवा का राज छोड़ दो ॥३॥

कुँवरसिंह मुँह पर रुमाल रखकर रो रहे हैं—हाय! मैंने वृद्धावस्था में लड़ाई छेड़ी है। न जानें क्या दशा होगी ॥४॥

बाबू कुँवरसिंह ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ये आरा के पास जगदीशपुर के बड़े भारी ज़मींदार थे। ये चार भाई थे—कुँवरसिंह, दयालसिंह राजपतिसिंह और अमरसिंह। उपर्युक्त गीत मे पहले और चौथे भाई की बातचीत का वर्णन है।

१८५७ के गदर में कुँवरसिंह ने विद्रोही सिपाहियों का साथ दिया था। कुँवरसिंह बड़े ही रण-कुशल और साहसी थे। उन्होंने कई बार

अंग्रेज़ सेनापतियों को परास्त किया था। उन्होंने आज़मगढ़ पर आक्रमण करके अंग्रेज़ों के हाथ से उसे जीत लिया था। आज़मगढ़ ज़िले मे अंग्रेज़ों से और कुँवरसिंह से कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें कुँवरसिंह विजयी हुये। २० वीं अप्रेल, १८५७ को डगलस की सेना से इनका सामना हो गया। इसी युद्ध में एक तोप के गोले से इनकी जाँघ और बाँह में गहरी चोट आई। बाँह तो एक प्रकार से टूट ही गई थी। ये मूर्च्छित होकर हाथी पर गिर पड़े। महावत हाथी को युद्ध-स्थल से दूर ले गया। कुँवरसिंह हाथी पर से उतारे गये। होशमें आने पर कुँवरसिंह ने अपना टूटा हुआ हाथ काटकर गंगाजी में फेंक दिया। वहाँ से वृद्ध कुँवरसिंह खाट पर सुलाकर २१ अप्रेल को जगदीशपुर लाये गये। जहाँ इनके भाई अमरसिंह कई हजार सिपाहियों के साथ थे। वहीं आहत-अवस्था में भी कुँवरसिंह ने २३ अप्रेल को कप्तान ले ग्रैण्ड की सेना को तहस-नहस कर डाला। ले ग्रैंड मारे भी गये। इसी घटना के तीसरे दिन कुँवरसिंह पंचत्व को प्राप्त हुये। इनके बाद अमरसिंह ने विद्रोह का झंडा हाथ में लिया।

बिहार में कुँवरसिंह के गीत घर-घर में गाये जाते हैं। कितने ही बिरहे, कितने ही जाँत के गीत, कितने ही खेत के गीत कुँवरसिंह के नाम से प्रसिद्ध हैं, और जनता के मानस-पटल पर भारत की स्वतंत्रता का एक धुँधला प्रकाश डाले हुये हैं।

[१५]

कृष्ण सुदामा दोनों पढ़ने को निकले,
बाँधे कृष्ण कल्यौवा हो राम।
धीरे-धीरे खोलि गठरिया सुदामा,
मूँठी भर चना उन फाँके हो राम॥ १॥
छोटे कन्हैया बड़े हैं सुदामा,
छोटे का हिस्सा उन खाया हो राम।

जेहि के दुआरे कान्हा हथिया बँधे रहैं,
तेहि द्वारे कुत्ता बसेरा हो राम ॥ २ ॥
जिनके रहे कान्हा सोने की महलिया,
तेहि घर छानी न छप्पर हो राम ।
जेहि की रसोइया कान्हा खिरिया बखिरिया,
तेहि घर फुटहा न दाना हो रामा ॥ ३ ॥
जेहि के घरे कान्हा सोने के थारा,
तेहि घर मट्टी का कुम्भा हो राम ।
यक दिन बोलीं सुदामा की स्त्री,
जाय कन्हैयाजी तें बिनवो हो राम ॥ ४ ॥
कैसे के जाऊँ रानी मित्र से मिलने,
ना अँग धोती न लँगोटी हो राम ।
अँचरा फारि रानी उन्हें पहिराइन,
हाथ में कुम्भा पकराइन हो राम ॥ ५ ॥
यक खेत में साँवाँ के तन्दुल,
मूँठी भर साँवाँ उन बाँधा हो राम ।
जाय सुदामा पहुँचे कृष्न दुअरवा,
पठवें राजा दरबनिया हो राम ॥ ६ ॥
जाइ के भीतर खबर जनाओ
आये हैं मित्र तुम्हारे हो राम ।
पूजा करत श्रीकृष्ण मुसुकाने,
आये हैं मित्र हमारे हो राम ॥ ७ ॥
कुम्हड़ा मँगाय मोहर भरि रुकुमिनि,
दीन्ही सुदामा के करवा हो राम ।

घर कुम्हड़ा लै जाओ सुदामा,
यहि से मिलिहैं अहार हो राम ॥८॥
लै कुम्हड़ा चले मथुरा बजरिया,
बेंचिन बनिया के हाथ हो राम।
कुम्हड़ा लै बनिया घर धरि आयो,
सेर भर दै के अनाज हो राम ॥९॥
हँसिया मँगाय कुम्हड़ा चीरिस जो बनिया,
मोहरें गईं छितराय हो राम।
जौनिहि बटिया चले सुदामा,
मोहरें दिहिन छिटकाय हो राम ॥१०॥
बटिया चलत आँखि मूँदे सुदामा,
अँधरा चलैं कैसे बाट हो राम।
पूजा करत श्रीकृष्नजी बोले,
सुनहु बात मेरी रुकमिनि हो राम ॥११॥
जब हम देहिंगे राज सुदामहिं,
तबहीं पैहैं अहार हो राम।
नहवाय खोवाय पहिराय पितम्बर,
दहिने अँग लिहिन बैठारि हो राम ॥१२॥
मूठी खोलि जब देखी कन्हैया,
पूँछे लागे भाभी कुछु पठइन हो राम।
एक फंका मारिन दूसर फंका मारिन,
रुकमिनि पकरिन हाथ हो राम ॥१३॥
तीनों लोक इनहिन को देहौ,
का अमल रहिहै तुम्हार हो राम।

पहिरि पितम्बर हाथ लिहे कुम्भा,
मनहि चले पछितात हो राम ॥१४॥
जहँवाँ हती वह राम मड़ैया,
तहवाँ भूप उतरे आय हो राम।
जहँवाँ हतो तुलसी का पेड़वा,
तहँवाँ कंचन खम्भ हो राम ॥१५॥
जहँवाँ हती मोरी दुर्बल ब्राह्मणी,
तहँवाँ खड़ी यक रानी हो राम।
जो गावै यह सुदामा चरित्तर,
होइ दरिद्र सब दूरि हो राम ॥१६॥

कृष्ण और सुदामा दोनों पढ़ने को निकले। कृष्ण ने कलेवा बाँध रक्खा था। सुदामा ने चुपके से धीरे-धीरे गठरी खोली और मूँठी भरकर चना चबा लिया ॥१॥

कृष्ण छोटे थे और सुदामा बड़े। सुदामा ने अपने से छोटे का भाग खा लिया। परिणाम यह हुआ कि जिस सुदामा के द्वार पर हाथी बँधे थे, अब वहाँ कुत्ते बैठने लगे ॥२॥

जिस सुदामा के महल सोने के थे, अब उसके घर पर फूस के छप्पर भी नहीं रहे। जिस सुदामा के घर में खीर और बखीर (चावल, गुड़ और दूध से बनी हुई खीर) बना करती थी, अब वहाँ फूटा दाना भी नसीब नहीं होता ॥३॥

जिस सुदामा के घर में सोने की थालियाँ थीं, वहाँ अब मिट्टी के ठीकरे से काम निकलता है। सुदामा की स्त्री ने एक दिन कहा—तुम अपने मित्र श्रीकृष्ण से जाकर कहो ॥४॥

सुदामा ने कहा—हे मेरी रानी ! मित्र से मिलने मैं कैसे जाऊँ ? न मेरे धोती है, न लँगोटी। स्त्री ने आँचल फाड़कर सुदामा को पहनाया

और हाथ में मिट्टी की एक हाँड़ी पकड़ा दी ॥५॥

एक खेत में मूठो भर साँवा के दाने बीनकर उसने अँगोछे में बाँधकर सुदामा को दिया। सुदामा कृष्ण के द्वार पर जाकर पहुँचे। उन्होंने द्वारपाल से इत्तला कराई ॥६॥

हे द्वारपाल! भीतर जाकर श्रीकृष्ण को ख़बर करो, तुम्हारे मित्र आये हैं। श्रीकृष्ण पूजा करते थे। सुदामा के आने का समाचार सुनकर वे मुसकुराये—अहा! मेरे मित्र आये हैं ॥७॥

रुक्मिणी ने कुम्हड़ा मँगाकर उसमें मोहर भरा, और सुदामा के हाथों में रखकर कहा—हे सुदामा! इसे घर ले जाओ। इसी से तुमको आहार मिलेगा ॥८॥

सुदामा कुम्हड़ा लेकर मथुरा के बाजार में गये और उन्होंने उसे एक बनिये के हाथ बेंच डाला। एक सेर अनाज देकर बनिये ने कुम्हड़ा खरीद लिया और वह उसे अपने घर रख आया ॥९॥

बनिये ने हँसिया मँगाकर कुम्हड़ा चीरा। चीरते ही चारोंओर मोहरें ही मोहरें छितरा गईं। जब ये मोहरें भी सुदामा को न मिलीं, तब रुक्मिणी ने सुदामा के रास्ते में मोहरें बखेरवा दीं ॥१०॥

राह चलते हुये सुदामा ने यह देखने के लिये आँख मूँद ली कि देखें, अंधे लोग कैसे चलते हैं? तब श्रीकृष्णजी, जो पूजा कर रहे थे, बोले—हे रुक्मिणी! मेरी बात सुनो ॥११॥

मैं जब दूँगा, तभी सुदामा को आहार मिल सकता है। श्रीकृष्ण ने सुदामा को नहला-धुलाकर, खिला-पिलाकर, पीताम्बर पहनाकर अपनी दाहिनी ओर बैठा लिया ॥१२॥

श्रीकृष्ण ने सुदामा की गठरी ले ली और पूछा—भाभी ने मेरे लिये क्या भेजा है? यह कहकर उन्होंने एक फाँका साँवा का चावल खा लिया। दो फाँका खा लिया। तीसरा खाने जा रहे थे कि रुक्मिणी

ने हाथ पकड़ लिया ॥१३॥

रुक्मिणी ने कहा—वाह ! तुम इन्हीं को तीनों लोक दे दोगे, तो तुम्हारी अमलदारी कहाँ रहेगी ? सुदामा बिदा हुये। पीताम्बर पहने हुये, हाथ में वही हाँड़ी लिये हुये, पछताते हुये घर चले ॥१४॥

घर आकर क्या देखते हैं ? जहाँ उनकी झोपड़ी थी, वहाँ मालूम होता है, कोई राजा आकर उतरा है। जहाँ तुलसी का पेड़ था, वहाँ सोने का खंभा लगा है ॥१५॥

जहाँ उनकी दुबली-पतली ब्राह्मणी थी, वहाँ एक रानी खड़ी है। यह सुदामाचरित्र जो गावे, उसकी सब दरिद्रता दूर हो जाय ॥१६॥

[१६]

मोरे पिछवरवाँ कुम्हरवा की बखरी,
अच्छी अच्छी मेटुकी भँवायो जी ॥ १ ॥
असकै चाक चलाये रे कुम्हरवा,
दहिया बेंचन हम जाइब जी ॥ २ ॥
असकै चाक चलैहौं गुजरिया,
दहिया लेवैया लोभि जावै जी ॥ ३ ॥
मोरे पिछवारे दरजिया की बखरी,
अच्छी अच्छी चोलिया सिआयो जी ॥ ४ ॥
असकै सुइया चलाये रे दरजिया,
चारि चिरैया दुइ मोरैं जी ॥ ५ ॥
कँहँवा बनावों चारि चिरैया,
कँहवाँ बनाओं दुइ मोरैं जी ॥ ६ ॥
अँगिया बनाओ चारि चिरैया,
अँचरे बनाओ दुइ मोरैं जी ॥ ७ ॥

उठते बोलैं चारि चिरैया,
बैठत कुहकैं दुइ मोरैं जी ॥ ८ ॥
एक घर नाँघि दुसर घर नाँघ्यों,'
तिसरे मैं मिले हैं कन्हैया जी ॥ ९ ॥
छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
हमरे ससुर बड़े जालिम जी ॥१०॥
तुमरे ससुर को मैं हथिया पठैहौं,
तुमको बैठरिहौं अपने राजहिं जी ॥११॥
छोड़ो कान्हा बहियाँ हमारी,
जेठ बड़े उतपाती जी ॥१२॥
तुमरे जेठ को मैं घोड़वा पठैहौं,
तुमका बैठरिहौं अपने राजहिं जी ॥१३॥
छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
हमरे देवर जंजाली जी ॥१४॥
तुमरे देवर को मैं मुरली पठैहौं,
तुमका बैठौहौं अपने राजहिं जी ॥१५॥
छोड़ो कन्हैया बहियाँ हमारी,
सइयाँ हमरे दुख दारुन जी ॥१६॥
तुमरे बलम का मैं करिहौं वियहवा,
एक गोरी एक साँवर जी ॥१७॥
तनी यक पिँछवड़ होइ जाओ कान्हा,
जमुना में खेलिहौं डुबैया जी ॥१८॥
एक बुड़ी मारिन दुसर बुड़ी मारिन,
गोरिया उतरि गईं पारैं जी ॥१९॥

पूँछन लागे गइया चरवहवा,
बखरी गुजरिया बताओ जी ॥२०॥
जाइ के बैठ कान्हा कुअँवाँ जगत पर,
पूँछहिं कुआँ पनिहारिन जी
बखरी गुजरिया बताओ जी ॥२१॥
जेहि के दुआरे कान्हा बाँधे हैं पँड़रुवा,
वही गुजरिया की बखरी जी ॥२२॥
हाथ में चुड़िला पाँव में बिछिया,
पहिरिन चटक चुनरिया जी ॥२३॥
निहुरे निहुरे गुजरी अँगना बहारैं,
पीछे ठाढ़े कन्हैया जी ॥२४॥
लागीं कहन परोसिन उनसे,
पीछे बहिन तुमरी ठाढ़ी जी ॥२५॥
ना तो चचा के ना तो बबा के,
दुसरी बहिन कहाँ पावा जी ॥२६॥
तुमरा वियाह वहिनि हमरा जनमवा,
दुसरी बहिनि तुम पायो जी ॥२७॥
दूनौं बहिनि मिलि पिसना जो पीसैं,
हाथ घुमावैं मरदाने जी ॥२८॥
दोनों वहिनि मिलि कुटना जो कूटैं,
मूसर उठावैं मरदाने जी ॥२९॥
दूनौं बहिनि मिलि रोटिया बनावैं,
थपकी चलावैं मरदाने जी ॥३०॥
दूनौं बहिनि मिलि जेंवन जो बैठीं,
कौर उठावैं मरदाने जी ॥३१॥

एक दिन बीता दूसर दिन बीता,
कान्हा कहेन मुसुकाई जी ॥३२॥
जीजा की खटिया बरौठा में डारौ,
हम तुम सूतब महलिया जी ॥३३॥
खटिया बइठि कान्हा रस भरि चितवैं,
भौंहाँ चलावैं मरदाने जी ॥३४॥
समुझि समुझि मन हँसी गुजरिया,
झपटि के भागि दुवारे जी ॥३५॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे ससुर बड़ जालिम जी ॥३६॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे देवर जंजाली जी ॥३७॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे जेठ उतपाती जी ॥३८॥
भागो कन्हैया जिअरा बचाओ,
आइगे सैयाँ बड़ दारुन जी ॥३९॥
ओढ़नी उतारि कान्हा अँगना में फेंकेनि,
लहँगा उतारि अँतसारी जी ॥४०॥
हालाहाली टिकुली उतारै न पायनि,
कूदि गयेन डँड़वारी जी ॥४१॥
हथवा बजाय कै हँसी गुजरिया,
ठहरौ न कान्हा रस लूटौ जी ॥४२॥
टिकुली देखि के हँसै बजरिया,
कान्ह बहुत खिसियानेनि जी ॥४३॥

मेरे पिछवाड़े कुम्हार का घर है। हे कुम्हार ! तुम बहुत अच्छी तरह चाक चलाना और सुन्दर मटुकी बना देना। मैं दही बेंचने जाऊँगी ॥१,२॥

कुम्हार ने कहा—हे गूजरी ! मैं ऐसा चाक चलाऊँगा और ऐसी सुन्दर मटुकी बना दूँगा कि दही लेनेवाला लुभा जायगा ॥३॥

मेरे पिछवाड़े दरजी का घर है। हे दरजी ! अच्छी-अच्छी चोली सी देना ॥४॥

हे दरजी ! ऐसी सुई चलाना, जिससे चार चिड़ियाँ और दो मोरों का बूटा निकल आये। दरजी ने पूछा—चार चिड़ियाँ कहाँ बनाऊँ ? और दो मोर कहाँ ? ॥५,६॥

स्त्री ने कहा—चारो चिड़ियाँ तो चोली पर बना देना और दोनों मोर आँचल में ऐसा बनाना कि जब मैं उठूँ, तब चारों चिड़ियाँ बोलने लगें। और जब बैठूँ, तब दोनों मोर कुहकने लगें ॥७,८॥

गूजरी दही बेंचने निकली। एक घर में बेंचकर दूसरे घर में गई। तीसरे में गई। वहाँ उसे श्रीकृष्ण मिल गये। उन्होंने गूजरी की बाँह पकड़ ली। गूजरी ने कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे ससुर बड़े क्रोधी हैं ॥९,१०॥

कृष्ण ने कहा—मैं तुम्हारे ससुर के लिये हाथी भेजूँगा और तुम को पटरानी बनाऊँगा ॥११॥

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे जेठ बड़े उत्पाती हैं ॥१२॥

कृष्ण ने कहा—तुम्हारे जेठ के लिये मैं घोड़ा भेजूँगा और तुम को राजगद्दी पर बैठाऊँगा ॥१३॥

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे देवर बड़े प्रपंची हैं ॥१४॥

कृष्ण ने कहा—तुम्हारे देवर के लिए मैं वंशी भेजूँगा और तुम को राजगद्दी पर बैठाऊँगा ॥१५॥

गूजरी ने फिर कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे स्वामी बड़े ही कठोर स्वभाव के हैं ॥१६॥

कृष्ण ने कहा—मैं तुम्हारे स्वामी का दो विवाह करा दूँगा। एक स्त्री साँवली होगी, दूसरी गोरी ॥१७॥

गूजरी ने छुटकारे का जब कोई उपाय नहीं देखा, तब उसने कहा—हे कृष्ण ! जरा तुम मुँह उधर कर लो। मैं जमुना जी में एक डुबकी ले लूँ ॥१८॥

कृष्ण ने उसे डुबकी मारने के लिये छोड़ दिया। एक डुबकी के बाद दूसरी डूबकी मारकर वह पानी ही पानी में उस पार हो गई, और अपने घर चली गई ॥१९॥

श्रीकृष्ण उसका घर खोजते हुये चले। उन्होंने गोरू चरानेवालों से पूछा—हे भाई ! दही बेचनेवाली गूजरी का घर मुझे बता दो ॥२०॥

कृष्ण कुएँ की जगत पर जाकर बैठे। उन्होंने पनिहारिन से पूछा—हे पनिहारिन ! मुझे गूजरी का घर बता दो ॥२१॥

पनिहारिन ने कहा—हे कृष्ण ! जिसके द्वार पर भैंस के पँडवे बँधे हैं, वही गूजरी का घर है ॥२२॥

कृष्ण ने हाथों मे चूड़ियाँ, पाँवों में बिछुवे और शरीर पर चटकीली चूनरी पहन ली ॥२३॥

गूजरी झुकी हुई अपने आँगन में झाड़ू लगा रही थी। पीछे मुड़कर वह देखती है तो कृष्ण खड़े हैं ॥२४॥

पड़ोसिन ने गूजरी से कहा—देखो, तुम्हारी बहन खड़ी है ॥२५॥

गूजरी ने कहा—न तो मेरी कोई चचेरी बहन है, न कोई सगी है। यह बहन कहाँ से आई ? ॥२६॥

कृष्ण ने कहा—हे बहन ! तुम्हारा विवाह हो जाने के बाद मेरा जन्म हुआ था। इस प्रकार मैं तुम्हारी दूसरी बहन हूँ ॥२७॥

दोनों बहनें मिलकर आटा पीसने लगीं। दूसरी बहन का हाथ मर्द की तरह चलता था ॥२८॥

दोनों बहनें मिलकर कूटने बैठीं। दूसरी बहन का हाथ मर्द की तरह उठता था ॥२९॥

दोनों बहनें मिलकर रोटी बनाने लगीं। दूसरी बहन की थपकी मर्द की तरह चलती थी ॥३०॥

दोनों बहनें मिलकर भोजन करने बैठीं। दूसरी बहन मर्द की तरह कौर उठाती थी ॥३१॥

एक दिन बीता। दूसरा दिन बीता। तीसरे दिन कृष्ण ने मुसकुरा कर कहा—॥३२॥

जीजाजी की खाट बरौठे (बरांडे) में डाल दो। हम तुम महल में सोवें ॥३३॥

खाट पर बैठकर कृष्ण रसीली चितवन से देखने लगे और मर्द की तरह भौं चलाने लगे ॥३४॥

गूजरी को पहले ही से शक था। वह ताड़ गई। कृष्ण की चतुराई समझ-समझकर वह मन ही मन मुसकुरा रही थी। इतने में वह झपटकर दरवाजे की ओर भागी ॥३५॥

उसने कहा—हे कृष्ण ! भागकर अपनी जान बचाओ। मेरे महा-क्रोधी ससुर आ गये ॥३६॥

भागो, भागो हे कृष्ण ! अपनी जान बचाओ। मेरा प्रपंची देवर आ गया ॥३७॥

भागो, भागो हे कृष्ण ! अपनी जान बचाओ। मेरे उत्पाती जेठ आ गये ॥३८॥

भागो, भागो हे कृष्ण ! अपनी जान बचाओ। मेरे भयानक, निष्ठुर स्वभाववाले स्वामी आ गये ॥३९॥

कृष्ण ने ओढ़नी उतार कर आँगन में फेंक दिया और लहँगा जाँत के घर में। पर जल्दी में उनको टिकुली (बेंदी) उतारने का मौका न मिला। वे डँड़वार (पाख) कूदकर घर से बाहर हो गये ॥४०, ४१॥

कृष्ण को भागता हुआ देखकर गूजरी ताली बजाकर हँसने लगी और बोली—कृष्ण ! भागे कहाँ जाते हो ? आओ न ? रस लूटो ॥४२॥

बाज़ार के लोग कृष्ण के माथे पर टिकुली (बेंदी) देखकर हँसने लगे। कृष्ण बहुत खिसिया गये ॥४३॥

हिन्दी की पुरानी कविता में पर-स्त्री से प्रेम के सारे क़िस्से कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध किये गये हैं। स्त्रियों ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया है। पर पुरुष कवियों ने जहाँ कृष्ण को सदा जिताया और गोपियों को लज्जित किया है, वहाँ इस गीत की रचयित्री ने गूजरी द्वारा कृष्ण को खूब ही छकाया है, और पुरुष कवियों से अच्छा बदला लिया है।

गूजर अहीरों की एक जाति है जो राजपूताना और उसके आस-पास के प्रांतों में अधिकता से बसी हुई है। युक्तप्रांत के पूर्वी ज़िलों के बरसाती गीतों में 'गूजरी' और 'गुजरिया' शब्द बहुत आते हैं। संभवतः लोगों ने इसे 'गोपी' शब्द का पर्यायवाची समझ रक्खा है। पर गूजर गोपों से भिन्न जाति है और उनके ही नाम से 'गुजरात' प्रान्त का नाम पड़ा है।

[१७]

छोटी मोटी तुलसी गछिया लम्बी लम्बी पतिया
फरे फुले तुलसी सोहावन रे ली ॥१॥

नुहरी नुहरी हम अँगना बहरलों
देवरा निरेखो मेर मुहवाँ रे खी ॥२॥
काहे बिन भौजी हो ओंठ झुहरइले
काहे बिन नैना नीर ढारलु रे खी ॥३॥
पान बिन बबुवा हो ओंठ झुहरइले
राउर भइया बिन नैना नीर ढरिला रे खी ॥४॥
पीसहु भौजी हो जीरवा रे सतुवा
हम जइबो भइया के मनावन रे खी ॥५॥
यक बन गइले दुसर बन गइले
अरे तिसर बने भइया धुनियाँ लावेंले रे खी ॥६॥
छोड़ि देहु भइया हो मन के किरोधवा
भौजी रोअली छतिया फारेल रे खी ॥७॥
कैसे मैं छोड़ूँ बबुवा मन के किरोधवा
तोर भौजी बोलली छतिया फाटेला रे खी ॥८॥
झँझरे झरोखा चंदा बियही रे निरखले
स्वामी के मनाय देवरा आवेला रे खी ॥९॥
अइसन देवर जी के पैर धोइ के पियबो
गइल सेंदुर गोहरावले रे खी ॥१०॥

तुलसी का छोटा सा पौधा है। जिसकी पत्तियाँ लम्बी-लम्बी हैं। फूलने-फलने पर तुलसी बड़ी सुन्दर लगती है ॥१॥

मैं झुककर आँगन बुहार रही थी। देवर मेरा मुँह देखता है ॥२॥

देवर ने पूछा—हे भौजी! तुम्हारा ओंठ सूखा क्यो है? तुम्हारे नेत्रों से आँसू क्यों गिर रहे हैं? ॥३॥

भौजी ने कहा—पान बिना ओंठ सूखे हैं और हे देवर! आपके भाई बिना मेरे नेत्रों से आँसू गिर रहे हैं ॥४॥

देवर ने कहा—हे भौजी ! जीरा डालकर सत्तू पीस दो। मैं भैया को मनाने जाऊँगा ॥५॥

देवर एक बन को पार कर गया। दूसरे बन को पार कर गया। तीसरे में क्या देखता है कि भाई धूनी रमाये बैठे हैं ॥६॥

छोटे भाई ने कहा—हे भाई ! मन का क्रोध छोड़ दो। भौजी का विलाप सुनकर हम लोगों की छाती फट रही है ॥७॥

बड़े भाई ने कहा—हे बबुआ ! मैं क्रोध कैसे छोड़ूँ ? तुम्हारी भौजी की कर्कश बोली से मेरी छाती फट जाती है ॥८॥

झँझरे झरोखे से चंदा (स्त्री का नाम) देख रही है कि देवर स्वामी को मनाकर साथ ले आ रहा है ॥९॥

चंदा मन ही मन कहती है—ऐसे देवर का पैर धोकर पीने को जी चाहता है। जो मेरे गये हुये सुहाग को पुकार कर वापस लाया ॥१०॥

बहुत से ऐसे पति हैं, जिनका कर्कशा स्त्री से पाला पड़ा है और जो रोज़ही धूनी रमाने की सोचा करते हैं।

[१८]

गहिरी नदिया ये हरीजी, अगम बहे राम पनियाँ।
पियवा जे चलले मोरँग देसवा बिहरेला करेजुवा ॥ १ ॥
जो हम जनतों ये हरीजी जाइब पर रे देसवा।
कसि के बँधतों ये निरमोहिया प्रेम केरा रे डोरीया ॥ २ ॥
मुँह तोरा देखों ये हरीजी नान्हीं नान्हीं रेखिया।
आँख तोरा देखों ये हरीजी अमवाँ केरे फँकिया ॥ ३ ॥
ओंठ तोरा देखों ये हरीजी चुपला रतनारीया।
हाँथ तोरा देखों ये हरीजी लम्बी रेसमवाँ ॥ ४ ॥
घर में रोवे घरनी ये हरीजी जंगल में रोवे राम हरीना।
बन में रोवे चकवा चकइया बिछोहवा कइल राम रतिया ॥ ५ ॥

गहरी नदी है, जिसमें अथाह पानी बह रहा है। हाय ! मेरे प्राण-नाथ मोरँग देश को जा रहे हैं। वियोग के दुःख से मेरा कलेजा फटा जा रहा है ॥१॥

हे मेरे ईश्वर ! यदि मैं जानती कि तुम विदेश जाओगे, तो हे निर्मोही ! मैं तुम को प्रेम की रस्सी से कसकर बाँध देती ॥२॥

हे प्राणेश्वर ! तुम्हारा मुँह देखती हूँ, तो उस पर अभी छोटी-छोटी रेख उठ रही है। आँख देखती हूँ, तो आम की फाँकी जैसी हैं ॥३॥

ओंठ देखती हूँ तो मालूम होता है, जैसे कोई रत्न है और उससे सौन्दर्य टपक रहा है। तुम्हारा हाथ देखती हूँ, तो मालूम होता है, रेशम का लच्छा है ॥४॥

हे प्रियतम ! घर में तुम्हारी स्त्री रो रही है। बन में हरिण रो रहा है। बन में चकवा-चकई रो रहे हैं, जिन्हें रात में राम ने वियोग का दुःख दिया है ॥५॥

[१९]

सूतल रहलों मैं अपने ओसरवा
तिरिया जे बोलल कुबोल ये जदुबंसी
होइ जाहु जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥ १ ॥
मोरा पिछुअरवाँ बढ़इया हित भइया
अरे चन्दन बिरिछिया काटि देहु ये जदुबंसी ॥ २ ॥
चन्दन काटि भइया सारँगी वनावहु
अरे हम होइबों जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥ ३ ॥
गुदड़ी लगवलन भभूती रमवलन
अरे होइ गइलन जोगिया फकीर ये जदुबंसी
जदुबंसी के जियरा उदास ये जदुबंसी ॥ ४ ॥

सगरे नगरिया जोगिया घूम फिर अइलन
अरे बहिनी दुअरिया भइले ठाढ़ ये जदुबंसी ॥ ५ ॥
अँगना बहारति चेरिया लउँड़िया
अरे जोगिया के भिच्छा देइ आव ये जदुबंसी ॥ ६ ॥
चेरिया के हथवा रे गुह गोबरानी
अरे जिन्हरे भेजा तिन्ह देव ये जदुबंसी ॥ ७ ॥
तरे कइलीं सोनवाँ ऊपर तिल चाउर
अरे जोगिया के भिच्छा देइ आई ये जदुबंसी ॥ ८ ॥
रोवली बहिनी पटोरवे पोंछे कोरवा
अरे ई तो हवैं भइया हमार ये जदुबंसी ॥ ९ ॥
हम तुहूँ भइया हो एके कोखे जमलीं
अरे पियलीं मयरिया जी के दूध ये जदुबंसी
अरे काहे भइल जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥१०॥
तोहरे लिखल बहिनी अपनाहीं रजवा
अरे हमरो लिखल जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥११॥
छोड़ि देहु भइया हो साराँगी गुदरिया
अरे हमरे दुअरिया धुलियाँ लाव ये जदुबंसी ॥१२॥
तोहरो कलेउआ बहिनी तोहें घर बाढ़ो
अरे हम तो हैं जोगिया फकीर ये जदुबंसी ॥१३॥

मैं अपने ओसारे में सो रहा था। कर्कशा स्त्री ने कटु वचन कहा कि जोगी हो जाओ ॥१॥

मेरे पिछवाड़े बसे हुये बढ़ई भाई ! चंदन का वृक्ष काट दो ॥२॥

मुझे चंदन की सारंगी बना दो। मैं जोगी होऊँगा ॥३॥

गुदड़ी लेकर, राख लपेटकर, वह जोगी हो गया। पर उसका चित्त बहुत उदास था ॥४॥

जोगी सारे शहर में घूम फिरकर अपनी बहन के द्वार पर खड़ा हुआ ॥५॥

नौकरानी अँगना बुहार रही थी। बहन ने उससे कहा—जोगी को भीख दे आओ ॥६॥

नौकरानी भीख देने आई। जोगी ने कहा—तुम्हारा हाथ गंदा हो रहा है। जिसने भेजा है, वही आकर दे ॥७॥

बहन नीचे सोना और ऊपर तिल और चावल रखकर भीख देने निकली ॥८॥

बहन ने देखा—अरे! यह तो मेरे भाई हैं। वह रेशमी साड़ी के आंचल से आँख का कोना पोछकर रोने लगी ॥९॥

उसने कहा—हे भाई! हम तुम एक ही कोख से पैदा हुये हैं। हम दोनों ने एक ही माँ का दूध पिया है। तुम भैया! जोगी क्यों हो गये? ॥१०॥

जोगी ने कहा—हे बहन! तुमको राज भोग करना लिखा है। मुझे फ़कीरी लिखी है ॥११॥

बहन ने कहा—हे भाई! तुम सारंगी और गुदड़ी फेंक दो और मेरे द्वार पर धूनी रमाकर बैठ जाओ ॥१२॥

जोगी ने कहा—बहन! तुम्हारा भोजन तुम्हारे घर में बढ़ता रहे। मैं तो अब फ़कीर हूँ ॥१३॥

जोगी किँगरी (सारंगी) बजाकर या पाँच पैर की गौ आदि दिखलाकर भीख माँगनेवालों की एक जाति है। इसमें हिन्दू मुसलमान दोनों होते हैं। दोनों गेरुआ कपड़ा पहनते हैं, और श्रवण, शिव-पार्वती आदि की कथायें गाया करते हैं।

कर्कशा स्त्रियाँ बड़ी दुःखदायिनी होती हैं। घाघ ने कहा—

नसकट खटिया बतकट जोय।
जो पहिलौंठी बिटिया होय॥
पातर कृषी बौरहा भाय।
घाघ कहैं दुख कहाँ समाय॥

छोटी खाट, जिसपर सोनेवाले का पैर खाट से बाहर निकला रहे और एँड़ी के ऊपर वाली नस दबती हो, बात काटनेवाली स्त्री, पहले ही पहल कन्योत्पत्ति, हलकी खेती, पागल भाई, ये सब इतने दुःखद हैं, कि इनका दुःख कहाँ समा सकता है ?

मालूम होता है, गीत के पुरुष को किसी 'बतकट जोय' से पाला पड़ा था, जो उसके गृहत्याग का कारण हुआ।

[२०]

कवनी उमिरिया सासू निबिया लगायेन,
कवनी उमिरिया गये बिदेसवा हो राम॥१॥
खेलत कूदत बहुवरि निबिया लगाये,
रेखिया भिनत गै बिदेसवा हो राम॥२॥
फरि गै निबिया लहसि गै डरिया,
तबहू न आये तोर बिदेसिया हो राम॥३॥
बरहे बरिसवा पै मोर हरि लौटे,
बर तर डारा है गोनिया हो राम॥४॥
मैया लइ के धाई हैं चनन पिढ़ैया,
बहिनी लइ के धाईं जूड़ पनिया हो राम॥५॥
धइ राखो मइया रे अपनी पिढ़इया,
नाहीं देखेंवँ पतरी तिरियवा हो राम॥६॥
तोहरी तिरियवा बेटा गरभ गुमानी,
जाइ सोवहीं धौरहरा हो राम॥७॥

गोड़वा धोवावत वहिनी लागे चुगुलिया,
भैया! भौजी से लेहु किरियवा हो राम ॥ ८ ॥
मोरे पिछ्वरवाँ बढ़इया भइया मितवा रे,
धर्म चइलवा चीरि लावो हो राम ॥ ९ ॥
मोरे पिछ्वरवाँ लोहार भइया मितवा रे,
धर्मी कढ़इया गढ़ि लावो हो राम ॥१०॥
मोरे पिछ्वरवाँ तेलिया भइया मितवा रे,
धरम कै तेल पेर लावो हो राम ॥११॥
मोरे पिछ्वरवाँ कोंहरवा भइया मितवा रे,
धरम गगरिया गढ़ि लावो हो राम ॥१२॥
मोरे पिछ्वरवाँ नउवा भइया मितवा रे,
नैहरे खबरिया जनावो हो राम ॥१३॥
जाइ कह्यो मोरे बाबा के अगवाँ रे,
तोरी धिया चढ़ीं हैं किरियवा हो राम ॥१४॥
आज एकादसिया विहान दुवादसिया,
तेरसि के लेइहैं किरियवा हो राम ॥१५॥
आगे आगे आवै घी कै गगरी हो,
पीछे से आवैं वीरन भइया हो राम ॥१६॥
जीतल धेरिया नैहर चली अइहैं,
हरले क भरवा झोंकउबै हो राम ॥१७॥
वरि गई अगिया औ भभकी करहिया रे,
वहिनी खड़ी किरिया देइँ हो राम ॥१८॥
हे मोर सुरूज हमार पति राखेउ,
जौ हम होईं सतवन्ती हो राम ॥१९॥

जब बहिनी चली हैं गंगा किरियवा,
तब गगरी गइली झुराइ हो राम ॥२०॥
जब बहिनी चली हैं सूरुज किरियवा हो,
उवल सुरुज गये छिपाइ हो राम ॥२१॥
जब बहिनी गई हैं अगिनि किरियवा हो,
खौलल तेल जूड़ पनिया हो राम ॥२२॥
एक दाईं डारै दुसर दाईं डारै,
तिसरे उतरि गई परवाँ हो राम ॥२३॥
हथवा रुमलिया लैकै हँसै वीरन भइया,
बहिनी के डोलिया सजाओ हो राम ॥२४॥
मुहवाँ पटुकवा दैकै रोवैं मोर राजा,
सतवंती धन नइहर जैहैं हो राम ॥२५॥
भल छल किहिउ मोरी बहिनी हो राम,
डासल सेजिया उड़ासेउ हो राम ॥२६॥
खाइ क देबै बेटा दुधवा रे भतवा,
कइ देबै दूसर बिअहवा हो राम ॥२७॥
अगिया लगाओ मैया दुसरे बिअहवा,
वजर पड़ै ससुररिया हो राम ॥२८॥
बारह बरिस तक मोरि बाट जोहिन,
छुटि गई मोरि सतवंती हो राम ॥२९॥
चाँद सुरिज अस मोरी रानी छुटि गै,
के घर बसल उजाड़ा हो राम ॥३०॥

वहू कहती है—हे सासजी! तुम्हारे परदेशी पुत्र ने किस उम्र में यह नीम लगाया था? और किस उम्र मे वे परदेश गये थे ॥१॥

सास ने कहा—खेलने-कूदने की उम्र में उन्होंने नीम लगाया था और रेख भिनते वे परदेश गये थे ॥२॥

बहू कहती है—नीम फलने भी लगी। डाल लहलहा उठी। हाय ! फिर भी तुम्हारा परदेशी नहीं आया ॥३॥

बारह वर्ष पर मेरे प्राणेश्वर लौटे और बरगद के नीचे उतरे ॥४॥

माँ चंदन का पीढ़ा और बहन ठंडा पानी लेकर दौड़ी ॥५॥

बेटे ने कहा—माँ अपना ठंडा पानी अलग रक्खो। मैं अपनी दुबली-पतली स्त्री को नहीं देखता हूँ ॥६॥

माँ ने कहा—बेटा ! तुम्हारी स्त्री बड़ी अभिमानिनी है। वह धौरहर पर सो रही है ॥७॥

पैर धुलाते वक्त बहन ने चुगली खाई—भैया ! भौजी से शपथ लेना कि उसकी चाल-चलन ठीक थी ? या नहीं ? ॥८॥

पति ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये हे बढ़ई भाई ! हे मित्र ! धर्म का चैला चीरकर लाओ ॥९॥

हे लोहार भाई ! धर्म की कढाई गढ़कर लाओ ॥१०॥

हे तेली भाई ! धर्म का तेल पेरकर लाओ ॥११॥

हे कुम्हार भाई ! धर्म की गगरी (मिट्टी का घड़ा) बनाकर लाओ ॥१२॥

बहू ने कहा—मेरे पिछवाड़े बसे हुये नाई भाई ! मेरे नैहर को खबर दो ॥१३॥

मेरे बाबा के सामने जाकर कहना कि तुम्हारी कन्या सत पर चढ़ी है ॥१४॥

आज एकादशी है। कल द्वादशी है। परसों तेरस को सत की जाँच होगी ॥१५॥

आगे आगे घी का घड़ा आ रहा है। पीछे पीछे मेरा भाई आ रहा है ॥१६॥

बाबा ने कहलाया है—यदि कन्या सतवंती निकलेगी, तो नैहर आ जायगी। यदि चरित्रहीना प्रमाणित होगी, तो जीवन भर उसे भार झोंकना पड़ेगा ॥१७॥

आग जल गई। तेल खौलने लगा। बहन पास खड़ी होकर शपथ देने लगी ॥१८॥

उसने कहा—यदि मैं सतवन्ती हूँ, तो हे सूर्य देवता! तुम मेरी लाज रखना ॥१९॥

यह कहकर जब बहू गंगा की शपथ करने लगी, तब उसके सत के प्रताप से गगरी का गंगाजल सूख गया ॥२०॥

जब बहू सूर्य की शपथ लेने लगी, तब सूर्य छिप गया ॥२१॥

जब बहू अग्नि की शपथ खाने लगी, तब खौलता हुआ तेल ठंडा पानी हो गया ॥२२॥

बहू ने तेल में एक बार हाथ डाला। दूसरी बार डाला। तीसरी बार में वह पार हो गई; अर्थात् शपथ पूरा हो गया ॥२३॥

हाथ में रूमाल लेकर भाई हँस रहा है और कह रहा है—बहन के लिये जल्दी पालकी सजाओ ॥२४॥

बहू कहती है—मुँह पर डुपट्टा डालकर मेरे राजा रो रहे हैं—हाय! मेरी सती स्त्री अब नैहर चली जायगी ॥२५॥

मेरे पति अपनी बहन से कह रहे हैं—हे बहन! तुमने मुझे ख़ूब धोखा दिया। तुम ने बिछी हुई सेज को उड़ास (उठा) दिया ॥२६॥

माँ ने कहा—बेटा! आओ, दूध भात खा लो। चिन्ता मत करो। मैं दूसरा विवाह कर दूँगी ॥२७॥

बेटे ने कहा—माँ! दूसरे विवाह में आग लगे। नई ससुराल पर बज्र पड़े ॥२८॥

हाय! बारह वर्ष तक जिसने मेरी राह देखी, वह सतवन्ती मुझ से छूट गई ॥२९॥

हाय! चाँद ऐसी सुन्दरी और सूर्य ऐसी निष्कलंकिनी मेरी रानी मुझ से छूट गई। हाय! किसने मेरे बसे हुये घर को उजाड़ दिया? ॥३०॥

[२१]

झिलमिल बहेला बयार पवन भल डोलि रही।
डोले नवरँगिया के डार कोइलिया कुहुक रही ॥ १ ॥
बाबा गइले परदेसवा बड़ा सुखु देइ के गये।
अँगना चननवा के गाछ हिंडोलवा लाके गये ॥ २ ॥
सइयाँ गये परदेसवा बड़ा दुख देइ के गये।
छतिया बजर केवरिया जँजिरिया लाके गये ॥ ३ ॥
बाट तोरा जोहेला बटोहिया काहे धन नीर ढरी।
किया तोरा नइहर दूर किया घर सासु लड़ी ॥ ४ ॥
नाहीं मोरा नइहर दूर नाहीं घर सासु लड़ी।
हमरा बलमुआ परदेस वोही हम सोच खड़ी ॥ ५ ॥
गलवा में देबों गलहार मोतियन माँग भरी।
छोड़ परदेसिया के आस हमारे सँग साथ चली ॥ ६ ॥
अगिया लगै गलहार बजर परै मोति लड़ी।
तोहरो ले पिया मोरा सुन्दर गुलाब क फूल छड़ी ॥ ७ ॥
कटबों चननवाँ के गाछ पलँगिया बिनाइब हो।
ताही पर पिया के सोवाइब बेनिया डोलाइब हो ॥ ८ ॥
धन सतवंती नारि धरम कै जोति खड़ी।
भेस बदलि पिय ठाढ़ देखि धन मुरछि परी ॥ ९ ॥

एक वियोगिनी कहती है—

मन्द-मन्द हवा बह रही है और बड़ी सुहावनी लगती है। नारङ्गी की डाल हिल रही है। कोयल कूक रही है ॥१॥

बाबा परदेश गये। बड़ा सुख दे गये। आँगन में चन्दन के वृक्ष पर हिँडोला डाल गये ॥२॥

स्वामी परदेश गये। बड़ा दुःख दे गये। छाती पर वज्र ऐसा किवाड़ा लगाकर साँकल चढ़ा गये ॥३॥

हे स्त्री! यह पथिक तुम्हारी राह देख रहा है। तुम्हारी आँखों से आँसू क्यों गिर रहे हैं? क्या तुम्हारा नैहर दूर है? या घर में सास ने कुछ कहा है? ॥४॥

स्त्री ने कहा—न मेरा नैहर दूर है, और न सास ने ही कुछ कहा है। मेरे प्रियतम परदेश गये हैं। मैं उन्हीं की सोच में खड़ी हूँ ॥५॥

पथिक ने कहा—हे पद्मिनी! मैं तुम्हारे गले के लिये हार दूँगा। तुम्हारी माँग मैं मोतियों से भर दूँगा। अपने परदेशी पति की आशा छोड़कर तुम मेरे साथ चली चलो ॥६॥

स्त्री ने कहा—तुम्हारे हार में आग लगे और मोती की लड़ी पर वज्र गिरे। मेरे प्राणनाथ तुम से कहीं अधिक सुन्दर हैं, जैसे गुलाब की फूल-छड़ी ॥७॥

चन्दन के वृक्ष को कटवाकर मैं पलँग बिनवाऊँगी। उस पर प्राणनाथ को सुलाकर मैं पंखी हाँकूँगी ॥८॥

यह सुनते ही पथिक ने वेश बदल डाला। वह तो उसका पति ही था। उसने कहा—हे सतवंती स्त्री! तुम को धन्य है। तुम धर्म की ज्योति की तरह खड़ी हो। प्रियतम को यकायक देखकर स्त्री हर्ष के मारे मूर्च्छित हो गई ॥९॥

[२२]

आवत देखे मैं दुइ हो सिपहिया,
एक साँवर एक गोर हो राम।
गोर हयेनि मोरि माई क पुतवा,
साँवर ननद जी के भैया हो राम ॥ १ ॥
मचियहिं बैठिनि मोरी सासु बढ़इतिनि,
काउ बनावउँ जेवनार हो राम।
कौनी कोठिलवहिं बहुअरि सरली कोदइया,
मेंड़वा मसउढ़े क सगवा हो राम ॥ २ ॥
अगिया लगावों सासु सरली कोदइया,
बजर परै मसौढ़े के सगवा हो राम।
खोलि देबइ सासु झिनवाँ क चउरा,
मुँगिया दरि दरि पहितियउ हो राम ॥ ३ ॥
जेंवन बैठे हैं सार बहनोइया,
सरवा के ढुरै अँसुइया हो राम।
की तू समझेउ भैया माता कै कलेउवा,
की हो बहुवा जीव के सेजिया हो राम ॥ ४ ॥
नाहीं हम समझेउँ मैया के कलेउवा,
नाहीं बहुवा जीव कै सेजिया हो राम।
चाँद सुरुज अस बहिनी सँकलपेउँ
जरि जरि भइलि कोइलिया हो राम ॥ ५ ॥
देहु न बहिनी हमका ढाल तरवरिया,
सौजा अहेरवा हम जावै हो राम।
एक बन गये दुसरे बन गये,
तिसरे में मारेन बहनोइया हो राम ॥ ६ ॥

केथुवा डुवलि भैया पावँ कै पनहियाँ,
केथुवा डुवलि तरवरिया हो राम।
सितिया डुवलि वहिनी पाँव कै पनहियाँ रे ;
रकत डुवलि तरवरिया हो राम ॥ ७ ॥
हम तो मारे वहिनी सग वहनोइया,
तुहँ से कहेउँ साँची वतिया हो राम।
कहँवहिं मारे भैया सग वहनोइया,
कवने विरौआ ओठँघायहु हो राम ॥ ८ ॥
उँचवहिं मारे वहिनी नीचवहिं ढकेले,
चन्दन विरौआ ओठँघायहुँ हो राम।
के न मोर छैहैं भैया राँड़ कै मड़इया,
के न वितैहैं दिन रतिया हो राम ॥ ९ ॥
हम तोरि छौवै वहिनी राँड़ कै मड़ैया,
भौजी वितावैं दिन रतिया हो राम।
दिन भर भैया भौजी चरखा कतैहैं,
साँझि वेर देइहैं वूँद मँड़वा हो राम ॥१०॥

मैं दो सिपाहियों को आते देखती हूँ। एक साँवला है, दूसरा गोरा। गोरा तो मेरी माँ का पुत्र है और साँवला ननदजी का भाई ॥१॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी हैं। बहू ने पूछा—हे सास! क्या जेवनार बनाऊँ? सास ने कहा—देखो, किसी कोठिले में सड़ा हुआ कोदों का चावल होगा और मेंड़ पर से मसूड़े का साग खोंट लाओ ॥२॥

बहू ने कहा—सड़े हुये कोदों के चावल में आग लगाती हूँ, और मसूड़े के साग पर वज्र गिरे। मैं वारीक चावल खोलकर दूँगी और मूँग दलकर उसकी दाल बनाऊँगी ॥३॥

साले और बहनोई भोजन करने बैठे। साले की आँखों से आँसू गिरने लगे।

बहनोई ने पूछा—भाई ! रोते क्यों हो ? क्या तुम्हे माँ के हाथ का कलेवा याद आया है ? या बहूजी की सेज याद आई है ? ॥४॥

साले ने कहा—हे भाई ! न तो मुझे माँ का कलेवा याद आ रहा है, और न बहू की सेज। मैंने तुम को चाँद और सूर्य ऐसी बहन दी थी। तुमने उसे इतना कष्ट दिया कि वह दुःख में जल-जलकर कोयल (या कोयला) हो गई ॥५॥

भोजन के उपरांत भाई ने बहन से कहा—बहन ! मेरी ढाल-तलवार लाओ। मैं शिकार खेलने जाऊँगा। साले बहनोई शिकार खेलने निकले। एक बन के बाद वे दूसरे बन में गये। तीसरे बन में साले ने बहनोई को मार डाला ॥६॥

घर आने पर बहन ने भाई से पूछा—हे भाई ! किस चीज़ से तुम्हारे पाँव का जूता भीगा है ? और किस चीज़ से तलवार भीगी है ? भाई ने कहा—हे बहन ! ओस से मेरा जूता और रक्त से मेरी तलवार भीगी है ॥७॥

बहन ! मैं तुम से क्यों छिपाऊँ ? मैंने अपने सगे बहनोई को मार डाला है। बहन ने पूछा—हे भाई ! तुमने अपने सगे बहनोई को कहाँ मारा ? और कहाँ किस चीज़ के सहारे खड़ा कर रक्खा है ? ॥८॥

भाई ने कहा—ऊँचे पर मारकर नीचे ढकेल दिया है और फिर लाश को चंदन वृक्ष के सहारे खड़ी कर दी है। बहन ने कहा—हे भाई मुझ अभागिनी राँड़ की झोंपड़ी अब कौन छायेगा ? किसके साथ मेरे दिन और रात बीतेंगे ? ॥९॥

भाई ने कहा—हे बहन ! मैं तुम्हारी झोंपड़ी छा दिया करूँगा। और तुम्हारी भौजी तुम्हारा समय बितायेगी। बहन ने कहा—हे

भाई! भौजी दिन भर मुझ से चरखा कतायेगी और शाम को एक बूँद चावल का माँड़ खाने को दे देगी ॥१०॥

बहन के दुःख को देखकर बहनोई को मार डालने जैसी क्रूरता का समर्थन नहीं किया जा सकता। यद्यपि ऐसी घटनायें आल्हा-ऊदल के ज़माने के इतिहास में और राजपूताने के इतिहास में हो चुकी हैं; पर कहीं भी बहनोई की मृत्यु के बाद, बहन को जो कष्ट भोगने पड़े हैं, उनका इलाज भाई नहीं कर सका है।

[२३]

बेइलि एक हरि लायेनि दुधवा सिँचायेनि।
आप हरि भयें बनजारा बेइलि कुम्हिलानि ॥ १ ॥
मिलहु रे सखिया सहेलरी मिलिजुलि चलहु न।
सखिया हरिजी की लावलि बेइलिया सींचि जगावहु ॥ २ ॥
एक घरिला सींचीं नौरँगिया दुसरे घरिला बेइलिया।
आइ गई हरिजी की सुधिया नैन आँसू ढूरैं ॥ ३ ॥
सरगा उड़इ एक चिल्हिया सरव गुन आगरि।
चिल्हिया जहँ पठवौं तहँ जातेउ सनेहिया लइ अवतेउ ॥ ४ ॥
उड़लि उड़लि चिल्हि गई बरधिया पर बोले।
सोअत बाटअ के जागत बरधिया के नायक।
तोरि धनि चिठिया पठायेनि उठहु किन बाँचहु ॥ ५ ॥
बायें हाँथे चिठिया ले लिहलेनि दहिने हाथे बाँचैं।
ढुरै नयनवन आँसू पटुकवन पोंछैं ॥ ६ ॥
लादे बाटी इरची मिरिचिया और झीना काण्ड़।
चीलिह टूटै बन की बरधी कि टँगिया नउज घर आवइँ ॥ ७ ॥

मेरे स्वामी एक लता लगाये थे। उसे उन्होंने दूध से सिँचाया था। वे व्यापार करने चले गये। लता सूख गई ॥१॥

हे सखी सहेलियो ! आओ, मिलजुल कर चलो। मेरे प्राणनाथ की लगाई हुई लता सूख रही है, उसे सींचकर फिर जगावें ॥२॥

स्त्री ने एक घड़ा पानी नारंगी में डाला। दूसरा घड़ा लता में डाला। इतने में स्वामी की सुधि आ गई और उसके नेत्रों से आँसू बह चले ॥३॥

आकाश में एक चील्ह उड़ रही थी, जो सर्व-गुण-सम्पन्न थी। स्त्री ने उससे कहा—हे चील्ह ! मैं जहाँ भेजूँ, वहाँ तुम जाकर प्रेम का संदेशा ले आती ॥४॥

चील्ह उड़ती-उड़ती वहाँ गई, जहाँ स्त्री का पति था और उसके बैल के ऊपर बैठकर बोली—हे बैल के स्वामी ! सोते हो ? या जागते ? ॥५॥

तुम्हारी स्त्री ने पत्र भेजा है। उठकर बाँचो न ? पुरुष ने बायें हाथ से चिट्ठी ली और दाहिने हाथ से थामकर पढ़ा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे और उसे वह अपने दुपट्टे से पोछने लगा ॥६॥

उसने सन्देशा कहलाया—हे चील्ह ! जाकर कह देना कि मैं मिर्चे और महीन कपड़े लादे हूँ। इनके बिक जाने ही पर आऊँगा। यह सन्देशा सुनकर स्त्री ने कहा—हे चील्ह ! राम करे, उनके बैल की टाँग टूट जाय। वे घर आवें, चाहे न आवें ॥७॥

'नउज' का ठीक अर्थ देनेवाला शब्द हिन्दी में दूसरा नहीं है।

[२४]

ननद भावज मिलि पनिया को निकरीं,
अँचरा उड़ि उड़ि जाय हो राम ॥ १ ॥
मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन उड़ै हो राम ॥ २ ॥
बाउ वहै पुरवइया हो सजनी,
अँचरा उड़ि उड़ि जाय हो राम ॥ ३ ॥

मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन धूमिल हो राम ॥ ४ ॥
बटुली माँजन गयूँ बाबा की महलिया,
बटुली कलिखवा अँचरा करिया हो राम ॥ ५ ॥
मैं तोसे पूँछौं मैना ननदिया,
मुँहवाँ कवन गुन पियरा हो राम ॥ ६ ॥
हरदी पिसन गयूँ भैया की महलिया,
वही के लगे से मुँह पियरा हो राम ॥ ७ ॥
सभवहिं बैठे हैं ससुर हमारे,
ननदी गवन दै डारौ हो राम ॥ ८ ॥
ऐसा कह्यौ बहुआ मैके पहुँचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥ ९ ॥
मचियहिं बैठीं हैं सासु बढ़इतिन,
मैना गवन दै डारो हो राम ॥१०॥
ऐसा कह्यौ बहुआ खाल खिंचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥११॥
सारि पंसा खेलत जेठ हमारे,
मैना गवन दै डारौ हो राम ॥१२॥
ऐसा कह्यौ भैहो जीभ खिंचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥१३॥
गेंदवा खेलत हैं देवरा हमारे,
मैना गवन दै डारौ हो राम ॥१४॥
ऐसा कहौ भौजी नैहर पहुँचैहौं,
मोरी मैना लरिका नदान हो राम ॥१५॥

भोजना जेंवत के सैयाँ हमारे,
मैना गवन दै डारो हो राम ॥१६॥
मोरे पिछवरवाँ पंडित भैया मितवा,
मैना गवन सोधि देहु हो राम ॥१७॥
आजु एकादसिया बिहान दुआदसिया,
तेरसि को बनहि गवनवा हो राम ॥१८॥
जब रे बरतिया आई दुअरवाँ,
मैना की कमर पिराय हो राम ॥१९॥
जब रे बरतिया आई अँगनवाँ,
मैना के भये नन्दलाल हो राम ॥२०॥
मुँहवाँ पटुक दै के हँसहिं बजनियाँ,
ब्याह बजावैं कि बधैया हो राम ॥२१॥
मुँहवाँ पटुक दैके हँसहिं कहरवा,
तिन मूँड़ कैसे लैके जावै हो राम ॥२२॥
मुँहवाँ पटुक दै के रोवैं मैना के स्वामी,
मैया आगे कवन जवाब हो राम ॥२३॥
मुँहवाँ पटुक दै के रोवैं मैना के बाबा,
मोरे मुँह लागी करिखिया हो राम ॥२४॥
मुँहवाँ पटुक दैके रोवैं मैना के भैया,
द्वै कुल बोन्यो मैना बहिनी हो राम ॥२५॥
मुँह अँचरा दैके रोवैं मैना की भौजी,
हमरी कहनिया नाहीं मान्यो हो राम ॥२६॥
एक गाँव नाँघे दुसर गाँव नाँघे,
तिसरे में परी ससुरारि हो राम ॥२७॥

आरति लैके निकरीं मैना की सासू,
केहि कर जाया होरिलवा हो राम ॥२८॥
दिन भरि बीतैं मैया दर दरबरवाँ,
राति रह्यों ससुरारि हो राम ॥२९॥

ननद और भौजाई पानी के लिये घर से निकलीं। ननद का आँचल उड़-उड़ जाता था ॥१॥

हे मैना ननद ! मैं तुम से पूछती हूँ कि तुम्हारा आँचल किस कारण से उड़ा करता है ? ॥२॥

मैना ने कहा—पूर्वा हवा बह रही है, उसी से आँचल उड़ जाया करता है ॥३॥

हे मैना ननद ! मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हारा आँचल मैला क्यों है ? ॥४॥

मैना ने कहा—मैं बाबा के आँगन में बटलोई माँजने गई थी, उसकी कालिख लग गई। इससे आँचल धूमिल हो गया ॥५॥

हे मैना ! मैं तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हारा मुँह पीला क्यों है ? ॥६॥

मैना ने कहा—भैया के महल में मैं हलदी पीसने गई थी। मुँह में हलदी लग गई है। इससे वह पीला हो गया है ॥७॥

बहू ने घर आकर सभा में बैठे हुये अपने ससुर से कहा—मेरी ननद का गौना दे डालो ॥८॥

ससुर ने झिड़ककर कहा—बहू ! फिर ऐसा कहोगी तो तुमको नैहर भेज दूँगा। मेरी मैना तो अभी नादान बच्ची है ॥९॥

सास मचिये पर बैठी थीं। उनसे बहू ने कहा—मैना का गौना दे डालो ॥१०॥

सास ने बुड़ककर कहा—बहू ! फिर ऐसा कहोगी तो खाल खिंचा लूँगी। मेरी मैना तो अभी अबोध बालिका है ॥११॥

बैठक में जेठ पाँसा खेल रहे थे। बहू ने उनसे कहा—मैना का गौना दे डालो ॥१२॥

जेठ ने डपटकर कहा—बहू! फिर ऐसा कहोगी तो जीभ पकड़कर खिँचा लूँगा। मैना तो अभी अनजान बच्ची है ॥१३॥

देवर गेंद खेल रहा था। बहू ने उससे कहा—हे देवर! मैना का गौना दे डालो ॥१४॥

देवर ने कहा—हे भौजी! ऐसा कहोगी तो तुमको नैहर भेज दूँगा। मेरी बहन मैना तो अभी बिल्कुल बच्ची है ॥१५॥

स्वामी को जिमाते समय स्त्री ने कहा—मैना का गौना दे डालो। स्वामी ने स्वीकार कर लिया ॥१६॥

उन्होंने अपने पिछवाड़े बसे हुये पंडित से कहा—हे मित्र! मैना के गौने की साइत तो विचार दो ॥१७॥

पंडित ने का—आज एकादशी है, कल द्वादशी है, तेरस को गौना बनता है ॥१८॥

जब मैना के गौने की बारात द्वार पर आई, तब मैना की कमर दुखने लगी ॥१९॥

बारात जब आँगन में आई, तब मैना के पुत्र हुआ ॥२०॥

बाजा बजानेवाले मुँह पर दुपट्टा रखकर हँस रहे हैं कि ब्याह के बाजे बजायें? या पुत्र-जन्म का बधावा बजायें? ॥२१॥

कहार मुँह पर दुपट्टा रखकर हँस रहे हैं कि हे राम! हम दो के बजाय तीन प्राणियों को कैसे ले जायँगे? ॥२२॥

मैना का स्वामी मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहा है—हाय! मैं माँ के आगे क्या जवाब दूँगा? ॥२३॥

मैना के बाबा मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहे हैं—हाय! मेरे मुँह में कालिख लगी ॥२४॥

मैना का भाई मुँह पर दुपट्टा रखकर रो रहा है—हाय! मैना ने

दोनों कुलों की इज़्ज़त डुबो दी ॥२५॥

मुँह पर आँचल रखकर मैना की भौजी रो रही है—हाय ! मेरा कहना पहले किसी ने नहीं माना ॥२६॥

एक गाँव नाँघने पर दूसरा गाँव मिला। उसे नाँघने पर तीसरे गाँव में ससुराल मिली ॥२७॥

मैना की सास आरती लेकर निकली। पर बालक को देखकर अक-चका गई—हैं ! यह बालक किसका है ? ॥२८॥

बेटे ने बहू की लाज रख ली। उसने कहा—माँ ! दिन भर तो मैं राज-दरबार में रहता था और रात को ससुराल में ॥२९॥

संभव है, मैना के पति ने सच्ची ही बात कही हो। पर यदि विवाह के साथ ही मैना का गौना भी दे दिया गया होता तो यह परिस्थिति पैदा ही न होती। पुरुष ने अपनी माँ के सामने सफ़ाई दी; पर बाजा बजानेवालों और कहारों का उपहास वह नहीं रोक सका। और ये लोग ऐसी बातों को दूर-दूर तक फैलाने मे बड़ा रस अनुभव करते हैं। अतएव विवाह के नियम-सम्बंधी त्रुटि से दो कुलों की बदनामी सहज में हो गई।

इस गीत में एक बात ध्यान देने की और है। बहू ने घर के सब बड़ों से अनुरोध किया कि मैना का गौना दे डालो। पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। अंत में भोजन कराते समय उसने स्वामी से कहा। तब स्वामी मान गया। स्त्रियाँ बड़ी ही समय-चतुर होती हैं। यह प्रायः देखा जाता है कि जब स्त्रियों को गहने, कपड़े या किसी ख़ास चीज के लिये कुछ कहना होता है अथवा किसी की शिकायत या सिफारिश करनी होती है, तब वे पति से कहने के लिये भोजन ही का समय चुनती है। क्योंकि परम्परा से प्राप्त किये हुये अनुभवों से वे जानती हैं कि भोजन करते समय या भोजन के उपरान्त ही मनुष्य अन्य समय से अधिक संतुष्ट और उदार हो जाता है। बहुत से पुरुष भी इस रहस्य को

जानते हैं। और उनको जब किसी से कुछ सहानुभूति प्राप्त करनी होती है, तब उससे वे भोजन के उपरांत ही मिलने का समय पसंद करते हैं। और कई अंशों में वे सफल हो भी जाते हैं।

[२५]

सबकी नगरिया गोविन्दा बँसिया बजायव,
हमरी नगरिया काहे न आयव हो राम ॥ १ ॥
कैसे क आवौं सँवली तोहरी नगरिया,
कुकुरा भूकैं पहरू जागै हो राम ॥ २ ॥
कुकुरा का देइ गोविन्दा दुधवा रे भतवा,
पहरू का मदिरा मतैबै हो राम ॥ ३ ॥
चलहु सँवली तू हमरे सँगहिया,
दूनौ जने करबै बिहरवा हो राम ॥ ४ ॥
कैसे क चलौं गोविन्दा तुहरे सँगहिया,
बारा होरिलवा कोरवाँ रोवै हो राम ॥ ५ ॥
अबहीं तो सँवली नई हो नोसर,
कहवाँ तू पायव होरिलवा हो राम ॥ ६ ॥
हमरा देवरवा गोविन्दा लड़िका नदनवा,
उहई होरिलवा कोरवाँ रोवै हो राम ॥ ७ ॥
कैसे क चलौं गोविन्दा तुहरे सँगहिया,
अँचरा मोरे राजा के तरवाँ हो राम ॥ ८ ॥
लेहु न सँवली छुरिया कटरिया,
काटि अँचरा चली आवहु हो राम ॥ ९ ॥
हमरे घरौं साँवल महला दुमहला—सोरह जिय गैयाँ,
तुहरे घर एक कोठरिया हो राम ॥१०॥

लाये हैं गोविन्दा डोलिया कहरवा,
चढ़ि के जे सँवली चलली हो राम ॥११॥
एक कोस गइली दुसर कोस गइली,
तीसरे मँ गोविन्दा कै झोपड़िया हो राम ॥१२॥
एक गोड़ ओसरवाँ, दुसरवा अँगनवाँ,
रोवै सँवली रानियवा हो राम ॥१३॥
तब तो कहेउ गोविन्दा महला दुमहला,
हमरा देखत है झोपड़िया हो राम ॥१४॥
तब तो कहेउ सोरह गैया हमरा हैं,
अब देखत है सुअरी कै गोंठिया हो राम ॥१५॥
भल छल किहेउ गोविन्दा हो राम,
नहकै छोड़ेन अपना राजा हो राम ॥१६॥
छोड़ो साँवल चुँदरी पहिरो धन गुदरी,
मडुवा तुँ खुँदिया मकुनिया हो राम ॥१७॥
खुँदिया क पोवउ मोटी मोटी रोटिया,
दूनो जने खाइ के सोई हो राम ॥१८॥
मुड़वा ठठावै साँवल रानी,
कैसे कै कटिहौं अपना दिनवा हो राम ॥१९॥
कैसे मैं जियबौं अपने राजा बिनु,
मोरा बारा देवरवा रोवत होइहै हो राम।
ईहे पसिया ठगि लावा हो राम ॥२०॥

हे गोविन्द ! सब के गाँव में तो तुम वंशी बजाते हो। मेरे गाँव में कभी क्यों नहीं आते ? ॥१॥

गोविन्द ने कहा—हे श्यामासुन्दरि ! कुत्ते भूँकते हैं। पहरेवाले जागते रहते हैं। मैं तुम्हारे गाँव में कैसे आऊँ ? ॥२॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द ! मैं कुत्ते को दूध-भात देकर चुप कर दूँगी और पहरेवालों को शराब पिलाकर मतवाला कर दूँगी ॥३॥

गोविन्द ने कहा—हे सुन्दरी ! तुम मेरे साथ चली चलो न ? दोनों जन मौज करेंगे ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द ! तुम्हारे साथ कैसे चलूँ ? छोटा बालक गोद में रो रहा है ॥५॥

गोविन्द ने कहा—वाह ! अभी तो तुम नई नवेली हो। तुम्हें बालक कहाँ से मिल गया ? ॥६॥

स्त्री ने कहा—हे गोविन्द ! मेरा देवर अभी बालक है। वही रोता है। और हे गोविन्द ! एक कारण यह भी तो है कि मेरा आँचल मेरे राजा के नीचे दबा हुआ है, मैं तुम्हारे साथ कैसे चल सकती हूँ ? ॥७,८॥

गोविन्द ने कहा—हे सुन्दरी ! मुझ से छुरी कटारी ले लो और आँचल काटकर चली आओ ॥९॥

हे सुन्दरी ! मेरा महल दो मंजिला है। मेरे यहाँ सोलह गायें हैं। तुम्हारे तो एक ज़रा सी कोठरी है ॥१०॥

गोविन्द डोली और कहार बुला लाया। साँवली उस पर चढ़कर चली ॥११॥

वह एक कोस गई। दो कोस गई। तीसरे कोस में गोविन्द की झोपड़ी मिली ॥१२॥

सुन्दरी ने एक पैर ओसारे में रक्खा, दूसरा आँगन में। श्यामा रानी रोने लगी ॥१३॥

उसने कहा—हे गोविन्द ! तब तो तुमने कहा कि मेरे दुमंजिला महल है। मैं तो एक झोपड़ी देख रही हूँ ॥१४॥

तब तो तुमने कहा कि मेरे सोलह गायें हैं। मैं तो यहाँ सुअरियों का बाड़ा देख रही हूँ ॥१५॥

हा ! गोविन्द ! तुमने मेरे साथ बड़ा छल किया। मैंने नाहक ही अपने राजा को छोड़ा ॥१६॥

गोविन्द ने कहा—अब चूनरी तो उतारकर रख दो, गूदड़ी पहन लो। मड़ुवा खून्दकर (मूसल से कुचलकर) सकुनी (मोटी रोटी, जो बहुत रूखी होती है और प्राय ग़रीब लोग ही उसे खाते हैं) बनाओ ॥१७॥

मड़ुवा खून्दकर मोटी-मोटी रोटी पोओ। हम दोनों खाकर सुख से सोयेंगे ॥१८॥

श्यामा रानी अपना सिर पीट रही है। हाय ! मेरे दिन कैसे कटेंगे ॥१९॥

मैं अपने राजा के बिना कैसे जीऊँगी। हाय ! मेरा बच्चा देवर रोता होगा। यह पासी मुझे ठग लाया ॥२०॥

घर के झंझटों से ऊब कर, लड़-झगड़कर या मामूली प्रलोभन में फँसकर, बहुत सी स्त्रियाँ किसी भिखमंगे या साधारण आदमी के साथ निकल जाती हैं। पीछे वे बहुत पछताती हैं। लोक-लज्जा-वश वे लौट तो सकतीं नहीं। लौटें भी, तो हिन्दुओं का सामाजिक बन्धन इस प्रकार का है कि वे रक्खी नहीं जा सकतीं। इससे कितनी ही स्त्रियों का जीवन मन की तरङ्ग में दुःख से पूर्ण हो जाता है।

[२६]

रामा बारह बरिस क उमिरिया त
हरि मोरा बिदेसे गइलें हो राम।
रामा बारह बरिस पर अइलेनि
बगिया मँ गोनी डालेनि हो राम।
रामा नगर बोलाइ भेद पुछलें
धनिया कवने रंगे हो राम ॥१॥

बाबू राउर धन हथवा क साँकरि
मुँहवाँ क तेजवंती हो राम।
बाबू वड़े रे घरे कै बिटियवा
तीनौ कुलवा राखेलि हो राम ॥ २ ॥
उहवाँ से गोनिया उठवलें त
दुअरा प गोनी ढारें हो राम।
रामा चेरिया बोलाइ भेद पुछलें
धनिया कौने रंगे हो राम ॥ ३ ॥
बाबू राउर धनी आँगुठ मोरि चले
घूँघुट काढ़ि चले हो राम।
बाबू बड़े रे सहेबवा क धिअवा
तीनहुँ कुलवा तारेली हो राम ॥ ४ ॥
उहवाँ से गोनिया उठवलेनि
अँगना में गोनी ढारें हो राम।
रामा मइया ले दउड़लिँ पिढ़वा
बहिनिया लेइ पनिया हो राम ॥ ५ ॥
रामा मइया बोलाइ भेद पुछलें
धनिया कौने रंगे हो राम।
बेटा तोरी धना भरलि विरोग
नजरि नीचे कै चलै हो राम ॥ ६ ॥
बेटा देहियाँ तो गइलि झुराइ
पै मुँहाँ जोति बाढ़लि हो राम।
बेटा वड़े रे सजनवाँ क धिअवा
तीनौं कुलवा राखेली हो राम ॥ ७ ॥

उहवाँ से गोनियाँ उठवलेनि
सेजिया प गोनी ढारें हो राम।
रामा सूतल धनियाँ जगवलेनि
जाँघे बइठउलेनि हो राम॥८॥
रामा वहियाँ पकरि भेद पुछलें
कहु धना कूसल हो राम।
परभू रउरा बिन पान न खइलीं
सोपरिया नाहीं तुरलीं हो राम॥९॥
परभू आँगन मेरा लेखे रन वन
दुअरा सपन भइलें हो राम।
स्वामी सेजिया प लोटै काली नागिन
त रउरे दरस बिनूँ हो राम।
त रउरे सरन बिनूँ हो राम॥१०॥

मेरी बारह वर्ष की अवस्था में मेरे प्राणनाथ विदेश गये। बारह वर्ष के बाद लौटे तो बाग़ में डेरा डाला। उन्होंने नगर के लोगों को बुलाकर पूछा—मेरी स्त्री की चाल-ढाल कैसी रही? ॥१॥

नगर के लोगों ने कहा—हे बाबू! आप की स्त्री हाथ की बड़ी सँकरी, अर्थात् समझ-बूझकर खर्च करनेवाली है, फ़जूलखर्च नहीं है। उसके मुँह पर बड़ा तेज है। हे बाबू! बड़े घर की बेटी है। उसने तीनों कुलों की रक्षा की है ॥२॥

पति वहाँ से डेरा उठाकर अपने द्वार पर आया और उसने दासी को बुलाकर पूछा—मेरी स्त्री का रङ्ग-ढङ्ग कैसा रहा? ॥३॥

दासी ने कहा—हे बाबू! आप की स्त्री अँगूठा दबाकर चलती है, घूँघट काढ़कर चलती है। वह बड़े मालिक की कन्या है। उसने तीनों कुलों का उद्धार किया है ॥४॥

वहाँ से डेरा उठाकर पति आँगन में गया। उसे देखते ही माता बैठने के लिए पीढ़ा लेकर और बहन पानी लेकर दौड़ी ॥५॥

उसने माँ से पूछा—मेरी स्त्री की चाल-चलन कैसी है? माँ ने कहा—बेटा! तेरी स्त्री तेरे विरह से भरी हुई सदा नीची नज़र करके चलती है ॥६॥

हे बेटा! उसका शरीर तो सूख गया है, पर उसके मुँह पर पातिव्रत-धर्म की ज्योति जगमगा रही है। वह बड़े सज्जन की कन्या है। उसने तीनों कुलों की रक्षा की है ॥७॥

पति वहाँ से उठकर अपने सोने के घर में गया। उसकी स्त्री सो रही थी। उसने जगाकर उसे गोद में बैठा लिया और बाँह पकड़कर पूछा—कहो, कैसी हो? स्त्री ने कहा—हे नाथ! आप के बिना मैंने न पान खाया, न सुपारी तोड़ी ॥८,९॥

आँगन तो मेरे लिए बियाबान जङ्गल और द्वार स्वप्न हो गया था। आप के बिना शय्या काली नागिन के समान लगती थी ॥१०॥

इस गीत से प्रकट होता है कि स्त्री के ऊपर अपने पिता, ससुर और पति तीनों के कुलों की मर्यादा-रक्षा का भार है। वह स्त्री धन्य है, जिसके सत की प्रशंसा दासी से लेकर नगर की साधारण जनता तक करे।

स्त्री पर पुरुष का सन्देह प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। यह गीत जब बना, उसके पहले भी यह सन्देह था और अब भी है। एक ओर यह सन्देह, दूसरी ओर धैर्य की पराकाष्ठा। बारह-बारह वर्ष तक स्त्री पति की राह देखती, दिन गिनती बैठी रहती थी। एक तो यही दुःख क्या कम था? उस पर चरित्र विषयक सन्देह। स्त्री ही में इतना सब सहने की शक्ति है। पुरुषों में लक्ष्मण सरीखा ही कोई विवाहित पुरुष इतने वर्षों का ब्रह्मचर्य रख सकता है। इतने पर भी उसके चरित्र पर कोई

सन्देह करे तो वह क्रोध को रोक सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। विधाता ने स्त्री के हृदय में वह अद्भुत शक्ति दी है, संसार में जिसकी तुलना नहीं की जा सकती।

[२७]

बारह बरिसवा गे अम्मा मोरो गौना के भेलई गे जान।
जान केकर तीरियवा आरे लामी केसिया गे जान॥ १॥
तोरो जे हथुन दवुआ भाभो से भसोइया गे जान।
जान उदई सिंह तीरियवा आरे लामी केसिया गे जान॥ २॥
बारह बरिसवा गे अम्मा तोरो बरवा बस गइले गे जान।
जान कबहु ना जेवँली भाभी हाथ रसोइया गे जान॥ ३॥
सठिया क कूटि टिकुला भतवा बनौलीन गे जान।
जान मुगिया दरली कैली दाल गे जान॥ ४॥
मचिया बैठली रौरा सासु हे बढ़ैतिन गे जान।
जान जेमवथुन नरायन सिंह भैसुरवा गे जान॥ ५॥
सब कोई जेमैं हो राम घर से अँगनवाँ गे जान।
जान भैसुर पापी बैठई भंसाघर देहरिया गे जान॥ ६॥
सब कोई जेमैं हो राम पाँचो पकवनवा गे जान।
जान भैसुर पापी निरेखई टिकुला के सुरतिया गे जान॥ ७॥
हाथ के जे लेलुहें टिकुला तेल हे फुलेलवा गे जान।
जान चली भैलु सामी के सेजरिया गे जान॥ ८॥
एके हाथे लगवहु के टिकुला तेल से फुलेलवा गे जान।
जान दोसर हाथे पोंछे नैना लोरवा गे जान॥ ९॥
बहियाँ अवटलु हे टिकुला जँघीया अवटलु गे जान।
जान पीठवा अवटैते पोंछई नैना लोरवा गे जान॥१०॥

किये तोरा आहो धनी अम्मा मोरा मरलित्त गे जान।
जान किये गोतीन देलथुन तेरो वनबसवे गे जान ॥११॥
नए मोरा आहे स्वामी सासु मोरा मरलित्त गे जान।
जान नए नन्दो देलथीन हमे के गरियवा गे जान ॥१२॥
जान नए गोतीन देलथीन हमे वनवसवे गे जान।
जान हमरे करनवे रौरे जीव जायन गे जान ॥१३॥
कहाँ गेल किये भेल गाँव चौकीदरवा गे जान।
जान जल्दी बोलावहु उदई सिंह भैया गे जान ॥१४॥
कहाँ गेल किये भेल उदई सिंह ववुवा गे जान।
जान चलु ववुआ नरायन सिंह कचहरियाँ गे जान ॥१५॥
किये भैया मरिहेन किये गरिअइहेन गे जान।
जान किये भइया देलथीन हमे वनवसवे गे जान ॥१६॥
नए भैया मरिहैं नाहीं वनवसवे गे जान।
जान चलु ववुआ हरिनी सिकरवे गे जान ॥१७॥
हमरो सो जोड़वा हो भैया धोवी घर पलटावन गे जान।
जान किए लेइ जैअइ हरिनी सिकरवा रे जान ॥१८॥
हमरो सो जोड़वा हो ववुआ तुहूँ पेन्ही लेह गे जान।
जान से ही पेन्ही जाहु हरिनी सिकरवा गे जान ॥१९॥
हमरो सो तेगवा हो भैया घरे छूटी गेलइ गे जान।
जान किये लेई जैअई हरिनी सिकरवा गे जान ॥२०॥
हमरो सो तेगवा हो ववुआ तुहुँ लेई लहु गे जान।
जान सेई लेई चलु हरिनी सिकरवा गे जान ॥२१॥
हमरो सो घोड़वा हो भैया घोड़ घोड़सरवा गे जान।
जान कथी चढ़ी जावई हरिनी सिकरवा गे जान ॥२२॥

हमरो जे घोड़वा हो बबुआ तुहूँ चढ़ी लेहु रे जान।
जान सेहु चढ़ी चलु हरिनी सिकरवा गे जान ॥२३॥
उँची रे झरोखा चढ़ी टिकुला निरेखइ गे जान।
जान केकर घोड़वा रोअइत आवइ गे जान ॥२४॥
सब के घोड़वा ए राम सइँत आवई गे जान।
जान सामी जी के घोड़वा रोअइत आवई गे जान ॥२५॥
मन्त्रिया बैठली रौला सासु हे बढ़ैतिन गे जान।
जान देखु सासु सिर के सेनुरवा गे जान ॥२६॥
तोहरो सेनुरवा हे पुतहू बड़ा रे मलीनवा गे जान।
जान तोहर सामी मारे पड़ें गेलथुन गे जान ॥२७॥
अतना बचनिया जबे सुनलीन टिकुला गे जान।
जान ठोकी देली बजरी केवरिया गे जान ॥२८॥
कहाँ गेलु किए भेलु टिकुला बढ़ैतीन गे जान।
जान खोलु टिकुला बजरी केवरिया गे जान ॥२९॥
दुरी जाव कुतवा दूरी जो बिलरिया गे जान।
जान दूरी जो सहरिआ लोगवा गे जान ॥३०॥
नए छीकी कुतवा नए छीकी बिलैया गे जान।
जान गये जी सहरवा के लोगवा गे जान ॥३१॥
जान हमरे हती उदई सिंह क भैया गे जान।
तोहर छोड़ी हे भैसुर अन्न कर न होईवा गे जान ॥३२॥
जान सामी जी के मुँहवा देखलवहु गे जान।
हमरा जे खातिर हे भैसुर डोलवा फनवल गे जान ॥३३॥
जान अपना घोड़वा बेसाहल गे जान।
लाली लाली डोलिया में सबुजी ओहरिया गे जान ॥३४॥

जान लागी गैली बतीसो कहरिया गे जान।
एक कोस ऐली हे भैसुर दुई कोस ऐली गे जान ॥३५॥
कतहुँ न देखी केद्‌ली के बलवा गे जान।
जान कौना बने चील्ही मेंड़राय छै गे जान ॥३६॥
कौन-बने मरली गे भैसुर कौना बने लेरौली गे जान।
जान कौन बीरीछिये सामी ओठँघवली गे जान ॥३७॥
बिजू बन मरली हे भाभो कुंज बन लेरवली गे जान।
जान चनन बिरिछवे भैया ओठँघवली गे जान ॥३८॥
तोहर छोड़ी हे भैसुर अन कर न होएब गे जान।
जान नगरी पइसी अगिया ले आवहु गे जान।
जान चनन छेइये लकड़ी मँगवहु गे जान ॥३९॥
सत केत हत हे सामी धरम के बिअहुआ गे जान।
जान अँचरवे अगिया ले धधकहु गे जान ॥४०॥
सत के त हतै हे सामी धरम के बिअहुआ गे जान।
जान दूनो मिली सत्ती होइ जवँहीं गे जान ॥४१॥

हे माँ! बारह वर्ष मेरा गौना आये हो गया। पर मैंने आज तक नहीं देखा था। यह किस की स्त्री लम्बी-लम्बी अलकें साफ़ कर रही है?॥१॥

माँ ने कहा—हे बेटा! तुम्हारे छोटे भाई उदयसिंह की बहू अपने बाल सुलझा रही है॥२॥

बेटे ने कहा—हे माँ! तुम्हारा घर बसे हुये बारह वर्ष हो गये। पर मैंने आज तक भ्रातृवधू के हाथ का भोजन नहीं किया॥३॥

साठी चावल कूटकर टिकुला (भ्रातृवधू का नाम) ने भात बनाया और मूँग दलकर दाल बनाई॥४॥

मचिये पर मनस्विनी सास बैठी हैं। और नारायणसिंह जेठ जीम रहे हैं॥५॥

सब कोई तो रसोई-घर से बाहर आँगन में जीमते हैं। पर जेठ रसोई-घर की देहली में बैठकर जीमता है ॥६॥

सब कोई तो पाँचों पकवान जीमते हैं, पर पापी नारायणसिंह टिकुला का रूप देखता है ॥७॥

टिकुला हाथ में तेल-फुलेल लेकर अपने स्वामी के घर में गई ॥८॥

टिकुला एक हाथ से तेल-फुलेल लगाती है, और दूसरे हाथ से आँखों के आँसू पोछती है ॥९॥

टिकुला ने स्वामी की बाँहों में तेल लगा दिया। जाँघ में लगा दिया। पीठ में लगाते वक्त वह आँसू पोछने लगी ॥१०॥

उदयसिंह ने पूछा—मेरी प्यारी स्त्री! तुम्हें मेरी माँ ने मारा है? या तुम्हारी जेठानी ने तुम्हें घर से निकाल दिया है? ॥११॥

टिकुला ने कहा—हे मेरे प्रियतम! न तो मेरी सास ने मुझे मारा है, और न ननद ने गरियाया है ॥१२॥

और न जेठानी ने घर से निकाला है। हे मेरे नाथ! मेरे कारण आप की जान जायगी ॥१३॥

टिकुला और उदयसिंह की ये बातें हो ही रही थीं कि नारायण सिंह ने पुकारा—गाँव का चौकीदार क्या हुआ? कहाँ गया? जल्दी उदयसिंह भाई को बुला लाओ ॥१४॥

चौकीदार ने कहा—बबुआ उदयसिंह कहाँ गये? क्या हुये? बबुआ चलो, नारायणसिंह बुला रहे हैं ॥१५॥

उदयसिंह ने कहा—भैया मुझे मारेंगे? या गाली देंगे? या घर से निकाल देंगे? ॥१६॥

चौकीदार ने कहा—न मारेंगे, न घर से निकालेंगे। हरिन के शिकार में चलने के लिये बुला रहे हैं ॥१७॥

उदयसिंह ने नारायणसिंह के पास पहुँचकर कहा—भैया! मेरे

कपड़े तो धोबी के घर धुलने गये हैं। मैं क्या पहनकर हरिन के शिकार में चलूँ ?॥१८॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरे कपड़े पहनकर शिकार में चलो ॥१९॥

उदयसिंह ने फिर कहा—हे भाई ! मेरी तलवार तो घर ही पर रह गई। मैं क्या लेकर शिकार में चलूँ ? ॥२०॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरी तलवार लेकर हरिन के शिकार को चलो ॥२१॥

उदयसिंह ने फिर बहाना किया—हे भाई ! मेरा घोड़ा भी तो यहाँ नहीं है। वह तो मेरे घुड़साल में है। किस पर चढ़कर मैं शिकार को चलूँ ? ॥२२॥

नारायणसिंह ने कहा—मेरा घोड़ा ले लो और शिकार में चलो ॥२३॥

शिकार में नारायणसिंह ने उदयसिंह को मार डाला। ऊँचे झरोखे से टिकुला देख रही है। हाय! किसका घोड़ा रोता हुआ आ रहा है ? ॥२४॥

हाय ! सब के घोड़े तो हँसी-खुशी से आ रहे हैं। मेरे स्वामी का घोड़ा रोता हुआ आ रहा है ॥२५॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी थी। टिकुला ने उसके पास जाकर कहा—हे सास ! मेरे सिर के सिन्दूर को तो देखो ॥२६॥

सास ने कहा—हे मेरी पतोहू ! तुम्हारा सिन्दूर बड़ा मलिन हो गया है। जान पड़ता है, तुम्हारे स्वामी मारे गये ॥२७॥

टिकुला इतना सुनते ही वज्र की तरह केवाड़ी बन्द करके बैठ रही ॥२८॥

नारायणसिंह ने आकर द्वार खटखटाया—टिकुला कहाँ गई ? क्या हुई ? टिकुला अपनी बज्र ऐसी केवाड़ी खोल दो न ? ॥२९॥

टिकुला ने कहा—कुत्ते हो, या बिल्ली ? या शहर के लोग हो ?

भाई ! भाग जाओ ॥२०॥

नारायणसिंह ने कहा—न कुत्ता है, न बिल्ली और न शहर का ही कोई व्यक्ति है ॥२१॥

मैं तो उदयसिंह का भाई हूँ। टिकुला ने कहा—हे जेठ ! मैं तुमको छोड़कर दूसरे की तो होऊँगी नहीं ॥२२॥

हे जेठ ! मेरे स्वामी का मुँह तो मुझे दिखला दो। हे जेठ ! मेरे लिये डोली फना दो ॥२३॥

आप के लिये घोड़ा खरीदा ही हुआ है। लाल रङ्ग की डोली में हरे रङ्ग का ओहार (परदा) लग गया ॥२४॥

बत्तीस कहार डोली को उठाने के लिये तैयार हो गये। टिकुला ने कहा—हे जेठ ! एक कोस आई, दो कोस आई ॥२५॥

पर कदली बन नहीं दिखाई पड़ा। हे जेठ ! किस वन में चील्ह मँडला रही है ? ॥२६॥

हे जेठ ! किस वन में आप ने मारा ? और किस वन में लाश को रक्खा ? और किस वृक्ष से मेरे नाथ की लाश को ओठँगा दिया है ? ॥२७॥

जेठ ने कहा—बिजू बन (विजन बन) में मैंने मारा। कुञ्ज बन में लाश को पौढ़ाया। और चन्दन के वृक्ष से लाश को ओठँगा रक्खा है ॥२८॥

टिकुला ने कहा—हे जेठ ! तुमको छोड़कर मैं और किसी की तो होऊँगी नहीं। तुम शहर में जाकर आग ले आओ। हे जेठ ! चन्दन काट कर लकड़ी ले आओ ॥२९॥

टिकुला अपने प्राणनाथ की लाश के पास खड़ी होकर बोली—हे नाथ ! यदि तुम मेरे सत के स्वामी हो और धर्म से विवाहित हो, तो मेरे आँचल से आग होकर धधक उठो ॥४०॥

उदयसिंह टिकुला के सत का स्वामी और धर्म से विवाहित था। दोनों पति-पत्नी एक साथ सती हो गये ॥४१॥

[२८]

छव महिना के बेटी रजलो,

रजलो के मइआ मरि हो जाय।

बरहा बरिस मैं दुधवा पिअवलों,

रजलो मोगलवा से हो लोभाय ॥ १ ॥

गेहुवाँ के रोटिया बनवलीं,

उपर मुरगिया कै रे झोर।

जेवहिं बइठले मोगलवा,

रजलो बेनियाँ हो डोलाय ॥ २ ॥

सूप अइसन डाढ़ी मोगलवा,

ये बरधा अइसन आँखि।

ओही मुहें लिहलन मोगल चुमवाँ,

रजलो के छूटि उकिलाइ ॥ ३ ॥

रजलो बेटी छः महीने की थी, जब उसकी माँ मर गई। मैंने बारह बरस तक रजलो को दूध पिलाकर पाला-पोसा। अब वह मुग़ल के प्रेम में फँस गई ॥१॥

रजलो ने गेहूँ की रोटी बनाई। ऊपर से मुर्गी के अंडे का शोरबा रख दिया। मुग़ल जीमने बैठा। रजलो पंखी हाँकने लगी ॥२॥

मुगल की दाढ़ी सूप जैसी है और आँखें बैल जैसी। उसी दाढ़ी-वाले मुँह से मुगल ने रजलो का मुँह चूमा तो रजलो को क़ै हो गई ॥३॥

[२९]

भारी भइले राम अँखिया।

अमवाँ मोजरि गइले महुवा टपके निरमोहिया।

कत दिन बटिया जोहइबे रे लोभिया ॥

भारी भइले० ॥ १ ॥

बाट बटोहिया रे तुहूँ मोर भइया रे निरमोहिया।
हमरो सनेस लेले जइहे रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ २॥

हमरो सनेसवा रे प्रभु समुझइहे निरमोहिया।
तोरी धनी अलप बयस की रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ३॥

तोहरा बलमुआँ के चीन्हहुँ न जानहुँ निरमोहिया।
कइसे कहबी समुझाइ रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ४॥

हमरा बलमुआँ के टेढ़ी टेढ़ी पगिया निरमोहिया।
जुलुफी झारेला टेढ़ी पागरे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ५॥

हमरा बलमुआँ के लाली लाली अँखिया निरमोहिया।
घुरुम घुरुम दूनों आँख रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ६॥

हमरे बलमुआँ के घुठी भर धोतिया निरमोहिया।
जइसे चले मीर उमराव रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ७॥

चिठिआ जे लिहलन मन मुसुकइले निरमोहिया।
बाँचि लगले बरहो बियोगवा रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ८॥

बाट बटोहिआ रे तुहूँ मोरा भइया रे निरमोहिया।
हमरो सनेसवा लेले जइहे रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥ ९॥

हमरो सनेसवा रे धनी समुझाइह निरमोहिया।
चरखा कातिह कुल राखिह रे लोभिया॥
भारी भइले० ॥१०॥

हे राम! मेरी आँखें थक गईं।

आमों में बौर आ गये। महुवा टपकने लगे। हे निर्मोही! हे धन के लोभी मेरे परदेशी पति! तुम कबतक मुझसे बाट जोहाओगे? ॥१॥

हे पथिक! तुम मेरे भाई हो। उस निर्मोही और लोभी मेरे प्राणनाथ के पास मेरा एक संदेशा लेते जाओ ॥२॥

हे पथिक! मेरा यह संदेशा समझाकर कहना कि तुम्हारी स्त्री छोटी अवस्था की है ॥३॥

पथिक ने कहा—हे बहन! मैं तो तुम्हारे पति को जानता नहीं, न पहचानता ही हूँ। तुम्हारा संदेशा कैसे कहूँगा? ॥४॥

स्त्री ने कहा—हे पथिक! मेरे प्यारे टेढ़ी पगडी बाँधते हैं। वे जुल्फ (अलक) के बड़े शौकीन हैं ॥५॥

मेरे प्राणेश्वर की आँखें रतनारी हैं। दोनों आँखे यौवन के मद से मतवाली रहती हैं ॥६॥

मेरे प्राणनाथ घुटने तक धोती पहनते हैं। और ऐसे ठाट से चलते हैं, जैसे कोई मीर और उमराव चलता है ॥७॥

पथिक ने चिट्ठी ले जाकर स्त्री के पति को दिया। पति चिट्ठी लेकर मुसकुराया और वियोग का विस्तृत वर्णन बाँचने लगा ॥८॥

उसने पथिक से कहा—हे राहचलनेवाले भाई! मेरा संदेशा लेते जाओ ॥९॥

मेरी स्त्री को समझाकर कहना कि चरखा कातकर कुल और कुल की मर्यादा की रक्षा करें ॥१०॥

यह गीत उस ज़माने का है, जब मुग़लों का राज था और मीर और

उमरावों का अकड़कर चलना आदर्श समझा जाता था।

पति ने चरखे को कुल और कुल की मर्यादा का एकमात्र रक्षक बताया है। किसी समय चरखा सचमुच स्त्रियों का धर्म-रक्षक था।

[३०]

जेहि दिन गोपीचन्द तुमरो जनम भयो,
बाजै तबला निसान हो राम ॥ १ ॥
हरियर गोबरा मँगाय के गोपीचन्द,
अँगना बेदी लिपाये हो राम ॥ २ ॥
हँकरौ नगर के नाउनि बारिनि नगर बोलौवा दे आवैं हो राम ॥ ३ ॥
सतरञ्ज खँड़रू झारि बिछावो,
सुघर सहेलियाँ बोलावो हो राम ॥ ४ ॥
नगर नगर के नौवा औ बरिया,
जाइ पण्डित लै आवो हो राम ॥ ५ ॥
बैठो बराभन चन्दन चौकिया,
गोपीचन्द रासि गनाओ हो राम ॥ ६ ॥
थार भर मोती लैके निकरे हैं राजा,
सोने का टका बहिमा डारे हो राम ॥ ७ ॥
बायें हाथ पण्डित बेद बिचारैं,
दहिने हाथ पोछैं अँसुवा हो राम ॥ ८ ॥
बारह बरस के जब गोपीचन्द होइहैं,
तेरही लगत होइहैं जोगिया हो राम ॥ ९ ॥
जारौं बारौं बेद तुम्हारो, पुत्रहि दोख लगाये हो राम ॥ १० ॥
कागज होइ राजा फारि क फेंकौं,
कर्म न मेटो जाय हो राम ॥ ११ ॥

लिखनेवाले लिखि गये साईं, को है मेटनहार हो राम ॥१२॥
ग्यारह बरस के जब गोपीचन्द भये,
पढ़ि उतरे सबसार हो राम ॥१३॥
बारह बरस के जब गोपीचन्द भये,
ब्याहे चम्पा देवी नारि हो राम ॥१४॥
नौ लख हथिया दस लख घोड़वा,
बिस लख साथ बरात हो राम ॥१५॥
घर को गोपीचन्द खेलि सारि पाँसा आये,
मैया से मागैं कल्यौवा हो राम ॥१६॥
सोने के थारा मैया भोजना परोसिन,
अँचरन झलहिं बयरिया हो राम ॥१७॥
करत बयरिया मैया अँसुआ जो ढारैं,
गोपीचन्द पोंछैं आँसू पटुका हो राम ॥१८॥
की तुमरे मैया अन धन थोरे भये,
की बहुआ गरियावैं हो राम ॥१९॥
ना मैया मोरे अन धन थोरे भये,
ना बहुआ गरियावैं हो राम ॥२०॥
बाप तुमारे रहे सुरति तुमारी,
उन भये रावल जोगिया हो राम ॥२१॥
जेंइ उठि गोपीचन्द ठाढ़े अँगनवाँ,
मैया से माँगैं गुदड़िया हो राम ॥२२॥
खोलि पेटारा मैया गुदड़ी निकारिन,
गोपीचन्द को दिहिन पहिराय हो राम ॥२३॥
सोने के खड़ौंवाँ गोपीचन्द रनियाँ महल गये,
रनियाँ पकरिन दाहिन बहियाँ हो राम ॥२४॥

कबहुँ न आयो राजा रंग महल में,
कबहूँ न खेल्यो सारि पाँसा हो राम ॥२५॥
तुम रानी रहियो रंग महल में,
भैया खेलेंगे सारि पाँसा हो राम ॥२६॥
गोद में हमरे होरिलवा न गोपीचन्द,
उनहूँ रहौं जो बेलम्हाय हो राम ॥२७॥
मैके से बिरना बोलाय हो रनियाँ,
अपने नइहर चलि जायो हो राम ॥२८॥
माई बिनु कैसा मैका गोपीचन्द,
को मोहिं हियरे लगै है हो राम ॥२९॥
बिन मैया के मैका रे गोपीचन्द,
बिन सैया ससुरारि हो राम ॥३०॥
चन्द्र बिना चाँदनी कैसी गोपीचन्द,
दीपक बिनु कैसी ज्योति हो राम ॥३१॥
राजा बिनु कैसा राज रे गोपीचन्द,
बिनु गोरस कैसा भोग हो राम ॥३२॥
जोगी होइ के रमि चले राजा गोपीचन्द,
हमरी कौनि हवलिया हो राम ॥३३॥
सोने के खड़ौआँ गोपीचन्द मैया महल गये,
मैया के पकरैं पाँव हो राम ॥३४॥
उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, जायो,
पूरब दिसि जनि जायो हो राम ॥३५॥
उत्तर दक्षिण पश्चिम ना गये,
पूरब दिसा जाइ बैठे हो राम ॥३६॥

सरँगी बजाय गोपीचन्द गावैं भरथरी,
भिक्षा वहिन लै आयो हो राम ॥३७॥
धावो चेरिया धावो लौंड़िया,
भिक्षा जोगी लै डारहु हो राम ॥३८॥
चेरिया के हाथ मैं ना लेहौं भिक्षा
सन्मुख बहिनि भिक्षा डारैं हो राम ॥३९॥
वै हैं रानी वै पटरानी, कैसे भिक्षा लै डारैं हो राम ॥४०॥
जेठ ससुर को परदा करिहैं,
जोगी का होय कैसे परदा हो राम ॥४१॥
इतने बचन सुनि दौरी जो चेरिया
लाई बाँस उठाय हो राम ॥४२॥
बाँस उठाय चेरिया जोगी को मारै,
जाहु जोगी घर अपने हो राम ४३॥
एक दिन हमरे वै रहे चेरिया,
सतरँज झारि बिछायो हो राम ॥४४॥
जोगी का वेष धरे बाँस मान्यो,
वहिनि के आगे खबर जनावो हो राम ॥४५॥
रोवत चेरिया महल में आई,
गोपीचन्द ठाढ़े दुआर हो राम ॥४६॥
थार भर मोती लै के निकरी बहिनियाँ,
देखिन गोपीचन्द सुरतिया हो राम ॥४७॥
की तुमरे भैया अन्न धन थोरे भये,
की हो भावज गरिआवैं हो राम ॥४८॥
ना मोरे वहिनी अन्न धन थोरे भये,
ना तुमरी भावज गरियावैं हो राम ॥४९॥

हमरी सुरति वहिनी बाप हमरे रहे,

उनहूँ भये रावल जोगी हो राम ॥५०॥

थार पटकि वहिनी सिर धुनि मारे,

उलटी खाँय पछाड़ हो राम ॥५१॥

जाय के गिरीं वहिनी गोपीचन्द आगे,

गिरतै प्राण गँवाये हो राम ॥५२॥

जो गावे यह गोपीचन्द भरथरी,

माता वचन सोई मानै हो राम ॥५३॥

हे गोपीचंद! जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ, उस दिन तवला और डंका बजता था ॥१॥

उस दिन ताजा गोबर मँगाकर आँगन में वेदी लिपाई गई थी ॥२॥

नगर के नाई और बारी को बुलाओ। वे नगर में सब को निमंत्रण दे आवें ॥३॥

बड़ी-बड़ी दरियाँ और जाजिम फाड़कर बिछाओ और चतुर सखियों को बुलाओ ॥४॥

गाँव गाँव के नाई और बारी! जाकर पंडितों को साथ लिवा लाओ ॥५॥

हे ब्राह्मणो! चन्दन की चौकी पर बैठो और गोपीचन्द की राशि का विचार करो ॥६॥

राजा थाल भरकर मोती लेकर निकले। उसमें सोने की मुहरें भी डाले हुये थे ॥७॥

पंडित बायें हाथ में पुस्तक लेकर राशि का विचार कर रहे थे और दाहिने हाथ से आँसू पोछते जाते थे ॥८॥

पंडित ने कहा—बारह वर्ष की अवस्था समाप्त होने पर तेरहवें में गोपीचंद जोगी हो जायँगे ॥९॥

राजा ने कहा—तुम्हारे पोथी-पत्रे जल जायँ। तुमने मेरे पुत्र पर नाहक ही यह दोष लगाया है ॥१०॥

पंडित ने कहा—हे राजा! कागज़ हो तो उसे फाड़कर फेंक भी दिया जा सकता है। पर कर्म तो नहीं टल सकता ॥११॥

हे राजा! विधाता ने जो लिख दिया है, उसे कौन मेट सकता है? ॥१२॥

ग्यारह वर्ष के होने तक गोपीचंद सब विद्या पढ़कर समाप्त कर चुके ॥१३॥

बारह वर्ष की अवस्था होने पर गोपीचंद का विवाह चम्पा देवी से हुआ ॥१४॥

उनकी बारात में नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े और बीस लाख मनुष्य गये थे ॥१५॥

गोपीचंद पाँसा खेलकर आये और माँ से कलेवा माँगने लगे ॥१६॥

माँ ने सोने के थाल मे भोजन परोस दिया और स्वयं पास बैठकर वह आँचल से हवा करने लगीं ॥१७॥

हवा करते-करते माता के आँसू गिरने लगे। गोपीचंद दुपट्टे से पोछने लगे ॥१८॥

गोपीचंद ने पूछा—माँ! क्या तुम को अन्न-धन की कमी है? या बहू ने गाली दी है? ॥१९॥

माँ ने कहा—हे बेटा! न मेरे अन्न-धन की कमी है, न बहू ही गाली देती है ॥२०॥

हे बेटा! तुम्हारे बाप तुम्हारी ही शक्ल के थे। वे जोगी हो गये थे ॥२१॥

गोपीचंद जीम करके उठे। आँगन मे खड़े हुये। और माँ से गूदड़ी माँगने लगे ॥२२॥

माँ ने पेटारा खोलकर गूदड़ी निकाली और गोपीचंद को पहना दी ॥२३॥

गोपीचंद सोने के खड़ाऊँ पर चढ़े हुये अपनी रानी के महल में गये। रानी ने बाँह पकड़कर कहा—॥२४॥

हे राजा! न तो तुम कभी रंगमहल में आये और न कभी पाँसा खेले ॥२५॥

गोपीचंद ने कहा—हे रानी! तुम रंगमहल में रहो। भैया पाँसा खेलेंगे ॥२६॥

रानी ने कहा—हे राजा! मेरी गोद मे तो बालक भी नहीं, जिससे मन लगा रहता ॥२७॥

गोपीचंद ने कहा—हे रानी! नैहर से भाई बुलाकर नैहर चली जाना ॥२८॥

रानी ने कहा—हे गोपीचंद! माँ के बिना नैहर कैसा? कौन छाती से लगायेगा? ॥२९॥

हे गोपीचंद! बिना माँ का नैहर और बिना पति की ससुराल किस काम की? ॥३०॥

चाँद के बिना चाँदनी, दीपक बिना प्रकाश, राजा बिना राज और दूध बिना भोजन किस काम का? ॥३१,३२॥

हे राजा गोपीचंद! तुम तो जोगी होकर जा रहे हो, मेरी क्या दशा होगी? ॥३३॥

सोने के खड़ाऊँ पर राजा गोपीचंद माँ के महल में गये। उन्होंने माँ का पैर पकड़ लिया ॥३४॥

माँ ने कहा—हे बेटा! उत्तर, दक्षिण और पश्चिम जाना। पर पूर्व दिशा में मत जाना ॥३५॥

गोपीचंद न उत्तर गये, न दक्षिण और न पश्चिम। वे पूर्व ही गये ॥३६॥

गोपीचंद सारंगी बजाकर गाने लगे। उन्होंने बहन के द्वार पर भीख माँगी ॥३७॥

बहन ने कहा—हे दासियो! हे सेवकिनियो! दौड़ो। भिक्षा ले जाकर जोगी की झोली में डाल आओ ॥३८॥

गोपीचंद ने कहा—मैं नौकरानी के हाथ की भिक्षा नहीं लेता। मेरी बहन सामने आकर मुझे भिक्षा दे ॥३९॥

नौकरानियों ने कहा—वे तो रानी हैं, पटरानी हैं। वे सामने कैसे आ सकती हैं? ॥४०॥

गोपीचंद ने कहा—जेठ और ससुर से परदा हो सकता है, जोगी से कैसा परदा? ॥४१॥

दासी यह बात सुनते ही उठकर दौड़ी और बाँस उठा लाई ॥४२॥

उसने बाँस उठाकर जोगी को मारा और कहा—अपने घर जाओ ॥४३॥

गोपीचंद ने कहा—हे दासियो! एक दिन वे थे, जब तुम मेरे लिये बढ़िया दरियाँ झाड़कर बिछाती थीं ॥४४॥

आज तुमने मुझे जोगी के भेस में देखकर बाँस मारा। जाओ, मेरी बहन के आगे समाचार कहो ॥४५॥

दासियाँ गोपीचंद को पहचानकर रोने लगीं। उन्होंने जाकर गोपी-चंद की बहन से सारा हाल कहा कि गोपीचंद द्वार पर खड़े हैं ॥४६॥

बहन थाल भर मोती लेकर निकली गोपीचंद का वेश देखकर उसने कहा—॥४७॥

भाई! तुम्हे अन्न-धन कम हो गया? या मेरी भौजाई तुम्हें गाली देती है? तुम जोगी क्यों हो गये? ४८॥

गोपीचंद ने कहा—न मेरे अन्न-धन की कमी हो गई, न तुम्हारी भावज ने ही गाली दी है ॥४९॥

बात यह है कि मेरी ही जैसी सूरत के मेरे पिता थे, वे भी जोगी हो गये थे ॥५०॥

यह सुनते ही बहन ने थाल पटक दिया। वह सिर धुनती हुई पछाड़ खाकर गोपीचंद के आगे गिर पड़ी। गिरते ही उसके प्राण निकल गये ॥५१,५२॥

गोपीचंद भरथरी का यह वृत्तान्त जो गावे, उसे माता का वचन मानना चाहिये ॥५३॥

गोपीचंद भरथरी के नाम से कई प्रकार के गीत युक्तप्रांत में प्रचलित हैं। उनमें से यह एक है। जोगी लोग इस प्रकार के गीत प्रायः गाते हैं।

[३१]

गोपीचन्द रजवा क परि गइ बिपतिया रे
बिपति के परे हरवा जोतैं हो राम ॥१॥
चलहु न पिया हो हमरे नैहरवा रे
चलु वहाँ बिपति गँवउवइ हो राम ॥२॥
एक बन गइलीं दुसर बन गइलीं रे
बाँउँ रे दहिने बोलै कगवा हो राम ॥३॥
हमरा कहनवा धनवाँ तुहूँ नाहीं मनलेउ रे
आखिर असगुनवा भएन हो राम ॥४॥
जब रानी गइलीं गउवाँ के गोयड़वाँ हो
भउजी मोरी हनइ लगलीं बजर केवड़िया हो राम ॥५॥
खोलउ न भउजी चँदना केवड़वा रे
बूँद एक पनिया हमका देतिउ हो राम ॥६॥

हमरा घइलवा ननदा फूटि फाटि गइल बा

बूँद एक्क पनिया कैसे देईं हो राम ॥७॥

खोलउ न भउजी चँदना केवड़वा रे

फटही लुगरिया हमका देतिउ हो राम ॥८॥

हमरी लुगरिया ननदा धरलं वा पेटरिया रे

सवना भदवना पोतना करबइ हो राम ॥९॥

आहु रे दैवा आहु विधाता हो राम

हमरे करमवा का लिखि भेजेउ हो राम ॥१०॥

हमरा कहनवा धना तुहू नाहीं मनलेउ हो

विपति के परले केउ न आपन हो राम ॥११॥

चलहु न धनिया अपने के देसवा रे

चरखा ले विपति गँवउवै हो राम ॥१२॥

राजा गोपीचंद पर विपत्ति पड गयी। विपत्ति पड़ने पर वे हल जोत कर निर्वाह करने लगे ॥१॥

रानी ने कहा—हे राजा! चलो। मेरे नैहर में चलकर रहो और वहाँ विपत्ति के दिन बिताओ ॥२॥

दोनों एक वन पार गये। दूसरा वन पार कर गये। तीसरे में वायें और दाहने कौआ बोलने लगा ॥३॥

राजा ने कहा—रानी! तुमने मेरा कहना नहीं माना। अशकुन हुआ न? ॥४॥

जब रानी गाँव के निकट पहुँची, उसे दूर ही से देखकर उसकी भौजाई बज्र ऐसा केवाड़ा बंद करने लगी ॥५॥

ननद ने कहा—भौजी! चंदन के किवाड़े खोलो न? मुझे एक बूँद पानी दो ॥६॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! मेरा घड़ा तो फूट गया है। एक बूँद पानी कहाँ से दूँ ? ॥७॥

ननद ने कहा—हे भौजी ! चंदन की किवाड़ी खोलो न ? मुझे अपनी फटी पुरानी लुगरी ही दे दो ॥८॥

भौजाई ने कहा—हे ननद ! मेरी लुगरी तो पेटारी में बंद है। सावन भादों में उसका पोतना (रसोई-घर लीपने का चिथड़ा) बनाऊँगी ॥९॥

ननद रोने लगी—हाय राम ! हाय विधाता ! तुमने हमारे भाग्य में क्या लिख दिया ! ॥१०॥

राजा ने कहा—हे रानी ! तुमने मेरा कहा नहीं माना। विपत्ति पड़ने पर कौन अपना होता है ? ॥११॥

हे रानी ! चलो अपने देश में चलें। वहाँ चरखा चलाकर, सूत कात कर, विपत्ति के दिन काटेंगे ॥१२॥

[३२]

केरे देले गोहुमाँ हो रामा, केरे देले चँगेरिआ।
कउनी बइरिनिआ हो रामा, भेजल जँतसरिआ ॥ १ ॥
सासु देले गोहुमाँ हो रामा, ननदी चँगेरिआ।
गोतनी बइरिनिआँ हो रामा, भेजल जँतसरिआ ॥ २ ॥
जँतवो न चलइ हो रामा, मकरी न डोलइ।
जाँता के धइले हो रामा, रोवइ जँतसरिया ॥ ३ ॥
घोड़वा चढ़ल हो लछुमन करइ पुछसरिआ।
केकरी तिरिअवा हो रामा, रोवइ जँतसरिआ ॥ ४ ॥
तोहूँ नएँ जानल हो लछुमन तोहरे तिरिअवा।
जँतवा के दूखे हो रामा, रोवइ जँतसरिआ ॥ ५ ॥

घोड़वा जे बँधलन हो लछुमन, बरे बरुनिआ।
झपसि पइसल हो लछुमन नैना पोंछे लोरवा ॥ ६ ॥
केरे देले गोहुमाँ हो साँमर, केरे देले चँगेरिआ।
कउनी वैरिनिआँ हो रामा भेजल जँतसरिआ ॥ ७ ॥
सासु देले गोहुमा जी परभू, ननदी चँगेरिआ।
गोतनी वैरिनिआँ जी परभू, भेजले जँतसरिआ ॥ ८ ॥
जँतवो न चले जी परभू, मकरी न डोलइ।
जाँता के धइले जी परभू, रोवों जँतसरिआ ॥ ९ ॥
बहिआँ पकरलन लछुमन, जँघिआ बइठओलन।
अपने गँमछवे हो लछुमन, पोंछे नैना लोरवा ॥१०॥

किसने गेहूँ दिया ? किसने चँगेरी (डलिया) दी ? किस वैरिन ने मेरी स्त्री को जाँत के घर में भेजा ? ॥१॥

सास ने गेहूँ दिया। ननद ने चँगेरी। जेठानी वैरिन ने जाँत के घर में भेजा ॥२॥

हाय ! जाँत नहीं चल रहा है। न मकरी ही हिल रही है। स्त्री जाँत का हत्था पकडकर रो रही है ॥३॥

लक्ष्मण घोड़े पर चढ़कर आया। वह पूछने लगा—किसकी स्त्री जाँत के घर मे रो रही है ? ॥४॥

लक्ष्मण ! तुम नहीं जानते क्या ? तुम्हारी ही स्त्री तो है जो जाँत के घर में रो रही है ॥५॥

लक्ष्मण ने बरगद की जटा से घोड़े को बाँध दिया। वह आँखों के आँसू पोछता हुआ जाँत के घर में झपटकर गया ॥६॥

लक्ष्मण ने स्त्री से पूछा—किसने गेहूँ दिया ? किसने चँगेरी ? और किस वैरिन ने तुम को जाँत के घर में भेजा ? ॥७॥

स्त्री ने कहा—सास ने गेहूँ दिया। ननद ने चँगेरी। और जेठानी ने मुझे जाँत के घर में भेजा ॥८॥

हे स्वामी! मुझ से न जाँत चलता है, और न मकरी ही टस से मस होती है। मैं क्या करूँ? जाँत को पकड़कर जाँत के घर में अकेली रो रही हूँ ॥९॥

लक्ष्मण ने स्त्री की बाँह पकड़कर उसे गोद में बैठाया और अपने अँगौछे से वह स्त्री के आँसू पोंछने लगा ॥१०॥

इसी भाव का एक गीत और है, जो आगे दिया जाता है:—

कौन देल डलिया हे सखिया कौन देल
गहुमा रे की।
कौन बैरिनिया भेजल जँतसारी रे की ॥१॥
सासु देल डलिया हे सखिया ननद देल
गहुमा रे की।
गोतनी बैरिनिया भेजल जँतसारी रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥२॥
झिकवो न लेछे हे सखी सो झिरियो न खसेछे
रे की।
हथड़ा हे पकरि रोवे जँतसारी रे की
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥३॥
घोड़िया चढ़ल हो हरिहर मन पछतावे रे की।
केकरि हे त्रिया रोवे जँतसारी रे की
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥४॥
तुहूँ नहीं जनलह हो हरिहर
तुहूँ नहीं सुनलह हे रे की।

तोहरिये त्रिया रोवे जँतसारी रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥५॥
घोड़िया जो बाँधल हो हरिहर
बेल रे बबुर तर रे की।
अपने हे धमसि रं पेसल बहे जँतसारी
घर रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥६॥
कौन देल डलिया हे जिरवा
कौन देल गहुँमा रे की।
कौन हे बैरिनिया भेजल जँतसारी रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥७॥
सासु देल डलिया हो हरिहर
ननद देल गहुँमा रे की।
गोतनी हे वैरिनिया भेजल जँतसारी रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥८॥
बहियाँ पकरि हो हरिहर जँघिया बैठावल
रे की।
अपनी हे चदरिया पोंछे नैना लोरे रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥९॥
तोहरे चदरिया हो हरिहर दर रे देवलिया।
हमरो हे अँचरवा पोंछे नैना लोरे रे की।
सुन्दर हरिहर बाबू जुमले रे की ॥१०॥

[३२]

ओखली चावल छाँटती, बातैं करति बनाय।
आवेगा मोगल छोकड़ा, यों डालूँगी कूट ॥ १ ॥
जाहु मोगल के छोकड़ा, जाहु घरहि अपान।
सुनेगा मोरा बाबा जी, तुझको फाँसी दिलाय ॥ २ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान।
बाबा से कहियो समुझाइ के बेटी पड़ी बन्दीखान ॥ ३ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान।
भइआ से कहियो समुझाइ के बहिनी पड़ी बन्दीखान ॥ ४ ॥
उड़ि उड़ि पतिया जाय तू यह सनेस लेइ जान।
कंत से कहियो समुझाइ के, दुलहिन पड़ी बन्दी खान ॥ ५ ॥
आगे घोड़ा मोरे बाबा के, पीछे बीरन भाइ।
तेहि पीछे आवे मोरा कन्त जी, बेटी लेंगे छोड़ाइ ॥ ६ ॥
आगे घोड़ा मोरे बाबा के पीछे बीरन भाइ।
तेहि पीछे आवे मेरा कन्त जी बहिनी लेंगे छोड़ाइ ॥ ७ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा रुपया लेहु बहूत।
बेटी को मेरी छोड़ दे जैसें कंचन थाल ॥ ८ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा, मोती लेहु बहूत।
बहिनी को मेरी छोड़ दे जैसे कंचन थाल ॥ ९ ॥
लेहु मोगल के छोकड़ा मोहर लेहु बहूत।
दुलहिन को मेरी छोड़दे जैसे कंचन थाल ॥ १० ॥
रुपया हमारे बहुत है अशर्फी भरा है सन्दूक।
सुन्दर को मैं ना छोड़ों जैसे गले का हार ॥ ११ ॥
सुन्दर बोली क्रोध कर कमर कटारी खींच।
लेहु मोगल के छोकड़ा यह है गले का हार ॥ १२ ॥

एक स्त्री ओखली मे चावल छाँट रही थी। वह बातें भी बनाती जाती थी कि मुग़ल का छोकरा आवेगा तो इसी तरह उसे भी कूट डालूँगी ॥१॥

मुग़ल का छोकरा, जो उस स्त्री पर आसक्त था, आ गया। स्त्री ने कहा—हे मुग़ल के लड़के ! तुम अपने घर चले जाओ। मेरे पिताजी सुनेंगे तो तुमको फाँसी दिला देंगे ॥२॥

मुग़ल का छोकरा उसे पकड़ ले गया और कैदखाने में डाल दिया। स्त्री ने पत्र लिखकर भेजा—हे पत्र ! तुम उडकर जाओ और मेरे बाबा को समझाकर कहो कि तुम्हारी बेटी बंदीखाने मे पड़ी है ॥३॥

हे पत्र ! तुम उड़कर जाओ और मेरे भाई को कहो कि तुम्हारी बहन बंदीखाने में पड़ी है ॥४॥

हे पत्र ! तुम उड़कर जाओ और मेरे स्वामी से कहना कि तुम्हारी स्त्री बंदीखाने में पड़ी है ॥५॥

आगे के घोड़े पर मेरे बाबा आये। पीछे के घोड़े पर मेरे भाई। और उनके पीछे मेरे स्वामी आये। बाबा कहते थे—बेटी को छुडा लेंगे ॥६॥

आगे के घोड़े पर मेरे बाबा आये। पीछे के घोड़े पर मेरे भाई। उनके पीछे मेरे स्वामी आये। भाई कहता था—बहन को छुड़ा लेंगे ॥७॥

बाबा ने कहा—हे मुग़ल के बच्चे ! बहुत सा रुपया लो और सोने के थाल जैसी मेरी कन्या को छोड दो ॥८॥

भाई ने कहा—हे मुगल के बच्चे ! बहुत सा मोती लो और सोने के थाल जैसी मेरी बहन को छोड दो ॥९॥

स्वामी ने कहा—हे मुग़ल के बच्चे ! बहुत सी मोहरें लो और सोने के थाल जैसी मेरी स्त्री को छोड दो ॥१०॥

मुग़ल के लड़के ने कहा—रुपया हमारे पास बहुत है। और

अशर्फियों से तो संदूक भरे पड़े हैं। मैं इस सुन्दरी को न छोड़ूँगा। यह तो मेरे गले की हार है ॥११॥

उसकी यह बात सुनकर स्त्री को बड़ा क्रोध चढ़ आया। उसने कमर से कटारी खींचकर कहा—ले मुग़ल के बच्चे! यह तेरे गले का हार है ॥१२॥

उसने मुगल के लड़के को मार डाला। बाप, भाई और पति कायर थे। स्त्री ने अपने बल से अपने धर्म की रक्षा की।

[३४]

सोला सखी के झुंड में सुन्दर पानी को जाय।
बीच मिले मोगल के छोकड़ा सुन्दर राखा है छिपाय ॥ १ ॥
उड़ती चिरैया बहन मोरी एक वचन लिये जाय।
ये वचन मेरे बाबा से कहना सुन्दर राखा है छिपाय ॥ २ ॥
ये वचन मेरे बिरना से कहना सुन्दर राखा है छिपाय।
ये वचन मेरे स्वामी से कहना सुन्दर राखा है छिपाय ॥ ३ ॥
बाबा सुने ठाढ़े गिरे बिरन रहे मुरझाय।
कन्त ने सुन हँस दिया एक गई लाओं दुइ चार ॥ ४ ॥
आगे के घोड़वा बाबाजी बीचे बीरन जो आय।
पीछे के घोड़वा कन्तजी हँसते आवें मुसकात ॥ ५ ॥
लेरे मुगल का छोकड़ा नौ हाथी का झुण्ड।
लेरे मुगल का छोकड़ा डाली सोना भराय।
सुन्दर देहु न छोड़ाय ॥ ६ ॥
आग लगे हाथी झुंड में सुन्दर राखौं मैं छिपाय।
वज्र परे डाली सोना में सुन्दर राखौं मैं छिपाय ॥ ७ ॥

भूख मरे चन्दा सुन्दरी जाकी पतली कमर
लंबे बार।
प्यास मरे चन्दा सुन्दरी जाकी पतली कमर
लंबे बार॥
नींद मरे चन्दा सुन्दरी जाकी पतली कमर
लंबे बार॥८॥
जा रे मोगल के छोकड़े एक दोना ले आव।
मोगल छोकड़े का दोना ना खावों राखों बाबा की लाज॥९॥
जा रे मोगल के छोकड़े ठंढा पानी ले आव।
मोगल छोकड़े का पानी ना पियों राखों बीरन की लाज॥१०॥
जा रे मोगल के छोकड़े सुन्दर सेज बिछाव।
मोगल सेजपर ना सोवों राखों कन्त की लाज॥११॥
होहुँ जो सत्य बाबा कै बेटी निकले फुँफुँदी से आग।
होहुँ जो सत्य बीरन कै बहिनि निकले फुँफुँदी से आग।
होहुँ जो सत्य कन्तजी के बिअही निकले फुँफुँदी से आग॥१२॥
कोठा ऊपर कोठरी बीचे लागा है केंवार।
तेमे जरे चन्दा सुन्दरी जाकी पतली कमर
लंबे बार॥१३॥
हाथ मले मोगल छोकड़ा सिर धुने पठान।
ई का किये चन्दा बावरी मेरा हरे है ज्ञान॥१४॥

सोलह सखियों के झुंड में सुन्दरी चन्दा पानी को जाती है। रास्ते में मुग़ल का लडका मिला। उसने चंदा को पकडकर छिपा लिया॥१॥

हे उडती हुई चिड़िया! मेरी बहन! तू मेरा एक संदेशा लिये जा। मेरे बाबा से कह देना कि मुग़ल के छोकरे ने चंदा सुन्दरी को छिपा लिया है॥२॥

यही संदेशा मेरे भाई से कहना और यही मेरे पति से भी ॥३॥

संदेशा सुनते ही बाबा तो खड़े ही खड़े गिर पड़े। भाई मुरझाकर रह गया। पति ने सुनकर हँस दिया और कहा—उँह्, दो चार और लाऊँगा ॥४॥

आगे के घोड़े पर बाबा, उनके पीछे भाई और उसके पीछे घोड़े पर मेरे पति मुसकुराते हुये आये ॥५॥

बाबा ने कहा—हे मुगल-पुत्र! नौ हाथियों का झुंड ले लो। भाई ने कहा—डलिया भर सोना लेलो और चंदा को छोड़ दो ॥६॥

मुगल-पुत्र ने कहा—तुम्हारे हाथी के झुंड में आग लगे और सोने पर वज्र पड़े। मैंने तो सुन्दरी चंदा को छिपा रक्खा है ॥७॥

चंदा सुन्दरी, जिसकी कमर पतली है और जिसके बाल लम्बे हैं, भूखों मर रही है।

चंदा सुन्दरी प्यासों मर रही है। चंदा सुन्दरी नींद से मर रही है ॥८॥

मुग़ल का छोकरा एक दोने भरकर मिठाई ले आया। चंदा ने कहा—मैं इसका लाया हुआ दोना न खाऊँगी और अपने बाबा की लाज रक्खूँगी ॥९॥

मुग़ल का छोकरा पानी ले आया। सुन्दरी चन्दा ने कहा—मैं इसका लाया हुआ पानी न पीऊँगी और अपने भाई की लाज रक्खूँगी ॥१०॥

मुग़ल के छोकरे ने सुन्दर सेज बिछवा दी। सुन्दरी चन्दा ने कहा—मैं इस पर न सोऊँगी और अपने पति की लाज रक्खूँगी ॥११॥

चंदा ने कहा—मैं यदि अपने बाबा की असल कन्या होऊँ; मैं यदि अपने भाई की असल बहन होऊँ; मैं यदि अपने पति की सच्ची विवाहिता पत्नी होऊँ; तो मेरी नीवी से आग प्रकट हो ॥१२॥

कोठे के ऊपर कोठरी है। उसमें किवाड़े लगे हैं। उसी में चन्दा

सुन्दरी, जिसकी कमर पतली है और जिसके केश लम्बे हैं, जल रही है ॥१३॥

मुग़ल का छोकरा हाथ मलने लगा। पठान सिर धुनने लगा। अरी चंदा बावली! तूने यह क्या किया? तूने मेरी बुद्धि हर ली ॥१४॥

ऊपर का गीत पटना जिले का है। यह गीत फैजाबाद में इस रूप में प्रचलित है—

सात सखिन के झूमटे, सुन्दरि पनियाँ के जायँ।
बीच मोगल का डेरवा, सुन्दरि गई हैं छिपाय ॥१॥
सरग उड़त तुहूँ चिल्हिया, लागउ मौसी हमार।
हमरा सनेस हमरे बाबा आगे, तोरी बेटी बन्दी हमार ॥२॥
सरग उड़त तुहूँ सुगना, लागउ बिरना हमार।
हमरा सनेस हमरे चाचा आगे, तोरी बेटी बन्दी हमार ॥३॥
हमरा सनेस हमरे बिरना आगे, तोरी बहिन बन्दी हमार।
हमरा सनेस हमरे ससुरे आगे, तोरी बहू बन्दी हमार ॥४॥
हमरा सनेस हमरी सासु आगे, तोरी बहू बन्दी हमार।
हमरा सनेस हमरे सैयाँ आगे, तोरी धना बन्दी हमार ॥५॥
आगे के घोड़वाँ बाप चले, पीछे पितिया हमार।
अलले बछेड़वाँ बीरन चले, बहिनी लेहौं छोड़ाइ ॥६॥
अगले घोड़वाँ ससुर चले, पीछे भसुर हमार।
अलले बछेड़वाँ सैयाँ चले, धना लेहौं छोड़ाइ ॥७॥
अरे अरे मोगल के छोकड़े, लेहु डाल भरि सोन।
बिटिया छोड़हु बहिनी छोड़हु चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस ॥८॥
अरे अरे मोगल के छोकड़े, लेहु बिगहा करोर।
बहू छोड़हु धना छोड़हु चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस ॥९॥

आगि लगाओं तोरं सोनवाँ तोरे बिगहा, धन जरि क्यों न जाइ।
बीबी भली चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस ॥१०॥
बाप, ससुर, भैया जाहु हो, रखिहौं पगड़ी कै लाज।
अन्न जल मोगला ना करउँ, रखिहौं पगड़ी कै लाज ॥११॥
सेज न सोइहौं सैयाँ जाहु हो, रखिहौं पगड़ी कै लाज।
बाप ससुर दोऊ रोइ चले, बिरना चला बिलखाइ ॥१२॥
सइयाँ कुचाली हँसि चला, तो सम रखिहौं पचास।
अरे अरे मोगल के छोकड़े, जरा खाना मँगाव ॥१३॥
भूख पियास लगी चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस।
बत्तिस घड़ा में तेल भरा, बत्तिस भरा है फुलेल ॥१४॥
ठाढ़ि जरै चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस।
हाय हाय करै मोगल का छोकड़ा, तम्बू जरि क्यों न जाय धन जरि क्यों न जाय ॥१५॥
बीबी भली चन्द्रावलि, जाके लम्बे लम्बे केस ॥१६॥

अर्थ स्पष्ट है।

[३५]

बरिसहु बरिसहु देव हे आजु केर रतिया।
आरे पिया के जतरवा सेहु बिलमावहु रे की ॥ १ ॥
जब तु मनवलू हे धनी हे मेघ हे मनवलू।
आरे छतवा बेसाहि के हमे पथ जाएब रे की ॥ २ ॥
देवहुँ रे डोमवा रे भैया रे डाला भरी रे सोनवा।
अरे आज की रैनिया छत्ता जनि बीनहु रे की।
अरे पिया के जतरवा तुहुँ बिलमावहु रे की ॥ ३ ॥

आरे जब तू मनवलू धनी हे डोम हे मनवलू।
अरे कमरी बेसाहि के हमें पंथ जाएव रे की ॥ ४ ॥
देवउँ रे भेड़िहर भैया रे कान दुनु रे सोनवा।
आरे आज की रैनिया कमर जनि बीनहु रे की।
अरे पिया के जतरवा तुहूँ बिलमावहु रे की ॥ ५ ॥
अरे जब तू मनवलू धनि हे भेड़िहर मनवलू।
अरे नैया खेवइ के हमे पथ जाएब रे की ॥ ६ ॥
अरे देइव रे केवटा हाथ के मुँदरिया।
आरे अब की भदउँआँ नैया जनि खोलवहु रे की।
आरे पिया के जतरवा तुहुँ बिलमावहु रे की ॥ ७ ॥
आरे जब तुहुँ धनिया हे केवटा मनवलू।
आरे हिलते डुबइते हम पंथ जाएब रे की ॥ ८ ॥

स्त्री कहती है—हे बादलो! आज की रात बरसो। मेरे प्राणनाथ को यात्रा से रोको ॥१॥

पति कहता है—यदि तुम बादलों को मनाती हो, तो मैं छाता ख़रीद कर चला जाऊँगा ॥२॥

स्त्री डोम से कहती है—हे डोम भाई! मैं तुमको डाल भरकर सोना दूँगी। आज की रात तुम छाता न बिनो ॥३॥

पति कहता है—यदि तुम डोम को मनाती हो, तो मैं कम्बल ख़रीद कर चला जाऊँगा ॥४॥

स्त्री कहती है—हे गड़रिया भाई! मैं तुमको दोनों कानों में पहनने के लिये सोना दूँगी। आज की रात कम्बल मत विनो ॥५॥

पति कहता है—जब तुम गडरियों को मना रही हो, तो मैं नाव खेकर चला जाऊँगा ॥६॥

स्त्री कहती है—हे केवट! मैं तुमको हाथ में पहनने की अँगूठी दूँगी।

तुम इन भादों के महीने में नाव न खोलना ॥७॥

पति कहता है—हे मेरी प्यारी स्त्री ! तुम यदि केवट को मनाती हो, तो मैं पानी में हिलता हुआ, डूबता-उतराता, किसी तरह चला ही जाऊँगा ॥८॥

[३६]

कौन फूल फुलेला घरी रे पहरवा ।
अरे कौन फूल फुले आधी राती, त भौंरा लुभाई ॥ १ ॥
अढ़उल फूल फुलेला घरी रे पहरवा ।
अरे चम्पा फूल फुले आधी राती, त भौंरा लुभाई ॥ २ ॥
तोको देवों भौंरा दूध भात खोरवाँ ।
अरे हरी आगे खबर जनाऊ, त फागुन आई ॥ ३ ॥
उड़ल उड़ल भौंरा गइले उहे देसवाँ ।
अरे जाइ बैठे हरी जी के पाग, त फागुन आई ॥ ४ ॥
पाग से उतरले हरी जाँघे बइसवले ।
अरे पुछे लागे धन कुसलात, त फागुन आई ॥ ५ ॥
तोरी धना प हरी बेदने बेआकुल ।
अरे ओही गुने भौंरा भेजउ, त फागुन आई ॥ ६ ॥
कोठवा उपर कोठरी य झरोखवा से चितइला ।
आ हो राजा रउरे सरीखे क सिपहिया कतहुँ नाहीं देखीला हो ॥७॥

कौन फूल पहर घड़ी रात रहे और कौन फूल आधी रात में फूलता है ? जिस पर भौंरा लुभाया रहता है ॥१॥

अड़हुल पहर रात रहे फूलता है और चम्पा आधी रात में फूलता है ॥२॥

हे भौंरा ! मैं तुमको कटोरे में दूध-भात खाने को दूँगी । तुम जाकर मेरे प्राणनाथ को ख़बर जनाओ कि फागुन आ गया ॥३॥

भौंरा उड़ते-उड़ते उस देश में गया, जहाँ स्त्री का प्रियतम था और उसकी पाग पर बैठ गया ॥४॥

प्रियतम ने पाग से उसे उतारकर जाँघ पर बैठा लिया और अपनी स्त्री का हाल-चाल पूछा ॥५॥

भौंरे ने कहा—हे हरि! तुम्हारी प्राणप्यारी स्त्री बहुत व्याकुल है। 'फागुन आ गया' यह कहने ही के लिये उसने भौंरे को भेजा है ॥६॥

स्त्री ने कहा है—हे स्वामी! कोठे के ऊपर जो कोठरी है, उसमें जो खिड़की है, उस खिड़की में से झाँकती रहती हूँ। पर हे हरि! तुम्हारे सरीखा कोई पथिक कहीं दिखाई नहीं पड़ता ॥७॥

[३७]

उठि भिनसरवाँ सुगिया अँगना बटोरै
खुटिला लहँगवा भुइँआ लोढ़ै रे जी ॥ १ ॥

देहु न सासू हम का सोने का घइलवा रे
पनिया क जावै पनघटवाँ रे जी ॥ २ ॥

पनिया क गई सुगिया वही पनिघटवाँ रे
एक मुरहवा घटवा छेंकै रे जी ॥ ३ ॥

छोड़ु, छोड़ु, जेठवा मोरा पनिघटवा रे
झिसवन भीजै मोरि चुनरिओ रे जी ॥ ४ ॥

भिजै देउ जिरवा रे भिजै देउ जिरवा रे
हमरी चदरिया ओढ़ि जाइब रे जी ॥ ५ ॥

तोहरी चदरिया जेठ अगिया धधाकै
भिजली चुनरिया ओढ़ि जावै रे जी ॥ ६ ॥

घइलन भरि भरि धरेहुँ करवा रे
भिजली चुनरिया ओढ़ि जावै रे जी ॥ ७ ॥

खाँउ वहुअवा तोहरा भइआ भतिजवा रे
कँहवाँ लगाइउ पती बेरिआ रे जी ॥ ८ ॥
काउ कहौं सासू लजिया क बतिया रे
जेठवा मुंरहवा घटवा छेंकै रे जी ॥ ९ ॥
घोड़वा पलाने जेठ वही घोड़सरिया रे
चला गये बन का अहेरवा रे जी ॥१०॥
उँचवै मारेन जेठ खलवाँ गिरायन
चँदन बिरउआ ओठँगायन रे जी ॥११॥
कँहवाँ भिजलि जेठ पाँउ क पनहिया रे
कँहवा भिजलि तरवरिया रे जी ॥१२॥
ओसिया भिजलि भैहु पाँव क पनहिया रे
बन के सउजवा तरवरिया रे जी ॥१३॥
कँहवे मारेउ जेठ कँहवै गिरायो
कँहवा बिराजै हरि लोथियो रे जी
कउनै बिरउआ ओठँगायो रे जी ॥१४॥
जो तू जेठवा हमनउ लोभानेउ
हमका बतावउ हरि का लोथिया रे जी ॥१५॥
उँचवैं मार्‍यों भैहु खलवाँ गिरायों
चन्दना बिरउआ ओठँगायो रे जी ॥१६॥
तोहैं छोड़ि जेठवा हम कतहुँ न जावै
चलो जेठ लोथिया बतावो रे जी ॥१७॥
जौ तू जेठवा हमही लोभाने
लै आवउ चँदना लकड़िया रे जी ॥१८॥
आले आले बँसवा कटावउ रे जी
लै आवउ गइया का घिअना रे जी
लै आवउ हमका अगिनिया रे जी ॥१९॥

जौ लगि जेठवा अगिनि लै के आवैं
तौ लगि होइ गइ सुगिया सतिया रे जी ॥२०॥
मुड़वा पटकि रोअइ उहै रे मुरहवा
तोरी दिहौं आपन दाहिनि बहिआँ रे जी ॥२१॥

सुगिया बड़े सबेरे उठकर आँगन बटोरती है। उसका एँड़ी तक लम्बा लहँगा ज़मीन पर घसिटता चलता है ॥१॥

सुगिया ने कहा—हे सासजी! मुझे सोने का घड़ा दो न? मैं पनघट पर पानी भरने जाऊँगी ॥२॥

सुगिया पनघट पर पानी भरने गई। जेठ दुष्ट ने उसका रास्ता छेंका ॥३॥

सुगिया ने कहा—हे जेठ! मेरा रास्ता छोड़ दो, छोड़ दो। पानी के झींसे से मेरी चूनरी भीग रही है ॥४॥

जेठ ने कहा—हे जीरा ऐसी पतली सुन्दरी! चूनरी भीगने दो। मेरी चादर ओढ़कर चली जाना ॥५॥

सुगिया ने कहा—हे जेठ! तुम्हारी चादर तो मेरे लिये धधकती हुई आग की तरह है। मैं तो भीगी हुई चूनरी पहनकर ही घर जाऊँगी ॥६॥

सुगिया ने घड़ा भरकर कगार पर रक्खा और उसे लेकर भीगी चूनरी ओढ़े हुये वह घर गई ॥७॥

सास ने कहा—बहू! मैं तेरा भाई भतीजा खा जाऊँगी। सच बता, तुझे इतनी देर कहाँ लगी? ॥८॥

बहू ने कहा—हे सासजी! क्या कहूँ? लाज की बात है। दुष्ट जेठ मेरी राह छेंकते हैं ॥९॥

घुड़सार में जाकर और घोड़े पर जीन कसकर जेठ शिकार के लिये बन में चला गया ॥१०॥

वहाँ उसने छोटे भाई को किसी ऊँचे टीले पर मार डाला और उसे

नीचे ढकेलकर चन्दन के वृक्ष के सहारे खड़ा कर दिया ॥११॥

जेठ के लौट आने पर बहू ने पूछा—ऐ जेठ! तुम्हारे पाँव का जूता कहाँ भीगा? और तुम्हारी तलवार कहाँ भीगी? ॥१२॥

जेठ ने कहा—हे भ्रातृवधू! ओस से मेरा जूता भीग गया है और शिकार में तलवार भीग गई है ॥१३॥

बहू समझ गई। उसने पूछा—हे जेठ! सच बताओ। तुमने मेरे स्वामी को कहाँ मारा? कहाँ फेंका? और किस वृक्ष से लाश को ओठँगाया है? मेरे प्रियतम की लाश कहाँ विराज रही है! ॥१४॥

हे जेठ! यदि तुम मुझ पर आसक्त हो, तो मुझे बताओ कि मेरे हरि की लाश कहाँ है? ॥१५॥

जेठ ने कहा—मैं ने ऊँचे पर मारा। फिर नीचे ढकेल दिया और लाश को चंदन के वृक्ष से ओठँगा दिया? ॥१६॥

बहू ने कहा—हे जेठ! मैं तुमको छोड़कर और कहीं नहीं जाऊँगी। मुझे मेरे स्वामी की लाश बता दो ॥१७॥

हे जेठ! जो तुम मुझ पर लुभाये हो, तो चंदन की लकड़ी ला दो ॥१८॥

हरे-हरे बाँस कटाओ। गाय का घी और आग ले आओ ॥१९॥

जब तक जेठ आग लाने गया, तब तक यहाँ सुगिया पति के साथ सती हो गई ॥२०॥

मूर्ख जेठ सिर पटककर रोने लगा—हाय! मैंने अपनी दाहिनी भुजा तोड़ दी ॥२१॥

[३८]

पछिम के जँतवा रे पूरब के तेनई रे
कोठे ऊपर जँतवा पीसइ रे की ॥ १ ॥

झीनी झीनी चरिया रे झीनी रे बेअरिया रे
छले छले नैना नीर ढारै रे की ॥ २ ॥

बटवा जे पूछे राम बटोहिया जे पुछले
केकर जोहल बाट रे की ॥ ३ ॥
केकर रटिया जोह नैना से नीर ढार
कवने बिपतिया तुहूँ रोवलु रे की ॥ ४ ॥
दुअरे नरँगिया गाछ फुलई बारहो मास
जेकर बिरिछिया बटिया जोहीला रे की ॥ ५ ॥
जेकर बिरिछिया राम सेहू परदेस गेलले
एही दुःखे नयना निरवा ढारल रे की ॥ ६ ॥
डाल भर सोना लेऊ मोतिया से माँग भरू
छोड़ि जँतवा मोरे संग लागु रे की ॥ ७ ॥
आगि लगो सोनवाँ में वजर परो मोतिया
सत छोड़े कैसे पत रहिहै रे की ॥ ८ ॥

पश्चिम का जाँत (जो बहुत भारी होता है) पूर्व की स्त्री कोठे के ऊपर पीस रही थी ॥१॥

वह महीन साड़ी पहने हुये थी। मंद-मंद हवा चल रही थी। क्षण-क्षण पर वह आँखों से आँसू गिराया करती थी ॥२॥

राह चलते हुये पथिक ने पूछा—हे स्त्री ! तुम किसकी बाट जोह रही हो ? ॥३॥

किसके लिये ? और किस विपदा के कारण तुम रो रही हो ? ॥४॥

स्त्री ने कहा—मेरे द्वार पर जो नारंगी का वृक्ष है, जो बारहो महीने फलता है, उसे जिसने लगाया था, मैं उसी की राह देख रही हूँ ॥५॥

जिसका यह वृक्ष है, वह परदेश गया है। मैं उसी के लिये रो रही हूँ ॥६॥

पथिक ने कहा—हे स्त्री ! मुझसे डाल भरकर सोना लो। चलो, मैं तुम्हारी माँग मोतियो से भर दूँगा। जाँत छोडकर मेरे साथ चली चलो ॥७॥

स्त्री ने कहा—तुम्हारे सोने में आग लगे और मोती पर वज्र गिरे। मैं यदि सत छोड़ दूँ तो पत कैसे रहेगी ? ॥८॥

सच है :—

सत मत छोड़ै बावरे, सत छोड़े पत जाय।

[३९]

देहु न मोरि सासु सोने का घइलना,
हमहूँ ननदी पनियाँ का जावै हो ना ॥ १ ॥
जतने तू मोरी ननदी हाँथ मुँह धोवा,
हम देखि आई जोगिया का मँदिरवा हो ना ॥ २ ॥
हथवौ धोइन ननदी मुँहवौ धोइन,
नाहीं आईं भौजी अलबेली हो ना ॥ ३ ॥
घोड़ा चढ़े आवैं रजवा के पुतवा,
तुहूँ देखे भौजी अलबेली हो ना ॥ ४ ॥
भौजी क देखेन हम जोगी के मिढ़ुलिया,
जोगिया से करल ठिठोलिया हो ना ॥ ५ ॥
इतने में दौरी आईं भौजी रँगरैली,
ननदी से करैं जूड़ी बतिया हो ना ॥ ६ ॥
लेहु न मोरी ननदी करका कँगनवाँ,
भैया से लैया न लगाये हो ना ॥ ७ ॥
करके कँगनवाँ वजर परै भौजी,
हम भैया से लैया लगौवै हो ना ॥ ८ ॥
आगि लगै भैया तोरि ठकुरइया,
भौजी जाथीं जोगी के मिढ़ुलिया हो ना ॥ ९ ॥

हे सास ! सोने का घड़ा मुझे दो। मैं ननद के साथ पानी भरने जाऊँगी ॥१॥

दोनों पानी भरने गईं। भौजाई ने कहा—हे ननद! जब तक तुम हाथ-मुँह धोओ, तब तक मैं जोगी का मंदिर देख आऊँ ॥२॥

ननद हाथ भी धो चुकी; मुँह भी धो चुकी; पर छैल-छबीली भौजी नहीं लौटी ॥३॥

एक राजपुत्र घोड़े पर सवार उधर से आ रहा था। ननद ने उससे पूछा—तुमने मेरी अलबेली भौजी को देखा है? ॥४॥

राजपुत्र ने कहा—हाँ, हाँ, मैंने तुम्हारी भौजाई को जोगी की कुटी मे, उससे हँसी-दिल्लगी करते देखा है ॥५॥

इतने मे रंगीली भौजी दौड़कर आई और ननद से मीठी बातें करने लगी ॥६॥

हे मेरी ननद! यह मेरे हाथ का कंगन ले लो। अपने भाई से चुगली न खाना ॥७॥

ननद ने कहा—तुम्हारे हाथ के कंगन पर वज्र गिरे। भैया से मैं ज़रूर कहूँगी ॥८॥

घर आकर ननद ने कहा—हे भैया! तुम्हारी ठकुराई में आग लगे। भौजी जोगी की कुटी में जाया करती हैं ॥९॥

आजकल बहुत से जोगी, साधू और साँइयों के मठ, कुटी और तकिये व्यभिचार के अड्डे होते हैं। स्त्रियों ने इस गीत-द्वारा इसे स्वीकार किया है, और पुरुषों को सावधान किया है।

[४०]

सेर भर गेहुआँ रे, बाँस के चँगेरिया,
अरे पीसन चलेलीं जँतसरिया हो रामा ॥ १ ॥
जाँत न चले राम किलवा न डोले,
अरे जुअवा धइले सखी रोवलीं हो रामा ॥ २ ॥

झँझरे झरोखा चढ़ि रजवा निरखले,
केकर तिरियवा रोवे जँतसरिया हो रामा ॥ ३ ॥
तू का जनवेउ तुहूँ रे सिपहिया,
अरे तोहरै तिरियवा रोवे जँतसरिया हो रामा ॥ ४ ॥
जाँत से उठवलें रे गोद वइठवलें,
अरे अपने रुमलिया पोंछ नैना हो रामा ॥ ५ ॥
गोड़ तोरा लागों रे ननदी के भइया,
अरे रसे रसे वेनिया डोलावहु हो रामा ॥ ६ ॥
वेनियाँ डोलावत अइलैं सुख निंदिया,
अरे परि गइलें सासु के नजरिया हो रामा ॥ ७ ॥
वावा खाउँ भइया खाउँ तोहरा वहुअवा,
अरे कवन रसिकवा वेनिया भेजले हो रामा ॥ ८ ॥
जनि सासु वावा खाहु जनि ननद भइया खाहु,
अरे तोहरै वेटउआ वेनियाँ भेजले हो रामा।
अरे तोहरै भइयवा वेनियाँ भेजले हो रामा ॥ ९ ॥
हमरो वेटउआ राजा की चकरिया,
कव अइलें कव गइलें हो रामा ॥१०॥
तोहरो वेटउआ राजा की चकरिया,
राति अइलें राति गइलें हो रामा ॥११॥

सेर भर गेहूँ बाँस की टोकरी में लेकर वहू जाँत में पीसने चली। पति के विरह में न उससे जाँत ही चलता है, न कीला ही डोलता है। वह हत्थे को पकड़े रो रही है ॥१,२॥

झरोखे से उसका प्राणेश्वर देखता और पूछता है—किसकी स्त्री जाँत के घर में रो रही है? ॥३॥

किसी ने कहा—हे सिपाही! तुम क्या जानो? तुम्हारी ही स्त्री जाँत के घर में रो रही है ॥४॥

पति ने स्त्री को जाँत से उठाकर गोद में बैठाया और अपनी रूमाल से उसके कमल ऐसे नेत्रों को पोंछ दिया ॥५॥

बहू कहती है—हे मेरी प्यारी ननद के भाई! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। धीरे-धीरे पंखी डुलाओ ॥६॥

पंखी हाँकते-हाँकते स्त्री को सुख की नींद आगई। इतने में सास की दृष्टि उस पर पड़ गई। उस समय उसका पति उठ गया था ॥७॥

सास ने कहा—बहू! तेरे भाई को खाऊँ, तेरे बाप को खाऊँ। बता, किस यार ने तुझे यह पंखी भेजी है? ॥८॥

बहू कहती है—हे सास! हे ननद! न मेरे बाप को खाओ, न भाई को खाओ। तुम्हारे बेटे ने, तुम्हारे भाई ने यह पंखी दी है ॥९॥

सास ने पूछा—मेरा बेटा तो राजा की चाकरी में रहता है। वह कब आया? ॥१०॥

बहू कहती है—हे सास! यह सच है कि तुम्हारे बेटा राजा की चाकरी में हैं। पर वह रात में आये थे और रात ही में लौट गये ॥११॥

हिन्दू-गृहस्थी में बहू पर संदेह किया जाना प्रायः दैनिक घटना है। पति को चोर की तरह अपनी स्त्री के पास जाना आना पड़ता है। वह अपनी स्त्री को कोई चीज बिना अपनी माँ आदि घर के लोगों को दिखाये नहीं दे सकता।

सावन के गीत

सावन का महीना बड़ा ही सुहावना होता है। आकाश नीले बादलों मे घिरा रहता है। घटायें हाथियों के समूह की तरह क्षितिज पर से उमड़ती हुई आती हैं। वायु कर्त्तव्यनिष्ठ सेनापति की भाँति उन्हें एक ओर से दूसरे छोर तक भेजता रहता है। बीच-बीच में बक-पंक्ति की शोभा चित्त को मोहे लेती है। कभी-कभी घटा घहराती है, बिजली चमकती है, छप्-छप् बूँदें गिरने लगती हैं, मानों कोई अप्सरा नृत्य कर रही है।

कुल वृक्ष, लता और पौधे धो उठते हैं। सब के पत्ते निखर आते हैं। खेत और जंगल सब हरियाली से भर जाते हैं। बीच-बीच में जो स्थान नीचे होते हैं, वे पानी से भर जाते हैं। मानों हरियाली में किसी ने दर्पण जड़ दिये हैं।

नाले बहने लगते हैं। नदियाँ उमड़ चलती हैं। तालाब मुँह तक भर आते हैं।

पृथ्वी पर तरह-तरह के नये जीव पैदा हो जाते हैं। सब अपनी-अपनी बोलियाँ बोलने लगते हैं। झींगुर की 'झीं' 'झीं' और मेढक की 'टर्र' 'टर्र' से दिशायें भर जाती हैं। पशु कलोल करने लगते हैं। पक्षी कलरव करने लगते हैं। मानों सोई हुई प्रकृति जाग उठती है।

किसान अपने हरे-भरे खेत के किनारे अपने भविष्य की कल्पनाओं में मस्त दिखाई पड़ता है। ग्वाला मैदान में अपनी गायें भैंसें लिये बिरहा

गाने में बेसुध हो रहा है। कहार डोलियों में कन्याओं को उनके नैहर की ओर लिये जाते हुये और मर्मवेधी गीत गाते हुये दिखाई पड़ते हैं।

कुछ स्त्री और पुरुष धान के खेत में काम करते हुये मिलते हैं। जिनमें स्त्रियाँ अपने कलकंठ से, लहराती हुई पूर्वी हवा में मादकता भरती हैं और आस-पास के प्राणियों को निस्तब्ध और मूक-वेदना मे निमग्न करती रहती हैं।

सावन में बहुत से मेले होते हैं। मेले में जाते हुये स्त्री-पुरुषों के झुंड के झुंड गीत गाते चलते हैं। कन्याओं के कई त्योहार भी सावन और भादों में पड़ते हैं। उनमे भी गीतों ही का प्राधान्य रहता है। स्थान-स्थान पर नाग-पंचमी और तीज के मेले लगते हैं, जिनमे कजलियाँ गाई जाती हैं। मिर्ज़ापुर में कजली का बड़ा प्रसिद्ध मेला होता है।

यहाँ सावन के कुछ गीत, जिनमें खेत निराते समय और झूला झूलते समय के गीत मुख्य हैं, दिये जाते हैं—

निरवाही के गीत

आषाढ़ में बोये हुये खेत जब अच्छी तरह जम आते हैं, तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे व्यर्थ पौधे उखाड़कर फेंक दिये जाते हैं। इस काम को खेत निराना या निरवाही कहते हैं। यह काम प्रायः चमारिनें करती हैं। अतएव इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, वे मुख्यतः चमारिनों ही के समझे जाने चाहियें।

[१]

एक दैयाँ अउता भैया हमरेउ देसवा रे ना।
भैया बहिनी क देखि सुनि जातेउ रे ना॥ १॥
तोहरे देसवाँ बहिनो ढाँक ढँखुलिया रे ना।
बहिनी रहिया माँ बाघ बघिनिया रे ना॥ २॥
हथवा में लइ लेत्या ढाल 'तरवरिया रे ना।
भैया काउ करतै बाघ बघिनिया रे ना॥ ३॥
आवत देख्यों मैं दुइरे सिपहिया रे ना।
रामा एक रे गोरा एक साँवर रे ना॥ ४॥
गोरऊ तो मोरी माई क पुतवा रे ना।
रामा सँवरू ननँद जी क भैया रे ना॥ ५॥
मचियै बैठी हैं सासू बढ़इतिन रे ना।
सासू काउ रे बनाई जेंवनरवा रे ना॥ ६॥

कोठिलहि बहुवरि सरली कोदइया रे ना।
बहुवरि मेंड़वा मसउढ़े क सगवा रे ना॥७॥
अगिया लगावों सासू सरली कोदइया रे ना।
रामा बजर परै मसुढ़े के सगवा रे ना॥८॥
मैदा चालि चालि लुचुई पोवाईं रे ना।
बहुवरि खोंटि लाईं बथुवा क सगवा रे ना॥९॥
बहुअरि रीन्हि डारीं मुँगिया क दलिया रे ना।
बहुअरि मोती सारी झिनवाँ क भतवा रे ना॥१०॥
सोने के थरिया में जेवना परोस्यों रे ना।
रामा उपराँ से घियना कै धरिया रे ना॥११॥
रामा जेंवैं बैठे सार बहनोइया रे ना।
रामा सरऊ क ढूरै अँसुइया रे ना॥१२॥
की भैया समझे है माई कल्योना रे ना।
भैया की रे बहू कै जूड़ि बोलिया रे ना॥१३॥
ना हम समझे भाई माई कल्योना रे ना।
भाई नाहीं बहुअरि जूड़ि बोलिया रे ना॥१४॥
चन्दा सुरुज ऐसी बहिनी सँकल्यों रे ना।
हाय जरि जरि भई है कोइलिया रे ना॥१५॥
बैठौ न मोरे भइया मलिनी ओसरवाँ रे ना।
भैया मोरा दुख कहै मालिन धेरिया रे ना॥१६॥
कै मन कूटौं भैया कै मन पीसौं रे ना।
भैया कै मन सिझवउँ रसोइया रे ना॥१७॥
सासू खाँची भरि बसना मँजावैं रे ना।
सासू पनिया पताल से भरावैं रे ना॥१८॥

सब का खिआवौं भैया सबका पिआवौं रे ना।
भैया बचि जाथै पिछली टिकरिया रे ना ॥१९॥
भैया ओह्नु माँहे ननदी कल्योना रे ना।
भैया ओह्नु माँहे गोरू चरवहवा रे ना ॥२०॥
भैया ओह्नु माँहे कुकुरा बिलरिया रे ना।
भैया ओह्नु माँहे देवरा कल्योना रे ना ॥२१॥
पहिरौं मैं भैया मोरे सब क उतरवा रे ना।
भैया सरी गली फटही लुगरिया रे ना ॥२२॥
भैया ओह्नु माँहे ननदी ओढ़निया रे ना।
भैया ओह्नु माँहे देवरा कछोटिया रे ना ॥२३॥
लोहवा जरै जैसे लोहरा दुकनिया रे ना।
मोरी बहिनी जरै ससुररिया रे ना ॥२४॥
ई दुख जिनि कह्यो भैया भौजी के अगवाँ रे ना।
भौजी दुइ चारि बर कहि अइहीं रे ना ॥२५॥
ई दुख जिनि कह्यो भैया माई के अगवाँ रे ना।
माई छतिया बिहरि मरि जैहैं रे ना ॥२६॥
ई दुख जिनि कह्यो चाची के अगवाँ रे ना।
चाची झगड़ा लड़ैया ठना देइहैं रे ना ॥२७॥
ई दुख जिनि कह्यो भैया बाबा के अगवाँ रे ना।
सभवै बैठि बाबा रोइहैं रे ना ॥२८॥
ई दुख जिनि कह्यो भैया बहिनी के अगवाँ रे ना।
बहिनी हलिया सुनि ससुरे न जैहैं रे ना ॥२९॥
ई दुख कह्यो भैया अगुवा के अगवाँ रे ना।
भैया जिन मोरी करी अगुवइया रे ना ॥३०॥

ई दुख कह्यो भैया बभना के अगवाँ रे ना।
भैया जिन मोरी लगन बिचारेउ रे ना ॥३१॥
ई दुख तुम भैया मनही में राखेउ रे ना।
भैया करम लिखा तस भोगव रे ना ॥३२॥
सब दुख बाँधउ भैया अपनी मोटरिया रे ना।
भैया नदिया दिहा पौढ़ाई रे ना ॥३३॥
सभवैं बइठ बाबा चितवैं रे ना।
ए हो पुतवा आवै धियवा नाहीं रे ना ॥३४॥
जैसे बाबा उमड़ै जमुनवा रे ना।
बाबा वैसे रोवै मोर बहिनियाँ रे ना ॥३५॥
जाँघ तोर थाके बेटा बहियाँ घुन लागे रे ना।
बेटा रोवति बहिन छोड़ि आयउ रे ना ॥३६॥
राम रसोइयाँ धनिया जे चितवैं रे ना।
ए हो सैंयाँ त आये ननदी नाहीं रे ना ॥३७॥
सैंयाँ जेंवहु आइ जेंवनवाँ रे ना।
सैयाँ कहहु ननदी कुसलतिया रे ना ॥३८॥
जैसे धनिया! उअले अँजोरिया रे ना।
धनिया तइसे उअल मोर बहिनिया रे ना ॥३९॥

बहन ने भाई से कहा था—हे भैया! एक बार मेरे देश में आते और अपनी बहन का भी दु.ख-सुख देख-सुन जाते ॥१॥

भाई ने कहा—हे बहन! मैं तुम्हारे देश में कैसे आऊँ? तुम्हारे देश मे तो ढाँक का जंगल मिलता है। जिसमें बाघ लगते हैं ॥२॥

बहन ने कहा—भैया! हाथ मे ढाल-तलवार लेकर आओगे तो बाघ तुम्हारा क्या करेगा? ॥३॥

कभी अवसर पाकर भाई बहन के यहाँ गया। उसे आता देखकर उसकी बहन सास से कहती है—

मैं दो जनों को आता हुआ देख रही हूँ। एक गोरा है, दूसरा साँवला ॥४॥

गोरा मेरा भाई है। और साँवला मेरा पति ॥५॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी हैं। बहू ने पूछा—हे सास! इनके लिये क्या रसोई बनाऊँ? ॥६॥

सास ने कहा—हे बहू! कोठिले में सड़ी हुई कोदौ है, और मेंड़ पर मसूड़े का साग है ॥७॥

बहू ने कहा—सड़ी हुई कोदौ में आग लगे और मसूड़े के साग पर वज्र गिरे ॥८॥

बहू ने मैदा चालकर लुचुई (रोटी) बनाई और बथुवा खोंटकर साग बना लिया ॥९॥

बहू ने मूँग की दाल डाल दी और महीन चावल का मोती ऐसा भात रींध दिया ॥१०॥

सोने की थाली में भोजन परोसकर उसमें ऊपर से घी डाला गया ॥११॥

साले-बहनोई दोनों खाने बैठे। खाते-खाते साले की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली ॥१२॥

बहनोई ने पूछा—क्या तुम्हें माँ के हाथ का कलेवा याद आ रहा है? या स्त्री की मीठी-मीठी बातें याद आ रही हैं? ॥१३॥

साले ने कहा—न तो मुझे माँ के हाथ का कलेवा याद आ रहा है, और न स्त्री की मीठी-मीठी बातें ही ॥१४॥

चाँद और सूर्य की सी बहन मैंने तुमको दी थी, पर (तुम ने इतना कष्ट दिया कि दुःख में) जल-जल कर वह कोयला (या कोयल) हो गई है ॥१५॥

बहन ने कहा—भैया, मालिन के ओसारे में तो एक बार जाकर बैठो। उसकी कन्या तुम से मेरे दुःख का सब हाल कहेगी ॥१६॥

हे भैया! के मन कूटती हूँ। के मन पीसती हूँ। के मन की रसोई बनाती हूँ ॥१७॥

सास खाँची भर बरतन मुझ से मँजवाती है। और पाताल से पानी कढ़वाती है ॥१८॥

सब को खिलाती हूँ, सब को पिलाती हूँ, अन्त में जो सब से पीछे वाली टिकरी (छोटी रोटी) बच रहती है ॥१९॥

उसमें से भी ननद के लिए कलेवा रखना पड़ता है। चरवाहे को देना पड़ता है ॥२०॥

कुत्ते बिल्ली को टुकड़ा देना पड़ता है। देवर के लिए कलेवा रखना पड़ता है ॥२१॥

पहनने का यह हाल है कि घरवाले पहनकर जो कपड़ा उतार देते हैं, उस सड़े-गले कपड़े में से ननद की ओढ़नी, देवर की कछोटी के लिए कपड़ा देकर जो बचता है, वह मुझे पहनने को मिलता है ॥२२,२३॥

भाई ने कहा—हाय, लोहा लोहार की दूकान में जल रहा है और मेरी बहन ससुराल में जल रही है ॥२४॥

बहन ने कहा—हे भैया! यह दुख भौजी के सामने न कहना। वह दो-चार घरों में बाँट आयेगी ॥२५॥

हे भैया! यह दुःख माँ से भी मत कहना। नहीं तो वह छाती फाड़कर मर जायगी ॥२६॥

हे भैया! यह दुःख चाची से भी मत कहना। वह बोली-ठोली में ताना मारेगी ॥२७॥

हे भैया! यह दुख बाबा से भी मत कहना। नहीं तो वे गाँव के लोगों के बीच में बैठकर रोयेंगे ॥२८॥

हे भैया! यह दुःख बहन के सामने भी न कहना। नहीं तो वह ससुराल न जायगी ॥२९॥

हे भैया! यह दुःख अगुवा से कहना, जिसने इस घर में लाकर मेरा विवाह कराया ॥३०॥

हे भैया! यह दुःख उस ब्राह्मण से कहना, जिसने लग्न शोधकर विवाह कराया था ॥३१॥

अन्त में बहन कहती है—हे भैया! यह दुःख मन ही मे रखना। जैसा कर्म में लिखा है, वह भोगूँगी ॥३२॥

बहन फिर कहती है—हे भैया! सब दुःखों को गठरी में बाँध लो और नदी में डुबो देना। अर्थात् किसी से न कहना ॥३३॥

सभा में बैठे हुये बाबा देख रहे हैं कि पुत्र तो आ रहा है, पर बेटी नहीं आ रही है ॥३४॥

पुत्र ने कहा—हे पिता! जैसे जमना उमड़ कर बहती है, वैसे ही मेरी बहन रो रही है ॥३५॥

बाप ने क्रुद्ध होकर कहा—बेटा! क्या तुम्हारी जाँघ थक गई? या भुजाओं में घुन लग गया? जो तुम रोती हुई बहन को छोड़ आये ॥३६॥

रसोई-घर में बैठी हुई बहू देख रही है कि स्वामी तो आये, पर ननद नहीं आई ॥३७॥

बहू ने कहा—हे स्वामी! आकर भोजन कर लो। हे स्वामी! ननद का समाचार बताओ ॥३८॥

पति ने कहा—हे प्यारी स्त्री! मेरी बहन चन्द्रमा की तरह उदय हो रही है ॥३९॥

एक नवविवाहिता बधू का भाई उससे मिलने आया है। बहन ने भाई से अपनी ससुराल की गृहस्थी का जो मार्मिक वर्णन किया है, वही इस गीत में गाया गया है।

इस गीत में कितनी मर्म-व्यथा भरी है ! कितनी अन्तर्पीड़ा व्याप्त है !! पढकर ही आँखों में आँसू आ जाते हैं । लहराती हुई पूर्वा हवा में, धान का खेत निराते समय स्त्रियों—मुख्य कर चमारिनों—के ऊँचे कण्ठ से यह गीत सुनकर मन की दशा अवर्णनीय हो जाती है ।

इस गीत में अत्युक्ति का एक भी शब्द नहीं है । गाँवों में कितने ही घरों की ऐसी ही दशा है । कितने ही घरों मे बहुओं को वर्णनातीत दुःख है । खाने का कष्ट, पहनने का कष्ट, व्यङ्ग्य और ताने का कष्ट, मार-पीट का कष्ट, कहाँ तक गिनाये जायँ; बहुएँ बेचारी मूक पशु की भाँति सब सहती रहती हैं । पुरुष इतने कष्ट कभी नहीं सह सकता ।

इस गीत मे कष्टों का जो वर्णन है, उसके सिवा दो बातें विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । एक तो बहू का अपने मायके के लिए विशेष ध्यान । वह भाई से कहती है कि मेरे कष्टों का हाल मेरी भावज से न कहना, नहीं तो वह दो-चार घरों में बाँट आयेगी । मा, बहन और बाबा से भी कुछ कहने को रोकती है । उसकी शिकायत तो अगुवा और ब्राह्मण से है, जिन्होंने इस घर में लाकर उसे दुःख में डाला ।

दूसरे बहू की सहनशीलता । बहू ने भाई से कहा कि मेरा दुःख किसी से न कहना । नदी के उस पार मेरे कष्टों की कथा न ले जाना । मैं अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रही हूँ । मैं अब तो इस घर में बँध ही गई हूँ, जैसे होगा, निबाहूँगी । उसका अन्तिम वाक्य सहनशीलता की पराकाष्ठा दिखाता है ।

भाई ने आकर अपनी बहन का जो वर्णन अपनी स्त्री से किया है, वह भी एक खास प्रकार की मनोवृत्ति का द्योतक है । ननद का दुःख सुनकर उसकी भौजाई को कौतूहल होता और वह अवश्य दो-चार को बाँट आती । इसीसे पति ने उससे असली हाल नहीं कहा ।

यह गीत किसने बनाया ? क्या किसी अक्षर और मात्रा गिननेवाले

कवि ने? या पिङ्गल और अलङ्कार के किसी उद्भट विद्वान् ने? नहीं, यह प्राकृतिक रचना है। यह हाहाकार स्त्री-कण्ठ से आप से आप फूट निकला है। दुखिया बेचारियों की पुकार जब किसी ने न सुनी, तब उनके हृदय की वेदना हलकी करने के लिए, कविता-देवी ने उन पर दया करके, स्वयं यह गान गाया है।

न जाने कितने दिनों से विवाह के स्वार्थी दलालों—अगुवा और ब्राह्मण—के विरुद्ध स्त्रियाँ खेतों-खलियानों, गली-कूचों में पूरे जोर से चिल्ला रही हैं, पर पुरुषों ने क्या ध्यान दिया? स्त्रियों के इस हाहाकार को किसी ने सुना?

आश्चर्य की बात तो यह है कि जब पड़ोस में एक अबला नारी भीषण यातना से चिल्ला रही थी तब हमारे हिन्दी के कवि-पुङ्गव कुच और कपोल के वर्णन के लिए अनार, बेल, गुलाब और कचौड़ी के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ रहे थे, या किसी अभिसारिका को भौंरों की भीड़ में छिपाये किसी विषयी के पास लिये जा रहे थे। कवि की बधिरता से व्यग्र होकर स्त्रियों ने अपनी वेदना अपने आप ही कह डाली है।

'सरस्वती' में यह गीत पढ़कर कितने ही हृदयवान् लोग रो उठे थे।

[२]

हमरे बबैया जू के सात बेटौवा रे ना।
रामा सातौ के चंदा बहिनिया रे ना॥ १॥
रामा सातौ भैया चले परदेसवा रे ना।
रामा चंदा बहिनी लागी गोहनवाँ रे ना॥ २॥
फिरि जाव फिरि जाव चंदा बहिनिया रे ना।
बहिनी तुहैं लौबै चंदा हरौवा रे ना॥ ३॥
बरहे बरिसवाँ प लौटे सातौ भैया रे ना।
रामा ठाढ़ भै चंदा के मोहरवाँ रे ना॥ ४॥

भीतर वाटिउ कि वहिरे वहिनिया रे ना।
रामा थामि लेतिउ चंदा हरौवा रे ना ॥ ५ ॥
मोरे पिछवरवाँ पंडित भैया मितवा रे ना।
भैया चंदा क सोधौ गवननवाँ रे ना ॥ ६ ॥
आजु एकादसिया भियान दुवादसिया रे ना।
रामा तेरसी का वनथै गवनवाँ रे ना ॥ ७ ॥
पहिले पहिल चंदा आई है गवनवाँ रे ना।
रामा उनकै ससुर माँगैं पनिया रे ना ॥ ८ ॥
पनिया अँड़ोरत झलकै चंदा हरौवा रे ना।
चंदा कहाँ पाइउ चंदा हरौवा रे ना ॥ ९ ॥
हमरे ववैया जू के सात बेटौवा रे ना।
वाबा ओई दिहे चंदा हरौवा रे ना ॥१०॥
पहिले पहिल चंदा आई है गवनवाँ रे ना।
उनकै जेठवा माँगैं जूड़ पनियाँ रे ना ॥११॥
पनियाँ अँड़ोरत झलकै चन्दा हरौवा रे ना।
चन्दा कहाँ पाइउ चन्दा हरौवा रे ना ॥१२॥
हमरे ववैया जू के सात बेटौवा रे ना।
जेठवा ओई दिहे चन्दा हरौवा रे ना ॥१३॥
पहिले पहिल चन्दा आई है गवननवाँ रे ना।
उनकर समिया माँगैं जूड़ पनियाँ रे ना ॥१४॥
पनियाँ अँड़ोरत झलकै चन्दा हरौवा रे ना।
वहुअरि कहाँ पाइउ चन्दा हरौवा रे ना ॥१५॥
हमरे ववैया जू के सात वेटौवा रे ना।
सामी ओई दिहे चन्दा हरौवा रे ना ॥१६॥

केउ नाहीं मानै चन्दा का वतिया रे ना।
रामा चन्दा से माँगै सब किरिया रे ना ॥१७॥
मोरे पिछवरवाँ लोहरा भइया मितवा रे ना।
भैया धरम करहिया गढ़ि देवउ रे ना ॥१८॥
मोरे पिछवरवाँ बढ़ैया भैया मितवा रे ना।
भैया चनना चइलिया चिरि देउ रे ना ॥१९॥
मोरे पिछवरवाँ तेली भैया मितवा रे ना।
भैया करुवहिं तेल पेरि देवउ रे ना ॥२०॥
नैहरे का साथी मोरा भैया सुगनवा रे ना।
भैया जाइ कहौ भैया आगे हलिया रे ना ॥२१॥
ऊँचे ऊँचे वैठे मोरे ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा खलवाँ वैठे भैया बावा रे ना ॥२२॥
बड़ी बड़ी पागा बान्हे ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा भैया बावा बान्हें अँगउछवा रे ना ॥२३॥
रामा तेही विच चढ़ी है करहिया रे ना।
रामा तेही ढिग ठाढ़ी सती चन्दा रे ना ॥२४॥
जौ चन्दा बहिनी तूँ पक्की ठहरवू रे ना।
वहिनी तोहैं जोगे डँड़िया फनौवै रे ना ॥२५॥
जौ चन्दा बहिनी तूँ कच्ची ठहरवू रे ना।
तोहँका जिअतइ गड़ना गड़ौवे रे ना ॥२६॥
जौ मोरा सामी होइँ मोरे जिउ का वसिया रे ना।
रामा आगि होइ जाउ जूड़ पलवा रे ना ॥२६॥
जौ चन्दा डारिनि करहिया मे हथवा रे ना।
रामा जैसे गंगाजल पनिया रे ना ॥२८॥

मुँहवाँ रुमलिया देके रोवें ओकर समिया रे ना।
रामा मोर सती मोका छोड़ि जइहै रे ना ॥२९॥
इतनी बात देखि भैया बढ़ैता रे ना।
रामा बहिनी जोगे डँड़िया फनावैं रे ना ॥३०॥
यक बन गईं दूसर बन गईं रे ना।
रामा तिसरे में मिलीं बन-तपसिन रे ना ॥३१॥
बहियाँ पकरि समुझावैं बन-तपसिन रे ना।
बेटी सामी कर धरौ न गुनहवाँ रे ना ॥३२॥

मेरे पिता के सात पुत्र थे। सातों भाइयों की एक बहन थी, जिसका नाम चन्दा था ॥१॥

सातों भाई जब परदेश जाने लगे, तब चन्दा उनके पीछे-पीछे चली ॥२॥

भाइयों ने कहा—चन्दा बहन! लौट जाओ, लौट जाओ। हम तुम्हारे लिए चन्द्रहार लायेंगे ॥३॥

बारह वर्ष के बाद सातों भाई लौटे और चन्दा के द्वार पर खड़े हुए ॥४॥

भाइयों ने पुकारा—चन्दा बहन! भीतर हो कि बाहर? चन्द्रहार थाम लो ॥५॥

भाइयों के घर के पिछवाड़े एक ज्योतिषीजी थे। भाइयों ने उन्हें बुलाकर कहा—हे मित्र! चन्दा के गौने की साइत शोध दो ॥६॥

ज्योतिषीजी ने कहा—आज एकादशी है। कल द्वादशी। परसों त्रयोदशी को साइत है ॥७॥

चन्दा पहले-पहल गौने आई। उसके ससुर ने उससे पानी माँगा ॥८॥

पानी देते समय उसके चन्द्रहार की झलक देखकर ससुर ने पूछा—चन्दा! तुमको यह चन्द्रहार कहाँ मिला? ॥९॥

चन्दा ने कहा—मेरे पिता के सात पुत्र हैं। उन्होंने मुझे यह चन्द्रहार दिया है ॥१०॥

११, १२, १३, १४, १५, १६ पद्यों में चन्दा के जेठ और पति ने भी ऐसे ही प्रश्न किये। चन्दा ने सब को एक ही उत्तर दिया।

किसी ने चन्दा की बात का विश्वास नहीं किया। सब ने उसके सतीत्व पर सन्देह किया। सब को यह सन्देह हुआ कि किसी जार पुरुष ने इसे यह चन्द्रहार दिया है। सब उससे शपथ लेने को उद्यत हुए ॥१७॥

चन्दा शपथ के लिए तैयार हुई। उसके पिछवाड़े लोहार रहता था। उसने लोहार को बुलाकर कहा—हे लोहार भाई! मेरे लिए एक धर्म की कढ़ाई बना दो ॥१८॥

उसके पिछवाड़े बढ़ई रहता था। चन्दा ने उसे बुलाकर कहा—हे भाई! मेरे लिए चन्दन की लकड़ी चीर दो ॥१९॥

उसके पिछवाड़े तेली रहता था। उसे बुलाकर चन्दा ने कहा—हे भाई! कड़ुआ तेल पेर कर दो ॥२०॥

चन्दा नैहर से एक सुआ साथ लाई थी। उसने उसे अपने भाई के पास भेजा कि जाकर सब हाल कह आओ ॥२१॥

चन्दा का हाल पाकर उसके पिता और भाई आये। चन्दा की ससुराल के लोग ऊँचे बैठे और उसके पिता और भाई नीचे बैठे ॥२२॥

ससुराल के लोग बड़े-बड़े पाग बाँधकर बैठे थे और चन्दा के पिता और भाई केवल अँगोछा लपेटे थे ॥२३॥

उन्हीं के बीच कढ़ाई चढ़ी थी। उसके पास सती चन्दा खड़ी थी ॥२४॥

भाई ने कहा—चन्दा बहन! जो तुम सत की पक्की ठहरोगी तो हम तुम्हें धूमधाम से पालकी में बैठाकर घर ले चलेंगे ॥२५॥

यदि तुम कच्ची ठहरोगी तो तुमको जीती ही गाड़ लेंगे ॥२६॥

चन्दा ने अग्नि से कहा—जो मेरे स्वामी मेरे हृदय के वासी हों, तो हे आग! तुम बर्फ़ की तरह ठंढी हो जाओ ॥२७॥

चन्दा ने कड़ाई में हाथ डाला। तेल गङ्गाजल की तरह ठंढा था ॥२८॥

चन्दा का स्वामी मुँह पर रूमाल रखकर रोने लगा—हाय! ऐसी सतवन्ती स्त्री मुझे छोड़कर चली जायगी ॥२९॥

सत की परीक्षा में बहन को उत्तीर्ण पाकर उसका भाई फूला नहीं समाया। उसने बहन को घर ले चलने के लिये पालकी सजाई ॥३०॥

चन्दा एक बन पार कर गई। दूसरा बन पार कर गई। तीसरे में उसे बन की तपस्विनियाँ मिलीं ॥३१॥

तपस्विनियों ने चन्दा की बाँह पकड़कर समझाया—बेटी! स्वामी का अपराध भूल जाना चाहिए ॥३२॥

यह गीत यहीं समाप्त हो गया। तपस्विनियों की बात मानकर चन्दा अवश्य अपने स्वामी के पास लौट गई होगी। इस गीत का कथानक सत्य हो या मिथ्या, इससे हमको बहस नहीं। हम तो केवल इस बात पर मुग्ध हैं कि यह गीत कितनी ही बहनों के सतीत्व का रक्षक है। ईश्वर करे, सती चन्दा का सा आत्मबल और अपने सत से अग्नि को शीतल कर देने का तेज सब बहनों को प्राप्त हो।

हिन्दू-स्त्री का सतीत्व ही सर्वस्व है। उस सतीत्व-रक्षा के लिए स्मृतिकारों ने जो बंदिशें की हैं, कवियों ने जो उदाहरण तैयार किये हैं, सो तो हई हैं। स्त्रियों ने स्वयं भी उसकी रक्षा का प्रयत्न किया है। इस प्रकार के गीत उनके प्रयत्न के प्रमाण हैं।

इस गीत में हिन्दू-समाज के जीवन की एक छटा और भी वर्तमान है। हिन्दुओं में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा प्रचलित है। कुटुम्ब का प्रत्येक व्यक्ति कुटुम्ब की मर्यादा-रक्षा का ज़िम्मेदार है। चन्दा यद्यपि विवाहिता होकर दूसरे कुटुम्ब में गई है। पर उसके चरित्र की जिम्मेदारी उसके माता-पिता और भाई के ऊपर से कम नहीं हुई है। यदि चन्दा का चरित्र उज्ज्वल न निकलता, तो उसके स्वामी और ससुर को उतना

अपमान न सहना पड़ता, जितना उसके पिता और भाई को। केवल सन्देह पर ही यह परिणाम हुआ कि उसके पिता और भाई उसकी ससुरालवालों से नीचे बैठाये गये। ससुरालवाले बड़े-बड़े पग्गड़ बाँधकर बैठे थे, पर चन्दा के पिता और भाई शर्म के मारे केवल अँगोछे लपेट कर आये थे। न्याय के अनुसार यद्यपि चन्दा का पति ही उसके यश-अपयश का भागी है, पर यहाँ तो उसका भाई ही सब से अधिक ज़िम्मेदार माना गया है। चरित्रहीना प्रमाणित होने पर वह चन्दा को ज़मीन में जीती गाड़ लेने की धमकी देता है। इससे यह स्पष्ट है कि चन्दा चरित्रहीना साबित होती तो उसके पति की अपेक्षा उसके भाई और पिता को अधिक लज्जित होना पड़ता। हिन्दू-समाज की रचना इसी प्रकार की हुई है।

अन्त में तपस्विनियों का उपदेश बड़ा ही मार्मिक है। स्त्री को पति के अपराध को क्षमा कर देना चाहिये। यही गृहस्थी का मूल मंत्र है, जो इस गीत-द्वारा एक कान से दूसरे कान तक पहुँचाया जाता है।

[३]

अपने ओसारे कुसुमा झारै लम्बी केसिया रे ना।
रामा तुरुक नजरिया पड़ि गई रे ना ॥ १ ॥
धाउ तुहूँ नयका रे धाउ तुहूँ पयका रे ना।
रामा जैसिंह क पकरि ले आवउ रे ना ॥ २ ॥
जौ तुहूँ जैसिंह राजपाट चाहउ रे ना।
जैसिंह अपनी बहिनि हमका ब्याहउ रे ना ॥ ३ ॥
यतना वचन सुनि घरवै का लौटेनि रे ना।
जैसिंह गोड़े मूड़े तानेनि चदरिया रे ना ॥ ४ ॥
बैठी जगावहि कुसुमा बहिनिया रे ना।
भइआ तोरा धरमवा नाहीं जइहै रे ना ॥ ५ ॥

ऊठौ भइया रे करहु दतुइनिया रे ना।
भइया तोरा पति राखैं भगवनवाँ रे ना ॥ ६ ॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रे ना।
मिर्जा बाबा क गँउवाँ भुइयाँ बकसौ रे ना ॥ ७ ॥
हँसि हँसि मिरजा रे गँउवाँ भुइयाँ बकसै रे ना।
रामा रोइ रोइ विलसै कुसुमा क बाबा रे ना ॥ ८ ॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिर्जा काका जोगे हथिया बेसाहौ रे ना ॥ ९ ॥
हँसि हँसि मिरजा रे हथिया बेसाहै रे ना।
रामा रोइ रोइ चढ़ैं कुसुमा क काका रे ना ॥१०॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिरजा भैया जोगे घोड़वा बेसाहौ रे ना ॥११॥
हँसि हँसि मिरजा रे घोड़वा बेसाहै रे ना।
रामा रोइ रोइ चढ़ैं कुसुमा क भैया रे ना ॥१२॥
जौ तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना।
मिरजा तिरिया जोगे गहना गढ़ावउ रे ना ॥१३॥
हँसि हँसि मिरजा रे गहना गढ़ावइँ रे ना।
रामा रोइ रोइ पहिरै कुसुमा क भौजी रे ना ॥१४॥
जो तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रे ना।
मिरजा चेरिया जोगे चुनरी रँगावउ रे ना ॥१५॥
हँसि हँसि मिरजा रे चुनरी रँगावै रे ना।
रामा रोइ रोइ पहिरैं कुसुमा क चेरिया रे ना ॥१६॥
एक कोस गई दुसर कोस गई रे ना।
रामा तिसरे में लागी पिअसिया रे ना ॥१७॥

घर ही में कुइयाँ खनौवे मोरी कामिनि रे ना।
कामिनि पिअहु गेंडुवा ठंडा पानी रे ना ॥१८॥
तोहरे सगरे पनिया नित उठि पीअव रे ना।
मिरजा बावा क सगरवा दुर्लभ होइहैं रे ना ॥१९॥
यक घोंट पीइनि दुसर घोंट पीइनि रे ना।
रामा तिसरे में गईं सखोरवा रे ना ॥२०॥

अपने ओसारे में कुसुमा अपने लंबे केश साफ़ कर रही थी। उस पर एक तुर्क की दृष्टि पड़ गई ॥१॥

तुर्क ने अपने नौकरों और सिपाहियों से कहा—दौड़कर जाओ और जयसिंह को पकड़ लाओ ॥२॥

उसने जयसिंह से कहा—जयसिंह ! यदि तुम राजपाट चाहते हो तो अपनी बहन को मेरे साथ ब्याह दो ॥३॥

यह वचन सुनकर जयसिंह घर लौट आये और शोक के मारे सिर से पैर तक चादर ओढ़कर पड़ रहे ॥४॥

कुसुमा भाई के पास बैठकर जगाने लगी—हे भाई ! उठो। तुम्हारा धर्म नहीं जायगा ॥५॥

हे भाई ! उठो। दातुन कर लो। तुम्हारी लाज भगवान् रक्खेंगे ॥६॥

कुसुमा ने मिरजा (तुर्क) से कहा—हे मिरजा ! जो तुम मुझपर मोहित हुये हो, तो मेरे बावा को गाँव और भूमि दो ॥७॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से कुसुमा के बावा को गाँव और भूमि दिया। कुसुमा के बावा ने रो-रो कर उन्हें लिया ॥८॥

कुसुमा ने मिरज़ा से कहा—हे मिरज़ा ! जो तुम मुझ पर मोहित हो, तो मेरे काका के लिये हाथी खरीद दो ॥९॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से कुसुमा के काका के लिये हाथी ख़रीद दिया। कुसुमा का काका रोता हुआ हाथी पर चढ़ा ॥१०॥

कुसुमा ने मिरज़ा से कहा—हे मिरज़ा ! तुम मुझ पर लुभाने हो, तो मेरे भाई के लिये घोड़ा ख़रीद दो ॥११॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से उसके भाई के लिये घोड़ा ख़रीद दिया। जिस पर उसका भाई रोता हुआ चढ़ा ॥१२॥

कुसुमा ने कहा—हे मिरजा ! जो तुम मुझपर मुग्ध हुये हो, तो स्त्री के योग्य गहने गढ़ा दो ॥१३॥

मिरज़ा ने प्रसन्न मन से गहना गढ़ा दिया। जिसे रो-रो कर कुसुमा की भौजाई ने पहना ॥१४॥

कुसुमा ने कहा—हे मिरज़ा ! जो तुम मुझ पर मोहित हो, तो दासी के लिये चूनरी रँगा दो ॥१५॥

मिरज़ा ने चूनरी रँगा दी। जिसे रो-रो कर कुसुमा की दासी ने पहना ॥१६॥

कुसुमा मिरजा के साथ एक कोस गई। दो कोस गई। तीसरे में उसे प्यास लगी ॥१७॥

मिरज़ा ने कहा—हे मेरी कामिनी ! घर ही में मैं कुँआ खोदवा दूँगा। तुम सुराही का ठंढा पानी पीना ॥१८॥

कुसुमा ने कहा—हे मिरजा ! तुम्हारे कुँएँ का पानी तो रोज़-रोज पीऊँगी। पर यह मेरे बाबा का खुदाया हुआ सागर दुर्लभ हो जायगा ॥१९॥

कुसुमा सागर में पानी पीने गई। उसने एक घूँट पिया। दो घूँट पिया। तीसरे घूँट के साथ वह सागर में कूद पड़ी ॥२०॥

इस प्रकार कुसुमा ने प्राण देकर अपने धर्म की रक्षा की। इस गीत में उस समय की किसी घटना का वर्णन है, जब भारत में मुसलमानी शासन था और मुसल्मान शासक किसी हिन्दू की सुन्दरी कन्या देखकर उसे ज़बरदस्ती छीन लिया करते थे। उस समय के अत्याचार की एक

स्पष्ट झलक इस गीत में मौजूद है। घटना सत्य जान पड़ती है। क्योंकि युक्तप्रांत और बिहार दोनों प्रांतों में इस घटना को लेकर गीत रचे गये हैं। और खेत निराते समय अब भी मजदूरिनें इस गीत को गा-गा कर भगवती कुसुमा के सतीत्व-रक्षा की महिमा हिन्दू-कन्याओं को सुनाया करती हैं।

यह गीत बिहार में आटा पीसते समय इस प्रकार गाया जाता है—

आठहि काठ केरि नैया रे नैया;
इँगुरे ढरल चारो पलवा हू रे जी।
तेहि घाटे उतरेला मिरिजा सहेबवा;
जेहि घाटे भगवति नहाले हू रे जी।
पनिया भरति पनिभरनि बिटियवा;
केकर बहिनि करे असननिया हू रे जी।
गाँव केर गौंआ होरिलसिंघ रजवा;
उन्हकर बहिनि करे असननिया हू रे जी।
धाव तुहूँ नौआ, धाव चपरसिया;
होरिलसिंघ क पकड़ि ले आवहु रे जी।
पनिया भरत पनिहारिनि बिटियवा;
होरिलसिंघ मकनिया कहाँ बाड़े हू रे जी।
उत्तर मुँहे उतराहुत उनका;
दुआरे चननवा का गछिया हू रे जी।
होरिलसिंघ मुसुक चढ़ावहू रे जी।
(जब रे) होरिलसिंघ गइले मिरिजा पसवा;
नइ-नइ करेला सलमिया हू रे जी।
लेहु न होरिलसिंघ डाल भर सोनवा;
भगवति बहिनिया मोहि बकसहु हू रे जी।

आगि लगहु मिरिजा डाल-भर सोनवा;
मोरा कुले भगवति ना जामेले हू रे जी।
घर में से निकसि अँगना ठाढ़ि भइली;
अँगना ठाढ़िय भौजी रोवेली हू रे जी।
आग लगहु भगवति तोहरि सुरतिया;
तोहरा कारन सामी बान्हल हू रे जी।
लेहु ना भौजी घर गिहिथनवा;
होरिल छोड़ावन हम जाइब हू रे जी।
जब भगवति गइलि मिरिजा के पसवा;
नइ-नइ करेलि सलमिया हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया;
होरिलसिंह के मुसुक छोड़ावहु हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया,
हमरा जोगे चुनरि रँगावहु हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया,
हमरा जोगे गहना गढ़ावहु हू रे जी।
जौं तुहुँ मिरिजा हमरा सें लोभिया,
हमरा जोगे डँड़िया फनावहु हू रे जी।
हँसि-हँसि मिरिजा गहना गढ़ौले,
रोइ-रोइ पेन्हे बेटी भगवति हू रे जी।
हँसि-हँसि मिरिजा चुनरि रँगौले,
रोइ-रोइ पेन्हे बेटी भगवति हू रे जी।
हँसि-हँसि मिरिजा डँड़िया फनौले,
रोइ-रोइ फाने बेटी भगवति हू रे जी।

एक कोस गइलि, दूसर कोस गइली,
लागि गइल मधुरि पियसिया हू रे जी।
गोड़ तोर लागीला अगिला कहरवा,
बून एक पनिया पियावहु हू रे जी।
मिरिजा गडुअवे पनिया पियहू हू रे जी।
तोरा गडुए मिरिजा निति उठि पिअवों,
वावा के सगरवा दुरलभ भइले हू रे जी।
एक चिरुआ पियलि, दूसर चिरुआ पियलि,
तिसरे गइलि तरवोरवा हू रे जी।
रोवेला मिरिजवा मुड़वा ठठावाला,
मोरि बुधि छरे छोड़ी भगवति हू रे जी।
रोइ-रोइ मिरिजा रे जलिया लगावेले,
वझि गइल घोंघवा सेवरवा हू रे जी।
हँसि-हँसि होरिलसिंह जलिया लगावेले,
वझि गइलि भगवति वहिनिया हू रे जी।
हँसेला होरिलसिंह मुँहे खाइ पनवा,
तीन कुल राखे वहिनिया भगवति हू रे जी।

यह गीत युक्तप्रांत के गीत से कुछ अधिक विस्तारपूर्वक है। पर मूल घटना में अंतर नहीं है। हाँ, विहार के गीत की अंतिम पंक्तियाँ युक्तप्रान्त के गीत में नहीं हैं, जिनके विना रस की पूर्णता नहीं होती थी। भगवती ऐसी बहन पाकर होरिलसिंह या जयसिंह को पान खाकर हर्षित होना ही चाहिये।

यह गीत अंग्रेज़ों को इतना पसंद आया कि Light of Asia के रचयिता, अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नोल्ड ने इसका अंग्रेज़ी पद्य में अनुवाद कर डाला। जिसे नवंबर १९१८ में, हिन्दी-भाषा के परम

प्रेमी सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने इङ्गलैण्ड के School of Oriental Studeis में एक व्याख्यान में सुनाया था।

फ़ैजाबाद ज़िले में यह गीत इस प्रकार गाया जाता है—

देहु न मैया मोरी ककही कटोरिया हो ना।
मैया बाबा के सगरवा मुँड़वा मींजी हो ना॥
मुँड़वइ मींजि कुसमी सुखवै लगलीं हो ना।
आइ गइल मिरजा लसकरिया हो ना॥
केकर है कुसमी बारी दुलारी हो ना।
काके सगरवा मुड़वा मींजउ हो ना॥
गंगा क हैं हम बारी दुलारी हो ना।
मिरजा जीउधन सगरवा मुँड़वा मींजी हो ना॥
इतना बचन मिरजा सुनबो न कइलै हो ना।
मिरजा जिउधन के छेकैला दुवरिया हो ना॥
लेउ न जिउधन डालभर सोनवा हो ना।
जिउधन अपनी बिटियवा मोहि देहू हो ना॥
का करौं मिरजा डालभर सोनवा हो ना।
मिरजा हमरी कुसमी मरि गइल हो ना॥
इतना बचन मिरजा सुनबो न कैलैं हो ना।
मिरजा गंगा जिउधन नावैं हथकड़िया हो ना॥
लोहे कै टटरवा मिरजा छतियाँ दिअउलैं हो ना।
नकियन लिदिया ठुसावैं हो ना॥
देहु न भौजी अपनी चदरिया हो ना।
भउजी बिरला सँसति देखि आई हो ना॥
अगिया लगावों कुसुमी तोरी सुन्दरइया हो ना।
कुसुमी तोरे कारन हरि मोरे बान्हल हो ना॥

दस सखी अगवाँ दस सखी पछवाँ हो ना।
बिचवा में कुसमी बिटियवा हो ना॥
मुँहवाँ पटुकवा दै के हँसला मिरजवा हो ना।
अरे दूनौ कुलवा बोरैले कुसुमियां हो ना॥
जो मिरजा चाहा तु हमके हो ना।
मिरजा बाबा भैया हथिया बेसाहौ हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा हथिया बेसाहैं हो ना।
रोइ रोइ चढ़ै जीउधन बपवा हो ना॥
जो तू मिरजा हमही लोभइला हो ना।
मिरजा हमरे जोगे कपड़ा बेसाहौ हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा गहना कपड़ा बेसाहैं हो ना।
रोइ रोइ पहिरैले कुसमिया हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा डँड़िया बेसाहैं हो ना।
रोइ रोइ चढ़ैले कुसमिया हो ना॥
एक बन गइलैं दुसर बन गइलैं हो ना।
तीसरे में बाबा के सगरवा हो ना॥
पइयाँ तोरें लागैलों कहरा बढ़इता हो ना।
कहरा बाबा के सगरवा पानी पीयब हो ना॥
बाबा सगरवाँ पनियाँ अवइल ढवइल हो ना।
हमरे सगरवा निरमल पनियाँ हो ना॥
तोहर सगरवा नित उठि पीयब हो ना।
बाबा सगरवा दुरलभ होई हो ना॥
एक घूँट पियली दूसर घूँट पियली हो ना।
तीसरे में जाली तरवोरवाँ हो ना॥

रोइ रोइ मिरजा जलिया नवावैं हो ना।
बाझल आवैं घोंघिया सेवरिया हो ना॥
मुँहवाँ पटुका दै कै रोवैला मिरजवा हो ना।
अरे दूनौं कुलवा बोरैले कुसुमिया हो ना॥
हँसि हँसि जिवधन जलिया नवावैं हो ना।
बाझल आवै कुसुमी बिटियवा हो ना॥
मुहवाँ पटुकवा दैकै हँसलै जिउधन हो ना।
दूनौं कुलवा राखैले कुसमी हो ना॥

इस गीत में कन्या का नाम कुसुमा और उसके पिता का नाम जिउधन बताया गया है।

यही गीत बलिया ज़िले में इस प्रकार गाया जाता है—

देहु न मैया रे कँगही कटोरिया हो ना।
बाबा के सगरवा मुड़वा मींजब हो ना।
अपने सगरवा कुसुमा मुड़वा जो मींजै,
घोड़वा कुदावै मिरजा रजवा होना।
घोड़वा कुदावत परिगै नजरिया हो ना॥
केकरी तिरियवा मुड़वा मींजै हो ना।
घोड़वा थमावै मिरजा वो घोड़सरिया,
बाबा का पकरि मँगावै हो ना।
अपनी कुसुमा मोहि बिआहौ हो ना॥
कैसे मैं बिआहौं अपनी कुसुमिया,
तू तो तुरुक हम ब्राह्मन हो ना॥
एतना बचन सुनि मिरजा रजवा,
बाबा के डारै हथकड़िया हो ना॥

अगिया लगावों बेटी तोरी सुन्दरइया,
बाबा के चढ़ी हथकड़िया हो ना॥
देहु न मैया रे अपनी चदरिया,
बाबा कै सँसतिया देखि आवों हो ना॥
जो तुही मिरजा हो हमही लोभानेउ,
बाबा जोगे हथिया बेसाहउ हो ना॥
जो तुही मिरजा हो हमही लोभानेउ,
भैया जोगे घोड़वा बेसाहउ हो ना॥

मैय्या जोगे गहना गढ़ावौ हो ना।
भौजी जोगे चूनर रँगावौ हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा रे डोलिया फनावै,
रोइ रोइ चढ़ै कुसुमा रनिया हो ना॥
एक बन गइली दुसर बन गइली,
तिसरे में बाबा कै सगरवा हो ना॥
तनियक डोलिया थमाओ मिरजवा,
बाबा के सगरवा मुहवाँ धोइत हो ना॥
बाबा के सगरवा सुन्दर ढबइल पनियाँ,
हमरे सगरवा पनियाँ पीयो हो ना॥
तोहरा सगरवा मिरजा नित उठि होइ है,
बाबा कै सगरवा दुलम होइहै हो ना॥
एक घूँट पियली दुसर घूँट पियली,
तिसरे में गई है तराई हो ना॥
रोइ रोइ जलवा डरावै राजा मिरजा,
फँसि आवै घोंघिया सेवरिया हो ना॥

हँसि हँसि जलवा डरावै भैया गंगाराम,
आवै थी वहिनी कुसुमा हो ना ॥
मुँहवा पटुका दैकै रोवै राजा मिरजा,
मोरे मुँह करिखा लगाइउ हो ना ॥
सिर पै पगड़िया बाँधि हँसै भैया बावा।
दूनौ कुल राखेउ वहिनी कुसुमा हो ना ॥

इसमें कन्या का नाम तो कुसुमा है, पर भाई का नाम गङ्गाराम हो गया है।

इस गीत का एक रूपान्तर यह भी है—

देहु न मैया मोका ककही कटोरिया,
बावा के सगरवा मुड़वा मींजव हो राम।
मुँड़वै मींजि कुसुमी लट छिटकावं,
भोजमन वगलिया में ठाढ़ हो राम।
हँसि हँसि भोजमन डँड़िया फनावै,
रोइ रोइ कुसुमी सवरिया हो राम।
भैया औ बावा ठाढ़ मन झंखैं,
जरै कुसुमी तोरि सुन्दरिया हो राम।
मुड़वा तौ हमरा नवायेउ हो राम।
एक कोस गैली दुसर कोस गैली,
तिसरे में बावाजी के वगिया हो राम।
तनि एक डँड़िया थमाओ तुम भोजमन,
देखिआई बावा अमरैया हो राम।
वावा अमरैया तू नित देखेउ कुसुमी,
चलतै मैं वगिया लगैवै हो राम।

एक कोस गैली दुसर कोस गैली,
तिसरे में बाबा कै सगरवा हो राम।
तनि एक डँड़िया थमाओ हो भोजमन,
नहाइ लेई बाबा के सगरवा हो राम।
एक बुड़की मरली दूसर बुड़की मरली,
तिसरे गई मँझधरवा हो राम।
रोइ रोइ भोजमन जाल छोड़ावैं,
बाझी आये चटकी चुनरिया हो राम।
दूसर जलवा छोड़ावै भोजमन,
बाझी आये अँग कै अँगियवा हो राम।
तीसर जलवा छोड़ावैं भोजमन,
बाझी आये घोंघिया सेवरिया हो राम।
हँसि हँसि मोरा भैया जलवा छोड़ाये,
बाझी आये मरली कुसुमिया हो राम।
मुहँवा पट्टुका दै रोवै भोजमन,
भल छल किहेउ बारी कुसुमी हो राम।
हँसि हँसि बावा लोथिया उठावै,
भल पति राखेउ धेरिया कुसुमी हो राम।
मुहवाँ रुमलिया देइ के हँसै भैया,
भल पति राखेउ बहिनी कुसुमी हो राम।

इस में कन्या का नाम तो कुसुमी है, पर उसे ज़बरदस्ती छीन लेने वाले का नाम भोजमन है।

बिहार में यह गीत एक प्रकार से और गाया जाता है। उसकी प्रारंभ की पंक्तियों से गीत में वर्णित घटना के समय का भी पता चलता है।

जैसे—

पूरब पछिमवाँ से अइले रे फिरँगिया
दानापुर में बारिक उठावल रे की।
बरिक उठवलक खिरकी करवलक
चारोओर पलटन बसवलक रे की॥
उही कोरे मिरजा रे झिँझरी खेलत हैं
जाही कोरे भगवति नहाइल रे की॥
नजर परत मिरजा बोलले सहेबवा से
होरिलसिंह क पकरि मँगावहु रे की॥

इत्यादि। आगे की कथा वैसी ही है, जैसी भगवती के गीत में वर्णित है। जान पड़ता है, जब पहले-पहल अंग्रेज़ लोग दानापुर में आये और उन्होंने वहाँ अपनी छावनी डाली, उस समय ऐसी कोई घटना अवश्य हुई है, जिसका ज़िक्र प्रांत भर में गीतों-द्वारा व्याप्त हो गया है, और जिससे भगवती या कुसुमा बहन अमर हो गई है।

[४]

ऊँची अटारी उरेही चित्रसारी हो ना।
रामा किन धना पुतरी उरेह्या हो ना॥ १॥
लहुरी पतोहिया पूता तोरी भैहो हो ना।
रामा उन धन पुतरी उरेह्या हो ना॥ २॥
इतना बचन जब सुने राजा जेठवा हो ना।
रामा गोड़े मूड़े तानेनि दुपटवा हो ना॥ ३॥
उठौ न पूता मोरे हाथ मुँह धोवउ हो ना।
रामा खाय लेहु दुधवा औ भतवा हो ना॥ ४॥
कैसे कै मैया मोरी हाथ मुँह धोई हो ना।
मैया लहुरी पतोहिया मन बसी हो ना॥ ५॥

लहुरी पतोहिया पूता भयहो हो ना।
रामा वह तो तिलँगवा की जोइया हो ना ॥ ६ ॥
लै आवो छोटका ढाल तरवरिया हो ना।
छोटे भैया क खबरिया हम जाबै हो ना ॥ ७ ॥
लइ लेहु जेठा ढाल तरवरिया हो ना।
जेठा हम तौ बाटी राम रसोइयाँ हो ना ॥ ८ ॥
एक बन गइले दुसर बन गइले हो ना।
रामा तिसरे में भैया के फउजिया हो ना ॥ ९ ॥
सोओ न भैया मोरे सुख की निदरिया हो ना।
भैया तुम्हरा पहरवा हम देबै हो ना ॥१०॥
डोलै लागीं जुडुली बयरिया हो ना।
रामा आइ गई सुख की निदरिया हो ना ॥११॥
रामा हनै लागे भैया क करेजवा हो ना।
जेठा सग भैया मारि घर लौटैं हो ना ॥१२॥
अँगने हो कि भितरे माँ छोटका हो ना।
रामा खोलि देहु चँदन केवरिया हो ना ॥१३॥
कहवाँ मारेउ जेठा कहवाँ ढकेलेउ हो ना।
जेठा कहवाँ कै चीलि्ह मड़रानी हो ना ॥१४॥
ऊँचे मारेउँ खलवाँ ढकेलेउँ हो ना।
रामा सरगे चिल्हरिया मेड़रानी हो ना ॥१५॥
तुम्हैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।
जेठा हरिजी कै लोथिया मँगाओ हो ना ॥१६॥
तुम्हैं छाँड़ि जेठा न और क होबै हो ना।
जेठा चन्दन चइलिया चिरावउ हो ना ॥१७॥

तुम्हैं छाँड़ि जेठा न और क होवै हो ना।
जेठा नगर से घियना मँगावउ हो ना ॥१८॥
तुम्है छाँड़ि जेठा न और क होवै हो ना।
जेठा रचि रचि सरा रोपावउ हो ना ॥१९॥
रामा जो हम होई सतवंती हो ना।
मोरे अँचरा भभकि उठै अगिया हो ना ॥२०॥
वरै लागी लकड़ी भसम भई छोटका हो ना।
रामा जेठवा मिजैं दूनौ हथवा हो ना ॥२१॥
जौ हम जनत्यों छोटका इतना छल
करबिउ हो ना।
रामा काहे मरतेउँ सग भैया हो ना।
रामा काहें तोरतेउँ दाहिन वहियाँ हो ना ॥२२॥

ऊँची अटा पर चित्रशाला सुन्दर चित्रों से सुशोभित है। पुत्र ने माता से पूछा—हे माँ! यह सुन्दर चित्र किसने बनाया? ॥१॥

माँ ने कहा—हे बेटा! मेरी छोटी पतोहू, जो तुम्हारी भ्रातृवधू लगती है, उसने यह चित्र वनाया है ॥२॥

जेठ ने जब यह सुना, तब वह सिर से पैर तक दुपट्टा तानकर सो रहा ॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा! उठो न; हाथ-मुँह धोकर दूध-भात खा लो ॥४॥

पुत्र ने कहा—हे माँ! मैं कैसे हाथ-मुँह धोऊँ? तुम्हारी छोटी पतोहू मेरे मन में बस गई है ॥५॥

माँ ने कहा—बेटा! वह तो तुम्हारी भ्रातृवधू है। उसे तो छूना भी पाप है। और वह तो सिपाही की स्त्री है। उसका पति तो फौज में नौकर है ॥६॥

जेठ ने कहा—हे छोटी बहू ! ढाल तलवार लाओ। मैं छोटे भाई की ख़बर लेने जाऊँगा ॥७॥

छोटी बहू ने कहा—हे जेठजी ! ढाल तलवार स्वयं ले लीजिये। मैं तो रसोई बना रही हूँ ॥८॥

ढाल-तलवार लेकर बड़ा भाई एक बन मे गया। दूसरे बन में गया। तीसरे में उसके भाई की सेना का पड़ाव था ॥९॥

उसने छोटे भाई से कहा—हे भाई ! लाओ, तुम्हारा पहरा मैं दे लूँगा। तुम आज सुख की नींद सो लो ॥१०॥

ठंढी हवा चलने लगी। छोटे भाई को सुख की नींद आ गई ॥११॥

बड़े भाई ने छोटे भाई के कलेजे में तलवार घुसेड़ दी। छोटे भाई को मारकर वह घर आया ॥१२॥

उसने द्वार पर से पुकारा—छोटी बहू ! आँगन में हो ? कि कोठरी में ? चंदन के किवाड़े ज़रा खोल तो दो ॥१३॥

छोटी बहू सब भेद समझ गई। उसने पूछा—हे जेठ जी ! तुमने उन्हें कहाँ मारा ? कहाँ ढकेला ? और कहाँ की चील्ह उनके ऊपर मँड़ला रही है ? ॥१४॥

जेठ ने कहा—हे छोटी बहू ! मैंने उसे ऊँचे मारा और नीचे ढकेल दिया तथा उसके ऊपर आकाश मे चील मँडला रही है ॥१५॥

छोटी बहू ने कहा—हे जेठजी ! मैं तुम्हें छोड़ दूसरे की नहीं होऊँगी। तुम मेरे प्राणनाथ की लाश तो मँगा दो ॥१६॥

हे जेठजी ! मैं तुम्हें छोड़कर दूसरे की नहीं होऊँगी। चंदन की लकड़ी तो चिरा दो। शहर से घी तो मँगा दो। अच्छी तरह से चिता तो रच दो ॥१७,१८,१९॥

जेठ ने सब कुछ कर दिया। छोटी बहू पति की चिता के पास खड़ी

होकर बोली—हे मेरे पति देवता! यदि मैं सतवन्ती होऊँ, तो मेरे आँचल से आग भभक उठे ॥२०॥

लकड़ी जल उठी। छोटी बहू भस्म हो गई। जेठ दोनों हाथ मलने लगा ॥२१॥

उसने कहा—छोटी बहू! जो मैं जानता कि तुम इतना छल करोगी, तो मैं अपना सगा भाई क्यों मारता? अपनी दाहिनी भुजा क्यों तोड़ता? ॥२२॥

इस गीत से कितनी ही बातों का पता चलता है। एक तो यह कि पूर्वकाल में प्रत्येक घर में चित्रशाला होती थी। दूसरे यह कि स्त्रियाँ ऐसे सुन्दर चित्र खींचती थीं कि उन्हें देखकर पुरुष मोहित हो जाते थे। तीसरे सती धर्म की महिमा। छोटी बहू ने प्राण देकर अपना धर्म बचाया और उसका जेठ अधर्म-पथ पर चलकर अंत में पश्चात्ताप करके हाथ मलता ही रह गया।

[५]

बरहे बरिसवा क लचिया सुनरिया रे ना।
लचिया खिरकी बैठि लेइ बयरिया रे ना ॥ १ ॥
घोड़वा चढ़ल आवैं एक राजपुतवा रे ना।
रामा पड़ि गइलैं लाची पै नजरिया रे ना ॥ २ ॥
घोड़वा त बाँधे राजा कदमे की डरिया रे ना।
राजा चलि गइलैं कुटनी महलिया रे ना ॥ ३ ॥
देव्यों मैं कुटनी रे पाँच मोहरिया रे ना।
कुटनी लचिया भोरइ लइ आवउ रे ना ॥ ४ ॥
कैसे क लचिया क भोरवों राजपुतवा रे ना।
राजा लचिया सोवै सामी कोरवा रे ना ॥ ५ ॥

हथवा क लेउ कुटनी चिपरी गोइँठिया रे ना।
कुटनी अगिया ओढ़र लचिया भोरवउ रे ना ॥ ६ ॥
भीतर बाटू की बाहर लचिया रे ना।
लचिया सब सखी जाथीं नहौने रे ना ॥ ७ ॥
इतनी वचन सुनि लचिया लवँगिया रे ना।
सासू जाति बाटी सगरे नहौने रे ना ॥ ८ ॥
सगरे क पनिया बहुअरि लागै पतरँगवा रे ना।
बहुअरि घर हीं करो असननवा रे ना ॥ ९ ॥
गुडुई खेलत मोरी लहुरी ननदिया रे ना।
ननदी जात बाटी सगरे नहौने रे ना ॥१०॥
भौजी बाबा मोरा सगरा खोदैहैं रे ना।
भौजी भैया मोरा घटवा बँधैहैं रे ना ॥११॥
तब मोरी भौजी तुँ सगरे नहायउ रे ना।
भौजी घर हीं करौ असननवा रे ना ॥१२॥
केहूक कहनवा लाची मनही न आवै रे ना।
लाचो खोलि लिहीं रतुली पेटरिया रे ना ॥१३॥
ओढ़ि पहिरि लचिया आई ओसरवा रे ना।
सासू जाति बाटिउँ सगरे नहँनवा रे ना ॥१४॥
जहाँ जहाँ लचिया करै बैठकवा रे ना।
तहाँ तहाँ राजा घोड़ ठमकावैं रे ना ॥१५॥
पकउ बुडुकिया लचिया मरइउ न पाये रे ना।
राजा इतने में चुनरि उठावैं रे ना ॥१६॥
देऊ न राजा काहें हमरी चुनरिया रे ना।
राजा मोर माँसु खाइँ मछरिया रे ना ॥१७॥

जौ हम देई लचिया तोहरी चुनरिया रे ना।
लचिया हमरे गोहनवाँ चली चालउ रे ना ॥१८॥
जौ हम चली राजा तोहरे गोहनवाँ रे ना।
राजा तोहैं ले सुन्दर मोर' बिअहवा रे ना ॥१९॥
जे कै मरर मरर करै जुतवा रे ना।
जे कै पँड़िया बरन परदनिया रे ना ॥२०॥
यतना सुनत राजा मुँह बिचुकायनि रे ना।
लचिया तुहैं ले सुन्दरि मोरि बिअहिया रे ना ॥२१॥
जे कै भहर भहर करइ बरवा रे ना।
जे कै मुनरी बरन करिहइयाँ रे ना ॥२२॥

सुन्दरी लाची की अवस्था बारह वर्ष की थी। वह एक दिन खिड़की पर बैठकर हवा ले रही थी ॥१॥

घोड़े पर चढ़ा हुआ एक राजकुमार उधर से आ निकला। लाची पर उसकी नज़र पड़ गई ॥२॥

कदम्ब की डार से घोड़ा बाँधकर वह कुटनी के घर पहुँचा ॥३॥

उसने कुटनी से कहा—हे कुटनी! मैं तुमको पाँच मोहरें दूँगा। तुम लाची को बहकाकर लाओ ॥४॥

कुटनी ने कहा—हे राजा! लाची को कैसे बहकाऊँ? वह तो अपने स्वामी की गोद में सोती है। अर्थात् अपने पति की बहुत प्यारी है ॥५॥

राजा ने कहा—हाथ में उपले लो और आग लेने के बहाने उसके घर में जाकर उसे बहका लाओ ॥६॥

कुटनी ने लाची के घर जाकर पुकारा—लाची! भीतर हो या बाहर? सब सखियाँ नहाने जा रही हैं ॥७॥

इतना सुनते ही लाची ने सास से कहा—मैं तालाब में नहाने जा रही हूँ ॥८॥

सास ने कहा—हे पतले अङ्गवाली मेरी पतोहू ! तालाब का पानी लगता है। घर पर ही स्नान कर लो ॥९॥

फिर लाची ने गुड़िया खेलती हुई अपनी छोटी ननद से कहा—हे ननद ! मैं तालाब में नहाने जा रही हूँ ॥१०॥

ननद ने कहा—हे भौजी ! मेरे बाबा नया तालाब खोदवायेंगे और भैया घाट पक्का करायेंगे ॥११॥

तब हे भौजी ! तुम उसमें नहाना। आज तो घर में ही नहा लो ॥१२॥

किसी का कहना लाची के मन में नहीं बैठा। उसने अपनी लाल रंग की पेटारी खोल ली ॥१३॥

लाची पहन-ओढ़कर ओसारे में आई और सास से बोली—सास-जी ! मैं तालाब में नहाने जा रही हूँ ॥१४॥

रास्ते में जहाँ-जहाँ लाची सुस्ताने के लिए बैठती थी, राजकुमार भी वहीं-वहीं घोड़ा ठहरा लेता था ॥१५॥

लाची तालाब में एक भी डुबकी न लगा पाई थी कि राजकुमार ने उसकी चूनरी उठा ली ॥१६॥

लाची ने कहा—हे राजकुमार ! मेरी चूनरी दे दो। पानी के भीतर मछलियाँ मेरा मांस नोच रही हैं ॥१७॥

राजा ने कहा—हे लाची ! हम तभी तुम्हारी चूनरी दे सकते हैं, जब तुम हमारे साथ चली चलो ॥१८॥

लाची ने कहा—हे राजकुमार ! हम तुम्हारे साथ क्यों चलें ? तुमसे अधिक सुन्दर तो मेरा विवाहित पति ही है ॥१९॥

चलते वक्त जिसका जूता मरर-मरर करता है, और एँड़ी की तरह लाल किनारेदार जिसकी धोती है ॥२०॥

लाची की यह बात सुनकर राजकुमार ने मुँह बिचका लिया और

खिसियाकर कहा—लाची ! तुमसे कहीं सुन्दरी मेरी विवाहिता स्त्री है ॥२१॥

जिसके बाल लहकते हैं और जिसकी कमर अँगूठे की तरह् गोल है ॥२२॥

यह खेत निराते समय का एक गीत है। इसके अन्त में विनोद की मात्रा ख़ूब है। राजकुमार के प्रस्ताव पर लाची ने राजकुमार को जो जवाब दिया, वह गाँव की हरएक पति की प्यारी स्त्री के लिए मनोरञ्जक है। लाची ने राजकुमार की बातें सुनकर न उसे गालियाँ दी, न शोर मचाया। बल्कि अपने पति की सुन्दरता पर उसने अपनी पूर्ण आसक्ति प्रकट की। कुटनी ने जो कहा था कि वह अपने पति की गोद में सोती है, इसलिए बहक नहीं सकती, सो सच निकला। वह अपने पति की धोती और जूते पर आसक्त थी, जो देहाती शौक़ीनों की ख़ास चीज़ें हैं।

राजकुमार जो इतनी दूर तक पीछे-पीछे आकर निराश हुआ था, अपने रूप की निन्दा सुनकर खिसिया गया। उसने अपने मन को अपनी सुन्दर स्त्री की ओर मोड़ा, जो लाची से अधिक सुन्दरी थी। इस प्रकार दोनों का धर्म बचा। पर रहा मज़ाक ही।

[६]

अपनी खिड़किया लचिया झारे लागीं केसिया
हो ना।
लचिया पड़ि गैले जयसिंह नजरिया हो ना ॥ १ ॥
अपनी खिड़किया लचिया करे दतुइनिया हो ना।
लचिया पड़ि गैले जयसिंह छिटिकवा हो ना ॥ २ ॥
ओते चलु ओते चलु जयसिंह रजवा हो ना।
जयसिंह पड़ि जैहैं दतुवन छिटिकवा हो ना ॥ ३ ॥
अवतू न मोरी लाची हमरी सेजरिया हो ना।
लाची रानी होइ के सब सुख विलसौ हो ना ॥ ४ ॥

अइसनि बोल जनि बोलहु रजवा जयसिंह हो ना।
राजा हम तौ धरम कै बिटिया हो ना ॥ ५ ॥
उहवाँ से गइले जयसिंह कुटनी महलिया हो ना।
बुढ़िया लाची के भोरइ मोही आनहु हो ना ॥ ६ ॥
लचिया त सुतले रजवा स्वामी जी के कोरवाँ हो ना।
रजवा छव रे महिना के अलवंतिआ हो ना ॥ ७ ॥
लेहु न कुटनी रे डाल भरि सोनवा हो ना।
कुटनी लाची के भोराइ मोहीं आनहु हो ना ॥ ८ ॥
हथवा के लेलें बुढ़िया गोइँठा चिपरिया हो ना।
बुढ़िया अगिया बहाने लाची किहाँ अइली हो ना ॥ ९ ॥
बाहर बाडू कि भीतर लचिया अलवंतिया हो ना।
लचिया सब सखी जाले गंगा नहनवा हो ना ॥ १० ॥
बरहा बरिस पर लगली तिरिथवा हो ना।
लाची तुहूँ चलबू गंगा असननवाँ हो ना ॥ ११ ॥
मचिया बैठलि तुहूँ सासु बढ़ैतिन हो ना।
सासु हम जैबो गंगा असननवाँ हो ना ॥ १२ ॥
इतनी बोली जनि बोलहु बहुआ हो ना।
बहुआ छव रे महीना के अलवंतिया हो ना ॥ १३ ॥
एक कोसे गइली लाची दुइ कोसे गइली हो ना।
रामा पड़ि गइले जयसिंह नजरिया हो ना ॥ १४ ॥
उहवाँ से जयसिंह भेजे हरकरवा हो ना।
रामा ताही पीछे घोड़ उड़वले हो ना ॥ १५ ॥
घोड़ा से उतरि जयसिंह लाची किहाँ अइले हो ना।
जयसिंह लपकी धइले दाहिन बहियाँ हो ना ॥ १६ ॥

छोड़ु, छोड़ु, जयसिंह हमरो अँचरवा हो ना।
जयसिंह तोहरा से सुन्दर मोर रजवा हो ना ॥१७॥
अइसनि बोली जनि बोलौ रानी लचिया हो ना।
लाची चली चलु हमरी सेजरिया हो ना ॥१८॥
अतना वचन लाची सुनहि न पवली हो ना।
लाची काढ़ि कटरिया जिउआ लिहली हो ना ॥१९॥
उहवाँ से चलली लाची घर के पहुँचली हो ना।
राम सासु गरिआवे बावामुअनी हो ना ॥२०॥
जनि सास बावा खाहु जनि सासु भइया खाहु हो ना।
सासु बटिआ रोकेला बटपरवा हो ना ॥२१॥

अपनी खिड़की पर बैठकर लाची एक दिन अपने लंबे-लंबे बाल झाड़ने लगी। यकायक उस पर जयसिंह की दृष्टि पड़ गई ॥१॥

लाची एक दिन अपनी खिड़की पर बैठकर दातुन कर रही थी कि जयसिंह पर दातुन के छींटे पड़ गये ॥२॥

लाची ने कहा—हे राजा जयसिंह! ज़रा हट जाओ। हट जाओ। दातुन के छींटे पड़ जायँगे ॥३॥

जयसिंह ने कहा—हे लाची! मेरी सेज पर आओ न? रानी होकर सब सुख भोगो ॥४॥

लाची ने कहा—हे राजा जयसिंह! ऐसी बात न बोलो। मैं तो तुम्हारी धर्म-पुत्री हूँ ॥५॥

जयसिंह वहाँ से चलकर कुटनी के घर गये और उससे बोले—हे बुड्ढी! लाची को बहकाकर ले आओ ॥६॥

कुटनी ने कहा—हे राजा! लाची तो अपने स्वामी की गोद में सोती है और छः महीने की गर्भवती है ॥७॥

जयसिंह ने कहा—हे बुड्ढी! डलिया भरकर सोना लो और लाची

को किसी तरह बहकाकर ले आओ ॥८॥

कुटनी हाथ में गोबर की उपली लेकर आग लेने के बहाने लाची के घर आई ॥९॥

उसने कहा—हे लाची ! बाहर हो ? कि भीतर ? सब सखियाँ गंगा नहाने जा रही हैं ॥१०॥

बारह वर्ष पर यह पर्व लगा है। हे लाची ! तुम भी गंगा नहाने चलो ॥११॥

लाची राज़ी हो गई। सास मचिये पर बैठी थी। लाची ने कहा—हे सास ! मैं गंगा नहाने जाऊँगी ॥१२॥

सास ने कहा—हे लाची ! यह तुम क्या कहती हो ? अरे ! तुमको तो छः महीने का गर्भ है ॥१३॥

लाची एक कोस गई, दो कोस गई। इतने में उस पर जयसिंह की दृष्टि पड गई ॥१४॥

जयसिंह ने उसे रोकने के लिये हरकारा भेजा और उसके पीछे अपना घोड़ा उड़ाया ॥१५॥

घोड़े से उतरकर जयसिंह लाची के पास आया और लपककर उसने लाची की बाँह पकड़ ली ॥१६॥

लाची ने कहा—हे जयसिंह ! मेरा आँचल छोड़ दो। मेरा पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है ॥१७॥

जयसिंह ने कहा—हे लाची रानी ! ऐसी बोली मत बोलो। हे लाची ! मेरी सेज पर चली चलो ॥१८॥

लाची ने यह सुनते ही कटार निकालकर जयसिंह को मार डाला ॥१९॥

लाची वहाँ से चलकर घर आई। सास ने कहा—तेरा बाबा मर जाय। तू कहाँ थी ? ॥२०॥

लाची ने कहा—हे सास ! न तुम मेरे बाबा को खाओ, न भैया को। राह में डाकू ने रोक लिया था ॥२१॥

किसी ज़माने में लाची जैसी साधारण स्त्रियों में भी इतना साहस होता था कि वे कटार बाँधती थीं और अपने सतीत्व की रक्षा के लिये उससे अत्याचारी का संहार कर सकती थीं।

[७]

पनिया क गइउँ वहि पनिघटवा हो ना।
रामा मेघवा धरेसि मोरि बहियाँ हो ना ॥१॥
छोड़ा छोड़ा मेघे ननदोइया हो ना।
मेघा लहुरी ननदिया तोहिं देबइ हो ना ॥२॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुरिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे अपनी ननदिया हो ना ॥३॥
कैसे बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे नाहीं तोहरे लुगवा झुलउवा हो ना ॥४॥
कूदत कूदत मेघे गयनि बजरिया हो ना।
मेघे अच्छा अच्छा कपड़ा बेसाहेनि हो ना ॥५॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे अपनी ननदिया हो ना ॥६॥
कैसे बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे तोहरे न घर न दुअरिया हो ना ॥७॥
कूदत कूदत मेघे गयेन बढ़इया भैया हो ना।
बढ़ई अच्छी अच्छी लकड़ी कटावहु हो ना ॥८॥
बढ़ई छाइ देउ हमका महलिया हो ना।
बढ़ई हम लउवै आपनि सुन्दरिया हो ना ॥९॥

कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
सरहज बिदा कइ दे आपनि ननदिया हो ना ॥१०॥
कैसे क बिदा करौं मेघे ननदोइया हो ना।
मेघे नाहीं तोरे पंच परमेसर हो ना ॥११॥
कूदत कूदत मेघे गये गँउवाँ के गोयँड़वाँ हो ना।
पंचो कइ न देता हमरी बरतिया हो ना ॥१२॥
कूदत कूदत मेघे गये ससुररिया हो ना।
मेघे उतरि परेलि जनवसिया हो ना ॥१३॥
आरी आरी बैठनि पंच परमेसर हो ना।
अरे रामा बिचवाँ में मेघे ननदोइया हो ना ॥१४॥
रामा उपरा से चिल्हिया जे झपटै हो ना।
रामा मेघऊ क लैकर भागेसि हो ना ॥१५॥

मैं पानी के लिये उस पनघट पर गई थी। वहाँ मेढक ने मेरी बाँह पकड़ ली ॥१॥

मैंने कहा—हे मेढक ननदोई! छोड़ो, छोड़ो। मैं तुमको अपनी छोटी ननद दूँगी ॥२॥

मेढक कूदता-कूदता ससुराल गया और बोला—हे सरहज (साले की स्त्री)! अपनी ननद को विदा कर दो ॥३॥

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? न तुम कोई धोती लाये हो, न झुल्वा (जाकट) ॥४॥

मेढक कूदता-कूदता बाज़ार पहुँचा और उसने अच्छे-अच्छे कपड़े खरीदे ॥५॥

फिर वह कूदता-कूदता ससुराल पहुँचा और बोला—हे सरहज! अपनी ननद को विदा कर दो ॥६॥

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? न तुम्हारे घर है, न द्वार ॥७॥

मेढक कूदता-कूदता बढ़ई के घर पहुँचा और बोला—बढ़ई भाई! अच्छी-अच्छी लकड़ी कटाओ ॥८॥

मेरे लिये महल तैयार कर दो। मैं अपनी सुन्दरी को लानेवाला हूँ ॥९॥

मेढक कूदता-कूदता फिर ससुराल पहुँचा और बोला—हे सरहज! अपनी ननद को विदा कर दो ॥१०॥

सरहज ने कहा—हे मेढक! मैं अपनी ननद को कैसे विदा करूँ? तुम्हारे साथ तुम्हारी बिरादरी के पंच तो हई नहीं हैं ॥११॥

मेढक कूदता-कूदता गाँव के ग्वैंड़े (समीप) पहुँचा और गाँववालों से बोला—हे पंचो! मेरी बारात कर दो न? ॥१२॥

मेढक कूदता-कूदता फिर ससुराल पहुँचा और जनवासे में उतर पड़ा ॥१३॥

अगल-बगल तो पंच लोग बैठे। बीच में मेढक ननदोई बैठा ॥१४॥

इतने में ऊपर से चील झपटी और वह मेढक को लेकर भाग गई ॥१५॥

यही दशा मनुष्य की है। मनुष्य संसार में रहने के लिये कितने प्रपंच किया करता है। लालसाएँ पूरी होने नहीं पातीं कि मौत आ पहुँचती है। सच है—

सेठजी को फ़िक्र थी यक एक के दस कीजिये।
मौत आ पहुँची कि हज़रत! जान वापस कीजिये॥

[८]

कौनी उमरिया सासू निमिया लगायेनि रे ना।
सासू कौनी उमिरिया गै बिदेसवा रे ना ॥ १ ॥
खेलत कूदत बहुअरि निमिया लगायेनि रे ना।
बहुअरि मं।छिया भिनत गै बिदेसवा रे ना ॥ २ ॥

फरै लागी निमिया लहासै लागी डरिया रे ना।
सासू तबहूँ न लौटे तोर बिदेसिया रे ना ॥ ३ ॥
बरहे बरिसवा प लौटे परदेसिया रे ना।
रामा ठाढ़ भये जूड़ी जूड़ी छैहाँ रे ना ॥ ४ ॥
माई उठीं लै के चनना पिढ़ैया रे ना।
रामा बहिनी गेंडुववा जूड़ पनिया रे ना ॥ ५ ॥
थोरा पियै पनिया रे हिरिफिरि चितवैं रे ना।
माई नाहीं देखौं पतरी तिरियवा रे ना ॥ ६ ॥
भैया तोरी बहू गरबा गुमानी रे ना।
रामा वै तौ सोवैं धवरहरे रे ना ॥ ७ ॥
रामा वै तौ करइँ नइहरवा रे ना ॥ ८ ॥
देउ न भैया एक पतरी छड़ियवा रे ना।
मैया तिरिया हेरन हम जाबै रे ना ॥ ९ ॥
यक बन गयनि दुसर बन गयनि रे ना।
रामा तिसरे माँ गोरू चरवहवा रे ना ॥१०॥
मैं तोसे पूछौं भैया गोरू चरवहवा रे ना।
भैया तिरिया यकौ यहँ की जाई रे ना ॥११॥
मन बैरागे लट छिटकाये रे ना।
रामा रोवत नैहरे जाइ रे ना ॥१२॥
ऊँचे घरा कै नीच दुअरिआ रे ना।
रामा माई धिया तेला लगावैं रे ना ॥१३॥
हो देखा माई रे हो देखा माई रे ना।
माई ऊ के आ घोड़ा असवरवा रे ना ॥१४॥
जूड़ै पनिया दिहिउ मोरी माई रे ना।
रामा जूड़ै जूड़ै दिहिउ जववा रे ना ॥१५॥

आप दूप जिनि कहिउ माई रे ना।
माई फिनि हम सासुर जावैं रे ना ॥१६॥

बहू पूछती है—हे सासूजी ! उन्होंने अर्थात् तुम्हारे पुत्र ने किस उम्र में यह नीम का पेड़ लगाया था ? और किस उम्र में वे विदेश गये ? ॥१॥

सासु ने कहा—हे बहू ! खेलने-कूदने के समय उन्होंने यह नीम लगाई थी और रेख भिनते समय वे परदेश गये ॥२॥

बहू कहती है—हाय ! नीम फलने लगी। डालें सुन्दर लगने लगीं। तौ भी तुम्हारा परदेशी नहीं लौटा ॥३॥

बारहवें वर्ष परदेशी घर आया, और नीम की शीतल छाया में खड़ा हुआ ॥४॥

माँ चंदन का पीढ़ा लेकर उठी और बहन लोटे में ठण्ढा पानी ॥५॥

वह थोड़ा पानी पीता है और इधर-उधर घूम-फिरकर देखता है। उसने कहा—हे माँ ! मैं अपनी कृशांगी स्त्री को नहीं देखता हूँ ॥६॥

माँ ने कहा—हे बेटा ! तुम्हारी स्त्री तो अभिमानिनी है। वह धौरहरे (घर के सबसे ऊपरी भाग) पर सोती है ॥७॥

और आज-कल तो वह यहाँ है भी नहीं। नैहर गई है ॥८॥

बेटे ने कहा—माँ ! मुझे मेरी पतली छड़ी दो। मैं स्त्री को खोजने जाऊँगा ॥९॥

वह एक बन में गया। दूसरे में गया। तीसरे में गोरू के चरवाहे मिले ॥१०॥

उनसे पूछा—हे भैया ! क्या कोई स्त्री इधर से जाती हुई तुम लोगों ने देखी है ? ॥११॥

चरवाहों ने कहा—हाँ। एक विरहिणी लट छिटकाये, रोती हुई इधर से गई है ॥१२॥

एक ऊँचा मकान है, जिसका नीचा दरवाजा है। दरवाजे पर माँ

और बेटी तेल लगा रही हैं ॥१३॥

बेटी ने कहा—अरी माँ! वह देख, वह देख। वह घोड़े पर सवार कौन आ रहा है? ॥१४॥

हे मेरी माँ! इन्हें ठण्डा पानी देना; और ठण्डा उत्तर देना ॥१५॥

इन्हें कोई कटुवचन न कहना। मैं फिर ससुराल जाऊँगी ॥१६॥

यह गीत उस समय का है, जब बारह-बारह वर्ष बाद लोग परदेश से कमाकर लौटते थे। स्त्री बेचारी को इतना लम्बा समय कभी नैहर में और कभी-ससुराल में रहकर काटना पड़ता था।

[९]

पतले सिंकिया का एकले बढ़निया,
ए झुकवन बहारै रे आँगनवा ॥ १ ॥
अँगना बहारत छिटकी गरमिया,
ए मथवन चूवै रे पासिनवा ॥ २ ॥
द्वारे से आये पिया पतरँगवा,
ए पोंछे लागे अपनी रुमलिया ॥ ३ ॥
भीतर से बोली हैं सासु बढ़ैतिन,
ए भयो पूत मेहरी कै गूलमवाँ ॥ ४ ॥
हमरा तौ भैले सासु ओही रे दिनवा,
ए घूमेन सातरे भावँरिया ॥ ५ ॥
हमरा भैले सासु ओही रे दिनवा,
ए मँगियन पड़ारे सेंदुरवा ॥ ६ ॥

पतली सींकों की एक बढ़नी (झाड़ू) थी। जिससे स्त्री झुककर आँगन बुहार रही थी ॥१॥

आँगन बुहारते समय गरमी छिटकी। जिससे उसके माथे से पसीना चूने लगा ॥२॥

बाहर से पतले शरीरवाला पति आया और वह रूमाल से स्त्री के माथे का पसीना पोछने लगा ॥३॥

सास ने देख लिया। वह कहने लगी—वाह वा! बेटा! तुम तो औरत के गुलाम होगये ॥४॥

बहू ने कहा—हे सासजी! ये तो उसी दिन से मेरे हो गये, जिस दिन मेरे साथ सात भाँवर घूमे ॥५॥

हे सास! ये तो उसी दिन से मेरे हो गये, जिस दिन से मेरी माँग में सिन्दूर पड़ा ॥६॥

[१०]

पुरुब देस ते आये हैं जोगिया हो ना।
माया जोगिया माँगै थे बसेरवा हो ना ॥ १ ॥
जोगिया मोरे घर धेरिया पतोहिया हो ना।
धेरिया पतोहिया लागैं मोर बिटियवा हो ना ॥
बूढ़ा तुमहूँ लागौ मतवा हमारी हो ना ॥ २ ॥
जब जब जोगिया बँसुरी बजावै हो ना।
रामा रैमत ठाढ़ी ओनाइ हो ना ॥ ३ ॥
बापा जगावैं उठो धेरिया रैमत हो ना।
धेरिया भई है दुधहँड़ी की जुनिया हो ना ॥ ४ ॥
दोहनी तो देहैं बापा लहुरी बहिनिया हो ना।
बाबा हम तो जोगियै चित लावा हो ना ॥ ५ ॥
माता जगावैं उठौ रैमत धेरिया हो ना।
धेरिया भई है कलेउना की जुनिया हो ना ॥ ६ ॥
माया कलेवना तो खैहैं छोटकी बहिनिया हो ना।
माया हम तो जोगियै चित लावा हो ना ॥ ७ ॥

भैया जगावैं रैमत बहिनी हो ना।
बहिनी भई है गोबरवा की जुनिया हो ना ॥ ८ ॥
गोबरा उठावैं भैया छोटी बहिनिया हो ना।
भैया हम तो जोगियै चित लावा हो ना ॥ ९ ॥
भौजी जगावै रैमत ननदी हो ना।
ननदी भई है रसोंइया की जुनिया हो ना ॥१०॥
भौजी जाइ रसोइयैं छोटी बहिनिया हो ना।
भौजी हम तौ जोगियै चित लावा हो ना ॥११॥
बहिनी जगावैं रैमत बहिनियाँ हो ना।
बहिनी भई है गुडुइया कै जुनिया हो ना ॥१२॥
गुडुई तौ खेलै बहिनी सखिनिया हो ना।
बहिनी हम तौ जोगियै चित लावा हो ना ॥१३॥
आधी रात जोगिया बँसुरी बजावै हो ना।
रामा रैमत क लैगे उढ़ारी हो ना ॥१४॥

बेटी माँ से कहती है—हे माँ! पूर्व दिशा से जोगी आये हैं, जो ठहरने के लिये जगह चाहते हैं ॥१॥

माँ ने कहा—हे जोगी! मेरे घर में कन्या और बहू हैं। जोगी ने कहा—हे वृद्धा! कन्या और बहू हैं तो क्या हुआ? वे तो मेरी कन्या जैसी हैं। और तुम भी तो मेरी माँ सरीखी हो ॥२॥

जोगी जब-जब बाँसुरी बजाता था, तब-तब रैमत खड़ी होकर ओनाया (कान लगाकर सुना) करती थी ॥३॥

बाप रैमत को जगाता—हे बेटी! उठो। दूध दुहने की बेला हो गई ॥४॥

रैमत कहती—हे पिता! दूध दुहने की हाँड़ी छोटी बहन दे देगी। मेरा मन तो जोगी में लगा हुआ है ॥५॥

माँ रैमत को जगाती—हे बेटी ! उठो । कलेवा कर लो ॥६॥

रैमत कहती—हे माँ ! मेरी छोटी वहन कलेवा कर लेगी । मेरा मन तो जोगी में लगा हुआ है ॥७॥

भाई रैमत को जगाता—हे वहन ! उठो । गाय भैंसों के नीचे से गोबर उठाने का वक्त हो गया ॥८॥

रैमत कहती—हे भैया ! छोटी वहन गोवर उठा लेगी । मैंने तो जोगी में मन लगाया है ॥९॥

भौजाई जगाती—हे ननद ! उठो । रसोई बनाने की वेला हो गई ॥१०॥

रैमत कहती—हे भौजी ! छोटी वहन रसोई बना लेगी । मेरा मन तो जोगी में लगा है ॥११॥

छोटी वहन जगाती—हे वहन ! उठो । आओ, गुड़िया खेलें ॥१२॥

रैमत कहती—हे बहन ! सखियों के साथ गुड़िया खेल लो । मैंने तो जोगी से मन लगा रक्खा है ॥१३॥

आधीरात को जोगी ने बाँसुरी बजाई और रैमत को वह उढ़ार (पराई स्त्री को चुपके से लेकर भागना) ले गया ॥१४॥

आजकल के जोगी, साधु, फकीर, किस तरह बहू-बेटियों को निकाल ले जाते हैं, यह गीत उसका एक चित्र है । साधु-संतों के भेस में लम्पट लोग गृहस्थों के घरों मे टिकते हैं । किसी को माँ और किसी को वेटी कह-कर अपनी सच्चरित्रता दिखलाते हैं और मौका पाकर किसी को ले भागते हैं । ऐसी घटनायें देहात में होती ही रहती हैं । भेस की पूजा हिन्दू-जाति को बड़ी ही हानि पहुँचा रही है ।

[११]

जो मैं होतिउँ वनकी कोइलिया, वनै रे वन रहतिउँ हो ना ।
मोरा हरि जाते अहेरिया, तौ सवद सुनौतिउँ हो ना ॥

यदि मैं वन की कोयल होती, तो वन में ही रहती। मेरे प्राणनाथ जब शिकार खेलने जाते, तब मैं उनको अपना शब्द सुनाती।

[१२]

काँचिनि इँटिया के नीची हो जगतिया हो ना।
रामा पनिया भरै इक सुन्दरि हो ना ॥ १ ॥
घोड़वा चढ़ा आवै हो राजा पुतवा हो ना।
सुन्दरि एक बुन्दवा पनिया पियावहु हो ना ॥ २ ॥
कैसे के पनियाँ पियावौं राजा पुतवा हो ना।
रामा मोरी जतिया तो है जुलहिनिया हो ना ॥ ३ ॥
जोलहिन लागौ न हमरे गोहनवाँ हो ना।
जोलहिन तोहँका राखब जैसे घिउ गागरि हो ना ॥ ४ ॥
अपनी महल से उनकै बियही निहारै हो ना।
सासू तोरा पूता उढ़री लै आवैं हो ना ॥ ५ ॥
चुप रहु बियही तु चुप रहु बियही हो ना।
रामा उढ़री आवै गोबरा काढ़ै हो ना ॥ ६ ॥
गोरी गोरी बहियाँ हरी हरी चुरिया हो ना।
सासू कौन हाथे गोबरा मैं काढ़ौं हो ना ॥ ७ ॥
कुसुम क सरिया छोड़ु, उढ़री हो ना।
उढ़री पहिरि ले फटही लुगरिया हो ना ॥ ८ ॥
लुगरी पहिरि धन गोबरा काढ़ै हो ना ॥ ९ ॥
जीरा ऐसी फुफुनी दिउलिया ऐसी मँगिया हो ना।
सासू कौने मुड़े मैं गोबरा ढोऊँ हो ना ॥१०॥
गेहुँवा के रोटिया अरहरि कै दलिया हो ना।
रामा जेवना बनावै उहै बियही हो ना ॥११॥
माई आजू क जेवनरवा नाहीं बना हो ना ॥१२॥

मकरा कै रोटी करेथुवा क सगवा हो ना।
रामा जेवना बनावै ऊहै उढ़री हो ना ॥१३॥
जेंवन बैठे उनही राजपुतवा हो ना।
माई आजु कै जेवन खूबै बना हो ना ॥१४॥
उढ़री बियही दोनों करैं झोंटी क झोंटा हो ना।
रामा राजा बैठि डेहरी झंखैं हो ना ॥१५॥
कवनि को मारौं माई कौनि को निसारौं हो ना ॥१६॥
बियही मारो पूता बियही क निसारौ हो ना।
उढ़री का तिलरी पहिरावौ हो ना ॥१७॥
सोनवा क टकवा मैं तोका देवूँ हो ना।
गोड़िया रखुईं के परवा लगावौ हो ना ॥१८॥
बियही क नाव प्रभू परवा लगावै हो ना।
रामा उढ़री बूड़ैं मँझधरवा हो ना ॥१९॥
उढ़री के ममऊ दहिजरू के नाती हो ना।
रामा बियही क धर्मा मनाओ हो ना ॥२०॥

कच्ची ईंट की बनी हुई नीची जगत थी। उस पर एक सुन्दरी पानी भर रही थी ॥१॥

घोड़े पर सवार एक राजपूत उधर से निकला। उसने कहा—हे सुन्दरि! एक बूँद पानी पिला दो ॥२॥

सुन्दरी ने कहा—हे राजपूत! मैं पानी कैसे पिलाऊँ? मैं तो जाति की जुलाहिन हूँ ॥३॥

राजपूत ने कहा—हे जुलाहिन! तुम मेरे साथ चली चलो न? मैं तुमको इस तरह रक्खूँगा, जैसे घी का घड़ा ॥४॥

जुलाहिन राजपूत के साथ उढर गई। राजपूत उसे लेकर घर गया। राजपूत की विवाहिता स्त्री ने दूर से देखकर कहा—हे सासजी!

तुम्हारे पुत्रजी तो एक उढरी ला रहे हैं ॥५॥

सास ने कहा—लाने दो बहू ! तुम चुप रहो। वह आकर गोबर काढ़ा करेगी ॥६॥

उढ़री की गोरी-गोरी बाँहों में हरी-हरी चूड़ियाँ थीं। उसने सास से पूछा—हे सास ! मैं गोबर कैसे उठाऊँ ? ॥७॥

सास ने कहा—कुसुमी रंग की साडी तो उतारकर रख दो। यह लुगरी (फटी पुरानी धोती) पहन लो ॥८॥

उढ़री लुगरी पहनकर गोबर काढ़ने लगी ॥९॥

जीरे की तरह नीवी और दिये की लौ की तरह माँगवाली उढरी ने कहा—हे सास ! मैं मूँड़ पर कैसे गोबर ढोऊँ ? ॥१०॥

विवाहिता स्त्री ने गेहूँ की रोटी और अरहर की दाल बनाया ॥११॥

पति ने जीमते समय कहा—आज का भोजन अच्छा नहीं ॥१२॥

मडुवे की रोटी और करेथुवा का साग उढ़री ने बनाया ॥१३॥

पति ने जीमते वक़् कहा—आज का भोजन बड़ा स्वादिष्ट बना है ॥१४॥

उढरी और विवाहिता दोनों झोंटे पकड़कर गुत्थमगुत्था हो गईं। पति ड्योढ़ी में बैठकर झंख रहा है ॥१५॥

हे माँ ! किसे मारूँ ? किसे निकालूँ ! ॥१६॥

माँ ने ताना मारते हुये कहा—बेटा ! विवाहिता को मारो। विवाहिता को निकालो। उढ़री को तिलडी (एक गहना) पहनाओ ॥१७॥

पति ने गोड़िया (एक जाति) को बुलाकर कहा—हे गोड़िया ! मैं तुमको मोहर दूँगा। तुम इस उढरी को पार लगा दो ॥१८॥

विवाहिता की नाव को भगवान पार लगाते हैं। पर उढरी मँझधार में डूब जाती हैं ॥१९॥

ऐ उढरी के मामा ! दाढ़ीजार के नाती ! तुम अपनी विवाहिता का धर्म मनाओ ॥२०॥

हिंडोले के गीत

सावन में हरएक गाँव में, बाग में या तालाब के किनारेवाले वृक्ष पर हिँडोले पड़ जाते हैं। जिनपर बालक और बालिकायें तथा सयाने स्त्री-पुरुष भी दिनभर झूला करते हैं और हृदयस्पर्शी गीत गाया करते हैं।

जो गीत हिँडोले पर गाये जाते हैं, वे बड़े ही मधुर होते हैं। उनकी लय भी ऐसी मन्द्र होती है कि मन सहज ही मे उनसे चिपक जाता है।

यहाँ हिंडोले के कुछ गीत दिये जाते हैं:—

[१]

बिरना झीनी झीनी पतिया अमिलि कइ,
बिरना डोभइ बरियवा क पूत। बलैया लेउँ बीरन ॥१॥
बिरना हाली हाली डोभउ बरिया पूत,
मोरा बिरना जेवनवाँ क ठाढ़। " ॥ २ ॥
बिरना हाली हाली जेंवउ बिरन मोरा,
बिरना तुरुक लड़इया क ठाढ़, "
बिरना मुगल लड़इया क ठाढ़। " ॥ ३ ॥
बिरना मुगल की ओरियाँ सब साठि जने,
मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़। " ॥ ४ ॥
बिरना मुगल जुझैं सब साठि जने,
मोरा भइया समर जीति ठाढ़। " ॥ ५ ॥
बिरना कोखिया बखानउँ मयरिया कै,
जेकर पुतवा समर जीति ठाढ़। " ॥ ६ ॥

बिरना भगिया बखानउँ बहिनियाँ कै,
जेकर भइया समर जीति ठाढ़। बलैया लेउँ बीरन॥७॥
बिरना मँगिया बखानउँ मैं भौजी कै,
जेकर समिया समर जीति ठाढ़। " ॥८॥

बहन कहती है—हे भाई! इमली की नन्हीं-नन्हीं पत्तियाँ बारी का लड़का डोभ रहा है ॥१॥

हे बारी के लड़के! जल्दी-जल्दी डोभो। मेरा भाई जीमने के लिये खड़ा है ॥२॥

हे भाई! जल्दी-जल्दी जीम लो। तुर्क (या मुगल) युद्ध के लिये खड़ा है ॥३॥

मुगल की ओर सब साठ आदमी हैं। और मेरा भाई अकेला ही खड़ा है ॥४॥

मुगल के सब साठों आदमी जूझ गये। मेरा भाई युद्ध जीतकर खड़ा है ॥५॥

मैं उस माता की कोख को सराहती हूँ, जिसका पुत्र युद्ध जीत कर खड़ा है ॥६॥

मैं उस बहन के भाग्य की बड़ाई करती हूँ, जिसका भाई युद्ध जीत कर खड़ा है ॥७॥

मैं अपनी भावज के सुहाग का बखान करती हूँ, जिसका स्वामी युद्ध जीत कर खड़ा है ॥८॥

इस गीत का नाम बिरना है। सावन में इसे बहनें अपने भाई को सम्बोधन करके गाती हैं।

यह गीत मुगलों के समय का है। वह समय कैसा अद्भुत था जब एक-एक हिन्दू वीर साठ-साठ शत्रुओं का मुक़ाबला करते थे। और वे बहनें कैसी थीं जो यह जानते हुए भी, कि मेरे भाई को अकेले साठ शत्रुओं से

लड़ना है, उसे जल्दी-जल्दी भोजन करके लड़ने जाने को उत्साहित करती थीं। भला, ऐसे वीर पुरुष की माँ, बहन और स्त्री के हर्ष का क्या ठिकाना? ऐसा दृश्य देखने का अवसर हिन्दू-जाति को बहुत दिनों से नहीं मिला।

[२]

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु,
　　मोरा पिया उतरइ दे पार॥ धीरे बहु० ॥ १ ॥
काहेन की तोरी नइया रे,
　　काहे की करुवारि।
कहाँ तोरा नइया खेवइया,
　　के धन उतरइँ पार॥　　,,　　॥ २ ॥
धरमैं कइ मोरी नइया रे,
　　सत कइ लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नइया खेवइया रे,
　　हम धन उतरब पार॥　　,,　　॥ ३ ॥

स्त्री कहती है—हे नदी! तू धीरे-धीरे बह। मेरे पति को पार उतरने दे॥१॥

नदी ने पूछा—तेरी नाव किस चीज की है? पतवार किस चीज का है? तेरी नाव का खेनेवाला कौन है? और कौन स्त्री पार उतरेगी?॥२॥

स्त्री उत्तर देती है—धर्म की मेरी नाव है। जिसमें सत का पतवार लगा है। नाव का खेनेवाला मेरा स्वामी है। और मैं स्त्री पार उतरूँगी॥३॥

यह गीत जिस समय मन्द-मन्द स्वर से गाया जाता है, हृदय तरंगित हो उठता है। स्त्री-कवि के रचे हुये इस भावपूर्ण गीत की तुलना हिन्दी के उच्च से उच्च कवि की कविता से की जा सकती है।

[३]

टुटही मड़इया चुनिया टपकइ रे,
के सुधि लेवै हमार ॥ टुटही० ॥ १ ॥
जेठा छवावइँ आपन बँगला रे,
देवरा छवावइँ चउपारि।
हमरा मँदिलवा केन छवइहैं रे,
जेकर पियवा बिदेस ॥ २ ॥

स्त्री कहती है—झोपड़ी टूटी हुई है। बूँद-बूँद टपक रही है। मेरी सुध कौन लेगा ? ॥१॥

जेठ अपना बँगला छवा रहे हैं और देवर अपनी चौपाल। हा ! मेरा घर कौन छवायेगा ? जिसका प्रियतम परदेश में है ॥२॥

[४]

छोटी मोटी दुहनी दुधे कै
बिना रे अगिनि बाफ लेइ। बलैयाँ लेउँ बीरन ॥
इहै दुध पियैं बीरन मोरा,
भइया लड़ैं मुगलवा के साथ। " ॥

बहन कहती है—छोटी सी दुहनी (जिस बर्तन में दूध दुहा जाता है) है, उसमें ऐसा ताजा दूध भरा है कि आग बिना ही उसमें से भाप निकल रही है। अहा ! यही दूध मेरा भाई पीता है, जो मुग़लों से लड़ता है।

कैसा मर्मवेधी भाव है। एक समय था, जब हरएक घर में वीरता के गीत गाये जाते थे। खाने-पीने के पदार्थों के साथ साहस और शौर्य की कल्पना की जाती थी।

[५]

बाबा निबिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निबिया चिरैया बसेर। बलैया लेउँ बीरन ॥१॥

बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख देउ ,
बिटिया चिरैया की नाईं—बलैया लेउँ बीरन ॥२॥
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं ,
रहि जइहैं निबिया अकेलि— „ ॥३॥
सब रे बिटियवा जइहैं सासुर,
रहि जइहैं माई अकेलि „ ॥४॥

कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का पेड़ है, जो शायद उसी का लगाया होगा।

वह कहती है—हे बाबा ! यह नीम का पेड मत काटना। इस पर चिड़ियाँ बसेरा लेती हैं ॥१॥

हे बाबा ! बेटियों को भी कोई कष्ट न देना। बेटी और पंछी की दशा एक सी है ॥२॥

सब चिडियाँ उड जायँगी, नीम अकेली रह जायगी ॥३॥

सब बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल चली जायँगीं, माँ अकेली रह जायगी ॥४॥

नीम के साथ माँ की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना करके उदासीनता का जो चित्र इस गीत में अंकित है, कविता की दृष्टि से वह साधारण कोटि का नहीं है। हिन्दी-कविता मे चिडियों के बसेरे की याद संसार की क्षणभंगुरता दिखाने में की जाती है। पर इस गीत में वह बिल्कुल एक नये रूप में है।

[६]

ठाढ़ी झरोखवा मैं चितवउँ,
नैहरे से केउ नाहीं आइ ॥ १ ॥
ओहिरे मयरिया कैसन बपई रे
जिन मोरी सुधियो न लीन ॥ २ ॥

ओहिरे वहिनिया कैसन वीरन,
ससुरे में सावन होइ ॥ ३ ॥
अगिले के घोड़वा बबैया मोरा,
पिछवाँ के बिरना हमार ॥ ४ ॥
भला रे मयरिया भल वपई रे,
अब मोरी सुधिया जे लीन ॥ ५ ॥
कँवरी ले आवइँ बबैया मोरा,
जेकरि बिटिया दुलारि ॥ ६ ॥
चुनरी ले आवइँ बिरन मोरा,
जेकरि बहिनि दुलारि ॥ ७ ॥

कन्या कहती है—झरोखे के पास खड़ी मैं देख रही हूँ। नैहर से कोई नहीं आया ॥१॥

हाय! वे माँ-बाप कैसे है? जिन्होंने मेरी सुध तक न ली ॥२॥

अरे! उस बहन का वह भाई कैसा? जिसका सावन ससुराल में बीतेगा ॥३॥

कन्या देख रही है—आगे के घोड़े पर मेरे पिता हैं, और पीछे के घोड़े पर मेरा भाई ॥४॥

अहा! मेरे माँ-बाप कैसे भले हैं, जिन्होंने मेरी सुध ली है ॥५॥

मेरे पिता काँवर लाये हैं, जो अपनी कन्या को बहुत चाहते हैं ॥६॥

मेरा भाई चूँनरी लाया है, जिसको अपनी बहन बहुत प्यारी है ॥७॥

युक्तप्रांत मे यह चाल है कि श्रावण में विवाहिता कन्यायें अपने पिता के घर बुलाई जाती हैं। श्रावण प्रारंभ होते ही कन्यायें अपने घर की राह देखने लगती हैं। इस गीत में उसी समय का वर्णन है।

[७]

दूरहिँ देस जनि फरेहु करेरुवा,
के तोहैं तोरन जाइ—करेरुवा ॥ १ ॥

दूरिहिँ देस जनि वरेहु बिटियवा,
के तोहैं आनन जाइ—वहिनिया ॥ २ ॥
हमका तो अनिहैं भैया पियारे भैया,
जेकरि वहिनि दुलारी—हिँडोलवा ॥ ३ ॥

हे करेरुआ! बहुत दूरी पर मत फलना। कौन तुम्हें तोड़ने जायगा? ॥१॥

कन्या का विवाह दूर देश में नहीं करना। कौन लाने जायगा? ॥२॥

बहन कहती है—मुझे तो मेरे अमुक भाई लाने जायँगे, जिन्हें अपनी बहन बहुत प्यारी है ॥३॥

करेरुआ एक फल होता है, जो कहीं-कहीं दसहरे के दिन खाया जाता है। इसका खाना पुण्य समझा जाता है।

[८]

गलिया क गलिया फिरइ मनिहरवा,
के लइहैं मोतिया क हार—हिँडोलवा ॥ १ ॥
मोतिया क हार लइहैं भैया हो""भैया,
जेकर वहिनी दुलारी—हिँडोलवा ॥ २ ॥
पाछे लागी ठुनकइँ वहिनी""रानी,
एक लर हमहूँ क देहु—मोर बिरना ॥ ३ ॥
एक लर टुटि हैं सहस मोती गिरि हैं,
कुलि लर वहिनि तुँ लेउ—हिँडोलवा ॥ ४ ॥

गली-गली में मणिहार फिर रहा है—मोतियों का हार कौन लेगा? ॥१॥

मोती का हार तो मेरे अमुक भाई लेंगे, जिन्हें अपनी बहन से बड़ा स्नेह है ॥२॥

भाई के पीछे-पीछे अमुक देवी ठुनुक रही हैं—हे भैया ! एक लड़ मुझे भी ख़रीद दो ॥३॥

भाई ने कहा—एक लड़ तोड़ने में हजारों मोती गिर जायँगे। लो, तुम पूरी की पूरी माला ही ले लो ॥४॥

बहनें सदा हाथ फैलाये रहती हैं कि भाइयों से कुछ मिले। यह गीत भी किसी बहन का बनाया है जो भाई को उत्साहित करती है कि थोड़ा माँगने पर भी अधिक देना।

[९]

प्रेम पिरित रस बिरवा रे, तुम पिया चलेउ लगाइ।
सींचन कइ सुधिया राखेउ, देखेउ मुरझि न जाइ ॥ १ ॥
किन रे लगावा नौरँगिया रे, के धौं नेवुआ अनार।
किन रे लगावा रस बिरवा रे, देखेउ मुरझि न जाइ ॥ २ ॥
जेठवा लगावा नवरँगिया रे, देवरा नेवुआ अनार।
उन पिया बोये रस बिरवा रे, देखेउ मुरझि न जाइ ॥ ३ ॥
प्रेम पिरित रस बिरवा रे ॥

हे प्रियतम ! तुम प्रेम और प्रीतिरस का पौधा लगा चले हो। सींचने की सुध करना। देखना, कहीं वह मुरझा न जाय ॥१॥

किसने नारंगी लगाई है ? किसने नीबू और अनार ? ये रस के पौधे किसने लगाये हैं ? देखना, कहीं मुरझा न जायँ ॥२॥

जेठ ने नारंगी लगाई है। देवर ने नीबू और अनार। मेरे प्रियतम ने रस का पौधा लगाया है। देखना, कहीं मुरझा न जाय ॥३॥

यह गीत प्रेम रस से ओत-प्रोत है। सावन में झूला झूलते समय जब कोई विरहिणी यह गीत मधुर कंठ से गाती है, तब सुननेवालों का हृदय सिहर उठता है।

सुप्रसिद्ध कवि रहीम के एक नौकर की नवविवाहिता वधू ने उसके पास एक बरवा लिख भेजा था—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा, चलेहु लगाइ।
सींचन की सुधि लीजौ, मुरझि न जाइ॥

इसमें जो बिरवा शब्द आ गया है, उसी से बरवै छंद का नाम पड़ा है, ऐसी कहावत है। इस बरवै और ऊपर के गीत का भाव एक ही है।

[१०]

मेहँदी चुनन गइलिउँ बगिया रे,
लहुरे देवरवा के साथ। मेहँदी० ॥ १ ॥
चुनि चुनि भरलेउँ डलरिया रे,
धइलिउँ मैं सिलिया के माथ। " " ॥ २ ॥
रगि रगि पिसिलिउँ मेहँदिया रे,
उठायउँ रेंड़वा के पात। " " ॥ ३ ॥
देवरा के दिहेउँ कानी अँगुरी रे,
अपुना क भरि भरि हाथ। " " ॥ ४ ॥

मैं छोटे देवर के साथ मेंहदी चुनने बाग में गई थी ॥१॥

मेंहदी के पत्ते तोड-तोड़कर मैंने अपनी डलिया भर ली और सिल के मत्थे पर उसे रखकर ख़ूब घिस-घिसकर पीसा ॥२॥

फिर उसे रेंड़ के पत्ते पर उठा लिया। ॥३॥

देवर की केवल कनिष्ठिका उँगली में और अपने हाथ भरकर मैंने मेंहदी लगाई ॥४॥

सावन भादों में उत्तर भारत में हाथ-पैर में मेंहदी लगाने का रिवाज है। नववधुएँ और कन्यायें इस काम में ख़ास भाग लेती हैं। हाथ-पैर रंगने की चाल इस देश में बहुत पुरानी है। संस्कृत और हिन्दी के

काव्यों में महावर का वर्णन बहुत आता है। मेंहदी से हाथ-पैर तो लाल हो ही जाते हैं, साथ ही एक लाभ यह भी होता है कि बरसात में पैर की उँगलियाँ अधिक पानी या कीचड़ के संयोग से सड़तीं नहीं।

[११]

सुनो सखी सइयाँ जुगिया भये, हमहूँ जोगिन हुय जायँ ॥ १ ॥
जुगिया बजावे बीना बाँसुरी, जोगिन गावे मल्हार ॥ २ ॥
जुगिया के लाले लाले कपड़े, जोगिन के लम्बे लम्बे केस ॥ ३ ॥
साँप ने छोड़ी आपन कोंचुली, जमुना छोड़ी है कछार ॥ ४ ॥
सइँयाँ ने छोड़े आले जोबना, जे दुख सहे न जायँ ॥ ५ ॥
सइयाँ हमारे परदेसवाँ, किस पै करिहौं सिंगार ॥ ६ ॥

हे सखी! सुनो। स्वामी तो जोगी हो गये। मैं भी जोगिनी हो जाऊँगी ॥१॥

जोगी वीन और बाँसुरी बजा रहा है। जोगिनी मलार गा रही है ॥२॥

जोगी के लाल-लाल कपड़े हैं और जोगिन के लम्बे-लम्बे केश हैं ॥३॥

साँप ने केंचुल छोड़ दी है और जमना नदी ने अपना कछार छोड़ दिया है ॥४॥

स्वामी ने उठते हुये यौवन वाली स्त्री छोड़ दी है। यह दुःख सहा नहीं जाता ॥५॥

मेरे स्वामी परदेश में हैं। मैं किसके लिये श्रृङ्गार करूँ? ॥६॥

[१२]

सावन माँ कुस कास जामे भादौं दुबिया हरेरि रे।
माया निठुरिन नींद कैसे आवे वीरन को न पठाइया रे ॥ १ ॥
वीरन आये कुछऊ न लाये सासु ननँद घर रूठि रे।
जेठानिन बैरिन बोल बोले वीरन चले घर आपने ॥ २ ॥

ऊँचवा चढ़ि चढ़ि माया निहारैं मोरी धिया धौं केती
दूरि रे।
रूठे पुतवा भूखे हैं घोड़वा छूँछे हैं चारिउ कहार रे ॥ ३ ॥
आवउ न पूता मोरे बइठौ अँगनमाँ कहउ बहिनि कै हाल रे।
का कही अपनी मायन आगे कहत सुनत दुखु लाग रे ॥ ४ ॥
पूत हो तुम भयउ कपूते रोवत बहिनि आये छाँड़ि रे।
जौ मोरी धेरिया के दादुलि होते हँसत खेलत लइ अवतें रे ॥ ५ ॥

ससुराल में बहन चिंता करती है—

सावन में कुश-कास जम आये। भादों मे दूब हरी-हरी हो आई। निर्दयी माँ को नींद कैसे आती है? जो उसने भाई को नहीं भेजा ॥१॥

भाई आये तो, पर लाये कुछ नहीं। सास और ननद घर में रूठ गईं। बैरिन जेठानी व्यंग बोली। जिससे मेरा भाई नाराज़ होकर घर लौट गया ॥२॥

ऊँचे स्थान पर खडी हो-होकर माँ देखती है—मेरी बेटी अब कितनी दूर पर है? पर पुत्र तो रूठा है, घोड़ा भूखा है, चारों कहार खाली हैं ॥३॥

बेटा! आओ आँगन में बैठो और अपनी बहन का हाल बताओ न? बेटा कहता है—माँ! अपनी माँ के आगे क्या कहूँ? बहन का हाल कहते-सुनते दु:ख लगता है ॥४॥

माँ कहती है—ऐ पुत्र! तुम कपूत हो, जो रोती हुई बहन को छोड़ आये। जो मेरी बेटी के पिता होते, तो उसे हँसते-खेलते घर लाते ॥५॥

भाई बहन को विदा कराने गया था। पर जैसा दस्तूर है, वह बहन के ससुराल वालों के लिये मिठाई आदि कुछ ले नहीं गया था। इससे बहन की सास-ननद और जेठानी मुँह फुला बैठीं और उसके भाई को उल्टी-सीधी सुनाने लगीं। नौजवान भाई जोश में आकर बहन को लिये

बिना ही वापस गया। माँ बेटी की प्रतीक्षा कर रही थी। जब डोली खाली देखी, तब उसका हृदय उमड़ आया। उसे अपने पति की याद आई, जिसका देहान्त हो चुका था—हाय! वे होते तो कन्या को अवश्य लाते।

कैसी मर्म-भेदिनी स्मृति है!

[१३]

करूँ कौन जतन अरी ए री सखी मोरे नयनों से बरसे बादरिया ॥१॥
उठी काली घटा बादल गरजे चली ठंडी पवन मेरा जिया लरजे ॥२॥
थी पिया मिलन की आस सखी परदेस गये मोरे साँवरिया ॥३॥
सब सखियाँ हिँडोले झूल रहीं खड़ी भीजूँ पिया तोरे आँगन में ॥४॥
भर दे रे रँगीले मन मोहन मेरी खाली पड़ी हैं गागरियाँ ॥५॥

हे सखी! मैं क्या उपाय करूँ? मेरी आँखों से घटा बरस रही है॥१॥

काली घटा उठ रही है। बादल गरज रहे हैं। ठंडी हवा चल रही है। मेरा हृदय काँप रहा है ॥२॥

प्यारे से मिलने की आशा थी। पर हाय! वे तो परदेश गये ॥३॥

सब सखियाँ हिँडोले झूल रही हैं। मैं हे प्रियतम! तुम्हारे आँगन में खड़ी भीग रही हूँ ॥४॥

हे रँगीले मनमोहन! मेरे घड़े खाली पड़े हैं। इन्हें भर दे ॥५॥

[१४]

गढ़ पर परेला रे हिंडोलवा सब सखि झूलन जायँ।
हम धन ठाढ़ी रे जगत पर ॥१॥
बाट बटोहिया तुहुँ मोरा भैया पियवा से कहित बुझाय।
गढ़ पर परेला रे हिंडोलवा० ॥२॥
बाट बटोहिया तुहुँ मोरा भैया धनियाँ से कहिए बुझाय।
सखि सँग झुलि हैं हिंडोलवा जोबना के रखिहैं छिपाय।
हमहुँ अपब छव मास ॥३॥

किले पर हिँडोला पड़ा है। सब सखियाँ झूलने जा रही हैं। मैं जगत पर खड़ी हूँ ॥१॥

हे राह चलनेवाले भाई! मेरे प्राणनाथ को समझाकर कहना—क़िले पर हिँडोला पड़ गया है ॥२॥

पति ने कहा—हे राह चलनेवाले भाई! मेरी प्यारी स्त्री से कह देना—सखियों के साथ हिँडोला झूलना। लेकिन यौवन को छिपाकर रखना। मैं छः महीने में आऊँगा ॥३॥

[१५]

घेरि घेरि आवै पिया कारी बदरिया,
　　दैवा बरसै हो बड़े बड़े बूँद। बदरिया बैरिन हो ॥ १ ॥
सब लोग भीजैं घर अपने,
　　मोरा पिया हो भीजैं परदेस। बदरिया बैरिन हो ॥ २ ॥
दुलहिन हो रानी हो चीठी लिखि भेजैं,
　　घर आओ हो ननद जी के भाय। बदरिया बैरिन हो ॥ ३ ॥

हे प्रियतम! काली घटा घेर-घेर आती है। बादल बड़े-बड़े बूँद बरसते हैं। घटा मेरी बैरिन है ॥१॥

सब लोग अपने घर में भीगते हैं। मेरे प्राणेश्वर परदेश में भीग रहे हैं ॥२॥

दुलहिन रानी ने चिट्ठी लिखकर भेजा है—हे ननदजी के भाई! घर आओ ॥३॥

[१६]

आसौं के सवनवाँ सैयाँ घरे रहो,
घरे रहो ननद के वीर। आसौं के० ॥ १ ॥
सावन गरजै चमाकै हो,
छतियाँ दरद उठै मोर।

ऐसे उमंग रितु बरखा में,
निरमोही दरदो न बूझ। आसों के० ॥ २ ॥

हे प्रियतम ! हे मेरी प्यारी ननद के भाई ! इस बार के सावन में तुम घर ही रहो ॥१॥

सावन गरज रहा है। चमक रहा है। कैसी उमंग वाली ऋतु है ! हाय ! निर्मोही पति मेरी पीड़ा को नहीं समझता ॥२॥

[१७]

माई तलवा कुहकइ मोर।
माई जेठरा भइअवा जिनि पठये सावन नीअर।
माई सार बहनोइया एक्कै होइहैं सावन नीअर ॥ १ ॥
माई बभना क पुतवा जिनि पठये सावन नीअर।
माई पोथिया बाँचन लगि हैं सावन नीअर ॥ २ ॥
माई लहुरा भइयवा पठये सावन नीअर।
माई रोइ गाइ बिदवा करइहैं सावन नीअर ॥ ३ ॥

हे माँ ! ताल में मोर कुहक रहा है। सावन निकट है। हे माँ ! जेठे भाई को मत भेजना। साले बहनोई दोनों एक हो जायँगे ॥१॥

हे माँ ! ब्राह्मण के बेटे को भी मत भेजना। वह यहाँ कथा बाँचने लगेगा ॥२॥

हे माँ ! छोटे भाई को भेजना। वह रो-गाकर विदा करा ही लेगा ॥३॥

[१८]

सावन घन गरजै।
कौधर की घटा ओनई, कौधर बरिसै गँभीर।
हमरा ललन, परदेसिया, भीजत होइहैं कवन देस ॥
सावन घन गरजै ॥ १ ॥

जेहि घर हिंगिया न महँकै, जिरवा क कवन धोंगार।
जेहि घर सासु दरुनियाँ, बहुवा क कवन सिँगार॥
सावन घन गरजै॥ २॥

खस कै बँगला छवौतिउँ, चौमुख रखतिउँ दुवार।
हरि लैकै सोउतिउँ अँटरिया, झोंकवन आवति बयार॥
सावन घन गरजै॥ ३॥

अतलस लहँगा पहिरतिउँ, चुनरी बरनि न जाय।
झमकि कै चढ़तिउँ अटरिया, चौमुख दियना बराय॥ ४॥

सावन का बादल गरज रहा है। एक तरफ़ घटा छा रही है। एक तरफ़ गहरी बरसात हो रही है। हाय! मेरे प्यारे परदेशी किसी देश मे भीगते होंगे॥१॥

जिस घर मे हींग न हो, उस घर में जीरे की छौंक से क्या होगा? जिस घर में कर्कशा सास है, उस घर में बहू क्या शृङ्गार करे?॥२॥

हा! मेरे प्रियतम घर होते तो मैं खस का बँगला छवाती। जिसमें चारोंओर द्वार रखती। हवा के लहरे आते रहते। मैं अपने प्राणनाथ के साथ अटारी पर सोती॥३॥

अतलस का लहँगा पहनती। चूनरी ऐसी पहनती, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। चारोओर दीपक जलाकर मैं झमक कर अटा पर चढ़ती॥४॥

[१९]

बूँदन भीजै मोरी सारी,
मैं कैसे आऊँ बालमा॥ १॥
एक तौ मेंह झमाझम बरसै,
दूजे पवन झकोर॥ २॥

आऊँ तो भीजे मोरी सुरँग चुनरिया,
नाहित छुटत सनेह ॥ ३ ॥
नाहीं डर बहुअरि भीजै क चुनरिया,
डर बहुअरि छुटै क सनेह ॥ ४ ॥
सनेह से चुनरी होइहैं बहुअरि,
चुनरी से नाहिन सनेह ॥ ५ ॥

हे प्यारे! मैं कैसे आऊँ? मेरी साड़ी बूँदों से भीग जायगी ॥१॥

एक तो झमाझम मेह बरस रहा है। दूसरे ज़ोर से हवा चल रही है ॥२॥

मैं आती हूँ तो मेरी रंगदार चूनरी भीगती है। नहीं आती हूँ, तो स्नेह छूटता है ॥३॥

हे बहू! चूनरी भीगने का डर नहीं, स्नेह छूटने का डर है ॥४॥

हे बहू! स्नेह से तो बहुत सी चूनरी होंगी। पर चूनरी से स्नेह नहीं होगा ॥५॥

[२०]

बिरना कासे कुसे कै पटवा अँग छिलीया छीली जाय।
बलैया लेउँ बीरन ॥ १ ॥
बिरना पैंयाँ तोरे लागों बिरन भैया पटवा कै थलुवा डरावो।
बलैया लेउँ बीरन ॥ २ ॥
पसों कै पटवा महँग भये बहिनी अगवाँ डरैबे पँचडोर।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ३ ॥
हमतउ जावै सजन घर भैया झुलिहैं धनियाँ तुहार।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ४ ॥
धनियाँ भेजबै नैहर क बहिनी तुहँका आनन हम जाब।
बलैया लेउँ बीरन ॥ ५ ॥

हे भैया ! कास कुस की रस्सी हिंडोले में लगी है, जिससे अंग छिल जाया करता है ॥१॥

हे भैया ! मैं तुम्हारा पैर छूती हूँ, रेशम का झूला डलवा दो ॥२॥

हे बहन ! इस साल तो रेशम बड़ा महँगा है। अगले साल पाँच डोरी का झूला डलवा दूँगा ॥३॥

हे भैया ! अगले साल तो मैं अपने सजन के घर चली जाऊँगी। तब तुम्हारी स्त्री झूलेगी ॥४॥

हे बहन ! मैं अपनी स्त्री को नैहर भेज दूँगा और तुमको विदा कराने आऊँगा ॥५॥

[२१]

मोरी धानी चुनरिआ इतर गमके।
धना वारी उमिरिया नैहर तरसै ॥ १ ॥
सोने के थारा मैं जेवना परोसेवँ,
मोरा जेवनवाला विदेस तरसै ॥ २ ॥
झँझरे गेंडुववा गंगा जल पानी,
मोरा घूँटनवाला विदेस तरसै ॥ ३ ॥
लवँगा इलयची के बीड़ा जोड़ाएवँ,
मेरा कूँचनवाला विदेस तरसै ॥ ४ ॥
कलिआ चुनि चुनि सेजा लगाएवँ,
मेरा सूतनवाला विदेस तरसै ॥ ५ ॥

धानी रंग की मेरी चादर में इत्र महँक रहा है। स्त्री की उम्र अभी नई है, पर वह नैहर में तरस रही है ॥१॥

सोने के थाल में भोजन परोसती हूँ, पर जीमनेवाला विदेश में तरस रहा है ॥२॥

सुराही में गंगाजल रखती हूँ, पर पीनेवाला परदेश में है ॥३॥

लौंग और इलायची डालकर पान का बीड़ा बनाती हूँ, पर खाने-वाला परदेश में है ॥४॥

कली चुन-चुन कर फूलों की सेज बिछाती हूँ, पर मेरा सोनेवाला परदेश में है ॥५॥

[२२]

अरे सावन मेंहदी बोवायउँ रे, अरे भादौं माँ दुइ दुइ पात।
सैंया मोरा अरे छाये रे बिदेसवा रे, सींचौं मैं नयन निचोर ॥

मैं ने सावन में मेहँदी बोआई। भादौं में उसमें दो-दो पत्ते निकल आये। मेरे प्रियतम परदेश में हैं। मैं आँखें निचोड़-निचोड़ कर सींच रही हूँ।

[२३]

ससुरे में सावन होय, कौने निरमोहिया कि धेरिया ॥ १ ॥
कौने बरन तोरी मैया, कौने बरन तोरे बाप।
कौने बरन तोरे भैया, जिन सुधि न लीन्ही तुम्हार ॥ २ ॥
कंकड़ यसि मोरी मैया, पथरा यस मोर बाप।
लोहे बजर यस भैया, जिन सुधि न लीन्हीं हमार ॥ ३ ॥
आइ गये डोलिया कहरवा, आइ गये बीरन हमार ॥ ४ ॥
गंगा यसि मोरी मैया, जमुना यस मोर बाप।
चान्द सुरुज यस भैया, जिन सुधि लई है हमारि ॥ ५ ॥

हा! यह किस निर्मोही की कन्या है? जिसका सावन ससुराल में बीत रहा है ॥१॥

भला, तेरी माँ कैसी है? तेरा बाप कैसा है? और तेरा भाई कैसा है? जिन्होने तेरी सुध भी न ली ॥२॥

मेरी माँ कंकड़ जैसी है। मेरा बाप पत्थर जैसा है। मेरा भाई लोहा और बज्र ऐसा है। किसी ने भी मेरी सुध नहीं ली ॥३॥

अहा ! डोली और कहार आ गये। मेरा भाई भी आ गया ॥४॥

मेरी माँ गंगा जैसी है। मेरा बाप जमना जैसा है। मेरा भाई चाँद सूर्य जैसा है। जिन्होंने मेरी सुध ली है ॥५॥

[२४]

उतरत असाढ़ सुनौ री सखी लागे हैं सावन मास।
मगरे पै कागा बोलन लागे ॥ १ ॥
कागा न हो मोरे कागा मैया ढिग कहे सनेस।
ससुरे सावन बेटी ना करै ॥ २ ॥
हुँअना से उड़े हैं कागा महलन पहुँचे जाय।
निकरौ न मैया मोरी बाहिरी बेटी के वचन सुनि लेउ।
ससुरे सावन बेटी ना रहै ॥ ३ ॥
बबली तो जोगिया हो गये काकुल है निरमोही।
भैया तुम्हारे बेटी चकरी गये परुको मैं लैहौं बुलाय।
यसौं के सावन बेटी उहीं रहो ॥ ४ ॥

हे सखी ! सुनो। आषाढ़ उतरते ही सावन का महीना लगा। मुँड़ेर पर काग बोलने लगा ॥१॥

हे मेरे प्यारे काग ! मेरी माँ से यह संदेशा कहना कि सावन में तुम्हारी बेटी ससुराल में न रहने पावे ॥२॥

काग वहाँ से उड़कर महल में पहुँचा। उसने कहा—हे माँ ! बाहर आओ न ? अपनी बेटी का संदेशा सुन लो। बेटी सावन में ससुराल में न रहेगी ॥३॥

माँ ने कहा—उसके बाबा तो साधू हो गये। काका निर्मोही हैं। भाई नौकरी पर गया है। अगले साल में बुला लूँगी। बेटी ! इस साल वहीं रहो ॥४॥

[२५]

ताल किनारे महल मोर सुन्दर,
तेहि बिच पुरइनि हाले रे ॥ १ ॥
तेहि चढ़ि जोहौं नैहरवा की बटिया,
मोरा नैहरवा नियरे की दूरि रे ॥ २ ॥
आवत देखेउँ सासु दुइ असवरवा,
एक रे साँवर एक गोर हो ॥ ३ ॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनवाँ,
का रे भोजन कैहाँ देउँ रे ॥ ४ ॥
भोजना देउ बहू अफड़ी कोदैया,
औ मुनमुनिया कै दाल रे ॥ ५ ॥
बजर परै सासु अफड़ी कोदैया,
औ मुनमुनिया कै दाल रे ॥ ६ ॥
देहुरी निकारि सासु मेहिया के चउरा,
औ राज मुँगिया कै दाल रे ॥ ७ ॥
हमरे तो आये सासु भैया पहुनवाँ,
कारे घुँटन कैहाँ देउँ रे ॥ ८ ॥
घुँटने क देउ बहुआ फुटही मेलियवा,
औरो गड़हिया कै पानी रे ॥ ९ ॥
अगिया लगाओं सासु फुटही मेलियवा,
बजर परे गड़ही क पानि रे ॥१०॥
घुँटने का देवै सासु झँझरा गँडुववा,
औरो गंगाजल पानी रे ॥११॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनयाँ,
का रे कूँचन कैहाँ देउँ रे ॥१२॥

कुँचने क देउ बहुवा पिपरे की पतिया,
औरौ चिरैया क लेंड़ रे ॥१३॥
अगिया लगावों सासु पिपरे की पतिया,
बजर परे चिरई क लेंड़ रे ॥१४॥
कूँचै को देवै सासु मघई के पनवा,
औरौ लवाँग इलायची ॥१५॥
हमरे तो आये सासु भैया रे पहुनवाँ,
कारे सोवन कैहाँ देउँ रे ॥१६॥
सोवने को देउ बहुआ टुटली झिलँगवा,
औ चुवनी चौपारि रे ॥१७॥
अगिया लगाओं सासु टुटहे झिलँगवा,
बजर परे चुवनी चौपारि रे ॥१८॥
सूतने को देवै सासु रतली पलँगिया,
औ चनन छिरकि चौपारि रे ॥१९॥
बैठौ न ए भैया रतली पलँगिया,
कहो नैहरवा कै हाल रे ॥२०॥
तोहरे नैहर बहिनी छेम कुसलिया,
तोहरे कुसल कैहाँ आयों रे ॥२१॥
सासु तो ये भैय्या बुढ़िया डोकरिया,
आजु मरै की काल्हि रे ॥२२॥
ननदी तो ए भैया बन की कोइलिया,
आज उड़ै की तो काल्हि रे ॥२३॥
जेठानी तो ए भैया कारी वदरिया,
छिन वरसै छिन घाम रे ॥२४॥

देवरानी तो ए भैया कोने कै बिलरिया,
छिन निकरै छिन पैठै रे ॥२५॥
मूड़ देखो ए भैया मूड़ देखो भैया,
जैसे कुकुरिया कै पूँछ रे ॥२६॥
पीठ देखो भैया तो पीठ देखो भैया,
जैसे है धोबिया क पाट रे ॥२७॥
कपड़ा देखो भैया कपड़ा देखो भैया,
जैसे सवनवा कै बादरी रे ॥२८॥
नौ मन कुटना रे नौ मन पिसना,
नौ मन सेंकै रोसोईं रे ॥२९॥
पिछली टिकरिया भैया हमरा भोजनवाँ,
ओहूमाँ कुकरू बिलार रे ॥३०॥
ई दुख मति कहो बाबा के अगवाँ,
सभवा बैठ मुरझाइँ रे ॥३१॥
ई दुख मति कहो माई के अगवाँ,
छतिया फारि मरि जाइ रे ॥३२॥
ई दुख जनि कहेउ भौजी के अगवाँ,
ओबरी बैठि ठट्ठा मारै रे ॥३३॥
ई दुख बाँधेउ भैया गरुई गठरिया,
भैया जहवाँ खोलेउ तहाँ रोएउ रे ॥३४॥

ताल के किनारे मेरा सुन्दर महल है। तालाब में कमल के पत्ते लहराते रहते हैं ॥१॥

उस महल पर चढ़कर मैं अपने नैहर की राह देखा करती हूँ। मेरा नैहर निकट है? या दूर? ॥२॥

हे सास! मैं दो सवारों को आता देखती हूँ। एक साँवला है,

दूसरा गोरा ॥३॥

हे सास ! मेरा भाई पाहुना आया है। क्या भोजन दूँ ? ॥४॥

हे बहू ! ख़राब कोदौ का भात और घटिया अरहर की दाल बना दो ॥५॥

हे सास ! कोदौ और अरहर पर वज्र गिरे ॥६॥

हे सास ! बारीक चावल और मूँग की दाल निकाल दो। वही मैं खाने को दूँगी ॥७॥

हे सास ! मेरा भाई पाहुना आया है। पीने को क्या दूँ ? ॥८॥

हे बहू ! फूटी हुई हँड़िया में गड्ही का पानी पीने को दे दो ॥९॥

हे सास ! फूटी हुई हँड़िया और गड़ही के पानी में आग लगे ॥१०॥

मैं सुराही से गंगाजल लेकर पीने को दूँगी ॥११॥

हे सास ! मेरा भाई मेहमान आया है। उसे कूँचने को क्या दूँ ? ॥१२॥

हे बहू ! पीपल के पत्ते मे चिड़ियों की बीट रखकर दे दो ॥१३॥

हे सास ! पीपल के पत्ते और चिड़ियों की बीट में आग लगाती हूँ ॥१४॥

मैं मघई पान और लौंग इलायची का बीड़ा कूँचने को दूँगी ॥१५॥

हे सास ! मैं अपने पाहुने भाई को सोने के लिये क्या दूँ ? ॥१६॥

हे बहू ! टूटा हुआ झिलँगा (खाट) और टपकनेवाली चौपाल दे दो ॥१७॥

हे सास ! टूटे झिलँगे में आग लगे और चूनेवाली चौपाल पर वज्र गिरे ॥१८॥

मैं भाई को सोने के लिये लाल पलँग और चन्दन का छिड़काव की हुई चौपाल दूँगी ॥१९॥

हे भाई ! इस लाल पलँग पर बैठो और नैहर का हाल कहो ॥२०॥

हे बहन ! तुम्हारे नैहर में सब कुशल-मंगल है। तुम्हारा ही हाल-चाल लेने आया हूँ ॥२१॥

हे भाई ! सास तो बुढ़िया है, डोकरी है। आज मरे, या कल ॥२२॥

ननद वन की कोयल है। आज उड़ जाय, या कल ॥२३॥

जेठानी काली घटा है। क्षण भर में बरसने लगती है, क्षण भर में धूप निकल आती है ॥२४॥

देवरानी कोने की बिल्ली है। कभी बाहर निकल आती है, कभी वहीं बैठी रहती है ॥२५॥

हे भाई ! मेरा सिर देखो, जैसे कुत्ती की पूँछ है ॥२६॥

मेरी पीठ देखो, जैसे धोबी का पाटा है ॥२७॥

मेरा कपड़ा देखो, जैसे सावन की घटा है ॥२८॥

नौ मन कूटती हूँ, नौ मन पीसती हूँ, नौ मन की रसोई करती हूँ ॥२९॥

सब के खा चुकने के बाद जो टिकरी बची रह जाती है, वही मेरा आहार है। उसमें भी कुत्ते बिल्ली को टुकड़े देने पड़ते हैं ॥३०॥

हे भाई ! यह दुःख मेरे बाबा के सम्मुख न कहना। वे सभा में बैठे हुये मूर्च्छित हो जायँगे ॥३१॥

हे भाई ! माँ के आगे भी यह दुःख मत कहना। वह छाती फाड़-कर मर जायगी ॥३२॥

हे भाई ! यह दुःख मेरी भौजी के आगे भी न कहना। वह कोठरी में बैठकर ठट्ठा मारेगी ॥३३॥

हे भाई ! यह दुःख अपनी भारी गठरी में बाँधे रखना, और जहाँ खोलना, वहाँ रो देना ॥३४॥

इसी प्रकार का एक गीत निरवाही के गीतों में पहले दिया जा चुका है। इस गीत में उससे कई बातें अधिक हैं। एक तो यह कि वह

बेचारी मार भी खाती है। मार खाते-खाते उसके सिर पर कुत्ती की पूँछ की तरह चमडी उपट आई है। उसकी पीठ धोबी के पाटे की तरह काली हो गई है। कपड़ा सावन की घटा की तरह मैला हो गया है। अंत में बहन कहती है—हे भाई! यह दुःख अपनी गठरी में बाँधे रखना, और जहाँ खोलना, वहाँ रो देना, यह कितना मर्म-वेधी वाक्य है। सास, ननद, जेठानी और देवरानी का वर्णन भी बहू ने बहुत रोचक किया है।

[२६]

ताल में कुहकै तलही चिरैया सुनु सावन,
सावन बहिन ससुरार। रुवनवाँ भादौं नेरे ॥ १ ॥
देहु न हो माई जरिहुल सतुअवा सुनु सावन,
सावन बहिन आनन हम जाइव। सवनवाँ० ॥ २ ॥
आँगन बहोरत चेरिया लउँड़िया,
आवत बहू जी के वीर। सवनवाँ० ॥ ३ ॥
झूठी तू चेरिया झूठी लउँड़िया,
झूठा सहर सब लोग। सवनवाँ० ॥ ४ ॥
खिरकी से बहिनी जे चितवैं।
वीरन वेइलि नीचे ठाढ़। सवनवाँ० ॥ ५ ॥
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया,
वीरन मिलन हम जाइत। सवनवाँ० ॥ ६ ॥
हमरा चदरिया बहू बसा है पेटारा,
का देउँ भैया भेंटन का। सवनवाँ० ॥ ७ ॥
देहु जेठनिया अपनी चुनरिया,
वीरन मिलन हम जावै। सवनवाँ० ॥ ८ ॥
हमरा चुनरी दुलहिनि धोवी के घाट,
बहुअरि कादेउँ वीरन मिलन का। सवनवाँ० ॥ ९ ॥

मचिया बैठल सासु चढ़इतिन,
बीरन भोजन कछु देव । सवनवाँ० ॥१०॥
कोठिया रावल सरली कोदैया,
खेतवा मसवरे कै साग । सवनवाँ० ॥११॥
अगिया लगावों सासु सरली कोदैया,
बजर परै तोरे साग । सवनवाँ० ॥१२॥
मुँगिया दरि दरि दलिया रिन्हैबे,
रुचि रुचि झिनवा कै भात । सवनवाँ० ॥१३॥
पतवा मोरि मोरि सगवा बनइबों,
लौंगन घी बोंगार । सवनवाँ० ॥१४॥
जेंवन बैठे सार बहनोइया,
जेंवत चलावैले बात,
बहिनि बिदा कै देव । सवनवाँ० ॥१५॥
कस कै बिदा करउँ भैया हो,
गंगा जमुना बहहिं अथाह । सवनवाँ० ॥१६॥
सींक चीरि चीरि नाउ बनैबे,
हम बीरन उतरब पार । सवनवाँ० ॥१७॥
देहु सासु तुहूँ अपनी असिसिया,
भैया बहिन उतरैं पार । सवनवाँ० ॥१८॥
देहु सवति तुहूँ अपनी असिसिया,
भैया बहिन उतरैं पार । सवनवाँ० ॥१९॥
देहिन सवतिया अपनी असिसिया,
भैया बहिन बूड़ैं मँझधार । सवनवाँ० ॥२०॥
सासु जानहिं बहू नैहर गैली,
माइ जाने बेटी ससुरार । सवनवाँ० ॥२१॥

ताल मे पानी की चिड़ियाँ कुहकने लगीं। सुनो, सावन आ गया। भादों भी नज़दीक ही है ॥१॥

हे माँ! जीरा डालकर बनाया हुआ सत्तू दो न? मैं बहन को लाने जाऊँगा ॥२॥

दासियाँ आँगन बुहार रही थीं। उन्होंने कहा—बहूजी के भाई आ रहे हैं ॥३॥

बहू ने कहा—तुम दासियो! झूठी हो। इस शहर के लोग ऐसे ही झूठे होते हैं ॥४॥

बहू ने खिड़की से झाँककर देखा तो भाई सचमुच फूल (गुलेचीन) के वृक्ष के नीचे खड़ा है ॥५॥

हे सास! मुझे अपनी चादर दो। मैं भाई से मिलने जाऊँगी ॥६॥

हे बहू! मेरी चादर तो पेटारे में रक्खी है। भाई से भेंट करने के लिये क्या दूँ? ॥७॥

हे जेठानी! अपनी चूनरी दे दो, मैं भाई से भेंट कर आऊँ ॥८॥

हे दुलहिन! मेरी चूनरी तो धोबी के घाट गई है। भाई से भेंट करने को मैं क्या दूँ? ॥९॥

मनस्विनी सास मचिये पर बैठी थीं। बहू ने कहा—हे सास! भाई के लिये कुछ खाने को दो ॥१०॥

कोठी में सड़ी हुई कोदों है और खेत में मसौदे का साग है ॥११॥

हे सास! सड़ी हुई कोदों में आग लगे और मसौदे के साग पर वज्र गिरे ॥१२॥

मैं तो मूँग दलकर उसकी दाल बनाऊँगी और स्वादिष्ट बारीक चावल का भात। पान कतरकर उसका साग बनाऊँगी और उसमें लौंग की छौंक दूँगी ॥१३,१४॥

साले और बहनोई जीमने बैठे। उसी समय साले ने यह बात चलाई

कि मेरी बहन को विदा कर दो ॥१५॥

बहनोई ने कहा—हे भाई ! कैसे विदा करूँ ? गंगा जमना अथाह बह रही हैं ॥१६॥

बहू ने कहा—सींक चीरकर नाव बनाकर हम भाई-बहन पार उतर जायँगे ॥१७॥

हे सास ! आशीर्वाद दो । हम भाई-बहन पार उतर जायँ ॥१८॥

हे सौत ! तुम भी आशीर्वाद दो कि हम भाई-बहन पार उतर जायँ ॥१९॥

सौत ने आशिष दिया—तुम भाई-बहन दोनों मँझधार में डूब जाओ ॥२०॥

सास तो जाने कि बहू नैहर गई है और माँ जाने कि बेटी ससुराल में है ॥२१॥

सौतिया-डाह जगप्रसिद्ध है । फिर भी बहु-विवाह की प्रथा क़ायम है ।

[२७]

भरिगै है ताल तलैया फूलि गई है कास ।
बाबा कै रहिया बिसरि गई तो सावन मास ॥ १ ॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नहीं जाय ।
जाय कहो मोरे बाबा आगे मोहिं लै जायँ ॥ २ ॥
बाबा जे पठवा सनेसवा तो चउरा लदाइ ।
खाइ न रहो मोरी बेटी तो सावन मास ॥ ३ ॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय ।
जाइ कहो मोरी मैया आगे मोहिं लै जाय ॥ ४ ॥
मैया जे पठवा सनेसवा तो पियरी रँगाइ ।
पहिरि न रहो मोरी बेटी तो सावन मास ॥ ५ ॥

ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे चाचा आगे मोहिं लै जायँ॥ ६॥
चाचा जे पठवा सनेसवा तो मुँगिया लदाय।
खाइ न रहेउ मोरी बेटी तो सावन मास॥ ७॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहिया न जाय।
जाइ कहो मोरी चाची आगे मोहिं लै जायँ॥ ८॥
चाची जे पठवा सनेसवा तो पुरिया पोवाइ।
खाइ न रहेउ मोरी बिटिया तो सावन मास॥ ९॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे भैया आगे मोहिं लै जायँ॥१०॥
भैया जे पठवा सनेसवा तो झुलवा डराइ।
झूलि न रहेउ मोरी बहिनी तो सावन मास॥११॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरी भौजी आगे मोहिं लै जायँ॥१२॥
भौजी जे पठवा सनेसवा महुरवा कै गाँठि।
खाइ न रहेउ मोरी ननदी तो सावन मास॥१३॥
ऐसे सवनवाँ के बिचवा रहा नाहीं जाय।
जाइ कहो मोरे मैया आगे हमहिं लै जायँ॥१४॥
मैया जे पठवा सनेसवा तो डोलिया कहार।
आइ न रहो मोरी बहिनी तो सावन मास॥१५॥
डोलिया जे अरझा बरोठवा कहार पूत ठाढ़।
सुसुकि सुसुकि रोवै बेटी तो कब नैहर जाब॥१६॥

ताल-तलैया भर गये। कास फूल गई। सावन का महीना आ गया। पर बाबा नहीं आये। जान पड़ता है, राह भूल गये॥१॥

ऐसे सावन में मुझसे ससुराल में रहा नहीं जाता। जाकर मेरे बाबा

से कहो—मुझे ले चलें ॥२॥

बाबा ने ऊँट या गाडी पर चावल लदाकर भेजा है और कहलाया है—इसे खाकर, बेटी ! इस बार के सावन मे वहीं रहो ॥३॥

ऐसे सावन में मुझसे यहाँ रहा नहीं जाता। जाकर मेरी माँ से कहो—मुझे बुला लें ॥४॥

माँ ने पीली धोती रँगाकर भेजी है और कहलाया है—इस सावन में बेटी ! वहीं रहो ॥५॥

इसी प्रकार कन्या ने अपने चचा और चची को भी कहलाया। चचा ने मूँग लदाकर भेजी और चची ने पूरियाँ पोकर भेजी और कहलाया—इस बार के सावन में वहीं रहो ॥६,७,८,९॥

मेरे भाई के आगे जाकर कहो—मुझ से इस सावन में यहाँ रहा नहीं जाता। मुझे ले जाओ ॥१०॥

भाई ने हिंडोला डलवा दिया और कहा—बहन ! यहीं झूलकर यह सावन बिता दो ॥११॥

मेरी भौजी से जाकर कहो—इस सावन में मुझ से यहाँ रहा नहीं जाता। मुझे बुला लो ॥१२॥

भौजी ने ज़हर की गाँठ भेज दी और कहलाया हे—ननद ! इसे खाकर वहीं रहो ॥१३॥

मेरी माँ से जाकर कहो। इस सावन में मुझसे यहाँ रहा नहीं जाता। मुझे बुला लो ॥१४॥

माँ ने डोली और कहार भेजा और कहलाया—हे बेटी ! सावन में यहाँ आ जाओ न ? ॥१५॥

डोली बरौठे में रक्खी है। कहार खड़े हैं। बेटी सिसक रही है कि कब नैहर जाऊँगी ॥१६॥

सावन में नैहर जाने के लिये कन्याओं का जी बहुत ललचता है।

[२८]

बिदवा कै दे मोरे राजा,
कजरिया खेलै जावै रे नैहरवा।
जो तू बारी धना जाएउ नैहरवा,
ए टीका धरि जाएउ रे सेजरिया।
टिकवा कै पतिया चमाके सारी रतिया,
ए जनु धना बार्टी रे सेजरिया॥ १॥
जो तू बारी धना जाएउ नैहरवा,
तिलरिया धरि जाएउ रे सेजरिया।
तिलरी कै जुगुनी चमाके सारी रतिया,
ए जनु धना बार्टी रे सेजरिया॥ २॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
बेसरिया धरि जाएउ रे सेजरिया।
बेसरि कै झुलनी चमाके सारी रतिया,
ए जनु सुन्दर बार्टी रे सेजरिया॥ ३॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
बाजुइया धरि जाएउ रे सेजरिया।
वजुआ के चुन्नी चमाके सारी रतिया,
ए जनु रानी बार्टी रे सेजरिया॥ ४॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
पछेलवा धरि जाएउ रे सेजरिया।
पछेला केर रउआ चमाके सारी रतिया,
ए जनु रानी बार्टी रे सेजरिया॥ ५॥
जो तुम बारी धना जाएउ नैहरवा,
पयल धरे जाएउ रे सेजरिया।

पायेल केर बच्ची बाजे सारी रतिया,
प जनु धना वार्टी रे सेजरिया ॥ ६ ॥
जो तुम वारी धना जाएउ नैहरवा,
कड़ा धरे जाएउ रे सेजरिया ।
कड़वा कै घुंडी चमाकै सारी रतिया,
प जनु धना वार्टी रे सेजरिया ॥ ७ ॥

हे मेरे राजा ! मुझे विदा कर दो । मैं कजली खेलने नैहर जाऊँगी ।

हे मेरी किशोर अवस्थावाली प्यारी स्त्री ! तुम नैहर जाना तो सेज पर टीका छोड़े जाना । जिससे सारी रात उसकी पत्ती चमकती रहे और मैं समझता रहूँ कि मेरी स्त्री सेज पर ही है ॥१॥

हे मेरी प्यारी कामिनी ! तुम नैहर जाना तो तिलड़ी सेज पर छोड़े जाना । तिलड़ी का जुगनू सारी रात चमकता रहेगा, तो मैं समझूँगा कि मेरी स्त्री सेज पर ही है ॥२॥

हे मेरी लाडली ! तुम नैहर जाना, तो बेसर छोड़े जाना । उसकी झुलनी की चमक देखकर मैं समझूँगा कि मेरी प्यारी स्त्री घर ही पर है ॥३॥

हे मेरी प्यारी ! तुम नैहर जाना, तो बाजू छोड़े जाना । उस पर जड़ी हुई चुन्नी सारी रात चमकेगी, तो मैं समझूँगा कि मेरी प्यारी स्त्री यहीं है ॥४॥

हे मेरी हृदयेश्वरी ! तुम नैहर जाना, तो हाथ का कड़ा छोड़े जाना । उसके रवे की चमक सारी रात देखकर मैं समझूँगा कि मेरी स्त्री यहीं है ॥५॥

हे मेरी प्यारी स्त्री ! तुम नैहर जाना, तो पाजेब छोड़े जाना । उसकी ध्वनि सुनकर मैं समझूँगा कि मेरी स्त्री यहीं है ॥६॥

हे मेरी प्यारी स्त्री ! तुम नैहर जाना तो कड़ा रक्खे जाना । कड़े की घुंडी की चमक देखकर मैं समझूँगा कि मेरी स्त्री यहीं है ॥७॥

[२९]

एक करैली हम बोवा अरे करैली पसरी बबैया जिउ के देस ॥ १ ॥
पसरत पसरत पसरि गई पसरी है रन बन देस ॥ २ ॥
सात अइल केर चुल्हिया सातौ माँ अकली दुआरि ॥ ३ ॥
एक पर रीझै उर्दा भात अरे करैली यक पर सुहावन दूध ॥ ४ ॥
उर्द भात जरि बरि जाय रे करैली दुधवा गयल उतिराय ॥ ५ ॥
उर्द भात खैहैं देवर मोर दुधवा पियै सग भाय ॥ ६ ॥
रखिया बहावन हम गयनि रे करैली भैया विरछ तरे ठाढ़ ॥ ७ ॥
सासू गोसाईं पैयाँ तोरे लागौं कहो सासू मैया भेंटन हम जाव ॥ ८ ॥
हम का जनी बौहरि हम का जनी पूँछि लेव जेठनिया हँकारि ॥ ९ ॥
जेठानी गोसाईं पैयाँ तोरे लागौं रे करैली कहहु दीदी भैया
भेंटन हम जाव ॥१०॥
हम का जनी बौहरि हम का जनी रे करैली पूँछि लेव नन-
दिया दुलारि ॥११॥
ननदी गोसाईं पैयाँ तोरे लागौं रे करैली कहहु तो ननदी
भैया भेंटन हम जाव ॥१२॥
हम का जनी भौजी हम का जनी रे करैली जितना वखरवा में
धनवा उतना कूटे जाव
तव भौजी भैया भेंटन जाव ॥१३॥
जितना डेहरवा में गोहुँवा उतना पीसे जाव
तव भौजी भैया भेंटन जाव ॥१४॥
जितना पिपरवा में पतवा उतना रोटिया पोये जाव
तव भौजी भैया भेंटन जाव ॥१५॥

मैंने करैली की एक लता लगाई थी। वह बाबा के देश तक फैल गई है ॥१॥

फैलते-फैलते वह अरण्य में, देश में, सर्वत्र फैल गई है ॥२॥

न्यात मुँह का चूल्हा है, उसमें एक ही द्वार है ॥३॥

एक मुँह पर उर्द और भात रींझ रहा है। दूसरे पर सुन्दर दूध ॥४॥

उर्द और भात जल-बल गया और दूध उतरा आया ॥५॥

उर्द भात मेरा देवर खायगा और दूध मेरा सगा भाई पियेगा ॥६॥

मैं चूल्हे की राख घूर में फेंकने गई थी। वहाँ देखा तो वृक्ष के नीचे भैया खड़े हैं ॥७॥

हे सासजी! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो तो भाई से भेंट कर आऊँ ॥८॥

हे बहू! मैं क्या जानूँ? जेठानी को बुलाकर पूछ लो ॥९॥

हे जेठानी! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। आज्ञा दो, तो भाई से मिल आऊँ ॥१०॥

हे बहू! मैं क्या जानूँ? दुलारी ननद से पूछ लो ॥११॥

हे प्यारी ननद! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। कहो तो भाई से मिल आऊँ ॥१२॥

हे भौजाई! मैं क्या जानूँ? बखार में जितना धान है, उतना कूट कर तब भाई से भेंट करने जाओ ॥१३॥

जितना कोठिला में गेहूँ है, उतना पीसकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१४॥

पीपल में जितने पत्ते हैं, उतनी रोटियाँ पोकर तब भाई से मिलने जाओ ॥१५॥

बहुओं को ससुराल में कितनी साँसत भोगनी होती हैं, इस गीत में भी उसका उल्लेख है। सास जो बात नहीं करना चाहती, उसे वह दूसरों पर टाल देती है। ननद तो बहू के लिये छुरी लिये तैयार ही रहती है। धान कूटना, गेहूँ पीसना, पानी भरना, बरतन माँजना, कपड़े

धोना, फटी धोतियाँ सीना, आँगन बटोरना, चूल्हा सैंतना (लीपना), राख और कूडा करकट ले जाकर घूर में फेंकना यह सब काम अकेली बहू को करने पड़ते हैं। इस पर भी सास और ननद की झिडकियाँ अलग से सहनी पड़ती हैं। नैहर से आये हुये कुटुम्बियों से इच्छापूर्वक मिलने नहीं दिया जाता। बहू बेचारी कभी बीमार होती है तो उस पर यह इल्जाम लगाया जाता है कि काम न करने के लिये बहाना कर रही है। बहू का इतिहास असहनीय दुःखो और भयानक वेदनाओं से भरा हुआ है।

[३०]

सावन की हरियाली है तीज,
निकरीं कुअँरि बइठीं दहलीज,
वारी के छोड़ के बालम चले ॥ १ ॥
सुनहु न हो हमरे दलपति जेठ,
तोहरे वीरन गढ़ छाये बिदेस,
न लिखें चिठिया न भेजैं सँदेस,
वारी के छोड़ के वालम चले ॥ २ ॥
खोजेहु हो बाँम्हन दर दरबार,
खोजेहु हो बाँम्हन हाट बजार,
खोजेहु तमोली के चउतरा ॥ ३ ॥
न मिलैं हो राजा हाट बजार,
न मिलैं हो राजा दर दरबार,
मिले तमोली के चउतरा ॥ ४ ॥
कहहु न हो बाँम्हन कुसल कुसल,
पहिला कुसल हमरे माई अवार,
दुसरा कुसल हमरे कुल परिवार,
तिसरा कुसल नाजो कामिनी ॥ ५ ॥

कुसल त हो राजा कुसल कुसल,
बहुत दुखित नाजो कामिनी ॥ ६ ॥
अन्न न खाई नाजो पहिरैं न चीर,
सेजिया के देखत नाजो आवै ले पीर,
राजा आवन उन चाहती ॥ ७ ॥
लेहु न हो बाँम्हन लहर पटोर,
लेहु न हो बाँम्हन गहना करोर,
हमरो आवन बड़ी दूर है ॥ ८ ॥
लेहु न हो रानी लहर पटोर,
लेहु न हो रानी गहना करोर,
राजा आवन बड़ी दूर है ॥ ९ ॥
आग लगाओं बाँम्हन लहर पटोर,
बजर परै वही गहना करोर,
राजा आवन हम चाहती ॥१०॥

सावन की हरियाली तीज है । बहू घर में से निकलकर देहली में बैठकर सोचने लगी—हाय ! मुझ अल्पवयस्का को छोड़कर प्रियतम परदेश चले गये ॥ १ ॥

हे मेरे जेठ दलपति ! सुनो । तुम्हारे भाई विदेश में छाये हैं । न चिट्ठी भेजते हैं, न संदेशा कहलाते हैं ॥२॥

जेठ ने खोजने के लिये ब्राह्मण भेजा—हे ब्राह्मण ! सब दरबारों में खोजो । हाट-बाजार में खोजो । तम्बोली के चबूतरे पर भी खोजो ॥३॥

न तो राजा दरबार में मिले । न हाट बाज़ार में । मिले तो तम्बोली के चबूतरे पर ॥४॥

राजा ने पूछा—हे ब्राह्मण ! कुशल कहो । पहली कुशल मेरी माँ

की बताओ। दूसरी कुशल कुल-परिवार की। तीसरी कुशल मेरी प्यारी स्त्री की बताओ ॥५॥

ब्राह्मण ने कहा—हे राजा ! और सब तो कुशल से हैं। आप की स्त्री आपके वियोग में बहुत दु:खी हैं ॥६॥

न अन्न खाती हैं। न अच्छे कपड़े पहनती हैं। बिछौने को तो देखते ही वे बेहद पीड़ा से विकल हो जाती हैं। वह आप का आना चाहती हैं ॥७॥

राजा ने कहा—हे ब्राह्मण ! यह रेशमी कपड़े लो। करोडों के गहने लो। मेरा आना तो बडी दूर है ॥८॥

ब्राह्मण कपड़े और गहने लेकर बहू के पास गया। बहू ने कहा—इन रेशमी कपड़ों में आग लगे। इन करोडों के गहनों पर वज्र गिरे। मैं तो अपने राजा को चाहती हूँ ॥९, १०॥

[३१]

कनक अटारी दियना बरै, दियना बरा है अकास।
अरे हो रानी राजा सारी पासा खेलहीं ॥ १ ॥
हाथ से सारी पासा गिर परा, मुखहूँ से गिरा है तमोल।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ २ ॥
काढ़ि पेटारे से चोलना, सो लेइ बेड़िनी के देहूँ।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ ३ ॥
आज के दिहो राजा चोलना, कालिह के दीहो मेरो राज।
राजा जनम भये अनबोलना ॥ ४ ॥
कनक अटारी धना ऊतरी, हनि दीनो वजर केवाड़।
अरे हो रानी राजा भये अनबोलना ॥ ५ ॥
सासु मनावन वै चलीं, दस पाँच बेटवा बटोरि।
दुलहिनि बेटाजी से काहें अनबोलना ॥ ६ ॥

सोने कै मचिया गढ़ावती, लट छाड़ि मैं लगिहौं पाँय।
अम्मा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥ ७ ॥
ससुर मनावन वै चले, पलकिन छुटा है कहाँर।
दुलहिनि बेटाजी से काहें अनबोलना ॥ ८ ॥
अच्छे अच्छे हौदा गढ़उतिउँ, हाथिन हौदा लगावउँ।
बाबा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥ ९ ॥
जेठ मनावन वै चले, दस पाँच बेटवा बटोरि।
दुलहिनि भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१०॥
अच्छे अच्छे घोड़वा सजावती, भाँति भाँति करौं पकवान।
जेठजी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥११॥
जेठानी मनावन वै चलीं, दस पाँच चेलिका बटोरि।
दुलहिनि बाबूजी से काहें अनबोलना ॥१२॥
अच्छी अच्छी चुनरी रँगावती, लट छोड़ि के लागिहौं पायँ।
जीजी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१३॥
देवर मनावन वै चले, दस पाँच संगी बटोरि।
भाभीजी भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१४॥
सोने के लटुवा गढ़वतिउँ, खेलत खुनत घर जाहु।
बाबू करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१५॥
ननद मनावन वै चलीं, दस पाँच सखिया बटोरि।
भाभी भैयाजी से काहें अनबोलना ॥१६॥
अच्छी अच्छी गुड़िया गढ़वतिउँ, खेलत खुनत घर जाहु।
बीबी करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥१७॥
बेड़िनी मनावन वै चलीं, खिरकी बाहर होइ ठाढ़ि।
रानी राजाजी से काहें अनबोलना ॥१८॥

जाहु बेड़िनि घर आपने, मरिहौं पिढ़वा के मार।
बेड़िनि तोरे कारन भये अनबोलना ॥१९॥
राजा मनावन वै चले, हाथे बिरवा लिहे अनमोल।
रानी काहे कारन किहौ अनबोलना ॥२०॥
विष की कियारी राजा तुम बोयो, अब कैसे फिरि पछिताहु।
राजा करिहौं मैं जनम अनबोलना ॥२१॥
मन क बिरोग रानी छोड़ि दो, बेड़िनी क दीन्ह्यो मैं निकारि।
रानी करौ न जनम अनबोलना ॥२२॥

सोने की अटा पर दीपक जल रहा है। राजा रानी पासा खेल रहे हैं ॥१॥

राजा के हाथ से पासा गिर पड़ा। मुख से पान भी गिर पड़ा। रानी राजा से नहीं बोलती हैं ॥२॥

राजा ने पेटारे से चोली निकालकर बेड़िन को दे दी ॥३॥

रानी ने कहा—आज तो हे राजा! तुम चोली दे रहे हो। कल राज दे दोगे ॥४॥

रानी सोने की अटा से नीचे उतर आई और वज्र ऐसा किवाड़ा बंदकर बैठ रहीं ॥५॥

दस पाँच बेटों को बटोर कर सास मनाने चली। हे दुलहिन! बेटा से तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया? ॥६॥

दुलहिन ने कहा—हे सास! मैं तुमको सोने की मचिया बनवा दूँगी। मैं लट खोले हुये तुम्हारे पैर लगूँगी। तुम चली जाओ। मैं राजा से नहीं बोलूँगी ॥७॥

इसी प्रकार ससुर, जेठ, जेठानी, देवर, भौजाई, ननद, आदि सब

मनाने के लिये आये। बहू ने प्रत्येक की खुशामद करके उन्हें लौटा दिया ॥ ८ से १७ ॥

बेड़िन मनाने के लिये आई। खिड़की से बाहर खड़ी होकर उसने पूछा—हे रानी ! राजा से तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया ? ॥१८॥

रानी ने कहा—हे बेड़िन ! तुम अपने घर लौट जाओ। नहीं तो, मैं तुझको पीढ़ा उठाकर मारूँगी। तेरे ही कारण मैं राजा से नहीं बोलती हूँ ॥१९॥

सब के बाद राजा हाथ में अनमोल बीड़ा लिये हुये मनाने आये। उन्होंने रानी से कहा—हे रानी ! तुमने बोलना क्यों छोड़ दिया ? ॥२०॥

रानी ने कहा—हे राजा ! विष की क्यारी तुमने बोई है और अब पछताते क्यों हो ? हे राजा ! मैं जन्मभर के लिये तुम से बोलना छोड़ दूँगी ॥२१॥

राजा ने कहा—हे रानी ! मन का क्रोध छोड़ दो। मैंने बेड़िन को निकाल दिया। तुम न बोलने का हठ छोड़ दो ॥२२॥

राजा का चरित्र अच्छा नहीं था। राजा ने एक बेड़िन रख ली थी। एक दिन रानी की चोली राजा ने बेड़िन को दे दी। रानी ने उसी दिन से राजा से बोलना छोड़ दिया। सब मनाने आये, पर रानी ने सत्याग्रह नहीं छोड़ा। अन्त में राजा मनाने गया, और बेड़िन को निकाल दिया। जब राजा ने सच्चरित्र होने की शपथ खाई, तब रानी ने हठ छोड़ा। लम्पट पतियों को इसी प्रकार सुधारना चाहिये।

कोल्हू के गीत

देहात में ऊख पेरने के लिये पहले पत्थर के कोल्हू चलते थे। पेरने-वाले रात के तीसरे पहर में उठकर बैलों को जोत देते थे, और उनके पीछे लगे हुए लम्बे काठ पर बैठकर, जाड़े की लम्बी और ठंडी रात के सन्नाटे में, बड़े ही मर्मभेदी गीत गाते थे। वे गीत क्या हैं? प्रेम, विरह और करुण रस के अद्‌भुत इतिहास हैं।

आजकल लोहे के कोल्हू चल पड़े हैं। अब हाँकनेवाले को बैलों के पीछे पैदल चलना पड़ता है, इससे अब रात या दिन के किसी समय में कोल्हू चलाया जा सकता है। इसलिये रात के वे गीत भी अब समाप्त हो चले।

तेली भी कुछ गीत गा लेते थे। अब वे भी धीरे-धीरे समय के प्रवाह मे विलीन होते जा रहे हैं। ईख और तेल पेरने के दोनों तरह के कोल्हुओं के कुछ गीत यहाँ दिये जाते हैं—

[१]

अमवा महुलिया घन पेड़ जेही रे बीचे राह परी।
रामा तेहि तर ठाढ़ी एक तिरिया मनै माँ बैराग भरी॥ १॥
पूछै लागे बाट के बटोहिया अकेली धन काहे रे खड़ी।
भैया, चले जाहु बाट के बटोहिया हमैं रे तुहैं काह परी॥ २॥
की रे तुहैं सासु ससुर दुख की नैहर दूरि बसै।
भैया, नाहीं हमैं सास ससुर दुख नाहीं नैहर दूरि बसै॥ ३॥

भैया हमरा बलम परदेस मनैं माँ बैराग भरी।
बहिनी तोहरा बलम परदेस तुहैं कुछु कहि न गये ॥ ४ ॥
भैया दै गये कुपवन तेल हरपवन सेन्दुर।
भैया दै गये चँदन चरखवा उठाइ गजओबरि ॥ ५ ॥
भैया दै गये अपनी दुहइया सतउ जिनि डोलै।
भैया चुकै लागे कुपवन तेल हरपवन सेन्दुर ॥ ६ ॥
भैया घुनै लागे चँदन चरखवा ढहइ गजओबरि।
भैया चुकै लागी मोरि उमिरिया हरीजी नाहीं आयेन ॥ ७ ॥

आम और महुवे के घने पेड़ों के बीच से राह पड़ी है। उस राह के बीच मे एक स्त्री खड़ी है, जिसका मन बहुत उदास है ॥ १ ॥

राह चलनेवालों ने उससे पूछा—हे स्त्री, तू यहाँ अकेली क्यों खड़ी है? स्त्री ने कहा—हे राह के चलनेवालो! अपने रास्ते जाओ। मुझसे तुम्हें क्या पड़ी है? ॥ २ ॥

राह चलनेवाले ने नहीं माना। वह पूछने लगा—क्या तुझे सास-ससुर दुःख देते हैं? या नैहर दूर है? स्त्री ने कहा—न मुझे सास-ससुर दुःख देते हैं, न नैहर ही दूर है ॥ ३ ॥

हे भाई! मेरे पति-देवता परदेश गये हैं। उन्हीं की याद में मैं उदास हूँ। पथिक ने कहा—बहन, क्या तेरा पति परदेश जाते समय कुछ कह नहीं गया? ॥ ४ ॥

स्त्री ने कहा—भैया! मेरे पति मुझे कुप्पों में तेल और सिंधौरे में सेन्दुर भरकर दे गये थे। चन्दन का चरखा भी दे गये थे और बैठने के लिए कोठरी बना गये थे ॥ ५ ॥

अपनी शपथ दिला गये थे कि सत मत छोड़ना। पर उनको गये इतने दिन बीत गये कि कुप्पों का तेल और सिँधौरे का सेन्दुर समाप्त होने चला। चरखा भी घुनने लगा ॥ ६ ॥

कोठरी भी ढह रही है। हे भाई! मेरी उम्र भी झुकने लगी। पर मेरे प्राणेश्वर अभी नहीं आये ॥७॥

देखिए, एक विरहिणी का यह कैसा स्वाभाविक वर्णन है। इसमें कवि-कल्पित विरहावस्था का वह वर्णन नहीं है जिसमें विरहिणी आग उगल रही है या बरफ़ की चद्दर की आड़ करके तब सखियाँ उसके पास खड़ी होकर मिजाज़ का हाल पूछती हैं। जिन्हें देहात का अनुभव है, उन्हें यह वर्णन बड़ा सरस जान पड़ेगा। घर के पिछवाड़े आम और महुवे के पेड़ लगाने की चाल देहात में है। उन पेड़ों के बीच से जो राह जाती है वह छायादार और बड़े ही एकान्त की होती है। स्त्री का पेड़ों के नीचे खड़ी होकर अपने प्रियतम का बिसूरना कितना करुणा-जनक है, इसे सहृदय रसिक-जन ही अनुभव कर सकते हैं। ऐसे गीत उस समय के हैं जब परदा नहीं था, मन में पाप नहीं था। एक अपरिचित पथिक को अपना भाई समझकर कोई भी स्त्री अपनी मनोव्यथा बता सकती थी।

[२]

कौनी की जुनिया तेलिन घनिया अरे लगावे अरे कौनी
जुनिया ना।
कोइलरि सबद सुनावे कि कौनी जुनिया ना ॥ १ ॥
आधी की रतिया तेलिनि घनिया लगावे कि पिछली
रतिया ना।
कोइलरि सबद सुनावे कि पिछली रतिया ना ॥ २ ॥
कोइलरि सबद सुनि कै जागै साँवर गोरिया वढ़निया
लैकै ना।
सुन्दरि अँगना बहारैं वढ़निया लैके ना ॥ ३ ॥

अँगना बहारि सुन्दरि घुरवा लै पवारिन घइलना लैके ना।
सुन्दरि चलीं सागर पनियाँ घइलना लैके ना॥ ४॥
वैला वोरी बोरि धन धरलीं करस्वा कि जोहै लागीं ना।
परदेसी जी की बटिया कि जोहे लागीं ना॥ ५॥

किस बेला में तेलिन घानी लगाती है? और किस बेला में कोयल शब्द सुनाती है?॥१॥

आधी रात में तेलिन घानी लगाती है और पिछली रात में कोयल शब्द सुनाती है॥२॥

कोयल का शब्द सुनकर सुन्दरी जागती है और बढ़नी (झाड़ू) लेकर आँगन बुहारती है॥३॥

आँगन बुहार कर कूड़ा-करकट वह घूर पर फेंक आती है और फिर घड़ा लेकर तालाब में पानी भरने जाती है॥४॥

घड़े भर-भर कर किनारे पर रख देती है। फिर वह सुन्दरी अपने परदेशी पति की बाट जोहने लगती है॥५॥

परदेशी पति की बाट जोहने में कितना सुख है, कितनी मिठास है, यह लिखकर बताया नहीं जा सकता। कल्पना की सीमा से यह बहुत दूर है। यह अनुभव की वस्तु है। जिसका कोई प्रियतम है और वह दूर देश में है, वही इस सुख का अधिकारी है।

अब भी देहात में भले घरों की बहुवें बड़े सबेरे उठकर आँगन बुहारती हैं। देहात की स्त्रियों मे एक विश्वास चला आता है कि सूर्योदय से पहले आँगन बुहारने से घर में लक्ष्मी का निवास होता है। यह विश्वास और इसके अनुकूल कार्य का क्या परिणाम होता है? इसका कोई ठीक-ठीक प्रमाण हमारे पास नहीं। पर इतना हम भी मानते हैं कि प्रातःकाल उठकर झुके-झुके आँगन बुहारना युवती बहुओं के स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक है।

एक अमेरिकन लेखक Bernarr Macfadden ने Preparing for Motherhood नाम की एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक लिखी है। उसमें वे २५७ वें पृष्ठ पर एक अमेरिकन विदुषी स्त्री का निजी अनुभव उसी के शब्दों में इस प्रकार देते हैं :—

I want to tell you that your breasts are bound to be larger while you are nursing your baby. But they go back to normal size again, if only you exercise the muscles in the way I shall tell you.

I want to tell you that making beds, sweeping floors, and doing all kinds of housework is perfectly splendid exercise bringing into play practically all the muscles in the body.

Really, there are very few exercises a woman can take that tore up the abdomen muscles the way sweeping does.

अर्थात्, "मैं तुमको यह कहना चाहती हूँ कि जब तुम बच्चे को दूध पिलाओगी तो यह निश्चय है कि तुम्हारे स्तन पहले की अपेक्षा लम्बे हो जायँगे। पर यदि तुम मेरे बतलाये हुये तरीक़े से चलोगी तो वह फिर पहले जैसे हो सकते हैं।

बिस्तरे बिछाना, फर्श पर झाड़ू लगाना और घर के दूसरे छोटे-मोटे काम करना, ये सचमुच बड़ी ही लाभदायक कसरतें हैं जो शरीर के सब अंगों को सहज ही में ठीक रखती हैं।

सचमुच स्त्री के शरीर को ठीक रखनेवाली कसरतों में झाड़ू देने से बढ़कर शायद ही कोई हो।"

हमने किसी से यह भी सुन रक्खा है कि झुककर झाड़ू देने से स्त्री के शरीर की कुछ ऐसी नसें दबती हैं, जिनके दबने से चेहरे का सौन्दर्य बढ़ता है, और स्त्री अधिक समय तक युवती बनी रहती है।

[३]

मोर कौड़ी क लोभी फिरौ घर को।
बेरिया की बेर तुहैं बरजौं हो नैका कि हमका गोहन ले लियाय ॥ १ ॥
गँठिया जोरि तोरि ग्ररथी लद्‌उबै कि डेरवा प भोजन बनाय ॥ २ ॥
उपराँ से छोड़बै घियना की धरिया कि अँचरन झलबै बयारि ॥ ३ ॥
जौ धन होतिउ बेइलिया क फुलवा लेतेउँ पगड़िया की पेंच ॥ ४ ॥
तू धन अहिउ बारी बयसवा क कि हँसिहैं सँघाती लोग ॥ ५ ॥
बेरिया क बेरि तोहैं बरजौं नयकवा कि उत्तर बनिज जिनि जाहु ॥ ६ ॥
उत्तर क पनिया जहर विप माहुर लागे करेजवा में धाय ॥ ७ ॥
पनिया पियत स्वामी तू मरि जावा हम धन होबै अनाथ ॥ ८ ॥
दूँतवा कटाय पिया कोठवा पटौबै छतिया क बजर केवार ॥ ९ ॥
दोनों नैन बिच हटिया लगौबै घरहीं करो रोजगार हो ॥१०॥
अँबरि बँबरि के कोल्हुवा रे नैका बेल बबुर कै जाठि ॥११॥
जठिया के ऊपर ढेंकुवा पिहीके बैसे पिहीकै जिया मोर ॥१२॥
आधी की रात पीतम ठोंकले केँवेलिया कि छतिया कुहूकै मोरि ॥१३॥
चुटकी काटि छोटी ननदी जगावै तोर बनिजरवा बनिज जाय ॥१४॥
जेकरि ऊँच नजरिया रे नैका औ कुलतारनि जोय ॥१५॥
ते काहे जैहैं बनिज बिदेसवाँ घरहीं सवाई होय ॥१६॥
मोर कौड़ी क लोभी फिरौ घर को।

हे कौड़ी के लालची मेरे पति! घर लौटो।

हे नायक! मैं बार-बार तुमको कहती हूँ कि मुझे भी साथ लेते चलो ॥१॥

हाथ से हाथ पकड़कर मैं तुम्हारा बैल लदाऊँगी, और डेरे पर भोजन बनाऊँगी ॥२॥

भोजन परोसकर ऊपर से उसमें घी की धार छोड़ूँगी और आँचल से हवा करूँगी ॥३॥

हे मेरी प्यारी पत्नी ! यदि तुम फूल होती, तो मैं पगड़ी की पेंच में रख लेता ॥४॥

तुम तो हो नवयौवना सुन्दरी। तुमको साथ देखकर मेरे संगी-साथी हँसेंगे ॥५॥

हे मेरे प्यारे नायक ! मैं ने तुमको बार-बार रोका कि व्यापार के लिये उत्तर की ओर मत जाओ ॥६॥

उत्तर का पानी विष जैसा हानिकारक होता है और दौड़कर कलेजे में लगता है ॥७॥

हे स्वामी ! उत्तर का पानी पीकर यदि तुम कहीं मर गये, तो मैं तो अनाथ हो जाऊँगी ॥८॥

हे प्रियतम ! मैं अपने दाँत कटवाकर उससे कोठा पटा दूँगी। उसमें अपनी छाती का वज्र ऐसा किवाड़ा लगा दूँगी ॥९॥

दोनों आँखों के बीच बाज़ार लगाऊँगी। तुम घर ही में व्यापार करो ॥१०॥

हे मेरे नायक ! बँवरि (एक वृक्ष का नाम) के कोल्हू में बेल या बबूर की जाठ हो। उस पर जैसे ढेंकुवा पिहिकता (रोता) है, वैसा ही मेरा हृदय पिहिक रहा है ॥११,१२॥

आधी रात होने पर पति ने कँधेली (बैल पर लादी जानेवाली बोरी) ठोंकी। उस समय मेरी छाती दहल उठी ॥१३॥

मेरी छोटी ननद ने मुझे चुटकी काटकर जगाया और कहा—तुम्हारा बनजारा जा रहा है ॥१४॥

हे नायक! जिसकी दृष्टि ऊँची है, जिसके घर में कुलवंती स्त्री है ॥१५॥

वह व्यापार के लिये विदेश क्यों जाता है? उसे तो घरही में एक का सवाया हो जाता है ॥१६॥

इस गीत में उन वृक्षों के नाम भी आ गये हैं, जिनसे कोल्हू और उसके अंग-प्रत्यंग मज़बूत बनते हैं।

अन्त में नज़र ऊँची होनेवाली बात बड़े महत्त्व की है। बहुत प्राचीन कवि देवीदास कहते हैं—

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देबो
धरम को मूल एक साँच पहिचानिबो।
बढ़िबे को मूल एक ऊँचो मन राखिबो है,
जानिबे को मूल एक भली बात मानिबो ॥
व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी 'देवी'
दारिद को मूल एक आलस बखानिबो।
हारिबे को मूल एक आतुरी है रन माँझ
चातुरी को मूल एक बात कहि जानिबो ॥

'मन ऊँचा रखना' और 'नज़र ऊँची रखना' एक ही बात है।

[४]

आजु के गैला भौंरा कहिया ले लौटबे कतिक दिना रे,
जोहौं तोरी बटिया कतिक दिना रे ॥ १ ॥
गनत गनत मोरी अँगुरी भल खियानी चितवत रे मोरे
नैनवाँ ढुरै अँसुवा कि चितवत रे ॥ २ ॥
एक बना गई हैं दूसरे बना गई हैं तीसरे बना रे
मिल्यो गोरू चरवहवा तीसरे बना रे ॥ ३ ॥

गोरू चरवहवा तुहीं मोर भैया कतहूँ देखे रे
मोर भँवरवा परदेसिया कतहूँ देखे रे ॥ ४ ॥

हे प्रियतम ! आज के गये हुये तुम फिर कब लौटोगे ? कब तक मैं तुम्हारी बाट जोहती रहूँ ? ॥१॥

दिन गिनते-गिनते तो मेरी उँगली घिस गई । राह देखते-देखते मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे ॥२॥

स्त्री अपने प्रियतम को ढूँढने के लिये एक वन मे गई, दूसरे में गई, तीसरे मे गोरू चरानेवाले मिले ॥३॥

उनसे स्त्री ने पूछा—हे गोरू चरानेवाले भाई ! तुमने कहीं मेरे परदेशी प्रियतम को देखा है ? ॥४॥

[५]

एक फूल फूलै खड़ी दुपहरिआ दूसर फूल फूलै आधी राति
हो गोरिआ ॥ १ ॥
फुलवा विनि विनि मैं रसा गरायों हौदा भरा रस होय
हो गोरिआ ॥ २ ॥
वही रसा का मैं चुनरी रँगायों, चुनरी भई रँगदार गोरिया ॥ ३ ॥
चुनरी पहिरि मैं ओलन्यों ओसरवाँ पियवा क मन ललचाय
हो गोरिया ॥ ४ ॥
चोर की नैया पिया लुकि लुकि आवै जेकरे मैं वारी वियाही
तेऊ पख फोरवा ॥ ५ ॥

एक फूल ठीक दूपहरी में फूलता है। एक फूल आधी रात में फूलता है ॥१॥

फूल बीन-बीनकर मैंने रस निचोडवाया। एक नाँद भरकर रस हुआ ॥२॥

उसी रस मे मैंने चूनरी रँगाई, जो बडी ही रंगदार हुई ॥३॥

चूनरी पहनकर मैं ओसारे में सोई। प्रियतम का मन ललचा रहा था ॥४॥

मेरे प्रियतम चोर की तरह छिप-छिपकर आते थे। देखो, जिनकी मैं विवाहिता हूँ, वे भी पाख फोड़नेवाले चोर की तरह आते हैं ॥५॥

हिन्दू-घरों में विवाह के बाद पति-पत्नी स्वतंत्रतापूर्वक मिलने नहीं पाते। देहात में तो पति को सचमुच चोर की तरह पत्नी के घर मे जाने को मिलता है। पति को दशा में परिवर्तन की बड़ी आवश्यकता है।

[६]

सोवत सुगना कोइलरि हो रामा कोइलरि जगाव,
चलहु सुगनवा हमरे देस हो रामा ॥ १ ॥
जौ हम चली कोइलरि तोहरे हो रामा तोहरे के देसवा,
कौन कौन फल खाब हो रामा ॥ २ ॥
हमरे के देस सुगना तीन पेड़ हो रामा तीन पेड़ रुखवा,
अमवा महुलिया अनार हो रामा ॥ ३ ॥
आमा भल खाबै महुलिया हो महुलिया रस चुहकब
हो रामा,
झोंपवन फटबै अनार हो रामा ॥ ४ ॥
अपुना तो कोइलरि बैठीं अमवा हो रामा अमवा घवदिया,
हम का पठावैं गोहुवाँ खेत हो रामा ॥ ५ ॥
साठि बिगहवा क थक्कै हो रामा थक्कै गोहूँ खेतवा,
पसिया बेटौना रखवार हो रामा ॥ ६ ॥
एक बाली काट्यों दूसर बाली हो रामा तीसरी लपक्यों,
पसिया बेटौना मारै बान हो रामा ॥ ७ ॥
रोवै कोइलरि छछन्द करैं हो अरे पखंड करैं कोइलरि,
मरिगा सुगनवाँ ऐसा मीत हो रामा ॥ ८ ॥

नथिया बेंचि चनना हो रामा चनना लकड़िया,
झुलनी बेंचि घियला आगि हो रामा ॥९॥
बीच डगरिया में चितवा हो चितवा रोपायँव,
जरै सुगनवा ऐसा मीत हो रामा ॥१०॥

सोते हुए सुए को कोयल ने जगाकर कहा—हे सुआ! मेरे साथ चलो ॥१॥

सुए ने कहा—हे कोयल! मैं तुम्हारे देश चलूँ, तो वहाँ कौन-कौन से फल खाऊँगा? ॥२॥

कोयल ने कहा—हे सुआ! मेरे देश में तीन पेड़ होते हैं—आम महुवा और अनार ॥३॥

सुआ सोचता है—मैं आम खब खाऊँगा। महुआ खूब चूसूँगा और अनार के गुच्छे के गुच्छे काटूँगा ॥४॥

कोयल स्वयं तो आम के घौद पर बैठी। मुझे गेहूँ के खेत में भेज दिया ॥५॥

साठ बीघे का एक ही खेत था। पासी का लड़का रखवाली कर रहा था ॥६॥

मैंने गेहूँ की एक बाली काटी। दूसरी बाली काटी। तीसरी के लिये लपका ही था कि पासी के लड़के ने तीर मारा ॥७॥

कोयल रोने लगी। पाखंड करने लगी—हाय! सुआ ऐसा मित्र मर गया ॥८॥

कोयल कहती है—नथ बेंचकर तो मैंने चन्दन की लकड़ी खरीदी और झुलनी बेंचकर घी और आग ॥९॥

बीच रास्ते में चिता तैयार करा दी। हाय! सुवा ऐसा मीत जल रहा है ॥१०॥

कोई व्यक्ति किसी स्त्री के प्रेम में फँसकर, अपना घर छोड़कर, उसके

साथ चला गया था। वहाँ वह घटना-चक्र से मर गया। उसी की करुण-कथा इस गीत में है।

[७]

अपने बपैया जी कै रेसमा दुलारी कि सेर सेर लौंगा चबाँय
बहुअरि रेसमा ॥ १ ॥
रेसमा क सोहै एक लील कै लहँगवा चोलिया सोहै बूटेदार
बहुअरि रेसमा ॥ २ ॥
ओढ़ि पहिरि रेसमा चली हैं बजरिया रूमि झूमि परे कोतवाल
बहुअरि रेसमा ॥ ३ ॥
की तुँ हौ रेसमा रे सँचवा कै ढारी की तुहैं गढ़ला सोनार
बहुअरि रेसमा ॥ ४ ॥
दढ़िया मैं जारों भैया तोर कोतवलवा मनइउ का गढ़ला सोनार ?
बहुअरि रेसमा ॥ ५ ॥
जनम दिहिन मोर माई रे बपवा सुरति दिहिन भगवान
बहुअरि रेसमा ॥ ६ ॥

रेसमा अपने बाप की ऐसी दुलारी थी कि सेर-सेर भर लौंग चबाया करती थी ॥१॥

रेसमा को नीले रंग का लहँगा और बूटेदार चोली बहुत खिलती थी ॥२॥

रेसमा पहन-ओढ़कर बाजार को गई। वहाँ उस पर कोतवाल लट्टू हो गया ॥३॥

कोतवाल ने पूछा—हे रेसमा ! तुम साँचे में ढाली गई हो ? या सोनार ने तुम्हें गढ़ा है ? ॥४॥

रेसमा ने कहा—अरे कोतवाल ! तेरी दाढ़ी जल जाय। भला, आदमी को भी कहीं सुनार गढ़ता है ? ॥५॥

मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म दिया है और भगवान् ने रूप दिया है ॥६॥

[८]

बेरिया क बेर तुहैं बरजौं कुरमियवा,
मनगौ उखुड़िया जिन बोया हो लालनवाँ ॥ १ ॥
चारि महीना कुरमी खेते खरिहनवाँ,
जड़वा बितावैं कोल्हुअरियाँ हो लालनवाँ ॥ २ ॥
सोरहो सिँगार कै के गई कोल्हुअरवाँ,
कुरमी लुकाने पतउरवाँ हो लालनवाँ ॥ ३ ॥
पैयाँ मैं लागौं भैया बरदा तिलँगिया,
सैला तोराय घर आओ हो लालनवाँ ॥ ४ ॥
सैला तो हमरा कुरमिन बेलवा बबुरवा,
कैसे क तोराय घर आओं हो लालनवाँ ॥ ५ ॥
टुटतै ढेंकुवा फुटतै कपरवा,
हरदी ओढ़रे घर अउतै हो लालनवाँ ॥ ६ ॥
कूल्ह तोरा टूटे जाठि तोरी फाटे,
रस वहि लागै पौदरवाँ हो लालनवाँ ॥ ७ ॥

हे कुरमी ! मैं बार-बार तुमको रोकती हूँ कि ईख मत बोओ ॥१॥

चार महीना तो तुम खेत और खलिहान मे रहते हो, और जाड़ा कोल्हुवारे में बिता देते हो ॥२॥

सोरह सिंगार करके कुरमिन कोल्हुवारे मे गई। उसे देखकर कुरमी पत्तों मे लुक गया ॥३॥

कुरमिन विफलमनोरथ होकर बैल से कहने लगी—हे बैल भैया ! तुम्हारे पैर पड़ती हूँ। तुम अपना सैला तुड़ाकर घर आओ, ताकि तुम्हें पकड़ने के लिए कुरमी भी घर आये ॥४॥

बैल ने कहा—हे कुरमिन ! हमारा सैला तो बेल और बबूल का है,

अर्थात् मज़बूत लकड़ी का है। उसे कैसे तोड़कर घर आऊँ? ॥५॥

तब कुरमिन आप ही आप कहने लगी—यह ढेंकुआ टूट जाता और कुरमी का कपाल फट जाता तो हल्दी लगाने के लिए वह ज़रूर घर आता ॥६॥

फिर झुँझलाकर कहती है—तेरा कूल्हा टूट जाय, तेरी जाठ फट जाय, तेरी ऊख का रस बहकर पौदर में चला जाय ॥७॥

इस गीत में कोल्हू के सम्बन्ध के कई शब्द आये हैं। जैसे कोल्हुवार, अर्थात् कोल्हूबाड़ा—जहाँ कोल्हू-सम्बन्धी काम-काज होते हैं। पतउर—वह स्थान जहाँ भट्ठे में झोंकने के लिए सूखे पत्ते जमा रहते हैं। सैला—एक लकड़ी जो बैल की गर्दन को रोके रखती है। ढेंकुआ—एक लकड़ी जो कोल्हू के बीच में खड़ी लकड़ी के नोकदार सिरे से लगी रहती है और कभी छूटकर गिरती है तो कोल्हू चलानेवाले के सिर पर आ पड़ती है। साथ ही यह भी मालूम हो गया कि सैले बेल या बबूल की लकड़ी के बनते हैं। यहाँ तक तो शिक्षा की बातें हुईं। अब मूल विषय पर आइए। कुरमी (खेती करनेवाली एक जाति-विशेष) बारहों महीने खेत ही में पड़ा रहता है। ईख की खेती में पूरे साल भर मेहनत करनी पड़ती है। कुरमिन बहुत रोकती है कि ईख की खेती मत करो। पर कुरमी मानता ही नहीं। कुरमिन बेचारी कहाँ तक पति का वियोग सहे। आख़िर को एक रात को वह सोलह श्रृङ्गार करके अपने दुलहे के पास जा पहुँची। कुरमी कोल्हू हाँक रहा था। भला, उसे स्त्री के साथ हँसने-बोलने की कहाँ फुरसत? वह पतौरे में जा छिपा। कुरमी की स्त्री की बुद्धि ही कितनी? उसे पति को रिझाने की कला क्या मालूम? वह बैल से प्रार्थना करने लगी—तुम सैला तोड़कर घर भाग आओ। और यह मनाने लगी कि ढेंकुआ कहीं टूटता और बालम का सिर फूटता तो वह चोट पर हल्दी लगाने के लिए घर आते।

पाठक ! इस पतिपरायणा कुरमिन की मनोवेदना का अनुभव कीजिए। किसान बेचारों को इतनी भी फुरसत नहीं कि घंटे आध घंटे अपनी स्त्री से बोल-बतला भी सकें। क्योंकि वे घर तभी आ सकते हैं जब खेत-सम्बन्धी कोई काम न हो, या चोट लगे, अथवा बीमार हों। कुरमिन बेचारी पति के सिर फूटने को भी अपना सौभाग्य समझती है। फिर वह झुँझलाकर और भी कुछ कड़ी बातें सुनाती है। कुरमिन के सम्बन्ध का एक बहुत पुराना बरवा भी है :—

नीक जाति कुरमिनि कै, खुरपी हाथ।
आपन खेत निरावैं, पति के साथ ॥

बिहारी ने ऐसी ही उक्ति कबूतर के लिये दी है :—

पटु पाँखैं भखु काँकरै, सदा परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही बिहंग ॥

मेले के गीत

देहात में मेले बहुत हुआ करते हैं। बहुत ही कम मेले ऐसे होते हैं, जिनमें स्त्रियाँ न जाती हों। स्त्रियाँ झुण्ड बाँधकर चलती हैं। अकेली चलना उन्हें बहुत कम पसंद होता है। वे जहाँ दो-चार साथ हुईं कि उनमे गीत होने लगते हैं। गाना उनका स्वाभाविक गुण जान पड़ता है।

मेलों में जाते-आते स्त्रियाँ गीत गाया करती हैं। उनके मधुर कंठ से निकले हुये गीत बड़े ही प्रभावशाली होते हैं। उनसे स्त्रियों की ही नहीं, सुननेवाले पुरुषों की भी थकावट दूर होती रहती है। मेलेवाले गीतों की लय भी ऐसी सरल होती है कि राह चलते वे गाये जा सकते हैं, और उनसे श्वास-प्रश्वास की क्रिया मे कोई बाधा नहीं पहुँचती।

हमने मेलों में जा-जाकर थोड़े से गीत नोट कर लिये थे। पर मेलों के गीत असंख्य हैं और एक से एक बढ़कर मधुर हैं। बहुत से गीत हमारे संगृहीत गीतों से भी अच्छे होंगे।

यहाँ कुछ गीत दिये जाते हैं—

[१]

किन मोरी अवध उजारी हो—विलखैं कउसिला।
कहाँ गये राम कहाँ गये लछिमन कहाँ गई जनकदुलारी हो।
बिल० ॥ १ ॥

वन गये राम वनैं गये लछिमन वन गईं जनकदुंलारी हो।
विल० ॥ २ ॥
राम विना मोरी सूनी अजोध्या लछिमन बिन चौपारी हो।
विल० ॥ ३ ॥
सीता विना मोरा सूनी रसोइयाँ राम लखन ज्योंनारी हो।
विल० ॥ ४ ॥

कौशल्या विलाप करती हैं—हाय! किसने मेरी अयोध्या उजाड़ दी? राम कहाँ गये? लक्ष्मण कहाँ गये? सीता कहाँ गईं? ॥१॥

राम वन को गये। लक्ष्मण बन को गये। और जनक-नन्दिनी भी वन को गईं ॥२॥

राम के विना मेरी अयोध्या सूनी है। लक्ष्मण विना वैठक, और सीता बिना रसोई सूनी है। राम लक्ष्मण ही जीमनेवाले थे ॥३,४॥

[२]

रघुवर सँग जाव—हम न अवध में रहवै।
जौ रघुवर रथ पर जइहैं भुँइयैं चली जाव। हम० ॥ १ ॥
जौ रघुवर बनफल खइहैं, फोकली विनि खाव। हम० ॥ २ ॥
जौ रघुवर पात विछैहैं, भुइयाँ पड़ि जाव। हम० ॥ ३ ॥

राम जब बन जाने लगे, तव अवध की स्त्रियों ने कहा—

हम भी राम के साथ जायँगी। हम अयोध्या में न रहेंगी।

राम रथ पर जायँगे, हम पैदल ही चली जायँगी ॥१॥

राम वनफल खायँगे, हम उनके खाये हुये फलों का छिलका खाकर गुज़र कर लेंगी ॥२॥

राम पत्ता विछाकर सोयेंगे, हम जमीन ही पर पड़ रहेंगी ॥३॥

सच्चा प्रेम इसी को कहते हैं।

[३]

जावोगे हम जानी—मन ! तुम जावोगे हम जानी ॥
चार सखी मिलि चली हैं बजारे एक तें एक सयानी।
सौदा करी मनै ना भाई उठ गई हाट पछतानी ॥ १ ॥
राज करंते राजा जैहैं कमलापत सी रानी।
वेद पढ़न्ते ब्रह्मा जैहैं जोग करंते ज्ञानी ॥ २ ॥
सूरज जैहैं चन्दा जैहैं जैहैं पवन औ पानी।
एक बेर धरती चलि जैहैं ह्वैहै बात पुरानी ॥ ३ ॥
चार जतन को बनो पींजरा जामें वस्तु बिरानी।
आवेंगे कोई लोग दिखनियाँ डूब जायँ बिन पानी ॥ ४ ॥

हे जीव ! तुम जाओगे, मैं ऐसा जानती हूँ।

चार सखियाँ मिलकर बाजार चलीं। वे एक से एक बढ़कर चतुरा हैं। उन्होंने कुछ सौदा किया। पर उन्हें वह पसंद नहीं आया। इतने में हाट उठ गई। वे पछताने लगीं ॥१॥

राज करते हुये राजा चले जायँगे। कमलावती सी रानी भी चली जायँगी। इसी प्रकार वेद पढ़ते हुये ब्रह्मा और योग करते हुये ज्ञानी भी चले जायँगे ॥२॥

सूर्य जायगा, चन्द्रमा जायगा, पवन और पानी भी जायँगे। एक बार पृथ्वी भी चली जायगी। जैसा पहले होता आया है, वैसा ही फिर होगा ॥३॥

पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि इन चार चीज़ों से एक पींजरा बना है। जिसमें एक पराई चीज़ रक्खी है। वह चीज बिना पानी ही डूब जायगी। उसे देखने वाले कोई विरले ही आवेंगे ॥४॥

इस गीत में क्षणभंगुर संसार का वर्णन है, और उसकी तुलना हाट से की गई है।

[४]

धै देत्यो राम, हमारे मन धिरजा ॥
सब के महलिया रामा दियना बरतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो अँधेर। हमारे० ॥ १ ॥
सब के महलिया रामा जेवना बनतु हैं,
हरि लेत्यो हमरो भूख। हमारे० ॥ २ ॥
सब के महलिया रामा गेडुंवा घुँटतु हैं,
हमरो हरि लेत्यो पियास। हमारे० ॥ ३ ॥
सब के महलिया रामा बिरवा कुँचतु हैं,
हमरो हरि लेत्यो अमलिया। हमारे० ॥ ४ ॥
सब के महलिया रामा सेजिया लगतु हैं,
हमरो हरि लेत्यो नींद। हमारे० ॥ ५ ॥

हे राम ! आप हमारे मन में धैर्य रख देते।

सब के महलों में दीपक जल रहे हैं। हमारे महल मे आप अँधकार होने ही न देते ॥१॥

सब के महलों में भोजन बन रहे हैं। हमारी आप भूख ही हर लेते ॥२॥

सब के महलों मे सुराही का पानी पिया जाता है। आप हमारी प्यास ही हर लेते ॥३॥

सब के महलों में पान के बीड़े खाये जाते हैं, हमारी आप अमल ही हर लेते ॥४॥

सब के महलों मे सेज लग रही है। हमारी आप नींद ही हर लेते ॥५॥

[५]

मोरे गोरे बदन पर सब मोहे।
सड़के प गइलीं सड़कियउ मोहे बाट चलत मोसफिरउ हो
मोहे ॥ १ ॥
कुँवले प गइलीं कुँवनवाँ मोहे पानी भरत कँहरवउ हो मोहे ॥ २ ॥
सेजिया प गइलीं सेजरिया मोहे सेज सोअत बालमुवउ
मोहे ॥ ३ ॥

मेरे गोरे शरीर पर सभी मुग्ध हैं।

मैं सड़क पर गई, वह भी मुझे देखकर मोहित हो गई। सड़क पर चलनेवाले पथिक भी मोहित हो गये ॥१॥

कुँवे पर गई, तो वह भी मोहित हो गया। पानी भरता हुआ कहार भी मुग्ध हो गया ॥२॥

सेज पर गई, तो सेज भी मोहित हो गई। और सेज पर सोता हुआ मेरा प्राणेश्वर भी मुग्ध हो गया ॥३॥

यह किसी रूपगर्विता का गीत है।

[६]

कब मिलि हैं रघुनाथ हमारे।
जैसे मिले वहि द्रुपत सुता को खैंचत चीर दुसासन हारे ॥ १ ॥
जैसे मिले प्रहलाद भगत को खम्ह फारि हरिनाकुस मारे ॥ २ ॥
जैसे मिले प्रभु राजा बलि को होत प्रात द्वारे भये ठाढ़े ॥ ३ ॥
जैसे मिले प्रभु सूर स्याम को मोहिं अस पतित अनेकन तारे ॥ ४ ॥

मेरे राम मुझे कब मिलेंगे?

जैसे वे द्रोपदी को मिले, जिसका चीर खींचने में दुःशासन भी हार गया ॥१॥

जैसे वे भक्त प्रह्लाद को मिले, जिसके लिए उन्होने खंभा फाड़कर हिरण्यकश्यप को मारा ॥२॥

जैसे वे राजा बलि को मिले। जिसके लिये वे प्रातःकाल होते ही उसके द्वार पर खड़े होते हैं ॥३॥

जैसे वे स्वामी सूरश्याम को मिले। उन्होंने मेरे ऐसे अनेकों पापी तारे हैं ॥४॥

[७]

मैं वेला तरे ठाढ़ि रहिउँ, के जदुवा डारा।
हमरे वलम की वड़ी वड़ी अँखिया,
सुरमा सराई ऐनक लिहे ठाढ़ि रहिउँ, के जदुवा डारा ॥ १ ॥
हमरे वलम की वड़ी वड़ी जुलफैं,
तेला फुलेला कँगन लिहें ठाढ़ि रहिउँ, के जदुआ डारा ॥ २ ॥
हमरे वलम के झीने झीने दँतवा,
खैरा सुपारी विरवा लिहे ठाढ़ि रहिउँ, के जदुवा डारा ॥ ३ ॥

मैं वेले के नीचे खड़ी थी, किसने जादू डाला? मेरे प्रियतम की वड़ी-वड़ी आँखें हैं। मैं सुरमा, सलाई और ऐनक लिये खड़ी थी। किसने जादू डाला? ॥१॥

मेरे प्रियतम की वडी-वडी अलकें हैं। मैं तेल, फुलेल और कंघी लिये खडी थी। किसने जादू डाला? ॥२॥

मेरे प्रियतम के दाँत वहुत छोटे-छोटे हैं। मैं खैर, सुपारी और बीडा लिये खडी थी। किसने जादू डाला? ॥३॥

[८]

राम और लछमन वह दोनों भाई,
वह दोनों वन को सिधारे हो राम ॥ १ ॥

एक वन लंघे दूजा वन लंघे
तीजे वन लागी वहै प्यास हो राम ॥ २ ॥
दूसरे नगर का है कोई राजा
भर गड़वा जल लावै हो राम ॥ ३ ॥
तेरा तो पानी लड़के जद ही मैं पीऊँ
नाम वता दे मात पिता का हो राम ॥ ४ ॥
अपने पिता का नाम न जानूँ,
सीय हमारी माय हो राम ॥ ५ ॥
चल रे लड़के उस रे सहर को
जाहिं तुम्हारी माय हो राम ॥ ६ ॥
चंदन चौकी सीता न्हान सँजोया
केस दिये छटकाय हो राम ॥ ७ ॥
पीछा तो फिरकर सीता देखन लागी
पीछे खड़े श्रीराम हो राम ॥ ८ ॥
फट जा री धरती समाजा री सीता
केसों की हो गई दूब हो राम ॥ ९ ॥
इसरे पुरुष का मुख नहीं देखूँ
जीवत दिया वनवास हो राम ॥१०॥
इसरे काया पै हल भी चलैंगे
खेती करैंगे श्रीराम हो राम ॥११॥
इसरे काया पै दूब जमैगी
गौवे चरावैं श्रीराम हो राम ॥१२॥
इसरे काया पैं गंगा वहैंगी
नीर पिलावैं श्रीराम हो राम ॥ १३॥
राम और लक्ष्मण दोनों भाई बन को गये ॥१॥

एक बन में गये, दूसरे बन में गये, तीसरे में प्यास लगी ॥२॥

उनको किसी दूसरे नगर का राजा समझकर एक बालक कलश भरकर लाया ॥३॥

राम ने कहा—बालक ! तुम्हारे हाथ का पानी तो मैं तभी पीऊँगा, जब तुम अपने माता-पिता का नाम बता दोगे ॥४॥

बालक ने कहा—मैं पिता का नाम तो नहीं जानता। पर सीता मेरी माँ है ॥५॥

राम ने कहा—बालक ! उस नगर को चलो, जहाँ तुम्हारी माँ है ॥६॥

सीता चंदन की चौकी पर स्नान की तैयारी कर रही थीं। उन्होंने केश छिटका दिये थे ॥७॥

सीता ने पीछे फिरकर देखा तो पीछे श्रीराम खड़े थे ॥८॥

सीता ने कहा—हे धरती ! तुम फट जाओ। मैं समा जाऊँ। वैसा ही हुआ। सीता के केशों की दूब हो गई ॥९॥

सीता ने कहा—मैं इस पुरुष का मुँह न देखूँगी, जिसने मुझे जीते जी वनवास दिया ॥१०॥

इस शरीर पर हल चलेगा और राम खेती करेंगे ॥११॥

इस शरीर पर दूब उगेगी, जिस पर राम गौवें चरावेंगे ॥१२॥

इस शरीर पर गंगा बहेंगी, जिसमें श्रीराम अपनी गायों को पानी पिलावेंगे ॥१३॥

[९]

बूझत भरत राम कहाँ माई।
जबसे छुट्यो अजुध्या नगरी हमें उदासी आई।
घर गलियाँ और घाट बाट में सब परजा रोवत पाई ॥ १ ॥

राम बिना मेरी सूनी अजुध्या लछिमन बिन ठकुराई।
सिया बिना मेरो मन्दिर सूनो लौटि पछार भरत ने खाई॥ २॥

भरत पूछ रहे हैं—हे माँ! राम कहाँ हैं? जब से अयोध्या छूटी, तब से मुझ पर उदासी ही छाई रही। घर-घर गली-गली और घाट-बाट में मैंने प्रजा को रोती हुई पाया॥१॥

राम के बिना मेरी अयोध्या, लक्ष्मण के बिना ठकुराई और सीता के बिना मेरा घर सूना है। यह कहकर भरत पछाड़ खाकर गिर पड़े॥२॥

भरत का भ्रातृ-प्रेम हिन्दू-समाज में सहस्र धारा होकर प्रवाहित है।

[१०]

आज मोरे राम की सुधि आई।
घर क जेवना राम घरही छोड़तु हैं,
सूखन मरतु ह्वैहैं दोउ भाई॥ १॥
लोटा औ डोरी राम घर ही छोड़तु हैं,
प्यासन मरतु ह्वैहैं दोउ भाई॥ २॥
तोसक तकिया रामा घर ही छोड़तु हैं,
नींदन मरतु ह्वैहैं दोउ भाई॥ ३॥

राम के बन जाने पर कौशल्या विलाप करती हैं—आज मुझे राम की याद आई है।

राम ने खाने-पीने के पदार्थ तो घर ही छोड़ दिये। दोनों भाई भूखों मरते होंगे॥१॥

राम ने लोटा-डोरी भी घर ही छोड़ दी। दोनों भाई प्यासे मरते होंगे॥२॥

राम ने तोशक-तकिया घर पर ही छोड दिया। दोनों भाई नींद के मारे मरते होंगे॥३॥

[११]

सोचइ सोच तीनों पन बीते रामा।
केहि देखि धरौं धीरज रामा॥
पहिला सोच मोरे नैहर में परल रामा।
विन बीरन मोरी पीठ उदास रामा॥ १॥
दूसरा सोच मोरे ससुरे में परल रामा।
विनु मोरे ससुरू वैठक सून रामा॥ २॥
तीसर सोच मोरे ससुरे में परल रामा।
विन राजा मोरी सूनी सेज रामा॥ ३॥

चिन्ता ही चिन्ता में मेरे तीनों पन (बचपन, युवापन और वृद्धापन) बीत गये। हे राम! किसे देखकर धीरज धरूँ?

पहली चिन्ता तो मुझे नैहर में हुई। मेरे पीछे कोई भाई नहीं॥१॥

दूसरी चिन्ता मुझे ससुराल में मिली। ससुर विना मेरी बैठक सूनी है॥२॥

तीसरी चिन्ता मुझे ससुराल में मिली। स्वामी के विना मेरी सेज सूनी है॥३॥

[१२]

विगड़ी प्रभु नाथ! तोहैं विन हमरी।
नैहर में जो बीरन होतेन ओनहूँ क करतिउँ आस॥ १॥
ससुरे में जौ देवर होते ओनहूँ क करतिउँ आस॥ २॥
दुवरवाँ जौ एकौ रूखड होतै तो मैं होती ठाढ़॥ ३॥

कोई विधवा विलाप करती है—

हे स्वामी! तुम्हारे विना मेरी सब प्रकार से विगड़ गई।

नैहर में यदि भाई होते, तो उनकी भी आशा करती॥१॥

ससुराल में यदि देवर होते, तो उनकी भी आशा करती॥२॥

मेरे घर के द्वार पर एक वृक्ष भी होता, तो मैं उसके नीचे ही खड़ी होती ॥३॥

अंतिम पंक्ति बड़ी ही हृदय-द्रावक है।

[१३]

चेतहु सीता चेतहु सीता घर घरुआर रे।
चेतहु सीता चेतहु सीता गीहिथा से चारु।
हमरे गोहनवाँ हो सीता तोहके बड़ दुख बा ॥ १ ॥
केकर चेतहुँ राम घर घरुआर रे।
केकर चेतहुँ राम गिहिथा से चारु।
तोहरे गोहनवाँ हो राम मोही बड़ सुख बा ॥ २ ॥
बाबा राजा दसरथ का घर घरुआर रे।
माता कवसिल्या देइ क गिहिथा से चारु।
हमरे गोहनवाँ हो सीता तोहके बड़ दुख बा ॥ ३ ॥
माई बिना नैहर मान न होइ रे।
सूनी अयोध्या हो राम मोही धई धई खाइ ॥ ४ ॥

बन जाते समय राम कहते हैं—हे सीता! घर-द्वार की कुछ चिन्ता करो।

हे सीता! गृहस्थी की चिंता करो। मेरे साथ चलने में तुमको बड़ा दुःख है ॥१॥

सीता कहती हैं—हे राम! किसके घर-द्वार की चिंता करूँ? किसकी गृहस्थी की फ़िक्र करूँ? हे राम! तुम्हारे साथ चलने में मुझे बड़ा सुख है ॥२॥

राम कहते हैं—हे सीता! ससुर राजा दशरथ का घर-द्वार और कौशल्या माता की गृहस्थी सँभालो। हे सीता, मेरे साथ तुमको बड़ा दुःख होगा ॥३॥

सीता कहती हैं—हे प्रियतम ! माँ के बिना नैहर में मान नहीं मिलता। तुम्हारे बिना यह सूनी अयोध्या मुझे पकड़-पकड़कर खाने दौड़ती है ॥४॥

[१४]

वदन पर खुसवो आजावेगी रे।
द्वारे पर केवरा लगाओ मोरे प्यारे,
वदन पर खुसवो आ जावेगी रे ॥ १ ॥
वद की संघत तू मत करो प्यारे,
वदन पर फीकी आजावेगी रे ॥ २ ॥
वोतल वरंडी तुम मत पियो प्यारे,
अक्लि पर गफलत आजावेगी रे ॥ ३ ॥
रंडी की संघत तुम मत करो प्यारे,
नहक को सान चली जावेगी रे ॥ ४ ॥

हे मेरे प्यारे ! द्वार पर केवड़े का वृक्ष लगाओ। जिससे शरीर पर खुशवू आ जाय ॥१॥

हे प्यारे ! तुम बुरों की संगति न करना। नहीं तो शरीर की शोभा न रहेगी ॥२॥

हे प्यारे ! तुम शराव मत पिओ। नहीं तो बुद्धि मन्द हो जायगी ॥३॥

हे प्यारे ! तुम वेश्या की संगति मत करो। नहीं तो सहज ही में शान चली जायगी ॥४॥

[१५]

चितै दे मेरी ओर, करक मिटि जाय रे।
वहुत दिनन से तेरे दिखिवे कौ मेरो जी ललचाय ॥ १ ॥
मैं चितवति तू चितवत नाहीं रहि रहि जी घवड़ाय ॥ २ ॥
निपट निठुर निरमोही मोहन मोहिं रहो तरसाय ॥ ३ ॥

तेरी चितवन में चित्त लगा है नेह सिरानो जाय ॥ ४ ॥

हे मोहन ! एक बार मेरी ओर देख लो। जिससे मेरे हृदय की पीड़ा मिट जाय।

बहुत दिनों से तुम्हें देखने के लिये मेरा जी ललचाता है ॥१॥

मैं तो तुम्हें देख रही हूँ। तुम मेरी ओर देखते ही नहीं। रह-रहकर जी घबराता है ॥२॥

हा ! बिल्कुल निर्मोही निष्ठुर मोहन मुझे तरसा रहा है ॥३॥

हे मोहन ! मेरा चित्त तेरी चितवन में लगा है। अब प्रेम चुकता जा रहा है ॥४॥

[१६]

संतो नदी बहै यक धारा।
जैसे जल में पुरइन उपजे जल ही में करे पसारा।
वाके पानि पत्र नहिं भीजै ढुरकि परै जैसे पारा ॥ १ ॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर पिय को बचन नहिं टारा।
आप तरै औरन को तारै तारै कुल परिवारा ॥ २ ॥
जैसे सूर चढ़े लड़ने को पग पीछे नहिं टारा।
जिनकी सुरति भई लड़ने को प्रेम मगन ललकारा ॥ ३ ॥
भवसागर एक नदी बहत है लख चौरासी धारा।
धर्मी धर्मी पार उतरिगे पापी बूड़े मझधारा ॥ ४ ॥

हे संतो ! संसार रूपी नदी की यह एक धारा बह रही है।

जैसे कमल जल में पैदा होता है और जल ही में फैलता है। पर उसका पत्ता पानी से नहीं भीगता। पानी उसपर से ऐसा ढुलक पड़ता है, जैसे पारा ॥१॥

जैसे सती सत पर चढ़ती है और पति की आज्ञा नहीं टालती। वह स्वयं तर जाती है, औरों को तारती है, सारे परिवार को तारती है ॥२॥

जैसे शूरमा रण मे जाता है तो पीछे नहीं मुड़ता। लड़ने में जिसकी निष्ठा हो जाती है, वह प्रेम में मग्न हो कर ललकारता है ॥३॥

संसार एक नदी है। जिसमें चौरासी लाख धारायें हैं। जो धर्मात्मा थे, वे तो पार उतर गये। पापी बीच धारा में डूब रहा है ॥४॥

[१७]

बन का चले दोनों भाई, कोई समुझावत नाहीं।
भीतर रोवै मात कौसिल्या द्वारे भारत भाई ॥ १ ॥
आगे आगे राम चलत हैं पीछे लछिमन भाई।
तेकरे पीछे मात जानकी मधुवन लेत टिकाई ॥ २ ॥
भूक लगे भोजन कहँ पैहैं प्यास लगे कहँ पानी।
नींद लगे डासन कहँ पैहैं कुस काँकर गड़ि जाई ॥ ३ ॥
रिमझिम रिमझिम दैव बरीसै पौन बहै पुरवाई।
कौनो विरिछ तर भीजत होइहैं रामलखन दोनों भाई ॥ ४ ॥

हा! दोनों भाई बन को जा रहे हैं। कोई समझाता नहीं है। भीतर कौशल्या माता रो रही हैं, और बाहर भाई भरत रो रहे हैं ॥१॥

आगे-आगे राम चल रहे हैं, पीछे लक्ष्मण भाई। उनके पीछे जानकी माता चल रही हैं। कोई इनको मधुवन में टिका लेता ॥२॥

हाय! भूख लगेगी तो वे भोजन कहाँ पायेंगे? प्यास लगने पर पानी कहाँ पायेंगे? नींद लगने पर बिछौना कहाँ पायेंगे? शरीर में कुश और कंकड़ गड़ जायँगे न? ॥३॥

'रिमझिम'-'रिमझिम' बादल बरस रहे हैं। पूर्वा हवा चल रही है। हा! दोनों भाई कहीं किसी वृक्ष के नीचे भीगते होंगे ॥४॥

[१८]

पर के अँगनवा में जनि जाहु स्वामी रे,
अरे केई देतो पिढ़वा अउर जलपान। अरे० ॥१॥

अपने अँगनवाँ में आहो मोरे स्वामी रे,
हमें देबो पिढ़वा अउर जलपान। हमें० ॥२॥
पर के सेजिया पै जनि जाहु स्वामी रे,
उतरि जैतो मुँहवा कै आब। उतरि० ॥३॥
अपने सेजिया पै आहो मोरे स्वामी रे,
रहि जैतो मुँहवा कै पान। रह० ॥४॥
अरे केसिया रौरे के लागे हन भौंरवा के नाहित। केसिया० ॥५॥
अरे अँखिया रौरे के लागे हन मछलिया के नाहित। अँखिया० ॥६॥
अरे दँतिया रौरे के लागे हन बिजुलिया के नाहित। दँतिया० ॥७॥
अरे बोलिया रौरे के लागे हन कोइलिया के नाहित। बोलिया० ॥८॥
अरे चलिया रौरे के लागे हन मोगलवा के नाहित। चलिया० ॥९॥

हे मेरे स्वामी! दूसरों के आँगन में मत जाओ। वहाँ कौन तुमको पीढ़ा देगा? कौन जल-पान के लिये पूछेगा? ॥१॥

हे मेरे प्रियतम! अपने आँगन में आओ। मैं बैठने को पीढ़ा दूँगी, और जल-पान कराऊँगी ॥२॥

प्राणनाथ! दूसरों की सेज पर मत जाओ। मुँह की आब उतर जायगी ॥३॥

हे प्रियतम! अपनी सेज पर आओ। जिससे मुख की शोभा बनी रहे ॥४॥

हे नाथ! तुम्हारे बाल भौंरे की तरह लगते हैं ॥५॥

तुम्हारी आँखें मछली की तरह लगती हैं ॥६॥

तुम्हारी दंतावली बिजली-सी जान पड़ती है ॥७॥

तुम्हारी बोली कोयल की सी है ॥८॥

तुम्हारी चाल मुग़ल की चाल की तरह गंभीर और आत्म-गौरव से

भरी हुई है ॥९॥

मुग़ल-राज्य में मुग़ल ही सब गुणों के आदर्श थे, जैसे आज-कल अंग्रेज लोग माने जाते हैं।

[१२]

ऊँचहि घरवा के ऊँचि रे अटारि,
　　ताहि बैठी रूपादेवी झारे लम्बी केस ॥ १ ॥
का तुहू रूपा बेटी झारे लांबी केस,
　　तोर स्वामी जूझल बाड़े गइया की गोहारि ॥ २ ॥
हाथ केरी ककही हाथहि रहि जाय,
　　सीर के सेनुरवा दईव हर ले जाय ॥ ३ ॥
सभवा बइठल तुहू बाबा हो हमार,
　　बीता एक जगहिआ बाबा हमरा के दान ॥ ४ ॥
बीता एक जगहिया रुपवा तोहि बलिहारि,
　　लेइ आव कयथवा रुपवा लेहु ना नापाइ ॥ ५ ॥
मचिया बइठलि तुहू मइया हो हमार,
　　लहरा पटोरवा अम्मा हमरा के दान ॥ ६ ॥
लहरा पटोरवा रुपवा तोहि बलिहारि,
　　लेइ आव बजजवा रुपवा लेहु ना फराय ॥ ७ ॥
पसवा खेलत तुहू भैया हो हमार,
　　चन्दन चइलिया भैया हमरा के दान ॥ ८ ॥
चन्दन चइलिया रुपवा तोहि बलिहारि,
　　लेइ आव बढ़इया रुपवा लेहु ना चिराय ॥ ९ ॥
भाड़ारा पइसलि तुहू भउजी हमारि,
　　अवध सिन्हरवा भउजी हमरा के दानं ॥१०॥

पूरब के चँदवा पछीम कइले जाइ,
भउजी के सिन्होरवा ननँद नहि दान ॥११॥
एक तो बेटी पातरी दोसर सुकवार,
कइसे कइसे बेटी सहिबो अगिनी की आँच ॥१२॥
तोहर लेखे आहो आमा अगिनी के आँच,
हमरी लेखे कतनो अँचवा सीतल बतास ॥१३॥

ऊँचे घर की ऊँची अटा है, जिसपर बैठकर रूपा देवी अपने लम्बे बाल साफ़ कर रही है ॥१॥

हे रूपा बेटी! तुम बाल क्या साफ़ कर रही हो? तुम्हारा पति तो गाय की रक्षा में जूझ गया ॥२॥

रूपा के हाथ की कंघी हाथ ही में रह गई। माँग का सिन्दूर भगवान् ने हर लिया ॥३॥

सभा में बैठे हुये हे मेरे बाबा! मुझे एक बीता जगह दान दो ॥४॥

हे रूपा बेटी! एक बीता जगह तुम पर अर्पण है। कायस्थ बुलाकर नपा लो न? ॥५॥

मचिये पर बैठी हुई हे मेरी सासजी! तुम मेरी माँ हो। मुझे एक रेशमी धोती दो ॥६॥

हे रूपा बेटी!, लहर पटोर (रेशमी वस्त्र) तुम पर अर्पण है। बजाज बुलाकर फड़वा लो न? ॥७॥

पासा खेलते हुये हे मेरे भाई! मुझे थोड़ी सी चन्दन की चैली प्रदान करो ॥८॥

हे रूपा बहन! चन्दन की चैली तुम पर अर्पण है। बढ़ई बुलाकर चिरा लो न? ॥९॥

भंडार में घुसी हुई हे मेरी भौजी! मुझे सिंधोरा (सिन्दूर का पात्र) प्रदान करो ॥१०॥

पूरब का चन्द्रमा पश्चिम में कैसे जायगा ? भौजी का सिंधोरा ननद को नहीं दिया जा सकता ॥११॥

हे बेटी ! एक तो तुम पतले अंग की हो, दूसरे सुकुमारी हो। हे बेटी ! आग की आँच कैसे सहोगी ? ॥१२॥

हे माँ ! तुम्हारे लिये आग की आँच है। मेरे लेखे तो वह शीतल वायु है ॥१३॥

कहना नहीं होगा कि रूपा देवी सती हो गई।

[२०]

लम्बी गैया क ढूँड़ी ढूँड़ी सींग।
चरै चोथे जाय गैया जमुना के तीर ॥ १ ॥
चरि चोंथि गैया पानी पिये जाइ।
बाघ बघिनिया घाट छेंकें आइ ॥ २ ॥
छोड़ौ रे बघवा मोरे पनिघाट।
हम हैं पिआसी पानी पिये देउ ॥ ३ ॥
घर से आइब बछरू पिआइ।
तब तूँ हम का लीहा खाइ ॥ ४ ॥
जो तू गैया जैबे बछरू पिआइ।
हमका दिहे जा सखिया गवाह ॥ ५ ॥
चाँद सुरुज दूनौ सखिया गवाह।
अइबै हे बाघा बछरु पिआइ ॥ ६ ॥
आउ बच्छा रे पी ले दूध डमकोरि।
सबेरे हम जाब अपने नैहर की ओर ॥ ७ ॥
रोज त आवो माई होंकरत चोंकरत।
आजु तोर मनवा काहें मलीन ॥ ८ ॥

आजु की राति बच्छा रहवै तोहरे पास।
होत बिहान होवै बाघे क अहार॥९॥
जौ तूँ जाबिउ माता बाघ के पास।
हमहूँ क लिहेउ गोहनवा लगाय॥१०॥
आगे आगे बछरू कुलाँचत जाय।
पीछे पीछे गैया बिप मातलि जाय॥११॥
जाइ के पहुँची गैया बाघ के पास।
मामा कहि बाछा किहा सलाम॥१२॥
आवहु मोर मामा मोहि भच्छि लेहु।
पीछे भच्छेहु आपनि बहीन॥१३॥
गैया मोरी बहिनी बछौवा मोर भैने।
जाइ के बाछा रहौ केदरी के वन में॥१४॥

छर्थ: गाय की छोटी छोटी सींग है। गाय जमना के किनारे चरने-चोंथने जाया करती है॥१॥

चर-चोंथ कर गाय पानी पीने गई। बाघ बाघिन ने आकर उसका घाट घेर लिया॥२॥

हे बाघ! मेरा पनघट छोड़ दो। मैं प्यासी हूँ। मुझे पानी पीने दो॥३॥

मैं घर जाकर बछड़े को दूध पिलाकर आऊँगी, तब तुम मुझे खा लेना॥४॥

हे गाय! तुम बछड़ा पिलाने जाओगी, तो मुझे गवाह साक्षी दिये जाओ॥५॥

हे बाघ! चाँद और सूर्य मेरे गवाह हैं। मैं बछड़े को पिलाकर ज़रूर आऊँगी॥६॥

हे बछड़ा ! आओ, पेट भरकर दूध पी लो। सवेरे मैं अपने नैहर जाऊँगी ॥७॥

हे माँ ! रोज़ तो तुम हुँकरती-चुँकरती आती थी। आज तुम्हारा मन मलिन क्यों है ? ॥८॥

हे बेटा ! आज की रात तुम्हारे पास रहूँगी। सवेरा होते ही बाघ का आहार बनूँगी ॥९॥

हे माँ ! तुम बाघ के पास जाओगी तो मुझे भी साथ लेते चलना ॥१०॥

आगे-आगे बछड़ा कुलाचें मारता हुआ जाता था। पीछे-पीछे गाय मोह रूपी विष मे मतवाली होकर जा रही थी ॥११॥

गाय बाघ के पास पहुँची। बछड़े ने 'मामा' कहकर बाघ को सलाम किया ॥१२॥

हे मामा ! आओ। पहले मुझे खा लो। फिर अपनी बहन को खाना ॥१३॥

गाय मेरी बहन और बछड़ा मेरा भांजा है। जाओ भांजे ! कदलीवन में विहार करो ॥१४॥

यह गीत युक्तप्रांत और बिहार के देहात में बहुत प्रचलित है। इसमें वचन पालने की महिमा वर्णित है। सच है—

सत मत छोड़े बावरे, सत छोड़े पत जाय।

[२१]

समुझ मन माँ कोई काहू क नाहीं।
पुरुब दिसा से उठी बदरिया पिय के सोंच खड़ी अँगना ॥ १ ॥
ज्वानी माँ कुछ सूझत नाहीं जान परत बिरद्पन माँ ॥ २ ॥

हे मनुष्य ! मन में समझ; कोई किसी का नहीं।

पूर्व दिशा से घटा उठी । स्त्री प्रियतम को सोचती हुई खड़ी है ॥१॥

जवानी में कुछ नहीं सूझता । वृद्धावस्था में समझ पड़ता है ॥२॥

[२२]

सुधिया न कीन्हे राजा हमरे सुरति की ।
अपुआ तो जाय के बिदेसवा में छाये,
पतिया न लिखे राजा हमरे न मन की ॥ १ ॥
जो सुधि आवै राजा तुम्हरे सुरति की,
अँसुवा बहैं जैसे नदिया सवन की ॥ २ ॥

हे राजा ! तुमने मेरी सुध नहीं ली ।

तुम स्वयं तो जाकर विदेश में डेरा डाले हो । मेरे मन का हाल जानने के लिये तुमने पत्र भी न भेजा ॥१॥

हे राजा ! तुम्हारी याद आते ही मेरी आँखों से आँसू की ऐसी धारा वहती है, जैसे सावन की नदी ॥२॥

[२३]

ई देहियाँ तरुवर की छहियाँ ।
झंखै कतौं कोउ नाय, जो मन झंखहिं राम ॥
सब भैयन से राम राम गुरूजी से बन्दगी ।
मात पिता की सेवा करि ले मनवाँ लगाय कै ॥ १ ॥
देई देवा नाहक पूजे चौरा बँधाय कै ।
दुनियाँ माँ नेकी कैले थोरे दिन कै जिन्दगी ॥ २ ॥
एक तो सुखी रहैं गाय क बछौना ।
उनहूँ क दुख परा हरवा चले ते ॥
एक तो सुखी रहे चकई औ चकवा ।
उनहूँ का दुख परा रात भये ते ॥

एक तो सुखी रहे सूरज चन्द्रमा,
उनहूँ का दुख परा गहन परे ते ॥ ३ ॥

यह देह वृक्ष की छाया है। मन में राम को याद रखोगे तो कहीं किसी को झंखना न पड़ेगा।

सब भाइयों को राम राम करो। गुरु को प्रणाम करो। मन लगाकर माँ-बाप की सेवा कर लो ॥१॥

चबूतरा बनवाकर देवी देवता की पूजा व्यर्थ है। संसार में आकर नेकी कर लो। थोड़े दिन की जिन्दगी है ॥२॥

एक तो सुखी गाय का बछड़ा था, हल में जुतने से वह भी दुखी हो गया। एक सुखी चकवा-चकई थे, रात होने से उन पर भी दुख पड़ा। सूर्य-चन्द्रमा सुखी थे, ग्रहण लगने से वे भी दुःखी हुये। अर्थात् संसार में कोई सुखी नहीं है ॥३॥

[२४]

बेटी बलाइन जँघ बैठाइन पूँछैं बेटी सन हाल ॥ १ ॥
जौन जौन सुख कीन्हे तू बेटी सो मोहिं देहु बताय ॥ २ ॥
खाँड़ चिरौंजी क भोजन बाबू करुवइं तेल नहान ॥ ३ ॥
हमरे करमवाँ माँ इहै लिखत हैं सेजरिया माँ सूतौं अकेलि ॥ ४ ॥
साफ सुपेती क ओढ़न डासन गेडुवा धरेउँ सौ साठि ॥ ५ ॥
हमरे करमवाँ माँ इहै लिखत हैं सेजिया माँ सूतौं अकेलि ॥ ६ ॥
मरइया नौवा मरइया बरिया मरि जा पंडितवा के पूत ॥ ७ ॥
हमरे छोनिया क इया वर खोजिस जो सेजिया माँ
सूतै अकेलि ॥ ८ ॥
काहे मरै नौवा काहे मरै बरिया काहे पंडितवा क पूत ॥ ९ ॥
ऊसर खोदि बाबू कँकरी बोवाये का जाना तीति कि मीठि ॥१०॥

बेटी को बुलाकर बाप ने जाँघ पर बैठाया और हाल पूछा ॥१॥

हे बेटी ! तुमने जो-जो सुख किया है, मुझे बताओ ॥२॥

हे बाबू ! खाँड़ चिरौंजी का तो आहार करती हूँ । और कड़वे तेल से नहाती हूँ ॥३॥

पर मेरे कर्म में यह लिखा है कि सेज में अकेली सोती हूँ ॥४॥

सफ़ेद चादरें ओढ़ती हूँ । सफ़ेद बिछाती हूँ । पर मेरे कर्म में अकेली सोना लिखा है ॥५,६॥

वह नाई, वह बारी, वह पंडित का पुत्र मर जाय, जिसने मेरी प्यारी कन्या के लिये ऐसा वर खोजा ॥७,८॥

हे बाबू ! नाई, बारी और पंडित क्यों मरें ? ऊसर खोदकर तुम ने ककड़ी बुवाई थी । तुम्हें क्या पता कि वह मीठी होगी ? या तीती ? ॥९,१०॥

स्वयं न देखकर नाई, बारी और ब्राह्मण के भरोसे कन्या का विवाह करने का यह परिणाम होता है । मालूम होता है, कन्या का पति लम्पट है । कन्या को खाने पहनने का सुख तो है, पर पति का सुख नहीं है ।

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छाँहिं ।
'अहमद' ढाक सुहावने, जहँ प्रीतम गल बाहिं ॥

[२५]

राम नहिं जाने तौ और जाने का भा ।
फूल तौ वो है जो रामजी का सोहे,
नाहीं तौ बेला लगाये से का भा ॥ १ ॥
कपड़ा तौ वो है जो रामजी का सोहे,
नाहीं गुलाबी रँगाये से का भा ॥ २ ॥
पूत तौ वो है जो पिताजी का सेवै,
नाहीं तौ पाजी के जनमे से का भा ॥ ३ ॥

तिरिया तौ वो है जो दूनौ कुल तारै,
नाहीं तौ माया के कोखि आये का भा ॥ ४ ॥

यदि तुमने राम को नहीं जाना तो दूसरों को जानने से क्या हुआ?
फूल तो वही अच्छा है जो राम को सोहता है। नहीं तो बेला लगाने से क्या हुआ? ॥१॥

कपड़ा तो वही अच्छा है जो राम को सोहता है। नहीं तो गुलाबी रंग में रँगाने से क्या हुआ? ॥२॥

पुत्र तो वही है जो पिता की सेवा करे। नहीं तो पाजी पुत्र के पैदा होने से क्या हुआ? ॥३॥

स्त्री तो वह है जो दोनों कुलों का उद्धार करे। नहीं तो माँ की कोख में आने से क्या हुआ? ॥४॥

[२६]

धन्य है पुरुष तोरि भागि करकसा नारि मिली।
सात घरी दिन रोय के जागी लिहिन वढ़निया उठाय।
निहुरे निहुरे अँगना वटोरै घर भर को गरिआय ॥ १ ॥
वखरी पर से कौवा रोवै पहुना आये तीनि।
आवा पाहुन घरमाँ वैठा कण्डा मैं लाऊँ वीन।
करकसा० ॥ २ ॥
हँडिया भरिके अदहन दीहिन चाउर मेरइन तीन।
कठउत भरिकै माँड़ पसाइन पिया हिलोर हिलोर।
करकसा० ॥ ३ ॥
सात सेर के सात पकाइन नौ सेरे का एकै।
तुम दहिजरऊ सातो खायेव मैं कुलवन्तिन एकै।
करकसा० ॥ ४ ॥

देहरी बैठे तेल लगावै सेंदुर भरावै माँगि।
अँचल पसारि कै सूरज मनावै होइहौं मैं कब राँड़ि।
करकसा० ॥५॥

हे पुरुष! तुम बड़े भाग्यवान् हो जो तुमको कर्कशा स्त्री मिली। सात घड़ी दिन चढ़ आया, तब वह रोती हुई जगी। हाथ में झाड़ू लेकर निहुरे-निहुरे वह आँगन बुहारती है और घर भर को गाली देती जा रही है ॥१॥

घर के मुँड़ेर पर कौवा रो रहा है। इतने में तीन मेहमान आये। स्त्री ने कहा—आओ मेहमान! घर में बैठो। मैं जंगल से कंडे बीन लाऊँ, तब रसोई बनाऊँ ॥२॥

हाँडी भरकर पानी उबाला। उसमें तीन चावल डाल दिये। कठौता भर कर माँड पसाया। हे मेहमानो! आओ, खूब हिला-हिलाकर पीओ ॥३॥

सात सेर की सात रोटियाँ बनाई, नौ सेर की एक ही। पति से झगड़ती है—रे दाढ़ीजार! तू ने तो सात रोटियाँ खा ली, और मैं कुल की रक्षा करनेवाली ने एक ही ॥४॥

देहली पर बैठकर तेल लगाती है। माँग को सिन्दूर से भर रक्खा है। आँचल फैलाकर वह सूर्य को मनाती है कि मैं राँड़ कब होऊँगी? ॥५॥

[२७]

तमुवाँ गिराये कहाँ जावा हो कहाँ लगिहैं ठिकान।
काहे के लगवला बबुरिया हो लगवता तूँ आम।
अमिरित करता भोजनियाँ हो भजता हरि नाम ॥१॥
प्रेम बाग नहीं बौरै हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम कै मनुजवा हो जस अधियरिया राति ॥२॥

प्रेम नगर की हटिया हो हीरा रतन विकाय।
चतुर चतुर सौदा करि गये हो मूरुख ठाढ़ पछिताय ॥ ३ ॥
तम्बू गिराकर कहाँ जाओगे ? कहाँ ठिकाना लगेगा ?

तुमने बबूल क्यों लगाया ? आम लगाते तो अमृत ऐसा फल खाते और राम का भजन करते ॥१॥

प्रेम बाग में नहीं बौरता (फूलता)। प्रेम बाज़ार मे भी नहीं विकता। बिना प्रेम का मनुष्य अँधेरी रात की तरह है ॥२॥

प्रेमनगर के बाजार में हीरा रत्न बिकता है। चतुर लोग सौदा कर लेते हैं। मूर्ख खड़े पछताते हैं ॥३॥

[२८]

लैहौ लिआइ प्रानपति हमके ॥
तूँ वन जात हमडुँ सँग चलवै,
हम से अवध में रहा न जाइ। प्रानपति० ॥ १ ॥
मातु पिता घर सेवा करिहौ,
कुछ दिन में हम मिलवै आइ। प्रानपति० ॥ २ ॥
कैसे जिवैं तेरो मातु पिता हो,
कैसे जिवैं वहि अवध के लोग। प्रानपति० ॥ ३ ॥

सीता कहती हैं—हे प्राणपति ! मुझे साथ ले लो।

तुम वन को जा रहे हो। मैं भी चलूँगी। मुझसे अयोध्या में अकेले रहा नहीं जायगा ॥१॥

राम ने कहा—हे सीता ! तुम यहाँ रहकर मेरे माँ-बाप की सेवा करोगी। मैं कुछ दिनों के बाद आकर मिलूँगा ही ॥२॥

सीता ने कहा—हे राम ! तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे वियोग में जियेंगे कैसे ? और अवध के लोग ही कैसे जियेंगे ? ॥३॥

[२९]

ऊँचा नगर मधुवन क जहाँ हरि बस रहे।
ठंडी छाया कदम की वहीं हरि टिक रहे॥
जो मैं ऐसा जानू मेरे हरि तज जायँगे।
बनती सीस का चीरा हर पैंची से लग रहती॥१॥
जो मैं ऐसा जानूँ मेरे हरि तज जायँगे।
बनती नैनन का सुरमा हर डोरों से लग रहती॥२॥
सिंह ने घेरी स्वामी गउवै, बिरहा ने घेरी रानी रुकमन।
आय छुड़ाइय॥३॥

मधुबन का ऊँचा नगर है। जहाँ हरि बसे हैं। कदम्ब की ठंडी छाया में टिके हैं। यदि मैं जानती कि हरि मुझे छोड़ जायँगे तो मैं उनके सिर का चीरा (पगड़ी) बनती और हरएक पेंच से लगी रहती॥१॥

यदि मैं ऐसा जानती कि मेरे हरि मुझे छोड़ जायँगे तो मैं उनके नेत्रों का सुरमा बन जाती और आँख के प्रत्येक डोरे (रेशे,नस) से लगी रहती॥२॥

हे मेरे हरि! विरह ने रानी रुक्मिणी को वैसा ही घेर रक्खा है, जैसे सिंह गाय को घेरे हो। तुम आकर छुडाओ॥३॥

[३०]

उठो री सुलच्छन नार, झाड़ू देलो अँगना॥१॥
घर में तो तुम चौका देलो, बाहर धोलो बसना॥२॥
सास ननद के पैरो लग लो, गोद लेलो ललना॥३॥
घर में तो तुम बिपर जिमालो, बाहर देलो दछिना॥४॥

हे सुलक्षणा स्त्री! उठो। आँगन में झाड़ू दे लो॥१॥
घर में चौका दे लो। बाहर बरतन धो लो॥२॥

सास ननद को प्रणाम कर लो। फिर अपना बालक गोद में ले लो ॥३॥

घर के भीतर ब्राह्मण जिमा लो और बाहर दक्षिणा दे लो ॥४॥

[२१]

सरन गहो सिया राम के पिया हो सरन गहो सिय राम।
आजु पवन नहीं अँगना वहारै इन्द्र भरै नहिं पानी।
लछमी सरस्वती धान न कूटैं झंखै मदोदरि रानी ॥ १ ॥
लंका अस कोट समुन्दर खाईं कुंभकरन अस भाई।
मेघनाथ ऐसन वेटा जेकरे भलु त्रिय गैलु डेराई ॥ २ ॥
जामवन्त ऐसे मंत्री जेकर वीर लछन अस भाई।
महावीर अस पायक जेकर छनही लंक जराई ॥ ३ ॥
चन्दन गाछ के डँड़िया वनवलो सवजो रंग वहार।
सीता के पहुँचाव अजोध्या राखि ले कुल परिवार ॥ ४ ॥

मंदोदरी रावण से कहती है—हे प्रियतम ! सीताराम की शरण गहो।

आज पवन आँगन नही वुहार रहा है। न इन्द्र ही पानी भरता है। लक्ष्मी और सरस्वती धान नहीं कूटती हैं। रानी मंदोदरी झंख रही हैं ॥१॥

रावण कहता है—जिसके लंका ऐसी कोट, समुद्र ऐसी खाईं, कुम्भकर्ण ऐसा भाई और मेघनाद ऐसा वेटा है, तुम उसकी स्त्री होकर डर गई ? आश्चर्य है ॥२॥

मंदोदरी कहती है—जामवन्त जिसका मंत्री है, लक्ष्मण जैसा वीर जिसका भाई है। हनुमान ऐसा जिसके पायक (दास) हैं। जिसने क्षण भर में लङ्का जला दी थी। उससे तो भय करना ही चाहिये ॥३॥

हे प्रियतम ! चंदन वृक्ष कटवाकर उसकी पालकी वनवा लो। उसमें

हरे रङ्ग का ओहार (परदा) डलवा लो। सीता को अयोध्या पहुँचा दो और अपने परिवार की रक्षा कर लो ॥४॥

[३२]

मारे डारै कटीली तोर अँखिया।
ब्रह्मा बस कीन्हा विष्णु बस कीन्हा,
मुनि बस कीन्हा बजाइ कै बँसिया ॥ १ ॥
काम बस कीन्हा क्रोध बस कीन्हा,
हरि बस कीन्हा लगाइ कै छतिया ॥ २ ॥
गोपी बस कीन्हा ग्वाल बस कीन्हा,
राधा बस कीन्हा गले डारि फँसिया ॥ ३ ॥

तेरी कटीली आँखें मुझे मारे डालती हैं। तू ने ब्रह्मा को वश में कर लिया; विष्णु को वश में कर लिया और वंशी बजाकर मुनियों को वश में कर लिया ॥१॥

तू ने काम को वश में कर लिया। क्रोध को वश में कर लिया। भगवान् को भी छाती से लगाकर वश में कर लिया ॥२॥

तू ने गोपियों को वश में किया। ग्वालों को वश में किया। गले में प्रेम की फाँसी डालकर राधा को भी वश में कर लिया ॥३॥

[३३]

गोविन्दा नहीं गाया तैं ने गाया क्या रे बावरे।
रतनों की चोरी करी रे राई करण को दान रे।
कोठे चढ़कर देखण लागे कितने ऊपर विवाण रे ॥ १ ॥
पतिव्रता भूखी मरे रे बेस्वा चाबें पान रे।
पतिव्रता बैठी रही रे बेस्वा करे गुमान रे ॥ २ ॥
हाथी छुट गया डार से रे लसकर पड़ी पुकार रे।
नौ दरवाजे बन्द पड़े रे निकल गया उस पार रे ॥ ३ ॥

निर्धन गिरा पहाड़ से रे कोई न पूँछे बात रे।
साहूकार के काँटा चुभ गया पड़ गई हाहाकार रे ॥ ४ ॥
अभिमानी के द्वार पर लाख लुटैं दिन रात रे।
साधू सन्त बैठ रहें रे कोई न पूँछे बात रे ॥ ५ ॥

अरे बावरे! तू ने गोविन्द को नहीं गाया तो क्या गाया? तू ने रत्नों की तो चोरी की है और दान के लिये राई का विचार किया है। फिर भी कोठे पर चढ़कर तू देख रहा है कि स्वर्ग का विमान कितनी दूर पर है ॥१॥

पतिव्रता भूखी मर रही है। वेश्या पान चबा रही है। पतिव्रता चुप चाप है। वेश्या गुमान कर रही है ॥२॥

हाथी अपने खूँटे से छूट गया। सारी लश्कर में शोर मच गया। नवो दरवाज़े बन्द पड़े हैं। पर वह उस पार निकल गया ॥३॥

गरीब पहाड़ पर से गिर पड़ा। किसी ने बात भी न पूछी। धनी को ज़रा सा काँटा चुभ गया। चारों ओर हाहाकार मच गया ॥४॥

अभिमानी के द्वार पर रातदिन लाखों रुपये लुटाये जा रहे हैं। पर साधु सन्त बैठे हैं, कोई उनसे बात भी नहीं पूछता ॥५॥

[३४]

मातु गंगा लागि भगीरथ बेहाल ॥
कोई नीपे अगुआ त कोई पिछुआर।
भगीरथ नीपे छथ शिव के दुआर ॥ १ ॥
कोई तोड़े फूल कोई बेलपत्र।
भगीरथ तोड़ैं छथ शिव के दुआर ॥ २ ॥
कोई माँगे अनधन कोई धेनु गाय।
भगीरथ माँगै छथि गंगाजी के धार ॥ ३ ॥

आगु आगु भगीरथ भागल जाथि।
पिछु पिछु सुरसरि पसरलि जाथि ॥ ४ ॥

गंगा माता के लिये भगीरथ विकल हैं। कोई अपना अगवार (घर के आगे का भाग) लीप रहा है, कोई पिछवाड़ा लीप रहा है। पर भगीरथ तो शिव का द्वार लीप रहे हैं ॥१॥

कोई फूल तोड़ रहा है, कोई बेलपत्र तोड़ रहा है। पर भगीरथ शिव का द्वार तोड़ रहे हैं ॥२॥

कोई अन्न-धन माँग रहा है, कोई कामधेनु गाय माँग रहा है। पर भगीरथ गंगाजी की धारा माँग रहे हैं ॥३॥

आगे आगे भगीरथ भागे जा रहे हैं। पीछे-पीछे गंगाजी फैलती जा रही हैं ॥४॥

भगीरथ की तरह कर्मनिष्ठ होना चाहिये।

[३५]

मैं न लड़ी थी बलमा चले गये।
रंगी महल में दस दरवाजा, ना जानी खिड़किया खुली थी ॥ १ ॥
पाँचो जनी मोरि रान्ह परोसिन तुम से बलम कछु कहिउ न गये ॥ २ ॥

मैंने लड़ाई-झगड़ा नहीं किया था, पर प्रियतम चले गये।

इस रंगमहल में दस दरवाजे हैं। न जाने कौन सी खिड़की खुली थी, जिससे प्रियतम चले गये ॥१॥

पाँच जनी तुम मेरी पड़ोसिनें हो। क्या तुम से प्रियतम कुछ कह नहीं गये? ॥२॥

रंगमहल=शरीर। दस दरवाजे=२ आँख, २ कान, २ नाक, १ मुख, १ लिंग, १ गुदा, १ ब्रह्मरंध्र। पाँच जनी=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

बारहमासा

बारहमासा वह गीत है, जिसमें बारहो महीनों का वर्णन रहता है। देहात के लोग बारहमासों का गाना और सुनना बहुत पसंद करते हैं। क्योंकि एक साथ ही वे बारह महीनों के सुख-दुख का सीन देखने लगते हैं, और उसके साथ अपने-अपने अनुभव मिलाकर वे एक नवीन सुख का रस लेने लगते हैं। कुछ बारहमासे यहाँ दिये जाते हैं :—

[१]

चैत अयोध्या में जलमें राम। चन्दन सों लिपवायउँ धाम।
सुवरन कलस धरे भरवाय। धरे घटमण्डल
पठाये अरी बैरन कैकेई। वन बालक मेरे ॥ १ ॥

बैसाखे रुत भीषम घाम। पवन चलत जैसे बरसत आग।
जैसे जल विन तड़पत मीन। पिआसे होइहैं लछमन राम॥
काऊ विरिछ तरे। यही दुख दीने कैकेई। पठाये० ॥ २ ॥

जेठ मास लू लागत अंग। रामलखन अरु सीता संग।
हरि के चरन जैसे कमल समान। धधकै धरती औ असमान।
चलैं पगु कैसे ॥ पठाये० ॥ ३ ॥

आषाढ़ मास वन गरजे घोर। चहक विहंगन कूकत मोर।
कलपै कौसल्या अवधपुर धाम। वन भीजैं मेरे लछमन राम।
काऊ विरिछ तरे ॥ पठाये० ॥ ४ ॥

सावन में सर साधे तीर। भौंरन गूँजत फिरत भुजंग।
ठाढ़ी कौसल्या अवधपुर धाम। बन भीजैं मेरे लछमन राम।
झमकि झरि लागै॥ पठाये०॥५॥
भादों मेघा पड़े अपार। घर बैठे सगरो संसार।
बड़ी बड़ी बुँदिया बरसत नीर। भीजत ह्वैहैं श्रीरघुवीर।
रैनि अँधियारी॥ पठाये०॥६॥
आयल ये सखि! मास कुवार। धर्म करै सगरो संसार।
आज जो होते अयोध्या में लछमन राम। न्योतती बाम्हन
देती दान। थार भर मोती॥ पठाये०॥७॥
कातिक मास सखि आई दिवारी। घर दिवला लेसहिं नर नारी।
मेरी अयोध्या पड़ी अँध्यारी। सब सखियाँ मिलि
गंगा नहावै। करौं मैं कैसे॥ पठाये०॥८॥
अगहन कुँवारी करती सिँगार। सिमाती बसतर सोने के तार।
पाट पटम्बर कुलही के मानि। माथे चीरा जड़े कलीदार।
गले बैजन्ती॥ पठाये०॥९॥
पूस मास घन पड़े तुषार। रैनि चलै जस खड्ग की धार।
बिन ओढ़ना मोरे लछमन राम। कलपै कौसिल्या
अवधपुर धाम। कैसे करें मो जनम जरी के॥ पठाये०॥१०॥
माघ मास ऋतु होत बसंत। सुत बिदेश तन तज गये कंत।
बैठे भरतजी ढोरैं चौर। आजु जो होते मोरे लछमन राम।
जनम के जोड़ी। पठाये०॥११॥
फागुन रंग चले सब कोई। ऐसी ऋतु मैं गँवावौं रोई।
बैठे भरतजी घोरैं अबीर। केहि पर छिरकौं बिना रघुवीर।
दीन्ह दुख कैकेई। पठाये०॥१२॥

कौशल्या विलाप करती हैं—

श्रीरामचन्द्रजी ने चैत्र महीने में अयोध्या में जन्म लिया। उस समय मैंने चन्दन से सारा राजभवन लिपवाया था। सोने के कलश भराकर रखवाये थे। हाय! कैकेयी वैरिन ने मेरे बालकों को वन भेज दिया ॥१॥

वैशाख में भयानक घाम होता है। ऐसी लू चलती है, जैसे आग बरसती है। जैसे पानी बिना मछली तड़पती है। रामलक्ष्मण प्यासे होंगे। किसी वृक्ष के नीचे खड़े होंगे। हा! कैकेयी ने मुझे यह दुःख दिया ॥२॥

जेठ महीने में शरीर मे लू लगती है। राम, लक्ष्मण और सीता साथ हैं। राम के चरण कमल की तरह कोमल हैं। आकाश से लेकर पृथ्वी तक धधक रहा है। हाय! वे खाली पैर कैसे चलते होंगे? ॥३॥

आषाढ़ मे ज़ोर से बादल गरज रहे हैं। पक्षी चहक रहे हैं। मोर कूक रहे हैं। कौशल्या अयोध्या के महल मे कलप रही हैं—हाय! मेरे राम लक्ष्मण किसी वृक्ष के नीचे भीग रहे होंगे ॥४॥

सावन में तालाब तीर सन्धान रहे हैं। भौंरे गूँज रहे हैं। साँप फिर रहे हैं। कौशल्या अयोध्या के राजमहल में खड़ी पछता रही हैं—हाय! झड़ी लग रही है। मेरे राम लक्ष्मण वन में भीग रहे होंगे ॥५॥

भादों में अपार वृष्टि हो रही है। सारा संसार घर बैठा है। पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें बरस रही हैं। हा! अँधेरी रात में राम कहीं भीगते होंगे ॥६॥

हे सखी! कुआर का महीना आया। सारा संसार धर्म कर रहा है। हा! आज जो अयोध्या में राम लक्ष्मण होते तो मैं ब्राह्मणों को निमंत्रित करके थाल भरकर मोती दान देती ॥७॥

कार्तिक में दिवाली आई। सब स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर में दीपक

लेस रहे हैं। हाय ! मेरी अयोध्या अन्धकार में पड़ी है। सब सखियाँ मिलकर गंगा नहा रही हैं। हाय ! मैं क्या करूँ ? ॥८॥

अगहन में कुमारियाँ शृङ्गार करती हैं। जरी के तारों से वस्त्र सिलाती हैं। रेशमी कपड़े पहनती हैं। माथे पर सुन्दर चीर और गले में बैजयन्ती माला पहनती हैं ॥९॥

पौष में भयानक जाड़ा पड़ता है। रात तो तलवार की धार के समान काटती है। हाय ! मेरे राम लक्ष्मण बिना ओढ़ने के हैं। कौशल्या अवधपुर में झंख रही हैं। हाय ! मुझ जन्म भर जलनेवाली के बेटे कैसे दुःख सहन करते होंगे ॥१०॥

माघ में बसंत ऋतु आती है। पुत्र विदेश में है। पति शरीर त्याग गये। भरतजी बैठे हुये चमर ढुरा रहे हैं। हा ! आज जो कहीं राम-लक्ष्मण होते ! जो मेरे जन्म के संगी थे ॥११॥

फागुन में सब कोई रंग चला रहे हैं। हाय ! ऐसी ऋतु को मैं रोकर गँवा रही हूँ। भरतजी बैठे हुये अबीर घोल रहे हैं। पर राम तो हैं नहीं। किस पर छिड़कें ? कैकेयी ने यह दुःख दिया ॥१२॥

माताओं के इतिहास में कौशल्या की हृदय-वेदना ख़ास स्थान रखती है। स्त्रियों ने पुत्र-वियोग के इस दुःख को बड़ी गहराई से अनुभव किया है।

[२]

आली री बिन श्याम सुन्दर सो कल न परै रे।
पहिला मास लग्यो कातिक आन। विरह बिथा तन लागत बान।
जिय मोरा तलफत निकसत प्रान। केहि बिधि राखौं पापी प्रान।
सो कल न० ॥ १ ॥
आये री सखि अगहन मास। का पर राखौं जीवन आस।

सो श्याम विना मोहि सूनो है धाम। विन पिउ नीक न ये. कौ काम।
सो कल न० ।'। २ ॥
पूस मास पाला परत तुसार। विन पिय जाड़ा न जाय हमार।
लपटि कैसे सोवौं बिन रघुवीर। हनि हनि मारै करेजवा में तीर।
सो कल न० ॥ ३ ॥
माघ मास रितु लागे बसन्त। अजहूँ न पायो पिया तेरो अन्त।
लिखौं कैसे पाती को लै के जाय। को निर्मोही को देइ समुझाय।
सो कल न० ॥ ४ ॥
फागुन में सब घोरैं अबीर। मैं कैसे घोरौं बिना रघुवीर।
जरौं जैसे होरी उठत जैसे लूक। विरह अगिनि तन दीनो है फूक।
सो कल न० ॥ ५ ॥
चैत मास बन फूले हैं फूल। हमरा बलम हम का गये भूल।
खड़ी सरजू माँ मींजत हाथ। ऐसे समय पिय छाड़्यो है साथ।
सो कल न० ॥ ६ ॥
बैसाख मास गवने की बहार। दिन सब बीत्यो ठाढ़े दुआर।
कब वह ऐहैं न रहै मन धीर। रहि रहि उठत करेजे में पीर।
सो कल न० ॥ ७ ॥
जेठ मास बरसाइत होय। वर पूजन निकरीं सब कोय।
सखी सब करके सोरहौं सिंगार। मथवा क बेंदिया अजब बहार।
सो कल न० ॥ ८ ॥
असाढ़ मास बहु बरसत मेह। पर्‌यो फफोला सारी देह।
विरह तन जरिगै लागी है लूक। बरखा फुहार दियो तन फूक।
सो कल न० ॥ ९ ॥
सावन मास में हरियर रूख। हमरा कँवल गये विना पिउ सूख।
झूलों कैसे झूला विनु रघुवीर। तलफत प्रान न निकरत तीर।
सो कल न० ॥ १० ॥

भादौं मास गरुव गँभीर। हमरे नयन भरि आये हैं नीर।
जिया मोर डूबै औ उतिराय। हमरा खेवैया परदेस में छाय।
सो कल न० ॥ ११ ॥
कुवार मास बन बोल्यो मोर। उड़ु उड़ु गोरिया बलमु आये तोर।
आयो पिया पूज्यो है आस। याही ते गावों बारह मास।
सो कल न० ॥ १२ ॥

हे सखी! श्यामसुन्दर के बिना चैन नहीं पड़ रही है।

पहला महीना कातिक का लगा। शरीर में विरह का बाण लग रहा है। जी तड़प रहा है। प्राण निकल रहे हैं। मैं इस पापी प्राण को कैसे रखूँ? ॥१॥

हे सखी! अगहन का महीना आया। किस पर जीने की आशा रक्खूँ? श्याम के बिना मेरा घर सूना है। प्रियतम के बिना कोई काम अच्छा नहीं लगता ॥२॥

पौष में पाला पड़ता है। हा! प्यारे के बिना मेरा जाड़ा नहीं जा सकता। राम के बिना किससे लपटकर सोऊँ? विरह कस-कस कर कलेजे में तीर मार रहा है ॥३॥

माघ महीने में बसंत आया। पर हे प्रियतम! तुम्हारी यात्रा का अन्त नहीं आया। कैसे पत्र लिखूँ? कौन लेकर जायगा? निर्मोही पति को कौन समझायेगा? ॥४॥

फागुन में सब अबीर घोलते हैं। हाय! राम के बिना मैं कैसे घोलूँ? होली की तरह जल रही हूँ। लूक की तरह उठ रहा है। विरह की आग ने शरीर को फूँक दिया है ॥५॥

चैत्र में बन में फूल फूले हैं। हाय! मेरे प्राणनाथ मुझे भूल गये। सरयू में खड़ी-खड़ी हाथ मींज रही हूँ। ऐसे वक्त में प्राणनाथ ने मेरा साथ छोड़ दिया है ॥६॥

बैसाख में गौने की बहार है। सारा दिन द्वार पर खड़े-खड़े बीत जाता है। रह-रहकर कलेजे में पीर उठ रही है। वे कब आयेंगे ? ॥७॥

जेठ महीने में वर की साइत होती है। वट-पूजन के लिये सब निकलती हैं। सखियों ने सोलह श्रृंगार कर रक्खा है। माथे की वेंदी अजब बहार दे रही है ॥८॥

आषाढ में पानी बहुत बरसता है। सारी देह मे फफोले पड रहे हैं। विरह की लू लगने से मेरा सारा शरीर जल गया है। वर्षा के फुहारे से शरीर और भी जल रहा है ॥९॥

सावन में सब वृक्ष हरे हो गये। पर मेरा हृदय-कमल प्रियतम विना सूख गया है। राम के बिना मैं कैसे झूला झूलूँ ? प्राण तड़प रहे हैं। विरह का तीर नहीं निकल रहा है ॥१०॥

भादौं का महीना बडा गंभीर होता है। मेरी आँखों में आँसू भर आये हैं। मेरे प्राण डूब रहे हैं और उतरा रहे हैं। मेरी नाव का खेने-वाला विदेश में है ॥११॥

कुवार महीना आया। बन में मोर बोलने लगे। हे गोरी ! उठ। देख, तेरा पति आया है। प्रियतम आ गये। आशा पूरी हुई। इसी से बारहमासा गा रही हूँ ॥१२॥

[३]

कन्हैया नहीं आये, कन्हैया के लीआई ॥

सीतल चन्दन अंग लगावति, कामिनि करत सिंगार।
जा दिन ते मनमोहन विछुड़े, सुनकै मास आसार (ढ़)।
कन्हैया नहीं० ॥ १ ॥

एक त गोरिया अँगवा क पातरि, दुसरे पिया परदेस।
तिसरे मेह झमाझम बरसै, सावन अधिक अँदेस।
कन्हैया नहीं० ॥ २ ॥

भादौं रैनि भयावनि ऊधो, गरजै अरु घहराय।
लवका लवकै ठनका ठनकै, छतिया दरद उठि जाय।
कन्हैया नहीं० ॥ ३ ॥

कारै कामिनि आस लगावै, जोहै पिया की वाट।
अबकी बार जो हरि मोर अइहैं, हियरा क खुलिहै कपाट।
कन्हैया नहीं० ॥ ४ ॥

कातिके पूरनमासी ऊधो, सब सखी गंगा नहायँ।
हम अस अबला परम सुनरिया, काके गोहनवाँ जायँ।
कन्हैया नहीं० ॥ ५ ॥

अगहन ठाढ़ि अँगनवाँ ऊधो, चहुँदिसि उपजा धान।
पिया बिनु करके मोर करेजवा, तन से निकरत प्रान।
कन्हैया नहीं० ॥ ६ ॥

पूसहि फुहवा परिगै ऊधो, भींजि गई तन चीर।
चकई चकवा बोली करतु है, वहि जमुना के तीर।
कन्हैया नहीं० ॥ ७ ॥

माघ कड़ाका जाड़ा ऊधो, सब सखी रुइया भराय।
हमरा बलमु परदेस रहतु हैं, पिया बिन जाड़ न जाय।
कन्हैया नहीं० ॥ ८ ॥

फागुन फगुवा बीति गये ऊधो, हरि नहीं आये मोर।
अबकी जे हरि मोर ऐहैं, रंग खेलब झकझोर।
कन्हैया नहीं० ॥ ९ ॥

चैत फुलै बन टेसुल ऊधो, भवँरा पइठि रस लेइ।
का भवँरा तू लोटा पोटा, काहे दरद मोहिं देइ।
कन्हैया नहीं० ॥१०॥

वैसाख बाँस कटौतिउँ ऊधो, रचि रचि अँटा छवाय।
तेहि चढ़ि सोवतैं कृष्ण कन्हैया, अँचरन करतिउँ बाय।
कन्हैया नहीं० ॥११॥
जेठ तपै मृगडहिया ऊधो, वन कै पवन हहराय।
आये पिया हिलमिलि के प्यारी, जिय की जरनि बुताय॥
कन्हैया नहीं० ॥१२॥

कृष्ण नहीं आये। कृष्ण को लिवा लाएँ।

शीतल चंदन अंग में लगाकर कामिनी श्रृङ्गार कर रही है। जिस दिन से मनमोहन बिछुड़े हैं, तब से देखो, आषाढ़ महीना कितने महीनों पर आया है ॥१॥

एक तो गोरी यों ही अंग की पतली है। दूसरे उसके प्रियतम परदेश में हैं। तीसरे झमाझम बादल बरस रहा है। सावन में प्राण जाने का अधिक अंदेशा है ॥२॥

हे ऊधव! भादों की भयानक रात गरजती है और घहराती है। बिजली चमकती है। बादल गरजते हैं। मेरी छाती में पीड़ा उठ खड़ी होती है ॥३॥

कुवार में कामिनी आशा करके प्रियतम की बाट जोहती है। इस बार जो मेरे प्राणनाथ आयेंगे तो, हृदय के कपाट खुल जायँगे ॥४॥

हे ऊधव! कार्तिक की पूर्णमासी को सब सखियाँ गंगा नहाती हैं। हाय! मैं परम सुन्दरी अबला किसके साथ जाऊँ? ॥५॥

अगहन भर मैं आँगन में खड़ी रहती हूँ। चारोंओर धान के खेत लहलहा रहे हैं। हाय! प्रियतम के बिना मेरा कलेजा करकता है। शरीर से प्राण निकल रहे हैं ॥६॥

हे ऊधव! पौष में कुहरा पड़ता है। मेरी चीर भीग गई। चकई चकवा उस जमना के किनारे केलि कर रहे हैं ॥७॥

हे ऊधव ! माघ में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। सब सखियाँ रुई भराती हैं। हाय ! मेरे प्राणनाथ परदेश में रहते हैं। प्रियतम के बिना जाड़ा नहीं जा सकता ॥८॥

हाय ! फागुन का फाग बीत गया। मेरे हरि नहीं आये। इस बार जो मेरे हरि आयेंगे तो धूमधाम से रंग खेलूँगी ॥९॥

चैत्र में वन में पलाश फूलता है। भौंरा उसके फूल मे पैठकर रस लेता है। हे भौंरा ! तुम क्यों लोटते-पोटते हो ? क्यों मुझे पीड़ा देते हो ? ॥१०॥

हे ऊधव ! मेरे मन मे लालसा थी कि वैसाख में हरे-हरे बाँस कटा कर अटा छवाती। उस पर कृष्ण सोते और मैं आँचल से बयार करती ॥११॥

हे ऊधव ! जेठ में मृगदाह तपता है। वन की हवा हहरा कर बहती है। उस महीने में प्रियतम आये। प्यारी ने उनसे हिल-मिल कर जी की जलन मिटाई ॥१२॥

[४]

प्रात में कातिक परा है तुसार।
मोहिं छोड़ि कन्त भये वनिजार।
मैं न झूलोंगी ॥
अगहन मास जे अग्र सनेह।
चलु गोरिया नैहर अपनेह।
पान फूल ले कापड़ चीन्ह।
कन्त विछोह दई दुख दीन्ह।
मैं न झूलोंगी ॥
पूस मास पिया व्रत तुम्हार।
मैं वरती पाँचौं अतवार।

न्हाय खोरि कै देहुँ असीस।
जीवहु कन्त तूँ लाख बरीस।
झूलने तुम जाव रे सबै सखी।
मैं न झूलोंगी॥

माघ मास घन परा है तुसार।
काँपइ हाथ और काँपइ गात।
काँपइ सेज तुरंगहि खाट।
कि मैं नाहीं जैहौं झूलने तुम जाव।
मैं न झूलोंगी॥

फागुन मास बहै फगुनी बयार।
तरुवर पात सबै झरि जाय।
जो मैं जनतिउँ फगुनी बयार।
हरि जू को रखतिउँ अंग छिपाय।
मैं न झूलोंगी॥

चैत मास वन फूले हैं टेसु।
गोरिया ने पठई है पिया को सनेसु।
सुनि कै सनेसु पिया अजहूँ न आय।
ए दोनों नैना रोय गवायउँ।
मैं न झूलोंगी॥

बैसाख मास अति मंगलचार।
आनी है गौना व्याही है वारि।
छाई है माड़ो गाइ है गीत।
कन्थ को पन्त जोहत मोहिं वीत।
मैं न झूलोंगी॥

जेठ मास बर साइत होय।
बर पूजन निकरीं सब लोय।
अंगुर से अधरा कजरवा क रेख।
फिर फिर कन्त मोर मुख देख।
मैं न झूलोंगी ॥

असाढ़ मास असाढ़ी जोग।
घर घर मंदिर सजैं सब लोग।
चिरई चिरंगुल खोता लगाय।
हमरा बलमु परदेस में छाय।
मैं न झूलोंगी ॥

सावन मास में अधिक सनेह।
पिय बिन भूल्यो देह औ गेह।
पहिरी है कुसुमी उतारी है चीर।
पिया बिन सोहै न माँग सेंदूर।
मैं न झूलोंगी ॥

भादौं मास है गहिर गँभीर।
दामनि दमकै धारै न धीर।
दामिनि दमकै मेघ घहरावे।
सेज छाँड़ि धना रोइ गवाँवे।
मैं न झूलोंगी ॥

कुवार मास बन बोल्यो है मोर।
अरे अरे गोरिया बलम आये तोर।
आये बालम पूजी है आस।
पूरा "विद्यापति" बारह मास।
मैं न झूलोंगी ॥

अर्थ स्पष्ट है। अंत में 'विद्यापति' का नाम आया है। यह मैथिल-कोकिल 'विद्यापति' नहीं हैं।

[५]

यही देसवा मोरा जनम बितिये गैले।
कोई नहीं लावै पिया के समदिया। सन्तो हो॥
आयल मास असाढ़ आस मोरा लागले रे की।
गगन घटा मेघ बरीसन लागे। भीग गेल चुनरी विरहा उर जागे।
सन्तो हो॥ १॥
सावन सुरती लगाये पिया मोर कैसे पायब रे की।
भादवँ मासे रैन अँधियारी। गुरु बिना भ्रम लागल उर भारी।
सन्तो हो॥ २॥
कब मिलले पति मोर नयन भरि देखब रे की।
कौन जतन हम लायब सजनी। आसीन मास बीति गेल रजनी।
सन्तो हो॥ ३॥
फूल कमल कुम्भलाये भमरवा डरी भागल रे की।
विरहा लाग ललन पसीजे अँगिया। कासे कहौं कोई न बूझे बतियाँ।
सन्तो हो॥ ४॥
कन्त रहल परदेस कातीक नियरायल रे की।
भरि भरि नीर नयन भरि आवै। सब सुख सखी मोर मनहुँ न भावे।
सन्तो हो॥ ५॥

इसी देश में मेरा जीवन बीत गया। प्रियतम का संदेशा कोई नहीं लाता।

आषाढ का महीना आया। मेरी आशा लगी थी। मेरे गगनमंडल में घटा उमड़ी। मेघ बरसने लगे। मेरी चूनरी भीग गई। हृदय में विरहाग्नि उत्पन्न हुई॥१॥

सावन में ध्यान लगा रक्खा था कि अपने प्रियतम को कैसे पाऊँगी। भादों के महीने की भयानक अँधेरी रात में राह दिखानेवाले गुरु के बिना हृदय में बडा भ्रम लगता था ॥२॥

हा ! मेरे प्रियतम कब मिलेंगे ? कब मैं उनको आँख भरकर देखूँगी ? हे सखी ! मै क्या उपाय करूँ ? आश्विन के महीने की रात भी तो बीत गई ॥३॥

कमल का फूल कुम्हला गया। भौंरा डरकर भाग गया। विरह लग रहा है। अँगिया पसीज रही है। हाय ! कोई मेरा दर्द नहीं बूझता ॥४॥

कातिक निकट आ गया। प्रियतम अभी तक परदेश ही में हैं। आँखें भर-भर आती हैं। हे सखी ! सब सुख है, पर एक भी मेरे मन को नहीं भाता ॥५॥

यह छमासा है।

[६]

बीबी आया है आसाढ़ जो माह—आसाढ़ में धान बुवावती।
बीबी तेरे भैया हैं निपट गँवार। भरी है जवानी चले चाकरी ॥ १ ॥
बीबी म्हारे भैया हैं चतुर सुजान नौकरी करें राजे राम की।
बीबी पकडूँगी घोड़े की बाग पहरा न सरकन दूँगी ॥
गोरी छोड़ो हो घोड़े की बाग संग के सिपाही म्हारे दूर गये।
तेरे संग को डसो काला नाग तुमको तो मारेगी बीजली ॥
बीबी आया है सावन मास सावन में हिंडोले गड़ावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ २ ॥
बीबी आया है भादो जो मास—भादो में गरजे है बादला।
बीबी तेरे भैया० ॥ ३ ॥
बीबी आया असौज जो मास—असौज में ब्राह्मण जिमावती।
बीबी तेरे भैया० ॥ ४ ॥

बीवी आया है कातक जो मास—कातक में गंगा न्हावती।
बीवी तेरे भैया० ॥ ५ ॥
बीवी आया है अगहन जो मास—अगहन में गहना घड़ावती।
बीवी तेरे भैया० ॥ ६ ॥
बीवी आया है पूस जो मास—चन्दन अँगीठी जलावती।
बीवी तेरे भैया० ॥ ७ ॥
बीवी आया है माह जो मास—माह में कपड़े बनावती।
बीवी तेरे भैया० ॥ ८ ॥
बीवी आया है फागन जो मास—फागन में फगवा खिलावती।
बीवी तेरे भैया० ॥ ९ ॥
बीवी आया है चैत जो मास—चैत में देवी को धावती।
बीवी तेरे भैया० ॥१०॥
बीवी आया है वैसाख जो मास—वैसाख में खेती कटावती।
बीवी तेरे भैया० ॥११॥
बीवी आया है जेठ जो मास—जेठ में पंखा ढुलावती।
बीवी तेरे भैया० ॥१२॥

अर्थ स्पष्ट है। इस गीत में बारह महीनो के ख़ास-ख़ास काम की तालिका है।

[७]

डोला मेरो भीजै बिरछा तरे, चारो भीजैं कहार।
बीच में भीजै सुन्दर नारि, डोला मेरो भीजै बिरछा तरे॥
ठाढ़े भीजैं मैया जाये वीर, छत्री उड़ि उड़ि जाय।
आषाढ़ जो आयो मेरी सखी री आषाढ़ में धान बुवाय॥
सावन जो आयो मेरी सखीरी, सावन में हिंडोले गढ़ाय,
रेसम डोरी बराय, चन्दन पटली छुलाय॥
देखो री कन्हैया झोटा दे रहो—दे रहो मेरे महाराज॥

भादों जो आयो सुनो सखी, भादों गहिर गँभीर ॥ देखो० ॥

कार जो आयो मेरी सखी, कार में पित्तर मिलाय,
बाह्मन जेंवाय, दछिना दिवाय, कोरे कोरे कलस भराय।
रामलीला दिखाय ॥ देखो० ॥

कातिक जो आयो मेरी सखी कातिक में गंगा न्हवाय,
अपनी तिरिया वो माता को मेला दिखाय ॥ देखो० ॥

अगहन जो आयो सुनो री सखी, अगहन में हँसली नथला
गढ़ाय, रेसम पाट पुवाय, अपनी कामिनि को पहराय ॥ देखो०

पूस जो आयो सुनो री सखी, पूस उँसेटी हैं बाल ॥देखो०॥

माह जो आयो सुनो री सखी, माघ में तीरथ पठाय,
हरद्वार न्हवाय, अच्छी अँगीठी जलाय, माघ में पड़े
तुषार ॥ देखो० ॥

फागुन जो आयो सुनो सखी, फागुन में होरिया खिलाय,
फगुवा गवाय, अच्छे अच्छे रंग बनाय ॥ देखो० ॥

चैत जो आयो सुनो सखी री, चैत में फूली फुलवारि,
अच्छे अच्छे फुल रे बिनाय, गजरा बनाय।
पिया क पहिराय ॥ देखो० ॥

बैसाख जो आयो सुनो सखी री, अच्छे अच्छे गेहुँवा कटाय,
राम चरचा कराय, कोरी कोरी रासें उठाय।
कोठी कोठला भराय ॥ देखो० ॥

जेठ जो आयो मेरी सखी री, जेठ में बँगला छवाय।
बिजना डुराय ॥ देखो० ॥

अर्थ स्पष्ट है। इसमें बारह महीनों के घर-गृहस्थी के कामकाज, त्योहारों और प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है।

यह बारहमासा हिँडोले पर भी गाया जाता है।

अनुक्रमणिका

अ

ए

क

त

द

ध

न

फ

ब

ह

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

की पुस्तकों का

सूचीपत्र

कविता-कौमुदी

पहला भाग—हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस पुस्तक में चन्दबरदायी, विद्यापति ठाकुर, कबीरसाहब, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, सूरदास, मलिकमुहम्मद जायसी, नरोत्तमदास, मीराबाई, हितहरिवंश, नरहरि, हरिदास, नन्ददास, टोडरमल, बीरबल, तुलसीदास, बलभद्र मिश्र, दादूदयाल, गंग, हरिनाथ, रहीम, केशवदास, पृथ्वीराज और चम्पादे, उसमान, मलूकदास, प्रवीणराय, मुबारक, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारीलाल, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपतिमिश्र, जसवंतसिंह, बनवारी, गोपालचंद्र, बेनी, सुखदेव मिश्र, सबलसिंह चौहान, कालिदास त्रिवेदी, आलम और शेख, लाल, गुरु गोविन्दसिंह,

घनआनन्द, देव, श्रीपति, वृन्द, बैताल, उदयनाथ (कवीन्द्र), नेवाज, रसलीन, घाघ, दास, रसनिधि, नागरीदास बनीठनीजी, चरनदास, तोष, रघुनाथ, गुमान मिश्र, दूलह, गिरिधर कविराय, सूदन, शीतल, ब्रजबासी-दास, सहजोबाई, दयाबाई, ठाकुर, बोधा, पदमाकर, लल्लूजीलाल, जय-सिंह, रामसहाय दास, ग्वाल, दीनदयाल गिरि, रणधीरसिंह, विश्वनाथ-सिंह, राय ईश्वरीप्रताप नारायण राय, पजनेस, शिवसिंह सेंगर, रघुराज-सिंह, द्विजदेव, रामदयाल नेवटिया, लक्ष्मणसिंह, गिरिधरदास, लछिराम, गोविन्द गिल्लाभाई के जीवन चरित्रों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। प्रारम्भ में हिन्दी का एक हज़ार वर्षों का इतिहास बड़ी खोज से लिखा गया है। अन्त में प्रेम, हास्य, श्रृङ्गार और नीति के बड़े ही मनोरंजक घनाक्षरी, सवैया, कवित्त, दोहे, पहेलियाँ, खेती की कहा-वतें और अन्योक्तियाँ संगृहीत हैं। यह पुस्तक शिक्षित मनुष्य के हाथ, हृदय और वाणी का श्रृङ्गार है। बढ़िया काग़ज़, उत्तम छपाई और स्वर्णा-क्षरों से अंकित, रङ्गीन कपड़े की मनोहर जिल्द से सुसज्जित यह पुस्तक सुन्दर हाथों में सर्वथा स्थान पाने योग्य है। दाम ३)

सम्मतियाँ

(१)

शान्ति-निकेतन।

आपनार संकलित "कविता-कौमुदी" ग्रन्थखानि पाठ करिया परि-तृप्ति लाभ करियाछि। हिन्दी-कवितार ए रूप सुन्दर एवं धारावाहिक संग्रह आमि आर कोथाओ देखा नाई। अपनी एई कवितागुलि प्रकाश करिया भारतीय साहित्यानुरागी व्यक्तिमात्र केइ चिरकृतज्ञता पाशे आबद्ध करियाछेन। इति, १९ आषाढ, १३२६।

भवदीय,

श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

(२)

Ruthfarnham, Camberley (England)
Surrey, 19-9-19

DEAR SIR,

I am much obliged to you for your letter of August 21, 1919, and for the copy of the "कविता-कौमुदी," which has also arrived by the same post I have read the book with much interest, and it is a valuable introduction to the study of Hindi literature I wish such a book had been available when I began my studies in that language fifty years ago

Yours faithfully
GEORGE A GRIERSON

(३)

England
9th June, 1919

DEAR SIR,

I thank you very much for the very interesting Hindi book, named "Kavita Kaumudi," which you have kindly sent me I am reading parts of it already with great interest, and I hope when I have more leisure to read the whole of it.

Yours faithfully
R. P. DEWHURST
I C S, M A, F R G S

(४)

Oxford
December, 3rd, 1919

Dear Mr Tripathi,

It was a great surprise to receive from you a copy of your "Kavita Kaumudi" I thank you very sincerely and warmly for the gift I will do what I can to make your book known in European circles, so far as I can see, it is the very type of the book which a student of the literature ought to use.

I hope to sail for India in a few days, and I expect to visit Allahabad some time during the next few months In that case, I hope to have the pleasure of making your personal acquaintance.

(४)

With renewed thanks, and very kind regards

I remain

Yours most truly

J N FARQUHAR, (M A , D LITT.)

(५)

London,

3rd December, 1919

Dear Panditji,

I am indeed most grateful to you for having sent to me a copy of your excellent little volume on Hindi literature The scheme which you have in hand of bringing out in Hindi a series of volumes on the literature of various Indian and other languages is one which commends itself very much to me, etc

I am expecting to sail for India in about ten days and to reach Jubbulpore before the middle of January. I shall be so grateful if you would honour me by coming to call on me as there are several points with regard to Hindi literature which I shall be glad of talking over, etc , etc.

With best wishes and very many thanks for your kind thought

I remain,

Yours sincerely

(Rev) FRANK E KEAY

(६)

महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथ झा—

......of your Kavita Kaumudi—I am an old admirer and you will be glad to learn that each of my boys have got a copy of this book It is an excellent compilation done with good taste and wise discrimination The introduction is instructive and highly suggestive

---

कविता-कौमुदी

दूसरा भाग—हिन्दी

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें नीचे लिखे कवियों की जीवनियों और उनकी चुनी हुई कविताओं का संग्रह है—

हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी, विनायकराव, प्रतापनारायण मिश्र, विजयानन्द त्रिपाठी, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम शंकर शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद "भानु", श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, शिवसम्पत्ति, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवीप्रसाद "पूर्ण", कन्हैयालाल पोद्दार, रामचरित उपाध्याय, सैयद अमीर अली "मीर", जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, मिश्रबन्धु, गिरिधर शर्मा, रामदास गौड़, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल "सनेही", रूपनारायण पांडेय, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पांडेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, शिवाधार पांडेय, माखनलाल चतुर्वेदी, जयशङ्कर प्रसाद, गोपालशरणसिंह, बदरीनाथ भट्ट, सियारामशरण गुप्त, मुकुटधर, वियोगी हरि, गोविन्ददास, सूर्यकान्त त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्राकुमारी चौहान।

प्रारम्भ में खड़ीबोली की कविता का बड़ा मनोरंजक इतिहास और अंत में "कौमुदी-कुञ्ज" नाम से फुटकर कविताओं का बड़ा अनूठा संग्रह है। इसका तीसरा संस्करण बड़ी सजधज से निकला है। बढ़िया, सफ़ेद, चिकना काग़ज़; अच्छी छपाई; कपड़े की सुन्दर और मज़बूत जिल्द और दाम सिर्फ़ तीन रुपये।

कविता-कौमुदी

तीसरा भाग—संस्कृत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें निम्नलिखित संस्कृत कवियों की जीवनियाँ और उनकी चमत्कार-पूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं :—

अकालजलद, अप्पय दीक्षित, अभिनव गुप्ताचार्य, अमरुक, अमित-गति, अमोघ वर्ष, अश्वघोष, आनन्दवर्धन, कल्हण, कविपुत्र, कविराज, कालिदास, कुमारदास, कृष्ण मिश्र, क्षेमेन्द्र, गोवर्धनाचार्य, चन्दक, चाणक्य, जगद्धर, जगन्नाथ पण्डितराज, जयदेव, जोनराज, त्रिविक्रम भट्ट, दामोदर गुप्त, दंडी, धनञ्जय, पाजक, पद्मगुप्त, प्रकाशवर्ष, पाणिनि, वाण, विकटनितम्बा, बिल्हण, भट्टभल्लट, भवभूति, भर्तृहरि, भारवि, भामट, भिक्षाटन, भोज, भास, मङ्खक, मयूर, माघ, मातङ्गदिवाकर, मातृ गुप्त, मुरारि, मोरिका, रत्नाकर, राजशेखर, लीलाशुक, वररुचि, वाल्मीकि, वासुदेव, विज्जका, विद्यारण्य, व्यासदेव, शिवस्वामी, शीला भट्टारिका, श्रीहर्ष, सुबन्धु, हर्षदेव आदि।

प्रारम्भ में संस्कृत-साहित्य का इतिहास है। अन्त में कौमुदी-कुञ्ज में संस्कृत के रस, ऋतु, पहेली, नायिका-भेद, निन्दा-प्रशंसा-विषयक मनोहर श्लोकों का बड़ा ललित और आनन्दवर्धक संग्रह है। पुस्तक सुन्दर सजिल्द, छपाई सफ़ाई बढ़िया। दाम तीन रुपये। इसका संशोधित नया संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

कविता-कौमुदी

चौथा भाग—उर्दू

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी-अक्षरों में उर्दू के वली, आबरू, मज़मून, नाजी, यकरङ्ग, हातिम,

आरज़ू, फ़ुग़ाँ, मज़हर, सौदा, मीर, दर्द, सोज़, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नज़ीर, नासिख, आतिश, ज़ौक़, ग़ालिब, रिन्द, मोमिन, अनीस, दबीर, नसीम, अमीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर आदि मशहूर शायरों की, दिल को हुलसानेवाली, तबीयत, को फड़कानेवाली, कलेजे में गुदगुदी पैदा करनेवाली, आशिक़-माशूक़ के चोचलों से चुहचुहाती हुई, महावरों की मौज में चुलबुलाती हुई, बारीक विचारों की मिठास से दिमाग़ को मस्त करनेवाली, निहायत शोख़, बातों ही से हँसाने और रुलानेवाली उर्दू-ग़ज़लों और तीर की तरह चुभनेवाले शेरों का अनोखा संग्रह है। इसमें उर्दू-भाषा का निहायत दिलचस्प इतिहास भी है।

कौमुदी-कुञ्ज मे निहायत मजेदार शेरों और ग़ज़लों का संग्रह है।

छपाई-सफ़ाई मनोहर; काग़ज़ बढ़िया; कपड़े की सुवर्णाङ्कित जिल्द, दाम केवल तीन रुपये।

सम्मतियाँ

डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर—

The 4th part of 'Kavita Kaumudi' is a valuable contribution to Urdu literature and which will serve to arouse enthusiasm for a critical study of Urdu poets

The book has been presented to our library where it will be studied with profit by our scholars

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी, एम० ए०, डी० लिट०, (लंडन) प्रोफ़ेसर कलकत्ता युनिवर्सिटी—

Tripathiji,

I wished to write to you and make your acquaintance after having read your most admirable and illumining introduction in the 4th volume of the Kavita Kaumudi Your account of the charactristic and general spirit of Urdu poetry is one of the rarest pieces of literary study that I have seen on any Indian language, and if I had the time, I would gladly have translated it into English it deserves to be widely read

कविता-कौमुदी

पाँचवाँ भाग—ग्राम-गीत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इसमें निम्नलिखित विषय हैं :—

ग्रामगीतों का इतिहास, सोहर, जनेऊ के गीत, विवाह के गीत, जाँत के गीत, सावन के गीत, निरवाही और हिँडोले के गीत, कोल्हू के गीत, मेले के गीत, बारहमासा। बढ़िया ऐंटिक कागज़ पर, सुन्दर छपी हुई, मनोहर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल तीन रुपये।

प्रारंभ में विस्तृत भूमिका है, जिसमें लेखक की गीत-यात्रा का बड़ा ही मज़ेदार वर्णन है। भूमिका के बाद गीतों का परिचय है जो बड़ी विद्वत्ता से लिखा गया है।

सम्मतियाँ

(१)

कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर के सेक्रेटरी लिखते हैं :—

Dr Rabindranath Tagore is very glad to know that you have been taking great pains in collecting rural songs from different parts of India He sends his blessings and wishes you every success

दूसरे पत्र में—

Dr Tagore hopes your book will find appreciative readers and help to spread the love of folk-literature among our countrymen

(२)

माननीय पण्डित मदन मोहन मालवीय जी—

ग्राम-गीत-संग्रह को देखकर मुझे अनिर्वचनीय सुख प्राप्त हुआ है।

कविता-कौमुदी

छठाँ भाग—ग्राम-गीत

सम्पादक—रामनरेश त्रिपाठी

इस भाग में निम्नलिखित विषय हैं:—

आल्हा, चनैनी, हीर-राँझा, ढोला-मारू, नयकवा आदि बड़े-बड़े गीतों की संक्षिप्त कथाएँ और नमूने; घाघ और भड्डरी की उक्तियाँ; खेती की कहावतें; पहेलियाँ; लोकोक्तियाँ; नीति के पद्य; काश्मीरी गीत; पंजाबी गीत; मारवाड़ी गीत; भीलों के गीत; गुजराती गीत; मराठी गीत; मलयाली गीत; तामिल गीत; तेलगू गीत; उड़िया गीत; बँगला गीत; आसामी गीत; मैथिल गीत; नेपाली गीत; पहाड़ी गीत—अलमोड़ा और गढ़वाल के गीत।

कौमुदी-कुञ्ज में—बिरहे, कहरवा, पचरा, लावनी, होली, रसिया, चैती, खेमटा, पूरबी, दादरा, दोहे, सोरठे, सवैया, कवित्त, छन्द, भजन इत्यादि।

छपाई-सफ़ाई बहुत उम्दा; काग़ज़ बढ़िया; जिल्द सुन्दर; दाम ३)।

पुस्तक छपने वाली है।

अन्य पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
पथिक ॥) सजिल्द	१)
मिलन	॥)
स्वप्न	॥)
मानसी	॥)
भूषण-ग्रन्थावली, सटीक	१)
काश्मीर	५)
कुल-लक्ष्मी	१॥)
अंग्रेजी-शिष्टाचार	२)
दम्पति सुहृद्	१॥)
सद्गुरु-रहस्य	२॥)
अयोध्या काण्ड, सटीक ॥।), सजिल्द	१)
हिन्दुओं के व्रतों और त्योहारों का इतिहास	२)
हिन्दी-पद्य-रचना	।)
सुभद्रा	॥)
बाल-कथा कहानी—छः भाग, प्रत्येक का	।=)
नीति-शिक्षावली	॥)
रहीम	॥)
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	।=)
इतना तो जानो	॥)
चिन्तामणि—भजनों का संग्रह	=)

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

१—आठ आने प्रवेश फीस देकर प्रत्येक सज्जन "हिन्दी-मन्दिर-ग्रन्थ-माला" के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं। यह आठ आना न तो कभी वापस दिया जाता है, और न किसी हिसाब में मुजरा दिया जाता है।

२—स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला के कुल ग्रन्थ—पूर्व प्रकाशित और आगे प्रकाशित होनेवाले—पौनी कीमत में दिये जाते हैं।

३—किसी उचित कारण के बिना यदि किसी ग्रन्थ का वी० पी० वापस आता है तो ग्राहक का नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

४—"प्रवेश फीस" के आठ आने म० आ० से पेशगी भेजने चाहियें। किसी ग्रन्थ के वी० पी० में भी प्रवेश फ़ीस जोड़ ली जा सकती है।

५—स्थायी ग्राहक केवल एक ही प्रति पौनी कीमत में पा सकते हैं। हाँ अधिक प्रतियाँ लेना चाहें तो ।॥ प्रति पुस्तक के हिसाब से प्रवेश फ़ीस जमाकर चाहे जितनी प्रतियाँ ले सकते हैं।